तेतिरीय संहिता

Colophon

This document was typeset using $X_{\underline{1}}M_{\underline{1}}X$, and uses the Siddhanta font extensively. It also uses several $M_{\underline{1}}X$ macros designed by H. L. Prasād. Practically all the encoding was done with the help of Ajit Krishnan's mudgala IME (http://www.aupasana.com/).

Acknowledgements

The initial ITRANS encodings of some of these texts were obtained from http://sanskritdocuments.org/ and https://sa.wikisource.org/. Thanks are also due to Ulrich Stiehl (http://sanskritweb.de/) for hosting a wonderful resource for Yajur Veda, and also generously sharing the original Kathaka texts edited by Subramania Sarma.

See also http://stotrasamhita.github.io/about/

For Personal Use Only
Not For Commercial Printing/Distribution

| अनुऋमणिका | | | | | | | | | | | | | |
|------------------|-----|--|--|--|--|--|--|--|--|--|--|--|--|
| अनुऋमणिका | | | | | | | | | | | | | |
| काण्डम् १ | 1 | | | | | | | | | | | | |
| प्रथमः प्रश्नः | 1 | | | | | | | | | | | | |
| द्वितीयः प्रश्नः | 13 | | | | | | | | | | | | |
| तृतीयः प्रश्नः | 26 | | | | | | | | | | | | |
| चतुर्थः प्रश्नः | 38 | | | | | | | | | | | | |
| पञ्चमः प्रश्नः | 55 | | | | | | | | | | | | |
| षष्ठमः प्रश्नः | 74 | | | | | | | | | | | | |
| सप्तमः प्रश्नः | 94 | | | | | | | | | | | | |
| अष्टमः प्रश्नः | 113 | | | | | | | | | | | | |
| काण्डम् २ | 131 | | | | | | | | | | | | |
| प्रथमः प्रश्नः | 131 | | | | | | | | | | | | |
| द्वितीयः प्रश्नः | 154 | | | | | | | | | | | | |
| तृतीयः प्रश्नः | 180 | | | | | | | | | | | | |
| चतुर्थः प्रश्नः | 202 | | | | | | | | | | | | |
| पञ्चमः प्रश्नः | 210 | | | | | | | | | | | | |
| षष्टमः प्रश्नः | 222 | | | | | | | | | | | | |
| | | | | | | | | | | | | | |
| काण्डम् ३ | 235 | | | | | | | | | | | | |
| प्रथमः प्रश्नः | 235 | | | | | | | | | | | | |
| द्वितीयः प्रश्नः | 243 | | | | | | | | | | | | |
| तृतीयः प्रश्नः | 251 | | | | | | | | | | | | |

| अनुऋमणिका | ii |
|------------------|---------|
| चतुर्थः प्रश्नः | 258 |
| पञ्चमः प्रश्नः | 266 |
| काण्डम् ४ | 274 |
| प्रथमः प्रश्नः | 274 |
| द्वितीयः प्रश्नः | 282 |
| तृतीयः प्रश्नः | 291 |
| चंतुर्थः प्रश्नः | 298 |
| पञ्चमः प्रश्नः | 305 |
| षष्ठमः प्रश्नः | 310 |
| सप्तमः प्रश्नः | 318 |
|), | _ |
| काण्डम् ५ | 326 |
| प्रथमः प्रश्नः | 326 |
| द्वितीयः प्रश्नः | 336 |
| ਰੂਰੀਧ: प्रश्न: | 347 |
| चतुर्थः प्रश्नः | 355 |
| पञ्चमः प्रश्नः | 366 |
| षष्ठमः प्रश्नः | 376 |
| सप्तमः प्रश्नः | 386 |
| नगानग ६ | |
| काण्डम् ६ | 397 |
| प्रथमः प्रश्नः | 397 |
| द्वितीयः प्रश्नः | 409 |
| | |

| अनुऋमणिका | | | | | | | | | | | | | | iii |
|------------------|--|---|--|--|--|---|--|---|---|--|---|---|---|-----|
| तृतीयः प्रश्नः | | | | | | • | | • | • | | | • | | 420 |
| चतुर्थः प्रश्नः | | | | | | | | | | | | | | 431 |
| पञ्चमः प्रश्नः | | | | | | | | | | | | | | 440 |
| षष्टमः प्रश्नः | | • | | | | | | | | | • | | • | 447 |
| काण्डम् ७ | | | | | | | | | | | | | | 456 |
| प्रथमः प्रश्नः | | | | | | | | | | | | | | 456 |
| द्वितीयः प्रश्नः | | | | | | | | | | | | | | 465 |
| तृतीयः प्रश्नः | | | | | | | | | | | | | | 475 |
| चतुर्थः प्रश्नः | | | | | | | | | | | | | | 483 |
| पञ्चमः प्रश्नः | | | | | | | | | | | | | | 493 |
| | | | | | | | | | | | | | | |
| | | | | | | | | | | | | | | |
| | | | | | | | | | | | | | | |
| | | | | | | | | | | | | | | |
| | | | | | | | | | | | | | | |
| | | | | | | | | | | | | | | |
| | | | | | | | | | | | | | | |
| | | | | | | | | | | | | | | |
| | | | | | | | | | | | | | | |
| | | | | | | | | | | | | | | |
| | | | | | | | | | | | | | | |
| | | | | | | | | | | | | | | |

॥काण्डम् १॥

॥प्रथमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां प्रथमकाण्डे प्रथमः प्रश्नः॥

ड्रषे त्वोर्जे त्वां वायवंः स्थोपायवंः स्थ देवो वंः सिवता प्रापंयतु श्रेष्ठंतमाय कर्मण आ प्यायध्वमित्रया देवभागमूर्जंस्वतीः पर्यस्वतीः प्रजावंतीरनमीवा अयुक्ष्मा मा वंः स्तेन ईशत माऽघश्र स्सो रुद्रस्यं हेतिः परि वो वृणक्त ध्रवा अस्मिन्गोपंतौ स्यात बह्वीर्यजंमानस्य पृशून्यांहि॥१॥

डुषे त्रिचंत्वारि श्रात्॥——[१]

यज्ञस्यं घोषदंसि प्रत्युष्ट्रं रक्षः प्रत्युष्टा अरांतयः प्रेयमंगाद्धिषणां बर्हिरच्छ् मनुंना कृता स्वधया वित्रेष्टा त आवंहन्ति क्वयः पुरस्तांद्देवेभ्यो जुष्टंमिह बर्हिरासदे देवानां परिषूतमंसि वर्षवृद्धमिस देवंबर्हिमां त्वाऽन्वङ्गा तिर्यक्पर्वं ते राध्यासमाच्छेत्ता ते मा रिषं देवंबर्हिः श्तवंल्शं वि रोह सहस्रंवल्शा॥२॥

वि वय र्रहेम पृथिव्याः सम्पृचंः पाहि सुसम्भृतां त्वा

सम्भेराम्यदित्यै रास्नांऽसीन्द्राण्यै सन्नहंनं पूषा तें ग्रन्थिं ग्रंश्नातु स ते माऽऽस्थादिन्द्रंस्य त्वा बाहुभ्यामुद्यंच्छे बृह्स्पतेंर्मूर्ध्रा हंराम्युर्वन्तरिक्षमन्विंहि देवङ्गममंसि॥३॥

स्हसंवल्शा अष्टात्रिरंशच॥———[२] शुन्धंध्वं दैव्यांय कर्मणे देवयज्यायें मातिरश्वंनो घर्मोऽसि

शुन्धध्व दव्याय कमण दवयुज्याय मातारश्वना घुमाऽास् द्यौरंसि पृथिव्यंसि विश्वधाया असि पर्मेण धाम्ना द॰ हंस्व मा ह्वार्वसूंनां प्वित्रंमिस शृतधारं वसूंनां प्वित्रंमिस सहस्रंधार॰ हुतः स्तोको हुतो द्रफ्सौंऽग्नयं बृहते नाकाय स्वाहा द्यावांपृथिवीभ्या॰ सा विश्वायुः सा विश्वव्यंचाः सा विश्वकंर्मा सम्पृंच्यध्वमृतावरीरूर्मिणीर्मधुंमत्तमा मन्द्रा धनंस्य सातये सोमेन त्वाऽऽतंन्च्मीन्द्रांय दिध विष्णों हव्य॰ रक्षस्व॥४॥

सोमेनाष्टौ चं॥----[३]

कर्मणे वां देवेभ्यः शकेयं वेषाय त्वा प्रत्युष्ट्र रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो धूरेसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं यौऽस्मान्धूर्वित तं धूर्व यं वयं धूर्वामस्त्वं देवानामिस् सिस्नितम् पप्रितम् जुष्टेतम् विह्नेतमं देवहूतंममह्रुतमिस हिव्धानं दूरहंस्व मा ह्वांर्मित्रस्यं त्वा चक्षुंषा प्रेक्षे मा भेमा सं विक्था मा त्वां॥५॥

त्वा चक्षुषा प्रक्ष मा ममा स विक्था मा त्वा॥५॥
हिश्सिषमुरु वातांय देवस्यं त्वा सिवृतः प्रंस्वैऽिश्वनौर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्तौभ्याम्ग्रये जुष्टं निर्वपाम्यग्रीषोमौभ्यामिदं देवानांमिदम् नः सह स्फात्ये त्वा
नारौत्ये सुवंर्भि वि ख्येषं वैश्वान्रं ज्योतिर्दश्हंन्तान्दुर्या
द्यावांपृथिव्योर्ज्वंन्तिरक्षमिन्वह्यदित्यास्त्वोपस्थे सादयाम्यग्रे
ह्व्यश्रेक्षस्व॥६॥

मा त्वा षद्वंत्वारि १ शच॥———[४]

देवो वंः सिवतोत्पुनात्विच्छिद्रेण प्वित्रेण वसोः सूर्यस्य रिश्मिभिरापो देवीरग्रेपुवो अग्रेगुवोऽग्रं इमं यज्ञं नयताग्रें यज्ञपतिं धत्त युष्मानिन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्ये प्रोक्षिताः स्थाग्नये वो जुष्टं प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्या १ शुन्धेध्वं दैव्याय कर्मणे देवयज्याया अवधूत १ रक्षोऽवधूता अर्रात्योऽदित्यास्त्वर्गसि प्रतिं त्वा॥७॥

पृथिवी वेंत्त्वधिषवंणमिस वानस्पृत्यं प्रति त्वा-ऽदित्यास्त्वग्वेंत्त्वग्नेस्तुनूरंसि वाचो विसर्जनं देववीतये त्वा गृह्णाम्यद्रिरिस वानस्पत्यः स इदं देवेभ्यों ह्व्यः सुशिमं शिमुष्वेषमा वदोर्जमा वद द्युमद्वेदत वयः संङ्घातं जैष्म वर्षवृद्धमिस् प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत् परापूतः रक्षः परापूता अरातयो रक्षंसां भागोऽसि वायुर्वो विविनक्त देवो वंः सिवता हिरंण्यपाणिः प्रति गृह्णातु॥८॥

पृथिवी वेत्तु दिवः स्कम्भिनरिस् प्रति त्वाऽदित्यास्त्वग्वेत्तु धिषणांऽसि पर्वत्या प्रति त्वा दिवः स्कम्भिनर्वेत्तु धिषणांऽसि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वतिर्वेत्तु देवस्यं त्वा सिवृतः प्रमुवेऽश्विनौर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्तौभ्यामधिवपामि धान्यंमसि धिनृहि देवान्प्राणायं त्वाऽपानायं त्वा व्यानायं त्वा दीर्घामनु प्रसितिमायुंषे धां देवो वंः सिवृता हिरंण्यपाणिः प्रति गृह्णातु॥९॥

प्राणायं त्वा पश्चंदश च॥-----[६]

धृष्टिंरसि ब्रह्मं युच्छापाँ ऽग्ने ऽग्निमामादं जिह् निष्क्रव्याद र सेधा देवयर्जं वह निर्दग्धर रक्षो निर्दग्धा अरांतयो ध्रुवमंसि पृथिवीं हुर्हाऽऽयुंर्दरह प्रजां हुर्ह सजातान्स्मै यजमानाय पर्यूह धुर्त्रमस्यन्तिरक्षं हुरह प्राणं हुर्ह हापानं हुर्ह सजाता-नुस्मै यजमानाय पर्यूह धुरुणमिस् दिवें हुरह चक्षुर्॥१०॥

दश्ह श्रोत्रं दश्ह सजातान्समे यजंमानाय पर्यूह् धर्मांऽसि दिशों दश्ह योनिं दश्ह प्रजां दश्ह सजातान्समे यजंमानाय पर्यूह् चितः स्थ प्रजाम्समे रियम्समे संजातान्समे यजंमानाय पर्यूह् भृगूंणामिङ्गिरसां तपंसा तप्यध्वं यानि धर्मे कृपालांन्युपचिन्वन्ति वेधसः। पूष्णस्तान्यपि वृत इन्द्रवायू वि मुंश्चताम्॥११॥

चक्षं र्ष्टाचंत्वारिश्यचा——[७] सं वंपामि समापों अद्भिरंग्मत समोषंधयो रसेंन् सर् रेवती र्जगंती भिर्मधुंमती मधुंमती भिः सृज्यध्वमृद्धः परि प्रजांताः स्थ समृद्धिः पृंच्यध्वं जनंयत्ये त्वा सं यौम्युग्नयै त्वा उग्नी षोमांभ्यां मृखस्य शिरों ऽसि घर्मों ऽसि विश्वायुं रुरु प्रथस्वोरु ते युज्ञपंतिः प्रथतां त्वचं गृह्णी ष्वा ऽन्तरित् श्र् रक्षो ऽन्तरिता अरांतयो देवस्त्वां सविता श्रंपयतु वर्षिष्ठे अधि नाकेऽग्निस्तें तुनुवं माऽतिं धागग्नें ह्व्यः रक्षस्व सं ब्रह्मणा पृच्यस्वैकृताय स्वाहां द्विताय स्वाहां त्रिताय स्वाहां॥१२॥

स्विता द्वावि रंशतिश्च॥———[८]

आदंद इन्द्रंस्य बाहुरंसि दक्षिणः सहस्रंभृष्टिः श्ततेजा वायुरंसि तिग्मतेजाः पृथिवि देवयज्नन्योषंध्यास्ते मूलं मा हिश्सिष्मपहतोऽररुः पृथिव्यै व्रजं गंच्छ गोस्थानं वर्षंतु ते द्यौर्बधान देव सवितः पर्मस्यां परावति श्तेन पाशैर्यों-ऽस्मान्द्वेष्टि यं चं व्यं द्विष्मस्तमतो मा मौगपहतोऽररुः पृथिव्यै देवयजंन्यै व्रजं॥१३॥

गंच्छ गोस्थानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः पर्मस्यां परावितं शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं चं वयं द्विष्मस्तमतो मा मौगपंहतोऽररुः पृथिव्या अदेवयजनो व्रजं गंच्छ गोस्थानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः पर्मस्यां परावितं शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं चं वयं द्विष्मस्तमतो मा॥१४॥

मौंग्ररुंस्ते दिवं मा स्कान् वसंवस्त्वा परिंगृह्णन्तु गायत्रेण छन्दंसा रुद्रास्त्वा परिंगृह्णन्तु त्रैष्टुंभेन् छन्दंसाऽ- ऽदित्यास्त्वा परिगृह्णन्तु जागंतेन छन्दंसा देवस्यं सिवतुः सवे कर्म कृण्वन्ति वेधसं ऋतमंस्यृत्सदंनमस्यृत्श्रीरंसि धा असि स्वधा अंस्युवीं चासि वस्वी चासि पुरा ऋूरस्यं विसृपो विरिष्शन्नुदादायं पृथिवीं जीरदांनुर्यामैरंयं चन्द्रमंसि स्वधाभिस्तान्धीरांसो अनुदृश्यं यजन्ते॥१५॥

देव्यजंन्ये व्रजन्तमतो मा विरिष्धात्रेकांदश च॥———[९]
प्रत्युष्ट् रक्षः प्रत्युष्टा अरातयोऽग्नेर्वस्तेजिष्ठेन तेजसा
निष्टपामि गोष्ठं मा निर्मृक्षं वाजिनं त्वा सपत्रसाहर

सम्मौर्ज्म वार्च प्राणं चक्षुः श्रोत्रं प्रजां योनिं मा निर्मृक्षं वाजिनीं त्वा सपत्रसाही सम्मौर्ज्म्याशासाना सौमन्सं प्रजा सौभौग्यं तनूम्। अग्नेरनुंव्रता भूत्वा सन्नंह्ये सुकृताय कम्। सुप्रजसंस्त्वा वय सुपत्नीरुपं॥१६॥

सेदिम। अग्ने सपल्दम्नेन्मदंब्धासो अदाँभ्यम्। इमं विष्यांमि वरुंणस्य पाशुं यमबंधीत सविता सुशेवंः। धातुश्च योनौं सुकृतस्यं लोके स्योनं में सह पत्यां करोमि। समायुंषा सम्प्रजया समंग्ने वर्चसा पुनेः। सम्पत्नी पत्याऽहं गंच्छे समात्मा तनुवा ममं। महीनां पयोऽस्योषंधीनाः रसस्तस्य तेऽक्षीयमाणस्य निर्॥१७॥

वंपामि महीनां पयोऽस्योषंधीनाः रसोऽदंब्धेन त्वा चक्षुषाऽवेंक्षे सुप्रजास्त्वाय तेजोंऽसि तेजोऽनु प्रेह्यग्निस्ते तेजो मा वि नैद्ग्नेर्जिह्वाऽसिं सुभूर्देवानां धाम्नेंधाम्ने देवेभ्यो यज्ञंषेयज्ञ्षे भव शुक्रमंसि ज्योतिरिस तेजोंऽसि देवो वंः सिवतोत्पुंनात्वच्छिंद्रेण प्वित्रेण वसोः सूर्यस्य रिश्मिभिः शुक्रं त्वां शुक्रायां धाम्नेंधाम्ने देवेभ्यो यज्ञंषेयज्ञ्षे गृह्णामि ज्योतिस्त्वा ज्योतिष्य्चिस्त्वाऽचिषि धाम्नेंधाम्ने देवेभ्यो यज्ञंषेयज्ञ्षे गृह्णामि॥१८॥

उप नी रुश्मिभिः शुक्र षोडंश च॥———[१०]

कृष्णों ऽस्याखरेष्ठों ऽग्नयें त्वा स्वाहा वेदिरसि बर्हिषें त्वा स्वाहां बर्हिरेसि स्रुग्भ्यस्त्वा स्वाहां दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्ये त्वां स्वधा पितृभ्य ऊर्ग्भव बर्हिषद्धं ऊर्जा पृथिवीं गंच्छत विष्णोः स्तूपोऽस्यूर्णां म्रदसं त्वा स्तृणामि स्वास्थयं देवेभ्यों गन्ध्वोंऽसि विश्वावंसुर्विश्वंस्मादीषंतो यजंमानस्य परिधिरिड ईडित इन्द्रंस्य बाहुरंसि॥१९॥

दक्षिणो यजंमानस्य परिधिरिड ईडितो मित्रावर्रुणो त्वोत्तर्तः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा यजंमानस्य परिधिरिड ईडितः सूर्यस्त्वा पुरस्तांत्पातु कस्यांश्चिद्भिशंस्त्या वीतिहोंत्रं त्वा कवे द्युमन्त्र समिधीमह्यग्ने बृहन्तंमध्वरे विशो यन्ने स्थो वसूना र रुद्राणांमादित्याना सदंसि सीद जुहूरुंपभृद्धुवाऽसि घृताची नाम्नां प्रियेण नाम्नां प्रिये सदंसि सीदेता अंसदन्थसुकृतस्यं लोके ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपंतिं पाहि मां यज्ञनियम्॥२०॥

बाहुरंसि प्रिये सर्दसि पश्चंदश च॥——[११]

भुवनमिस् वि प्रथस्वाग्ने यष्टरिदं नमः। जुह्वेह्यग्निस्त्वौ ह्यित देवयुज्याया उपंभृदेहिं देवस्त्वां सिवता ह्वंयित देवयुज्याया अग्नांविष्णू मा वामवं क्रमिषं वि जिहाथां मा मा सन्तौप्तं लोकं में लोककृतौ कृणुतं विष्णोः स्थानमसीत इन्द्रों अकृणोद्दीर्याण समारभ्योर्ध्वो अध्वरो दिविस्पृश्महुंतो युज्ञो युज्ञपंतिरिन्द्रांवान्थ्स्वाहां बृहद्भाः पाहि माँऽग्ने दुर्श्वरितादा मा सुचेरिते भज मखस्य शिरोऽसि सं

ज्योतिषा ज्योतिरङ्काम्॥२१॥

अहुंत् एकंवि श्शतिश्च।

वार्जस्य मा प्रस्वेनौद्भाभेणोदंग्रभीत्। अथां सपत्ना इन्द्री मे निग्राभेणाधरा अकः। उद्गाभं चे निग्राभं च ब्रह्मं देवा

भ निश्रामणावरा र अकः। उद्घाम च निश्राम च ब्रह्म द्वा अंवीवृधन्न्। अर्था स्पर्लानिन्द्राग्नी में विषूचीनान्व्यंस्यताम्। वसुंभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यंस्त्वाऽऽदित्येभ्यंस्त्वाऽक्तर रिहाणा वियन्तु वयंः। प्रजां योनिं मा निर्मृक्षमा प्यांयन्तामाप् ओषंधयो मरुतां पृषंतयः स्थ दिवं॥२२॥

गच्छु ततों नो वृष्टिमेर्रय। आयुष्पा अंग्रेऽस्यायुंर्मे पाहि चक्षुष्पा अंग्रेऽसि चक्षुंर्मे पाहि ध्रुवाऽसि यं पंरिधिं पूर्यधंत्था अग्ने देव पणिभिर्वीयमांणः। तन्तं एतमनु जोषं भरामि नेदेष त्वदंपचेतयांतै यज्ञस्य पाथ उप समितः सङ्स्रावभांगाः स्थेषा बृहन्तंः प्रस्तरेष्ठा बंर्हिषदेश्च॥२३॥

देवा इमां वाचंमभि विश्वं गृणन्तं आसद्यास्मिन्बर्हिषिं मादयध्वमृग्नेर्वामपंत्रगृहस्य सदिस सादयामि सुम्नायं सुम्निनी सुम्ने मां धत्तं धुरि धुर्यौ पात्मग्नेंऽदब्धायोऽशीततनो पाहि माऽद्य दिवः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ट्यै पाहि दुंरद्मन्यै पाहि दुश्चेरितादविषन्नः पितुं कृणु सुषदा योनि इस्वाहा देवां गातुविदो गातुं वित्वा गातुर्मित मनंसस्पत इमं नो देव देवेषुं युज्ञ इस्वाहां वाचि स्वाहा वातें धाः॥२४॥

दिवंश्च वित्वा गातुत्रयोदश च॥-----[१३]

उभा वांमिन्द्राग्नी आहुवध्यां उभा राधंसः सह मांद्यध्यैं। उभा दातारांविषाः रयीणामुभा वाजंस्य सातये हुवे वाम्। अश्रंवः हि भूरिदावंत्तरा वां वि जांमातुरुत वां घा स्यालात्। अथा सोमंस्य प्रयंती युवभ्यामिन्द्रांग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम्। इन्द्रांग्नी नवृतिं पुरो दासपंत्रीरधूनुतम्। साकमेकेन कर्मणा। शुचिं नु स्तोमं नवंजातमुद्येन्द्रांग्नी वृत्रहणा जुषेथांम्॥॥२५॥

उभा हि वार्र सुहवा जोहंवीमि ता वाजर्र सद्य उंशते धेष्ठां। वयमुं त्वा पथस्पते रथं न वाजंसातये। धिये पूंषन्नयुज्मिह। पथस्पंथः परिंपितिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानड्रकम्। स नों रासच्छुरुधंश्चन्द्राग्रा धियं धियर सीषधाति प्र पूषा। क्षेत्रंस्य पतिना वयर हितेनेव जयामिस। गामश्वं पोषियुत्वा स नो॥२६॥ मृडातीदृशैं। क्षेत्रंस्य पते मधुंमन्तमूर्मिं धेनुरिंव पयों अस्मासुं धुक्ष्व। मधुश्चतं घृतिमेव सुपूंतमृतस्यं नः पतंयो मृडयन्त्। अग्रे नयं सुपर्था राये अस्मान् विश्वांनि देव वयुनांनि विद्वान्। युयोध्यंस्मज्ञंहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमं उक्तिं विधेम। आ देवानामपि पन्थांमगन्म यच्छुक्रवांम तदनु प्रवोंदुम्। अग्निर्विद्वान्थ्स यंजाथ्॥२७॥

सेदु होता सो अध्वरान्थ्स ऋतून्कंल्पयाति। यद्वाहिष्टं तद्ग्रये बृहदंर्च विभावसो। मिहंषीव त्वद्रियस्त्वद्वाजा उदीरते। अग्ने त्वं पारया नव्यों अस्मान्थ्स्वस्तिभिरितं दुर्गाणि विश्वा। पूर्श्व पृथ्वी बंहुला नं उवीं भवां तोकाय तनयाय शं योः। त्वमंग्ने व्रत्पा असि देव आ मर्त्येष्वा। त्वं यज्ञेष्वीड्यः। यद्वों वयं प्रमिनामं व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः। अग्निष्टद्विश्वमा पृणाति विद्वान् येभिर्देवा॰ ऋतुभिः कल्पयाति॥२८॥

जुषेथामा स नो यजादा त्रयोवि रशतिश्च॥———[१४]

[इषे त्वां यज्ञस्य शुन्धंध्वं कर्मणे देवोऽवंधूत्न्धृष्टिः सं वंपाम्या दंदे प्रत्युष्टं कृष्णोंऽसि भुवंनमसि वाजंस्योभा वां चतुंर्दश॥14॥ इषे दर्ह भुवंनम्ष्टाविर्शितः॥28॥ इषे त्वां कुल्पयांति॥]

॥द्वितीयः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां प्रथमकाण्डे द्वितीयः प्रश्नः॥

आपं उन्दन्तु जीवसं दीर्घायुत्वाय वर्चस् ओषंधे त्रायंस्वैन्ड् स्वधिते मैन रेहिरसीर्देवश्रूरेतानि प्र वंपे स्वस्त्युत्तराण्यशीयाऽऽपां अस्मान्मातरः शुन्धन्तु घृतेनं नो घृतपुर्वः पुनन्तु विश्वंमस्मत्प्र वहन्तु रिप्रमुदांभ्यः शिचिरा पूत एमि सोमंस्य तुनूरंसि तुनुवं मे पाहि महीनां पयोऽसि वर्चोधा असि वर्चो॥१॥

मियं धेहि वृत्रस्यं क्नीनिकाऽसि चक्षुष्पा अंसि चक्षुंमें पाहि चित्पतिंस्त्वा पुनातु वाक्पतिंस्त्वा पुनातु देवस्त्वां सिवता पुनात्विच्छंद्रेण पिवत्रंण वसोः सूर्यंस्य रिश्मिभिस्तस्यं ते पिवत्रपते पिवत्रंण यस्मै कं पुने तच्छंकेयमा वो देवास ईमहे सत्यंधर्माणो अध्वरे यद्वों देवास आगुरे यिज्ञंयासो हवांमह इन्द्रांग्री द्यावांपृथिवी आपं ओषधीस्त्वं दीक्षाणामधिपतिरसीह मा सन्तं पाहि॥२॥

वर्ष ओषधीर्ष्टी चं॥———[१] आकूँत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहां मेधायै मनंसेऽग्नये स्वाहां दीक्षारे तर्पसेऽग्नरे स्वाहा सर्वस्वत्ये पर्णोऽग्नरे स्वाहाऽपो

दीक्षायै तपंसेऽग्नये स्वाहा सरेस्वत्यै पूष्णैंऽग्नये स्वाहाऽऽपों देवीबृहतीर्विश्वशम्भवो द्यावापृथिवी उर्वन्तिरक्षें बृह्स्पतिनीं हिवषां वृधातु स्वाहा विश्वे देवस्यं नेतुर्मर्तोऽवृणीत सख्यं विश्वे राय इष्ध्यसि द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहंख्सामयोः शिल्पे स्थस्ते वामा रंभे ते मां॥३॥

पातमाऽस्य यज्ञस्योद्दचं इमां धिय् शिक्षंमाणस्य देव कतुं दक्षं वरुण संशिशाधि ययाऽति विश्वां दुरिता तरेम

सुतर्माणमधि नाव र रुहेमोर्गस्याङ्गिर्स्यूर्णमदा ऊर्जं मे यच्छ पाहि मा मा मां हि रसीर्विष्णोः शर्मासि शर्म यर्जमानस्य शर्म मे यच्छ नक्षंत्राणां माऽतीकाशात् पाहीन्द्रंस्य योनिरसि॥४॥

मा मां हि॰सीः कृष्ये त्वां सुसुस्यायें सुपिप्पुलाभ्युस्त्वौषं-धीभ्यः सूपस्था देवो वनस्पतिंरूर्ध्वो मां पाह्योद्दचः स्वाहां युज्ञं मनसा स्वाहा द्यावांपृथिवीभ्याङ् स्वाहोरोर्न्तरिक्षाथ्स्वाहां युज्ञं वातादा रंभे॥५॥

मा योनिरसि त्रिष्शर्च॥——[२]

देवीं धियं मनामहे सुमृडीकाम्भिष्टंये वर्चीधां यज्ञवांहस स् सुपारा नो असद्वशें। ये देवा मनोजाता मनोयुजंः सुदक्षा दक्षंपितार्स्ते नंः पान्तु ते नोंऽवन्तु तेभ्यो नम्स्तेभ्यः स्वाहा-ऽग्ने त्व स् सु जांगृहि वय सु मंन्दिषीमहि गोपाय नंः स्वस्तयें प्रबुधे नः पुनर्ददः। त्वमंग्ने व्रत्पा अंसि देव आ मर्त्येष्वा। त्वं॥६॥

यज्ञेष्वीड्यः॥ विश्वं देवा अभि मा माऽवंवृत्रन् पूषा सुन्या सोमो राधंसा देवः संविता वसौंवंसुदावा रास्वयंथ्सोमाऽ-ऽभूयो भर मा पृणन्पूर्त्या वि रांधि माऽहमायुंषा चन्द्रमंसि मम भोगाय भव वस्त्रमसि मम भोगाय भवोस्राऽसि मम् भोगाय भव हयोऽसि मम् भोगाय भव॥७॥

छागोंऽसि मम् भोगांय भव मेषोंऽसि मम् भोगांय भव वायवें त्वा वरुणाय त्वा निर्ऋत्ये त्वा रुद्रायं त्वा देवींरापो अपां नपाद्य ऊर्मिर्हंविष्यं इन्द्रियावांन्मदिन्तंमस्तं वो मा-ऽवंक्रमिष्मिच्छेन्नं तन्तुं पृथिव्या अनुं गेषं भुद्राद्भि श्रेयः प्रेहि बृह्स्पतिः पुरपृता ते अस्त्वथेमवं स्य वर् आ पृथिव्या आरे शत्रूंन कृणुहि सर्ववीर एदमंगन्म देवयजंनं पृथिव्या विश्वें देवा यदजुंषन्त पूर्वं ऋख्सामाभ्यां यजुंषा सन्तरंन्तो रायस्पोषेण समिषा मंदेम॥८॥

आ त्वर हयोंऽसि मम् भोगांय भव स्य पश्चविरशतिश्च॥———[३]

इयं ते शुक्र त्नूरिदं वर्चस्तया सं भेव भ्राजं गच्छ जूरेसि धृता मनसा जुष्टा विष्णंवे तस्यांस्ते स्त्यसंवसः प्रस्वे वाचो यन्नमंशीय स्वाहां शुक्रमंस्यमृतंमिस वैश्वदेव हिवः सूर्यस्य चक्षुराऽरुंहम्ग्नेरक्षणः क्नीनिकां यदेतंशिभिरीयंसे भ्राजंमानो विपश्चिता चिदंसि मनाऽसि धीरंसि दक्षिणा-॥९॥

ऽसि यज्ञियांऽसि क्षित्रियाऽस्यदितिरस्युभ्यतःशीर्ष्णी सा नः सुप्रांची सुप्रंतीची सं भंव मित्रस्त्वां पदि बंधातु पूषा-ऽध्वंनः पात्विन्द्रायाध्यंक्षायान् त्वा माता मंन्यतामन् पिताऽनु भ्राता सग्भ्योऽनु सखा सयूंथ्यः सा देवि देवमच्छेहीन्द्रांय सोमर् रुद्रस्त्वाऽऽवंतियतु मित्रस्यं पृथा स्वस्ति सोमंसखा पुन्रेहि सह र्य्या॥१०॥

दक्षिणा सोमंसखा पश्चं च॥_____[४]

वस्त्र्यंसि रुद्राऽस्यदितिरस्यादित्याऽसिं शुक्राऽसिं चन्द्राऽसि बृह्स्पतिंस्त्वा सुम्ने रंण्वतु रुद्रो वसुंभिरा चिंकेतु पृथिव्यास्त्वां मूर्धन्ना जिंघिमि देवयर्जन् इडांयाः पदे घृतवंति स्वाह्य परिलिखित्र रक्षः परिलिखिता अर्रातय इदम्हर रक्षंसो ग्रीवा अपि कृन्तामि यौंऽस्मान् द्वेष्टि यं चं व्यं द्विष्म इदमंस्य ग्रीवा॥११॥

अपिं कृन्ताम्यस्मे रायस्त्वे रायस्तोते रायः सं देवि देव्योर्वश्यां पश्यस्व त्वष्टींमती ते सपेय सुरेता रेतो दर्धांना वीरं विदेय तर्व सन्दिश माऽह र रायस्पोषेण वि योषम्॥१२॥

अर्शुनां ते अर्शुः पृंच्यतां पर्नषा पर्नर्गन्थस्ते कामंमवतु मदांय रसो अच्युंतोऽमात्योंऽसि शुक्रस्ते ग्रहोऽभि त्यं देव र संवितारंमूण्योः क्विक्रंतुमर्चामि सत्यसंवस र रत्याम्भि प्रियं मृतिमूर्ध्वा यस्यामित्भा अदिंद्युत्थ्सवींमिन् हिरंण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा सुवंः। प्रजाभ्यंस्त्वा प्राणायं त्वा व्यानायं त्वा प्रजास्त्वमनु प्राणिंहि प्रजास्त्वामनु प्राणंन्तु॥१३॥

अनुं सप्त चं॥₌

सोमं ते क्रीणाम्यूर्जस्वन्तं पर्यस्वन्तं वीर्यावन्तमभिमातिषाहर् शुक्रं ते शुक्रेणं क्रीणामि चन्द्रं चन्द्रेणामृतंममृतंन
सम्यत्ते गोर्स्मे चन्द्राणि तपंसस्तुनूरंसि प्रजापंतुर्वर्णस्तस्यास्ते
सहस्रपोषं पुष्यंन्त्याश्चर्मणं पृश्चनां क्रीणाम्यस्मे ते बन्धुर्मियं
ते रायः श्रयन्तामस्मे ज्योतिः सोमविक्रियणि तमो मित्रो

ते रायः श्रयन्ताम्स्मे ज्योतिः सोमविक्रियिणि तमो मित्रो न एहि सुमित्रधा इन्द्रस्योरु मा विश्व दक्षिणमुशत्रुशन्तः स्योनः स्योनः स्योनः स्वान् भ्राजाङ्कारे बम्भारे हस्त सुहंस्त कृशानवेते वेः सोमक्रयणास्तात्रक्षध्वं मा वो दभन्न॥१४॥

उदायुंषा स्वायुषोदोषंधीनाः रसेनोत्पर्जन्यंस्य शुष्मेणोदंस्थाममृताः अनुं। उर्वन्तिरंक्षमिन्वह्यदित्याः सदो-ऽस्यदित्याः सद् आसीदास्तंभ्राद्यामृष्भो अन्तिरंक्षमिनीत विरमाणं पृथिव्या आसीदिहिश्वा भुवनानि सम्माङ्विश्वेत्तानि वर्रणस्य व्रतानि वनेषु व्यन्तिरंक्षं ततान् वाज्मर्वंथ्सु पयो अग्नियासुं हृथ्सु॥१५॥ ऋतुं वर्रुणो विक्ष्विग्निं दिवि सूर्यमदधाथ्सोम्मद्रावुदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवेः। दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ उस्रावेतं धूर्षाहावन्श्रू अवीरहणौ ब्रह्मचोदेनौ वर्रुणस्य स्कम्भेनमसि वर्रुणस्य स्कम्भसर्जनमसि प्रत्यंस्तो वर्रुणस्य पार्शः॥१६॥

प्रच्यंवस्व भुवस्पते विश्वान्यभि धार्मानि मा त्वां परिपुरी

विंद्रन्मा त्वां परिपृन्थिनों विद्रन्मा त्वा वृकां अघायवो मा गंन्थ्रवीं विश्वावंसुरा दंघच्छ्येनो भूत्वा परां पत् यजंमानस्य नो गृहे देवैः सईस्कृतं यजंमानस्य स्वस्त्ययंन्यस्यिष् पन्थांमगस्मिह स्वस्तिगामनेहसं येन विश्वाः परि द्विषो वृणित्ते विन्दते वसु नमो मित्रस्य वर्रुणस्य चक्षंसे महो देवाय तद्दतः संपर्यत दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शःसत् वरुणस्य स्कम्भनमिस् वरुणस्य स्कम्भनमिस्

_{मित्रस्य त्रयोविर्शितिश्च॥}——[९] अग्नेरांतिथ्यमंसि विष्णंवे त्वा सोमंस्याऽऽतिथ्यमंसि

अग्नेरांतिथ्यमंसि विष्णंवे त्वा सोमंस्याऽऽतिथ्यमंसि विष्णंवे त्वाऽतिंथेरातिथ्यमंसि विष्णंवे त्वाऽग्नयें त्वा

आ मैकं च॥

रायस्पोषदान्त्रे विष्णंवे त्वा श्येनायं त्वा सोम्भृते विष्णंवे त्वा या ते धामानि ह्विषा यर्जन्ति ता ते विश्वां परिभूरंस्तु यज्ञं गयस्फानंः प्रतरंणः सुवीरोऽवीरहा प्र चरा सोम् दुर्यानदित्याः सदोऽस्यदित्याः सद् आ॥१८॥

सींद् वर्रुणोऽसि धृतव्रंतो वारुणमंसि श्रंयोर्देवानारं स्ख्यान्मा देवानांम्पसंश्छिथ्स्मृह्यापंतये त्वा गृह्णाम् परिपतये त्वा गृह्णाम् तनूनभ्रं त्वा गृह्णामि शाक्करायं त्वा गृह्णामि शक्कान्नोजिष्ठाय त्वा गृह्णाम्यनांधृष्टमस्यनाधृष्यं देवानामोजोऽभिशस्तिपा अनिभशस्तेऽन्यमन् मे दीक्षां दीक्षापंतिर्मन्यतामन् तप्स्तपंस्पतिरश्रंसा सत्यमुपं गेषरं सुविते मां धाः॥१९॥

अर्शुर रेशुस्ते देव सोमाऽऽप्यायतामिन्द्रांयैकधन्विद् आ तुभ्यमिन्द्रंः प्यायतामा त्वमिन्द्रांय प्यायस्वाऽऽ प्यायय सर्खीन्थ्सन्या मेधयां स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामंशीयेष्टा

रायः प्रेषे भगांयत्रमृतवादिभ्यो नमो दिवे नमः पृथिव्या अग्ने व्रतपते त्वं व्रतानां व्रतपंतिरसि या ममं तुनूरेषा सा त्विय॥२०॥ या तर्व तुनूरिय सा मियं सह नौ व्रतपते ब्रितिनौर्ब्रतानि या तें अग्ने रुद्रिया तुनूस्तयां नः पाहि तस्यौस्ते स्वाहा या तें अग्नेऽयाश्या रंजाश्या हंराश्या तुनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठोग्रं वचो अपांवधीं त्वेषं वचो अपांवधी स्वाहा॥२१॥

त्वियं चत्वारि प्राचं॥ [११]

वित्तायंनी मेऽसि तिक्तायंनी मेऽस्यवंतान्मा नाथितमवंतान्मा व्यथितं विदेरिग्नर्नभो नामाग्ने अङ्गिरो यौऽस्यां पृथिव्यामस्यायुंषा नाम्नेहि यत्तेऽनांधृष्टं नामं यज्ञियं तेन त्वाऽऽद्धेऽग्ने अङ्गिरो यो द्वितीयंस्यां तृतीयंस्यां पृथिव्यामस्यायुंषा नाम्नेहि यत्तेऽनांधृष्टं नामं॥२२॥

पृथिव्यामस्यायुषा नाम्नाह् यत्तऽनाधृष्ट नामा। र र ॥

यि यि ये ते न त्वाऽऽदंधे सि १ हिषीरं स्युरु
प्रथस्वोरु ते यज्ञपंतिः प्रथतां ध्रुवाऽिसं देवेभ्यः शुन्धस्व
देवेभ्यः शुम्भस्वेन्द्रघोषस्त्वा वसुंभिः पुरस्तौत्पातु
मनोजवास्त्वा पितृभिदिक्षिणतः पातु प्रचेतास्त्वा रुद्रैः
पश्चात्पातु विश्वकंमा त्वाऽऽदित्यैरुंत्तरतः पातु सि १ हीरंसि
सपत्रसाही स्वाहां सि १ हीरंसि सुप्रजाविनः स्वाहां
सि १ ही-॥ २३॥

-रंसि रायस्पोष्विनः स्वाहां सिर्होरंस्यादित्यविनः स्वाहां सिर्होर्स्या वह देवान्देवयते यजमानाय स्वाहां भूतेभ्यंस्त्वा विश्वायंरिस पृथिवीं हर्ह ध्रुविक्षिदंस्यन्तिरक्षं हर्हाच्युतिक्षदेसि दिवं हर्हाग्नेर्भस्मांस्यग्नेः पुरीषमिस॥२४॥

नामं स्प्रजाविनः स्वाहां सिर्होः पर्श्वतिरशय।———[१२]
युअते मनं उत युंअते धियो विप्रा विप्रंस्य बृह्तो
विप्रिक्षतः। वि होत्रां दधे वयुनाविदेक इन्म्ही देवस्यं
सिवृतः परिष्ठतिः॥ सुवाग्देव दुर्या ५ आ वद देवश्रुतौ देवेष्वा

घोषेथामा नों वीरो जांयतां कर्मण्यों य सर्वेऽनुजीवांम् यो बंहूनामसंद्वशी। इदं विष्णुर्वि चंक्रमे त्रेधा नि दंधे प्दम्। समूढमस्य॥२५॥

पारसुर इरांवती धेनुमती हि भूतर सूंयव्सिनी मनंवे यश्स्यै। व्यंस्कभ्राद्रोदंसी विष्णुरेते दाधारं पृथिवीमभितों मयूखैं:॥ प्राची प्रेतंमध्वरं कल्पयंन्ती ऊर्ध्वं यज्ञं नंयतं मा जीह्नरत्मत्रं रमेथां वर्ष्मन्पृथिव्या दिवो वां विष्णवुत वां पृथिव्या महो वां विष्णवुत वाऽन्तरिक्षाद्धस्तौं पृणस्व बहुभिर्वस्वयैरा प्र यंच्छु॥२६॥

अस्य युच्छैकान्नचंत्वारिष्शर्च॥=

दक्षिणादोत स्व्यात्। विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्र वींचं यः पार्थिवानि विममे रजार्स्स यो अस्केभायदुत्तर् स्थर्थं विचक्रमाणस्रोधोरुंगायो विष्णों र्राटमिस् विष्णोः पृष्ठमिस् विष्णोः श्वप्रे स्थो विष्णोः स्यूरंसि विष्णोर्धुवमिस वैष्णवमिस् विष्णवे त्वा॥२७॥

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवा इसेन। तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तांसि विध्यं रक्षसस्तिपिष्ठैः॥ तव

भूमासं आशुया पंतन्त्यनुं स्पृश धृषता शोशुंचानः। तपूर्ध्रंष्यग्ने जुह्वां पत्रङ्गानसंन्दितो वि सृंज विष्वंगुल्काः॥ प्रति स्पशो वि सृंज तूर्णितमो भवां पायुर्विशो अस्या अदंब्यः। यो नो दूरे अघशर्रसो॥२८॥

यो अन्त्यग्ने मार्किष्टे व्यथिरा दंधर्षीत्। उदंग्ने तिष्ठ प्रत्या-ऽऽतंनुष्व न्यंमित्रा अषतात्तिग्महेते। यो नो अरांति स् समिधान चुक्ते नीचा तं धंक्ष्यत्सं न शुष्कम्॥ ऊर्ध्वो भंव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृंणुष्व दैव्यांन्यग्ने। अवं स्थिरा तंनुहि यातुजूनां जामिमजांमिं प्र मृंणीहि शत्रून्ं॥ स ते॥२९॥ जानाति सुमतिं यंविष्ठ य ईवंते ब्रह्मंणे गातुमैरंत्। विश्वांन्यस्मै सुदिनांनि रायो द्युम्नान्यर्यो वि दुरों अभि द्यौंत्॥ सेदंग्ने अस्तु सुभगः सुदानुर्यस्त्वा नित्येन ह्विषा य उक्थेः। पिप्रींषति स्व आयुंषि दुरोणे विश्वेदंस्मै सुदिना साऽसंदिष्टिः॥ अर्चामि ते सुमृतिं घोष्य्वर्गरूसं ते वावातां जरता-॥३०॥

मियङ्गीः। स्वश्वांस्त्वा सुरथां मर्जयमास्मे क्षुत्राणिं धारयेरनु द्यून्॥ इह त्वा भूयां चरेदुप् त्मन्दोषांवस्तर्दीदिवा १-समनु द्यून्। कीडंन्तस्त्वा सुमनंसः सपेमाभि द्युमा तस्थिवा १ सो जनांनाम्॥ यस्त्वा स्वश्वः सुहिर्ण्यो अंग्र उपयाति वसुमता रथेन। तस्यं त्राता भवसि तस्य सखा यस्तं आतिथ्यमांनुषग्जुजोषत्॥ महो रुंजामि॥३१॥

बन्धुता वचोभिस्तन्मां पितुर्गोतंमादिन्वयाय॥ त्वं नो अस्य वचंसिश्चिकिद्धि होत्यविष्ठ सुऋतो दमूनाः॥ अस्वप्रजस्तरणंयः सुशेवा अतंन्द्रासोऽवृका अश्रंमिष्ठाः। ते पायवंः सिप्प्रयंश्चो निषद्याऽग्रे तवं नः पान्त्वमूर॥ ये पायवो मामतेयं ते अग्रे पश्यंन्तो अन्धं दुरितादरंक्षन्। रुरक्ष तान्थ्सुकृतों विश्ववेदा दिफ्संन्त इद्रिपवो ना हं॥३२॥ देभुः॥ त्वयां वय संधन्यंस्त्वोतास्तव प्रणींत्यश्याम् वाजान्। उभा शश्सां सूदय सत्यतातेऽनुष्टुया कृणुह्यह्रयाण॥ अया ते अग्ने समिधां विधेम् प्रति स्तोम श्रिस्यमांनं गृभाय। दहाशसों रक्षसंः पाह्यंस्मान्द्रुहो निदोऽमित्रमहो अवद्यात्॥ रक्षोहणं वाजिन्माऽऽजिंघर्मि मित्रं प्रथिष्टमुपं यामि शर्म। शिशांनो अग्निः ऋतुंभिः समिद्धः स नो दिवा॥३३॥

स रिषः पांतु नक्तम्॥ वि ज्योतिषा बृह्ता भांत्यग्निराविविश्वांनि कृणुते महित्वा। प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षंसे विनिक्षे॥ उत स्वानासो दिविषंन्त्वग्नेस्तिग्मायुंधा रक्षंसे हन्तवा उ। मदे चिदस्य प्ररुजन्ति भामा न वंरन्ते परिबाधो अदेवीः॥३४॥

अघशर्रसः स तें जरतार रुजामि हु दिवैकंचत्वारिरशच॥————[१४]

[देवस्यं रक्ष्मोहणों विभूस्त्व॰ सोमात्यन्यानगाँ पृथिव्या इषे त्वाऽऽदंदे वाक्ते सं तें समुद्र॰ ह्विष्मंतीर्हृदे त्वमंग्ने रुद्रश्चतुंर्दश॥ देवस्यं गुमध्यें ह्विष्मंतीः पवस् एकंत्रि॰शत्॥ देवस्यार्चयः॥]

॥ तृतीयः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां प्रथमकाण्डे तृतीयः प्रश्नः॥

देवस्यं त्वा सिवृतुः प्रस्वैऽिश्वनौर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्तौभ्यामाद्देऽभ्रिरिस् नारिरिस् परितिखित्र रक्षः परितिखिता अरातय इदमहर रक्षसो ग्रीवा अपि कृन्तामि यौऽस्मान् द्वेष्टि यं चं वयं द्विष्म इदमंस्य ग्रीवा अपि कृन्तामि दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धंतां लोकः पितृषदेनो यवोऽसि यवयास्मद्वेषो॥१॥

यवयारांतीः पितृणाः सदंनम्स्युद्दिवः स्तभाना-ऽन्तिरेक्षं पृण पृथिवीं दःह द्युतानस्त्वां मारुतो मिनोतु मित्रावरुणयोध्रुंवेण धर्मणा ब्रह्मविनं त्वा क्षत्रविनः स्प्रजाविनः रायस्पोषविन् पर्यूहामि ब्रह्मं दःह क्षत्रं दःह प्रजां दःह रायस्पोषं दःह घृतेनं द्यावापृथिवी आ पृंणेथामिन्द्रंस्य सदोऽसि विश्वजनस्यं छाया परि त्वा गिर्वणो गिरं इमा भवन्तु विश्वतों वृद्धायुमन् वृद्धंयो जुष्टां भवन्तु जुष्टंय इन्द्रंस्य स्यूरसीन्द्रंस्य ध्रुवमंस्यैन्द्रम्सीन्द्रांय त्वा॥२॥

द्वेषं हुमा अष्टादेश च॥——[१]

रक्षोहणीं वलगृहनीं वैष्णुवान्खंनामीदम्हं तं वंलुगमुद्धंपामि यं नंः समानो यमसंमानो निच्खानेदमेनमधंरं करोमि यो नंः समानो योऽसंमानोऽरातीयति गायुत्रेण् छन्दसाऽवंबाढो वलुगः किमत्रं भुद्रं तन्नौ सह विराडंसि सपत्रहा सम्राडंसि भ्रातृव्यहा स्वराडंस्यभिमातिहा विश्वाराडंसि विश्वांसां नाष्ट्राणा है हन्ता॥३॥

रंक्षोहणी वलगृहनः प्रोक्षांमि वैष्णवान् रंक्षोहणीं वलगृहनोऽवं नयामि वैष्णवान् यवोऽसि यवयास्मद्वेषो यवयाराती रक्षोहणी वलगृहनोऽवं स्तृणामि वैष्णवान् रंक्षोहणीं वलगृहनोऽभि जुंहोमि वैष्णवान् रंक्षोहणीं वलगृहनोऽभि जुंहोमि वैष्णवान् रंक्षोहणीं वलगृहनौ पर्यूहामि वैष्णवी रंक्षोहणीं वलगृहनौ पर्यूहामि वैष्णवी रंक्षोहणीं वलगृहनौ परि स्तृणामि वैष्णवी रंक्षोहणीं वलगृहनौ विष्णवी बृहन्नंसि बृहद्भांवा बृहतीमिन्द्रांय वाचं वद॥४॥

हुन्तेन्द्रांय द्वे चं॥——[२]

विभूरंसि प्रवाहंणो वहिंरसि हव्यवाहंनः श्वात्रों-ऽसि प्रचेतास्तुथोऽसि विश्ववेदा उशिगंसि कविरङ्घांरिरसि बम्भांरिरवस्युरसि दुवंस्वाञ्छुन्ध्यूरंसि मार्जालीयः सम्राडंसि कृशानुः परिषद्योऽसि पवंमानः प्रतक्कांऽसि नभंस्वानसंम्मृष्टो-ऽसि हव्यसूदं ऋतधांमाऽसि सुवंज्यीतिर्ब्रह्मंज्योतिरसि सुवंधामाऽजोंऽस्येकपादहिरसि बुधियो रौद्रेणानींकेन पाहि मांऽग्ने पिपृहि मा मा मां हि॰सीः॥५॥

त्व र सोम तनूकुन्धो द्वेषौभ्योऽन्यकृतेभ्य उरु युन्तासि

वर्र्स्थ स्वाहां जुषाणो अप्तराज्यंस्य वेतु स्वाहाऽयं नो अग्निर्वरिवः कृणोत्वयं मृधः पुर एतु प्रिमेन्दत्र। अयश् शत्रूं अयतु जर्हंषाणोऽयं वाजं जयतु वाजंसातौ॥ उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नः कृषि। घृतं घृतयोने पिब् प्रप्रं युज्ञपंतिं तिर॥ सोमो जिगाति गातुविद्॥६॥

देवानांमेति निष्कृतमृतस्य योनिमासद्मिदित्याः सदो-ऽस्यदित्याः सद् आ सींदैष वो देव सवितः सोम्स्तः रक्षध्वं मा वो दभदेतत् त्वः सोम देवो देवानुपांगा इदम्हं मंनुष्यों मनुष्यांन्थ्सह प्रजयां सह रायस्पोषेण नमों देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यं इदमहं निर्वरुणस्य पाशाथ्सुवरिभ॥७॥

वि ख्येषं वैश्वान्रं ज्योतिरग्ने व्रतपते त्वं व्रतानों व्रतपंतिरसि या ममं तन्स्त्वय्यभूदिय सा मिय या तवं तुन्र्मय्यभूदेषा सा त्वियं यथाय्थं नौ व्रतपते व्रतिनौर्वतानि॥८॥

गृतुविद्भ्येकंत्रि १शच॥———[४]

अत्यन्यानगां नान्यानुपांगामुर्वाक्ता परैरविदं प्रोऽवंरैस्तं त्वां जुषे वैष्णुवं देवयुज्याये देवस्त्वां सिवृता मध्यां-ऽनुक्कोषंधे त्रायस्वैन् स्वधिते मैन रेहिरसीर्दिवमग्रेण मा लेखीरन्तिरक्षां मध्येन मा हिर्साः पृथिव्या सं भेव वनस्पते शृतवंल्शो वि रोह सहस्रंवल्शा वि वयर रुहेम् यं त्वाऽय स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनायं महते सौभंगायाऽच्छिन्नो रायः सुवीरः॥९॥

यं दर्श च॥————[५]

पृथिव्यै त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा दिवे त्वा शुन्धंतां लोकः पितृषदेनो यवोऽसि यवयास्मद् द्वेषो यवयारांतीः पितृणाः सदंनमिस स्वावेशौंऽस्यग्रेगा नेतृणां वन्स्पित्रिधं त्वा स्थास्यित् तस्यं वित्ताद्देवस्त्वां सिवृता मध्यांऽनक्तुः सुपिप्पृलाभ्यस्त्वौषंधीभ्य उद्दिव हं स्तभानान्तिरंक्षं पृण पृथिवीमुपंरेण दृश्हृ ते ते धामौन्युश्मसी॥१०॥

ग्मध्ये गावो यत्र भूरिशङ्गा अयासंः। अत्राह् तदुंरुगायस्य विष्णोः पर्मं पदमवं भाति भूरैः॥ विष्णोः कर्माणि पश्यत् यतो व्रतानि पस्पशे। इन्द्रंस्य युज्यः सखा॥ तद्विष्णोः पर्मं पद सदां पश्यन्ति सूर्यः। दिवीव चक्षुरातंतम्॥ ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनि सप्रजावनि र रायस्पोषविनं पर्यूहामि ब्रह्मं ह सह क्षत्रं ह ह प्रजां ह ह रायस्पोषं ह ह परिवीरिस् परि त्वा देवीविशो व्ययन्तां परीम रायस्पोषो यजमानं मनुष्यां अन्तरिक्षस्य त्वा सानाववं गूहामि॥११॥

उष्म्सी पोष्मेकात्रविरंशितिश्ची ह्वान्दैवीर्विशः प्रागुर्वहीरुशिजो बृहंस्पते धारया वसूंनि ह्व्या ते स्वदन्तां देवं त्वष्ट्वंस् रण्व रेवंती रमध्वमुग्नेर्जनित्रंमिस वृषंणौ स्थ उर्वश्यंस्यायुरंसि पुरूरवां घृतेनाक्ते वृषंणं दधाथां गायत्रं छन्दोऽनु प्र जांयस्व

त्रैष्टुंभुं जागतं छन्दोऽनु प्रजायस्व भवतं॥१२॥

नः समंनसौ समोकसावरेपसौं। मा युज्ञ हि सिष्टुं मा युज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भंवतमुद्य नः॥ अग्नावृग्निश्चरित् प्रविष्टु ऋषीणां पुत्रो अधिराज एषः। स्वाहाकृत्य ब्रह्मणा ते जुहोमि मा देवानां मिथुयाकंभीगुधेयम्॥१३॥

आ दंद ऋतस्यं त्वा देवहविः पाशेनाऽऽरंभे धर्षा मानुषानुद्धस्त्वौषंधीभ्यः प्रोक्षांम्यपां पेरुरंसि स्वात्तं चिथ्सदेव १ ह्व्यमापो देवीः स्वदंतैन १ सं ते प्राणो वायुनां गच्छता १ सं यजंत्रैरङ्गानि सं युज्ञपंतिराशिषां घृतेनाक्तौ पशुं त्रायेथा १ रेवंतीर्य्ज्ञपंतिं प्रियधाऽऽविंश्वतोरो अन्तरिक्ष सजूर्देवेन॥१४॥

वार्तनाऽस्य ह्विष्रस्मनां यज् समंस्य तनुवां भव वर्षीयो वर्षीयसि यज्ञे यज्ञपंतिं धाः पृथिव्याः सम्पृचेः पाहि नमंस्त आतानाऽनुवां प्रेहिं घृतस्यं कुल्यामन् सह प्रजयां सह रायस्पोषेणाऽऽपों देवीः शुद्धायुवः शुद्धा यूयं देवा र ऊड्ढर शुद्धा वयं परिविष्टाः परिवेष्टारों वो भूयास्म॥१५॥

देवेन चतुंश्चत्वारिर्शच॥______

वाक्त आ प्यांयतां प्राणस्त आ प्यांयतां चक्षुंस्त आ प्यांयता ॥ श्रोत्रं त आ प्यांयतां या ते प्राणाञ्छुग्जगाम् या चक्षुर्या श्रोत्रं यत् ते क्रूरं यदास्थितं तत् त आ प्यांयतां तत् तं एतेनं शुन्धतां नाभिंस्त आ प्यांयतां पायुस्त आ प्यांयता ॥ शुद्धाश्चरित्राः शमुद्धः॥ १६॥

शमोषंधीभ्यः शं पृंथिव्यै शमहोंभ्यामोषंधे त्रायंस्वैन्ड् स्विधंते मैन र् हिश्सी रक्षंसां भागोऽसीदम्हर रक्षोऽध्मं तमो नयामि योंऽस्मान् द्वेष्टि यं च व्यं द्विष्म इदमेनमध्मं तमो नयामीषे त्वां घृतेनं द्यावापृथिवी प्रोण्वांथामिष्किंत्रो रायः सुवीरं उर्वन्तिरक्षमिन्विंहि वायो वीहिं स्तोकानाड्ड स्वाहोर्ध्वनंभसं मारुतं गंच्छतम्॥१७॥

अ्द्यो वीहि पश्चं च॥———[९]

सं ते मनसा मनः सं प्राणेनं प्राणो जुष्टं देवेभ्यों ह्व्यं घृतवृथ्स्वाहैन्द्रः प्राणो अङ्गंअङ्गे नि देध्यदैन्द्रोऽपानो अङ्गेअङ्गे वि बोभुवद्देवं त्वष्टुर्भूरिं ते स॰संमेतु विषुरूपा यथ्सलंक्ष्माणो भवंथ देवत्रा यन्तमवंसे सखायोऽनं त्वा माता पितरों मदन्तु श्रीरंस्यग्निस्त्वौ श्रीणात्वापः समंरिणन्वातंस्य॥१८॥

त्वा ध्रज्यै पूष्णो रङ्ह्यां अपामोषंधीना रे रोहिंष्यै घृतं घृतपावानः पिबत् वसां वसापावानः पिबतान्तिरक्षिस्य ह्विरस् स्वाहां त्वाऽन्तिरक्षाय दिशः प्रदिशं आदिशों विदिशं उद्दिशः स्वाहां दिग्भ्यो नमों दिग्भ्यः॥१९॥

वार्तस्याष्टावि १ शतिश्च॥------[१०]

समुद्रं गंच्छु स्वाहाऽन्तिरक्षं गच्छु स्वाहां देव सिवितारं गच्छु स्वाहांऽहोरात्रे गंच्छु स्वाहां मित्रावरुंणौ गच्छु स्वाहां सोमं गच्छु स्वाहां युज्ञं गंच्छु स्वाहा छन्दा सि गच्छु स्वाहा द्यावांपृथिवी गंच्छु स्वाहा नभो दिव्यं गंच्छु स्वाहाः ऽग्निं वैश्वान् गंच्छु स्वाहाऽज्ञ्चस्त्वौषंधीभ्यो मनो मे हार्दि यच्छ तुनूं त्वचं पुत्रं नप्तारमशीय शुगंसि तम्भि शोंच यौं-ऽस्मान् द्वेष्टि यं चं वयं द्विष्मो धाम्नोधाम्नो राजित्रतो वंरुण नो मुश्च यदापो अग्निया वरुणिति शपांमहे ततो वरुण नो मुश्च॥२०॥

असि षड्वि १ शतिश्व॥——

-[88]

ह्विष्मंतीरिमा आपो ह्विष्मांन देवो अध्वरो ह्विष्माः आ विवासति ह्विष्माः अस्तु सूर्यः॥ अग्नेर्वो-ऽपंत्रगृहस्य सदंसि सादयामि सुम्नायं सुम्निनीः सुम्ने मां धत्तेन्द्राग्नियोर्गग्धेयीः स्थ मित्रावर्रुणयोर्भाग्धेयीः स्थ विश्वेषां देवानां भागधेयीः स्थ यज्ञे जांगृत॥२१॥

ह्विष्मंती्श्चतुंस्रि रशत्॥———[१२]

हृदे त्वा मनंसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वोर्ध्वमिममंध्वरं कृंधि दिवि देवेषु होत्रां यच्छ सोमं राज्ञन्नेह्यवं रोह् मा भेमां सं विक्था मा त्वां हि॰सिषं प्रजास्त्वमुपावंरोह प्रजास्त्वामुपावं रोहन्तु शृणोत्वग्निः स्मिधा हवंं मे शृण्वन्त्वापों धिषणांश्च देवीः। शृणोतं ग्रावाणो विदुषो नु॥२२॥

युज्ञ १ शृणोत् देवः संविता हवं मे। देवीरापो अपां नपाद्य कुर्मिर्हं विष्यं इन्द्रियावान्मदिन्तं मस्तं देवेभ्यों देवत्रा धत्त शुक्र श्रृंक्रपेभ्यो येषां भागः स्थ स्वाहा कार्षिर्स्यपापां मृध्र संमुद्रस्य वोक्षित्या उन्नये। यमंग्ने पृथ्सु मर्त्यमावो वाजेषु यं जुनाः। स यन्ता शश्वंतीरिषः॥२३॥

नु सप्तचंत्वारिश्शच॥——[१३]

त्वमंग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्व शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे। त्वं वातैररुणैर्यास शङ्गयस्त्वं पूषा विधतः पासि नु त्मनां॥ आ वो राजानमध्वरस्यं रुद्र होतार सत्ययज्ञ र रोदंस्योः। अग्निं पुरा तनिय्वोर्चित्ताद्धिरंण्यरूपमवसे कृणुध्वम्॥ अग्निरहोता निषंसादा यजीयानुपस्थे मातुः सुरुभावं लोके। युवां कृविः पुरुनिष्ठ -॥२४॥

ऋतावां धर्ता कृष्टीनामुत मध्यं इद्धः॥ साध्वीमंकर्देववीतिं नो अद्य यज्ञस्यं जिह्वामंविदाम् गृह्यांम्। स आयुरागांध्सुर-भिवसांनो भूद्रामंकर्देवहूंतिं नो अद्य॥ अऋंन्दद्गिः स्तनयंत्रिव द्योः क्षामा रेरिंहद्वीरुधंः समुञ्जन्र। सुद्यो जंजानो विहीमिद्धो अख्यदा रोदंसी भानुनां भात्यन्तः॥ त्वे वसूंनि पुर्वणीक॥२५॥

होतर्दोषा वस्तोरेरिरे युज्ञियांसः। क्षामेव विश्वा भुवंनानि यस्मिन्थ्स १ सौभंगानि दिधरे पांवके॥ तुभ्यं ता अंङ्गिरस्तम् विश्वाः सुक्षितयः पृथंक्। अग्रे कामाय येमिरे॥ अश्याम् तं काममग्रे तवोत्यंश्यामं र्यि १ रियवः सुवीरम्। अश्याम् वाजंमभि वाजयंन्तोऽश्यामं द्युम्नमंजराजरं ते॥ श्रेष्ठं यविष्ठ भारताग्रें द्युमन्तमाभंर।॥२६॥ वसो पुरुस्पृह र रियम्॥ स श्वितानस्तेन्यत रोचनस्था अजरेभिर्नानंदद्भिर्यविष्ठः। यः पांवकः पुरुतमः पुरूणि पृथून्यग्निरेन्याति भवन्नं॥ आयुष्टे विश्वतो दधद्यम्ग्निवरेण्यः। पुनस्ते प्राण आयंति परा यक्ष्मरं सुवामि ते॥ आयुर्दा अंग्ने ह्विषो जुषाणो घृतप्रंतीको घृतयोनिरेधि। घृतं पीत्वा मधु चारु गर्व्यं पितेवं पुत्रम्भि॥२७॥

रंक्षतादिमम्॥ तस्मैं ते प्रतिहर्यते जातंवेदो विचंर्षणे।

अग्ने जनांमि सुष्टुतिम्॥ दिवस्परिं प्रथमं जंज्ञे अग्निरस्मद्

द्वितीयं परि जातवेदाः। तृतीयंमपस् नृमणा अजंस्रमिन्धांन एनं जरते स्वाधीः॥ शुचिः पावक वन्द्योऽग्ने बृहद्वि रोंचसे। त्वं घृतेभिराहुंतः॥ दृशानो रुका उर्व्या व्यंद्यौद् दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः। अग्निर्मृतों अभवद्वयोभिर्-॥२८॥ यदेनं द्यौरजंनयथ्सुरेताः॥ आ यदिषे नृपितं तेज आन्द्वुचि रेतो निषिक्तं द्यौर्भोकें। अग्निः शर्धमनवद्यं युवानः स्वाधियं जनयथ्सूदयंच॥ स तेजीयसा मनसा त्वोतं उत शिक्ष स्वपृत्यस्यं शिक्षोः। अग्ने रायो नृतंमस्य प्रभूतौ भूयामं ते सुष्टुतयंश्च वस्वः॥ अग्ने सहन्तमा भर

द्युम्नस्यं प्रामहां र्यिम्। विश्वा यश्-॥२९॥

चंर्षणीर्भ्यांसा वाजेषु सामहंत्॥ तमंग्ने पृतनासहर् रियर संहस्व आ भंर। त्वर हि सत्यो अद्भुंतो दाता वाजंस्य गोमंतः॥ उक्षान्नांय वृशान्नांय सोमंपृष्ठाय वृधसें। स्तोमैंविधेमाग्नयें॥ वृद्या हि सूनो अस्यंद्मसद्वां चुके अग्निर्जनुषाज्मान्नम्। स त्वं नं ऊर्जसन् ऊर्जं धा राजेव जेरवृके क्षेष्यन्तः॥ अग्न आयूर्षि॥३०॥

पवस् आ सुवोर्ज्ञिमिषं च नः। आरे बांधस्व दुच्छुनाँम्॥ अग्ने पर्वस्व स्वपां अस्मे वर्चः सुवीर्यम्॥ दधत्पोष र्रे र्यिं मिया अग्ने पावक रोचिषां मृन्द्रयां देव जिह्नयाँ। आ देवान् विक्षि यिक्षं च॥ स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवा र इहा वह। उपं यज्ञ र ह्विश्चं नः॥ अग्निः शुचिंव्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिं क्विः। शुचीं रोचत् आहुंतः॥ उदंग्ने शुचंयस्तवं शुक्रा भ्राजंन्त ईरते। तव ज्योती इंष्युर्चयः॥३१॥

पुरुनिष्ठः पुंर्वणीक भराऽभि वयोंभिर्य आयूर्षेषि विष्रः शुचिश्चतुंर्दश च॥———[१४]

॥ चतुर्थः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां प्रथमकाण्डे चतुर्थः प्रश्नः॥

आ देवे ग्रावांस्यध्वर्कृद् देवेभ्यों गम्भीरिम्ममंध्वरं कृंध्युत्तमेनं पविनेन्द्रांय सोम् सुषुंतं मधुंमन्तं पर्यस्वन्तं वृष्टिविन्मिन्द्रांय त्वा वृत्र्प्न इन्द्रांय त्वा वृत्र्प्तर इन्द्रांय त्वा वृत्र्प्तर इन्द्रांय त्वा उभिमातिष्न इन्द्रांय त्वाऽिम्मातिष्न इन्द्रांय त्वाऽिम्मातिष्न इन्द्रांय त्वाऽिव्यवंत इन्द्रांय त्वा विश्वदें व्यावते श्वात्राः स्थं वृत्र्तुरो राधोंगूर्ता अमृतंस्य पत्नीस्ता देविदिव्तेमं यृज्ञं धृत्तोपहूताः सोमंस्य पिब्तोपहूतो युष्माक ॥१॥

सोमः पिबतु यत्तं सोम दिवि ज्योतिर्यत् पृंथिव्यां यदुरावन्तिरिक्षे तेनास्मै यजंमानायोरु राया कृध्यिधं दात्रे वोचो धिषणे वीडू सती वीडयेथामूर्जं दधाथामूर्जं मे धत्तं मा वार्ं हिश्सिष्ं मा मां हिश्सिष्टं प्रागपागुदंगधराक्तास्त्वा दिश आ धांवन्त्वम्ब नि ष्वंर। यत्ते सोमादाँभ्यं नाम जागृंवि तस्मैं ते सोम सोमाय स्वाहाँ॥२॥

युष्माक १ स्वर् यत्ते नवं च॥——[१] वाचस्पतंये पवस्व वाजिन् वृषा वृष्णों अश्शुभ्यां

गर्भस्तिपूतो देवो देवानाँ प्वित्रंमिस् येषाँ भागो-ऽसि तेभ्यंस्त्वा स्वां कृतोऽसि मधुमतीर्न इषंस्कृधि विश्वेभ्यस्त्वेन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनंस्त्वाष्टूर्वन्त-रिक्षमन्विहि स्वाहाँ त्वा सुभवः सूर्याय देवेभ्यंस्त्वा मरीचिपेभ्यं एष ते योनिः प्राणायं त्वा॥३॥

वाुचः सप्तर्चत्वारि १शत्॥———[२]

उपयामगृंहीतोऽस्यन्तयंच्छ मघवन् पाहि सोमंमुरुष्य रायः समिषों यजस्वान्तस्तें दधामि द्यावांपृथिवी अन्तर्रुवंन्तिरक्षिः स्जोषां देवैरवंरैः परैंश्चान्तर्यामे मघवन् मादयस्व स्वां कृतोऽसि मधुमतीर्न् इषंस्कृधि विश्वम्यस्त्वेन्द्रियेभ्यां दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टूर्वन्त-रिक्षमन्विंहि स्वाहाँ त्वा सुभवः सूर्याय देवेभ्यंस्त्वा मरीचिपेभ्यं एष ते योनिरपानायं त्वा॥४॥

देवेभ्यः सप्त चं॥———[3]

आ वांयो भूष शुचिपा उपं नः सहस्रं ते नियुतों विश्ववार। उपों ते अन्धो मद्यंमयामि यस्यं देव दिधेषे पूँर्विपयम्॥ उपयामगृंहीतोऽसि वायवे त्वेन्द्रंवायू इमे सुताः। उप प्रयोभिरा गंतिमिन्दंवो वामुशन्ति हि॥ उपयामगृंहीतोऽसीन्द्रवायुभ्यां त्वैष ते योनिः सजोषांभ्यां त्वा॥५॥

आ वांयो त्रिचंत्वारिश्शत्॥——[४] अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोमं ऋतावृधा। ममेदिह श्रुंत् श्रुंत् श्रुंत् श्रुंत् हवम्। उपयामगृहीतोऽसि मित्रावरुणाभ्यां त्वैष ते योनिर्

ऋतायुभ्यां त्वा॥६॥

अयं वां विरश्तिः।———[५] या वां कशा मधुंमृत्यिश्वेना सूनृतांवती। तयां यज्ञं मिंमिक्षतम्। उपयामगृंहीतोऽस्यिश्वभ्यांं त्वैष ते

योनिर्माध्वीभ्यां त्वा॥७॥

या वांम्छादंश॥——[६]
प्रात्यर्पजौ वि मुंच्येथामिश्वंनावेह गंच्छतम्। अस्य सोमंस्य
पीतये॥ उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वैष ते योनिरश्विभ्यां

त्वा॥८॥

प्रात्युंजावेकान्नवि ^५शतिः॥**————[** ७]

त १ षड्वि ५ शतिः॥___

अयं वेनश्चोदयत् पृश्निंगर्भा ज्योतिर्जरायू रजेसो विमानै। इमम्पा॰ संङ्गमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रां मृतिभी रिहन्ति॥ उपयामगृहीतोऽसि शण्डांय त्वैष ते योनिर्वीरतां पाहि॥९॥

अयं वेनः पर्श्वविश्वातिः॥———[८] तं प्रत्नथां पूर्वथां विश्वथेमथां ज्येष्ठतांतिं बर्हिषदर्श् सुवर्विदं प्रतीचीनं वृजनं दोहसे गिराऽऽशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे। उपयामगृहीतोऽसि मर्काय त्वैष ते योनिः प्रजाः पाहि॥१०॥

ये देवा दिव्येकांदश् स्थ पृंथिव्यामध्येकांदश् स्थाऽपसुषदों महिनैकांदश् स्थ ते देवा यज्ञमिमं जुंषध्वमुपयामगृहीतोऽस्याग्रयणोऽसि स्वांग्रयणो जिन्वं

यज्ञं जिन्वं यज्ञपंतिम्भि सर्वना पाहि विष्णुस्त्वां पातु विशं त्वं पाहीन्द्रियेणैष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः॥११॥

ये देवास्त्रिचंत्वारिश्शत्॥——[१०]
त्रिष्शत्रयंश्च गुणिनों रुजन्तो दिवर्ष रुद्राः पृथिवीं च

सचन्ते। एकाद्रशासों अपसुषदंः सुतः सोमं जुषन्ताः सर्वनाय विश्वे॥ उपयामगृहीतोऽस्याग्रयणोऽसि स्वांग्रयणो जिन्वं यज्ञं जिन्वं यज्ञपंतिम्भि सर्वना पाहि विष्णुस्त्वां पातु विश्वं त्वं पाहीन्द्रियेणैष ते योनिर्विश्वंभ्यस्त्वा देवेभ्यः॥१२॥

विर्वाद द्विचंत्वारिर्वत्या——[११] उपयामगृहीतोऽसीन्द्रांय त्वा बृहद्वंते वयंस्वत उक्थायुवे

यत् तं इन्द्र बृहद्वयस्तस्मैं त्वा विष्णंवे त्वैष ते योनिरिन्द्रांय त्वोक्थायुवै॥१३॥

उपयामगृहीतो द्वाविर्शातिः॥——[१२]

मूर्धानं दिवो अंरतिं पृथिव्या वैश्वान्रमृतायं जातम्ग्निम्। क्वि सम्प्राज्मितिथां जनांनामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः॥ उपयामगृहीतोऽस्यग्नयं त्वा वेश्वान्रायं ध्रुवोऽसि ध्रुविक्षितिर्ध्रुवाणां ध्रुवत्मोऽच्युंतानामच्युत्क्षित्तंम एष ते योनिरग्नयं त्वा वेश्वानरायं॥१४॥

मूर्धानं पश्चित्रश्चरम् मान्यस्य मान्यस्य निवस्य निवस्य निवस्य

मधुंश्च माधंवश्च शुक्तश्च शुचिंश्च नभश्च नभस्यंश्चेषश्चोर्जश्च

सहंश्च सहस्यंश्च तपंश्च तप्स्यंश्चोपयामगृंहीतोऽसि स्र्सर्पों-ऽस्य १ हस्पत्यायं त्वा॥१५॥

मर्थुं ख्रिष्ट्रशत्॥——[१४]

इन्द्रौग्नी आ गंत स्तुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम्। अस्य पातं धियेषिता॥ उपयामगृहीतोऽसीन्द्राग्निभ्यां त्वैष ते योनिरिन्द्राग्निभ्यां त्वा॥१६॥

इन्द्रौंग्नी विर्श्ताः॥——[१५]

ओमांसश्चर्षणीधृतो विश्वं देवास् आ गंत। दाश्वाः सो दाशुषंः सुतम्॥ उपयामगृहीतोऽसि विश्वंभ्यस्त्वा देवेभ्यं एष ते योनिर्विश्वंभ्यस्त्वा देवेभ्यः॥१७॥

इन्द्रौग्री ओमांसो विष्शृतिर्विष्शतिः॥_____[१६]

म्रुत्वंन्तं वृष्भं वांवृधानमकंवारिं दिव्य शासिमन्द्रम्। विश्वासाह्मवंसे नूतंनायोग्र संहोदामिह त हंवेम॥ उपयामगृहीतोऽसीन्द्रांय त्वा म्रुत्वंत एष ते योनिरिन्द्रांय त्वा म्रुत्वंते॥१८॥

मुरुत्वेन्तुर् षड्विर्रशतिः॥------[१७]

इन्द्रं मरुत्व इह पांहि सोमं यथां शार्याते अपिंबः सुतस्यं। तव प्रणीती तवं शूर शर्मन्ना विवासन्ति क्वयंः सुयज्ञाः॥ उपयामगृहीतोऽसीन्द्रांय त्वा मुरुत्वंत एष ते योनिरिन्द्रांय त्वा मरुत्वंते॥१९॥

म्रुत्वार्थं इन्द्र वृष्भो रणांय पिबा सोमंमनुष्वधं मदांय। आ सिंश्रस्व जठरे मध्वं ऊर्मिं त्वर राजांसि प्रदिवंः

सुतानांम्॥ उपयामगृहीतोऽसीन्द्रांय त्वा म्रुत्वंत एष ते योनिरिन्द्रांय त्वा मरुत्वंते॥२०॥

इन्द्रं मरुत्वो मुरुत्वानेकान्न त्रिष्शदेकान्न त्रिष्शत्॥———[१९]

मृहा इन्द्रो य ओर्ज्ञसा पूर्जन्यो वृष्टिमा इंव। स्तोमैंर्व्थ्यस्यं वावृधे॥ उपयामगृंहीतोऽसि महेन्द्रायं त्वैष ते योनिर्महेन्द्रायं त्वा॥२१॥

म्हानेकाृत्रवि १शितः॥———[२०]

महा इन्द्रों नृवदा चंर्षणिप्रा उत द्विबर्हां अमिनः सहोभिः। अस्मद्रियंग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत्॥ उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्रायं त्वैष ते योनिर्महेन्द्रायं त्वा॥२२॥

महान्नृवत्षिड्व ५ शतिः॥ कदा चन स्तरीरंसि नेन्द्रं सश्चसि दाशुषें। उपोपेनु मंघवन् भूय इन्नु ते दानंं देवस्यं पृच्यते॥ उपयामगृंहीतो-ऽस्यादित्येभ्यंस्त्वा॥ कदा चन प्र युंच्छस्युभे नि पांसि जन्मंनी। तुरीयादित्य सर्वनं त इन्द्रियमा तंस्थावमृतंं दिवि॥ युज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवंता मृड्यन्तः। आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्याद १ होश्चिद्या वंरिवोवित्तरासंत्॥ विवंस्व आदित्यैष तें सोमपीयस्तेनं मन्दस्व तेनं तृप्य तृप्यासमं ते वयं तंर्पयितारो या दिव्या वृष्टिस्तयां त्वा श्रीणामि॥२३॥

वः सप्तवि १ शतिश्व॥ वाममुद्य संवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्य र सावीः। वामस्य हि क्षयंस्य देव भूरेरया धिया वांमभाजः स्याम॥ उपयामगृंहीतोऽसि देवायं त्वा सवित्रे॥२४॥

वामं चतुंर्वि १शतिः॥

अदंब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वः शिवेभिरद्य परिं पाहि

नो गयम्। हिरंण्यजिह्नः सुविताय नव्यंसे रक्षा मार्किर्नो अघशर्भस ईशत॥ उपयामगृहीतोऽसि देवायं सवित्रे॥ २५॥

अदंब्धेभिस्त्रयोंवि १ शतिः॥= -[૨૪] हिरंण्यपाणिमूतयें सवितारमुपं ह्वये। स चेत्तां देवतां

पुदम्॥ उपयामगृहीतोऽसि देवायं त्वा सवित्रे॥२६॥

सुशर्माऽसि सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षे नर्म

योनिर्विश्वैभ्यस्त्वा देवेभ्यः॥२७॥

बृह्स्पतिंसुतस्य पश्चंदश॥_____

हिरंण्यपाणिं चतुर्दश॥=

सुशर्मा द्वादंश॥____ –[२६] बृह्स्पतिंसुतस्य त इन्दो इन्द्रियावंतः पत्नीवन्तं ग्रहं गृह्णाम्यग्ना(३)इ पत्नीवा(३)ः सुजूर्देवेन त्वष्ट्रा सोमं पिब

स्वाहाँ॥२८॥

____[२७] हरिरसि हारियोजनो हर्योः स्थाता वर्ज्रस्य भूर्ता पृश्ञेः प्रेता तस्यं ते देव सोमेष्टयंजुषः स्तुतस्तोंमस्य शुस्तोक्थंस्य हरिवन्तं ग्रहं गृह्णामि हरीः स्थ हर्योधानाः सहसोमा इन्द्राय स्वाहाँ॥२९॥

हरिः षड्वि १ शतिः॥

अग्न आयू रंषि पवस आ सुवोर्जुमिषं च नः। आरे बांधस्व दुच्छ्नाम्॥ उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा तेर्जस्वत एष ते योनिरग्नयें त्वा तेर्जस्वते॥३०॥

अग्न आयू ५ षि त्रयों वि ५ शतिः॥____ -----[२९]

उत्तिष्ठन्नोर्ज्ञंसा सह पीत्वा शिप्रें अवेपयः। सोमंमिन्द्र चुमू सुतम्॥ उपयामगृंहीतोऽसीन्द्रांय त्वौजंस्वत एष ते योनिरिन्द्रांय त्वौजंस्वते॥३१॥

उत्तिष्ठन्नेकंवि १शतिः॥ तरणिविश्वदंर्शतो ज्योतिष्कृदंसि सूर्य। विश्वमा भांसि

रोचनम्॥ उपयामगृंहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राजंस्वत एष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजंस्वते॥३२॥

तरणिंर्वि शितः॥ आ प्यांयस्व मदिन्तम सोम विश्वांभिरूतिभिः। भवां नः

सप्रथंस्तमः॥३३॥

आ प्यायस्व नवं॥——[३२]

र्ड्युष्टे ये पूर्वतरामपंश्यन् व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः। अस्माभिरू नु प्रंतिचक्ष्यांऽभूदो ते यंन्ति ये अंपरीषु पश्यान्॥३४॥

र्डुयुरेकान्नवि १ शतिः॥-----[३३]

ज्योतिष्मतीं त्वा सादयामि ज्योतिष्कृतं त्वा सादयामि ज्योतिर्विदं त्वा सादयामि भास्वंतीं त्वा सादयामि ज्वलंन्तीं त्वा सादयामि मल्मलाभवंन्तीं त्वा सादयामि दीप्यंमानां त्वा सादयामि रोचंमानां त्वा सादयाम्यजंस्रां त्वा सादयामि बृहज्योतिषं त्वा सादयामि बोधयंन्तीं त्वा सादयामि जाग्रंतीं त्वा सादयामि॥३५॥

ज्योतिंष्मती्र् षद्गिर्श्यत्॥———[३४]

प्रयासाय स्वाहां ऽऽयासाय स्वाहां वियासाय स्वाहां संयासाय स्वाहां द्यासाय स्वाहां ऽवयासाय स्वाहां शुचे स्वाहा शोकांय स्वाहां तप्यत्वे स्वाहा तपंते स्वाहां

इन्द्रमित्रयोवि १शतिः॥

ब्रह्महत्यायै स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा॥३६॥

प्रयासाय चतुर्विरशतिः॥——[३५]
चित्तर संन्तानेनं भवं युक्रा रुद्रं तिनिम्ना पशुपित ई
स्थूलहृद्येनाग्निर हृदयेन रुद्रं लोहितेन शुर्वं मतस्नाभ्यां
महादेवमन्तः पार्श्वेनौषिष्ठहनई शिङ्गीनिकोश्याभ्याम्॥३७॥

भ तेष्ठ वृत्रह्न रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरीं। अर्वाचीन् क्र

सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वृग्नुना उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडुशिनं एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडुशिनं॥३८॥

आ तिष्ठ पिंड्विर्श्यतिः॥———[३७] इन्द्रमिद्धरीं वह्तोऽप्रंतिधृष्टशवस्मृषींणां च स्तुतीरुपं यज्ञं च मानुषाणाम्॥ उपयामगृहीतोऽसीन्द्रांय त्वा षोड्शिनं एष ते योनिरिन्द्रांय त्वा षोड्शिनं॥३९॥

असांवि सोमं इन्द्र ते शविष्ठ धृष्ण्वा गंहि। आ त्वां पृणक्तिन्द्रिय रजः सूर्यं न रश्मिभिः॥ उपयामगृंहीतो-

उसीन्द्रांय त्वा षोडुशिनं एष ते योनिरिन्द्रांय त्व

षोडशिनें॥४०॥

असांवि सप्तिवि १ शितिः॥———[३९]

सर्वस्य प्रतिशीवंरी भूमिंस्त्वोपस्थ आऽधित। स्योनास्में सुषदां भव यच्छांस्मै शर्म सप्रथाः॥ उपयामगृंहीतोऽसीन्द्रांय त्वा षोडुशिनं एष ते योनिरिन्द्रांय त्वा षोडशिने॥४१॥

सर्वस्य पड्विर्शितः॥_____[४०]

महा इन्द्रो वर्ज्रबाहुः षोड्शी शर्म यच्छतु। स्वस्ति नो मघवां करोतु हन्तुं पाप्मानं यो उस्मान् द्वेष्टिं॥ उपयामगृहीतो उसीन्द्रांय त्वा षोड्शिनं एष ते योनिरिन्द्रांय त्वा षोडशिने॥४२॥

सर्वस्य महान्थ्यिङ्व १शितष्यिङ्क १शितः॥———[४१]

स्जोषां इन्द्रं सर्गणो मुरुद्धिः सोमं पिब वृत्रहञ्छूर विद्वान्। जिहि शत्रूष्ट्रं रप् मृधी नुद्स्वाऽथाभयं कृणुहि विश्वतो नः॥ उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडिशिनं एष ते योनिरिन्द्रांय त्वा षोडिशिने॥४३॥

स्जोषाँ स्थिर्शत्॥_____[४२]

उदु त्यं जातवेदसं देवं वंहन्ति केतवंः। दृशे विश्वांय सूर्यम्॥ चित्रं देवानामुदंगादनीकं चक्षुंर्मित्रस्य वर्रुणस्याग्नेः। आऽप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष्यः सूर्यं आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥ अग्ने नयं सुपथां राये अस्मान् विश्वांनि देव व्युनांनि विद्वान्। युयोध्यंस्मञ्जंहराणमेनो भूयिष्ठां ते नमंउक्तिं विधेम॥ दिवं गच्छ सुवंः पत रूपेणं॥४४॥

वो रूपम्भ्यैमि वयंसा वयंः। तुथो वो विश्ववेदा वि भंजतु वर्षिष्ठे अधि नाकैं॥ एतत् ते अग्ने राध् ऐति सोमंच्युतं तन्मित्रस्यं पृथा नंयर्तस्यं पृथा प्रेतं चन्द्रदक्षिणा यज्ञस्यं पृथा सुंविता नयंन्तीर्ब्राह्मणमृद्य राध्यासमृषिंमार्षेयं पितृमन्तं पैतृमृत्य सुधातुंदक्षिणं वि सुवः पश्य व्यंन्तरिक्षं यतंस्व सद्स्येर्स्मद्दात्रा देवत्रा गंच्छत् मधुंमतीः प्रदातारमा विश्वतानंवहायास्मान् देवयानेन पृथेतं सुकृतां लोके सीदत् तन्नः सङ्स्कृतम्॥४५॥

रूपेणं सद्स्यैंर्ष्टादंश च॥-----[४३]

धाता रातिः संवितेदं जुंषन्तां प्रजापंतिर्निधिपतिर्नो अग्निः। त्वष्टा विष्णुः प्रजयां स॰रराणो यजमानाय द्रविणं दधातु॥ सिनंद्र णो मनंसा नेषि गोभिः स॰ सूरिभिर्मघवन्थ्स इ स्वस्त्या। सं ब्रह्मणा देवकृतं यदस्ति सं देवाना ई सुमृत्या यज्ञियांनाम्॥ सं वर्चसा पर्यसा सं तनूभिरगंन्मिह् मनंसा स॰ शिवेनं। त्वष्टां नो अत्र वरिवः कृणो-॥४६॥

त्वनुं मार्षु तनुवो यद्विलिष्टम्॥ यद्व त्वाँ प्रयति युज्ञे अस्मिन्नग्रे होतांर्मवृंणीमहीह। ऋधंगयाङ्घंगुताशंमिष्ठाः प्रजानन् यज्ञमुपंयाहि विद्वान्॥ स्वगा वो देवाः सदंनमकर्म् य आंज्ग्म सवनेदं जुंषाणाः। जक्षिवारसंः पिपवारसंश्च विश्वेऽस्मे धंत्त वसवो वसूंनि॥ यानाऽवंह उश्वतो देव देवान्तान्॥४७॥

प्रेरंय स्वे अंग्ने स्थर्थै। वहंमाना भरंमाणा ह्वी १ षे वसुं घ्मं दिवमा तिष्ठतानुं॥ यज्ञं य्ज्ञं गच्छ य्ज्ञपंतिं गच्छ स्वां योनिं गच्छ स्वाहैष ते य्ज्ञो यंज्ञपते सहसूँक्तवाकः सुवीरः स्वाहा देवा गातुविदो गातुं वित्वा गातुमित मनसस्पत इमं नो देव देवेषुं युज्ञ स्वाहां वाचि स्वाहा वाते धाः॥४८॥

कृणोतु तान्ष्टाचेत्वारि १शच॥ [४४]

उरु हि राजा वर्रुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उं।

अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापंवक्ता हंदयाविधिश्चित्॥ शतं ते राजन् भिषजंः सहस्रंमुर्वी गंम्भीरा सुंमृतिष्टें अस्तु। बाधंस्व द्वेषो निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुंमुग्ध्यस्मत्॥ अभिष्ठिंतो वर्रुणस्य पाशोऽग्नेरनींकम्प आ विवेश। अपौं नपात् प्रतिरक्षंत्रसुर्यं दमेदमे॥४९॥

स्मिधं यक्ष्यग्ने॥ प्रतिं ते जिह्ना घृतम्चंरण्येथ्समुद्रे ते हृदंयम्पस्वंन्तः। सं त्वां विश्वन्त्वोषंधीरुताऽऽपों यज्ञस्यं त्वा यज्ञपते हृविर्मिः॥ सूक्त्वाके नंमोवाके विधेमावंभृथ निचङ्कुण निचेरुरंसि निचङ्कुणावं देवैर्देवकृतमेनोऽयाडव् मर्त्युर्मर्त्यंकृतमुरोरा नों देव रिषस्पांहि सुमित्रा न आप् ओषंधयः॥५०॥

सन्तु दुर्मित्रास्तस्मै भूयासुर्यों उस्मान् द्वेष्ट्रि यं चं वयं द्विष्मो देवीराप एष वो गर्भस्तं वः सुप्रीत् स् सुर्भृतमकर्म देवेषुं नः सुकृतौं ब्रूतात् प्रतियुतो वर्रुणस्य पाशः प्रत्यंस्तो वर्रुणस्य पाश एथौं उस्येधिषीमहिं सुमिदंसि तेजों उसि तेजो मिये धेह्यपो अन्वंचारिष् रसेन् समंसृक्ष्महि। पर्यस्वार

अग्न आऽगेमं तं मा स॰ सृंज वर्चसा॥५१॥

यस्त्वां हृदा कीरिणा मन्यंमानोऽमंत्यंं मर्त्यो जोहंवीमि। जातंवदो यशो अस्मासुं धेहि प्रजाभिरग्ने अमृत्त्वमंश्याम्॥ यस्मै त्वश् सुकृतें जातवेद उ लोकमंग्ने कृणवंः स्योनम्। अश्विन्श् स पुत्रिणं वीरवंन्तं गोमंन्तश् र्यिं नंशते स्वस्ति॥ त्वे सु पुत्र शवसोऽवृत्रम् कामंकातयः। न त्वामिन्द्रातिं रिच्यते॥ उक्थउंक्थे सोम् इन्द्रं ममाद नीथेनीथे मघवांनश्॥५२॥

सुतासंः। यदी १ स्वार्धः पितरं न पुत्राः संमानदंशा अवंसे हवन्ते॥ अग्ने रसेन तेजंसा जातंवदो वि रोंचसे। रक्षोहाऽमींवचातंनः॥ अपो अन्वंचारिष् रसेन समंसृक्ष्मिह। पर्यस्वा अग्ने आऽगंमं तं मा स र सृंज् वर्चसा॥ वसुर्वसुंपतिरहिक्मस्यंग्ने विभावंसः। स्यामं ते सुमताविषे॥ त्वामंग्ने वसुंपति वसूनाम्भि प्र मन्दे॥५३॥ अश्वरेषं राज्ञा लगा वार्जं वाज्यन्ते जरेमाभि

अध्वरेषुं राजन्न्। त्वया वार्जं वाज्यन्तों जयेमाभि ध्यांम पृथ्सुतीर्मर्त्यांनाम्। त्वामंग्ने वाज्यसातंम् विप्रां वर्धन्ति

सुष्ठंतम्। स नो रास्व सुवीर्यम्॥ अयं नो अग्निर्विशंकृणोत्वयं मृधंः पुर एंतु प्रिमिन्दन्न्। अयः शत्रूं अयतु जर्ह्षणणोऽयं वार्जं जयतु वार्जसातौ॥ अग्निनाऽग्निः सिम्ध्यते कृविर्गृहपंतिर्युवा। हृव्यवाइ जुह्वांस्यः॥ त्वः ह्यंग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्थ्मता। सखा सख्यां सिम्ध्यसे॥ उदंग्ने शुचंयस्तव वि ज्योतिषा॥५४॥

मुघवानं मन्दे हांग्रे चतुर्दश च॥————[४६]

॥पञ्चमः प्रश्नः॥

॥तैत्तिरीयसंहितायां प्रथमकाण्डे पञ्चमः प्रश्नः॥

देवासुराः संयंता आस्न ते देवा विजयम्प्यन्तो-ऽग्नौ वामं वसु सं न्यंदधतेदम् नो भविष्यति यदिं नो जेष्यन्तीति तद्ग्निर्न्यंकामयत् तेनापाँकामृत् तद्देवा विजित्यांवरुरुंध्समाना अन्वांयन् तदंस्य सहसाऽदिंध्सन्त सोऽरोदीद्यदरोदीत् तद्रुद्रस्यं रुद्रत्वं यदश्र्वशीयत् तद्॥१॥ रंज्तर हिरंण्यमभवत् तस्माँद्रज्तर हिरंण्यमदक्षिण्य-मंश्रुजर हि यो ब्रहिष् ददांति पुराऽस्यं संवध्सरादृहे रुंदिन्ति तस्माँ द्वर्हिषि न देय् सौं ऽग्निरंब्र वीद्धाग्यं सान्यथं व इदिमितिं पुनराधेयंं ते केवल मित्यंब्रु वत्रु प्रवृत् खलु स इत्यंब्रवीद्यो मंद्देवत्यं मृग्निमाद्यां ता इति तं पूषा ऽऽधंत्त तेनं॥२॥

पूषाऽऽर्भोत् तस्मौत् पौष्णाः पृशवं उच्यन्ते तं त्वष्टाऽऽधंत्त् तेन् त्वष्टाँऽऽर्भोत् तस्मौत् त्वाष्ट्राः पृशवं उच्यन्ते तं मनुरा-ऽधत्त तेन् मनुरार्भोत् तस्मौन्मान्व्यः प्रजा उंच्यन्ते तं धाता-ऽऽधत्त तेनं धाताऽऽर्भोष्यंवथ्यरो वे धाता तस्मौथ्यंवथ्यरं प्रजाः पृशवोऽनु प्र जांयन्ते य पृवं पुनराधेयस्यर्ष्टिं वे-॥३॥

दुर्श्रोत्येव यौऽस्यैवं बन्धुतां वेद बन्धुंमान् भवित भाग्धेयं वा अग्निराहित इच्छमानः प्रजां पृशून् यर्जमान्स्योपं दोद्रावोद्वास्य पुन्रा दंधीत भाग्धेयेनैवेन् समंर्धयत्यथो शान्तिरेवास्यैषा पुनंवस्वोरा दंधीतैतद्वै पुनर्ध्यस्य नक्षेत्रं यत्पुनंवस्य स्वायांमेवेनं देवतांयामाधायं ब्रह्मवर्च्सी भवित दर्भरा दंधात्ययातयामत्वाय दर्भरा दंधात्यन्ध एवेन्मोषंधीभ्योऽवरुध्याऽऽधंत्ते पश्चंकपालः पुरोडाशों भवित

पश्च वा ऋतवं ऋतुभ्यं एवैनंमवुरुध्याऽऽधंत्ते॥४॥

अशीयत् तत् तेन् वेदं द्र्भैः पश्चंवि शतिश्च॥_____[१]

परा वा एष यज्ञं प्रशून् वंपति योंऽग्निमुंद्वासयंते पश्चंकपालः पुरोडाशों भवति पाङ्कों यज्ञः पाङ्काः पृशवों यज्ञमेव पृशूनवं रुन्धे वीरहा वा एष देवानां योंऽग्निमुंद्वासयंते न वा एतस्यं ब्राह्मणा ऋतायवंः पुराऽन्नंमक्षन् पृङ्कों याज्यानुवाक्यां भवन्ति पाङ्कों यज्ञः पाङ्कः पुरुषो देवानेव वीरं निरवदायाग्निं पुनरा॥५॥

धंत्ते श्ताक्षंरा भवन्ति श्तायुः पुरुषः श्तेन्द्रियं आयुंष्येवेन्द्रिये प्रति तिष्ठति यद्वा अग्निराहितो नर्ध्यते ज्यायो भाग्धेयं निकामयंमानो यदाँग्नेय सर्वं भवंति सैवास्यिधः सं वा एतस्यं गृहे वाक् सृंज्यते यौऽग्निमुंद्वासयंते स वाच् स स्सृंष्टां यजंमान ईश्वरोऽनु परांभवितोर्विभंक्तयो भवन्ति वाचो विधृंत्यै यजंमानस्यापंराभावाय्॥६॥

विभंक्तिं करोति ब्रह्मैव तदंकरुपा १ यंजिति यथां वामं वसुं विविदानो गूहंति ताहगेव तदिग्नें प्रति स्विष्टकृतं निराह यथां वामं वसुं विविदानः प्रकाशं जिगंमिषति ताहगेव तिह्नभंक्तिमुक्ता प्रयाजेन वर्षद्वरोत्यायतंनादेव नैति यजमानो वै पुरोडाशंः पृशवं एते आहुंती यद्भितंः पुरोडाशंमेते आहुंती॥७॥

जुहोति यजंमानमेवोभ्यतंः पृश्वभिः परिं गृह्णाति कृतयेजुः सम्भृतसम्भार् इत्यांहुर्न सम्भृत्याः सम्भारा न यजुः कर्तव्यंमित्यथो खलुं सम्भृत्यां एव संम्भाराः केर्तव्यं यजुंर्यज्ञस्य समृद्धौ पुनर्निष्कृतो रथो दक्षिणा पुनरुथ्स्यूतं वासः पुनरुथ्मृष्टोऽनुङ्गान् पुनर्पियंस्य समृद्धौ स्प्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्ला इत्यंग्निहोत्रं जुंहोति यत्रंयत्रैवास्य न्यंक्तं तत्॥८॥

एवैन्मवं रुन्धे वीर्हा वा एष देवानां योंऽग्निमुंद्वासयंते तस्य वर्रण एवर्ण्यादांग्निवारुणमेकांदशकपालमनु निर्वेपेद्यं चैव हन्ति यश्चांस्यर्ण्यात्तौ भांग्धेयेन प्रीणाति नाऽ-ऽर्तिमार्च्छति यज्ञंमानः॥९॥

आऽपंराभावाय पुरोडाशंमेते आहुंती ततृष्यद्भिर्शश्च॥————[२]

भूमिंर्भूमा द्यौर्वरिणाऽन्तरिक्षं महित्वा। उपस्थें ते देव्यदितेऽग्निमंत्रादमुत्राद्यायाऽऽदंधे॥ आऽयं गौः पृश्चिरक्रमीदसंनन्मातरं पुनेः। पितरं च प्रयन्थ्सुवंः॥ त्रिश्चाम् वि राजित् वाक्पंतुङ्गायं शिश्रिये। प्रत्यंस्य वह् द्युभिः॥ अस्य प्राणादंपानृत्यंन्तश्चंरित रोचना। व्यंख्यन्मिह्षः सुवंः॥ यत् त्वां॥१०॥

त्रुद्धः परोवपं मृन्युना यदवंत्या। सुकल्पंमग्ने तत् तव पुनस्त्वोद्दीपयामसि॥ यत् ते मृन्युपरोप्तस्य पृथिवीमनुं दध्वसे। आदित्या विश्वे तद्देवा वसंबश्च समाभरत्र्॥ मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यं विच्छिन्नं यज्ञ समिमं दंधातु। बृह्स्पतिस्तनुतामिमं नो विश्वे देवा इह मादयन्ताम्॥ सप्त ते अग्ने समिधं सप्त जिह्नाः सप्त॥११॥

ऋषंयः सप्त धामं प्रियाणि। सप्त होत्राः सप्तधा त्वां यजन्ति सप्त योनीरा पृंणस्वा घृतेनं॥ पुनंरूर्जा नि वंर्तस्व पुनंरग्न इषाऽऽयुंषा। पुनंर्नः पाहि विश्वतः॥ सह र्य्या नि वंर्तस्वाग्ने पिन्वंस्व धार्रया। विश्वपिस्नंया विश्वतस्परि॥ लेकः सलेकः सुलेकस्ते नं आदित्या आर्ज्यं जुषाणा वियन्तु केतः सकेतः सुकेत्स्ते नं आदित्या आर्ज्यं जुषाणा वियन्तु विवंस्वा अदितिर्देवंजूतिस्ते नं आदित्या आर्ज्यं जुषाणा वियन्तु॥१२॥

त्वा जिह्वाः सप्त सुकेत्स्ते नुम्नयोदश च॥———[३]

भूमिर्भूमा द्यौर्वरिणेत्यांहाऽऽशिषेवैनमा धंत्ते सूर्पा वै जीर्यन्तोऽमन्यन्त् स एतं कंसुणीरंः काद्रवेयो मन्नमपश्यत् ततो वै ते जीर्णास्तुनूरपाँघत सर्पराज्ञियां ऋग्भिर्गार्हंपत्यमा दंधाति पुनर्न्वमेवैनम्जरं कृत्वाऽऽध्त्तेऽथों पूतमेव पृथिवीमन्नाद्यं नोपानमथ्सैतं॥१३॥

मन्नंमपश्यत् ततो वै तामृन्नाद्यमुपानम्द्यथ्संपर्ाज्ञियां ऋग्भिर्गार्हंपत्यमाद्यांत्यन्नाद्यस्यावंरुद्धा अथो अस्यामेवेनं प्रतिष्ठितमा धंत्ते यत्त्वां कुद्धः परोवपेत्याहापंह्रुत एवास्मे तत् पुन्स्त्वोद्दीपयाम्सीत्यांह् सिमंन्ध एवेनं यत्ते मृन्युपरोष्ट्रस्येत्यांह देवतांभिरे-॥१४॥

वैन् सं भंरित वि वा एतस्यं युज्ञशिखंद्यते यौं-ऽग्निमुंद्वासयते बृह्स्पतिंवत्यूचीपं तिष्ठते ब्रह्म वे देवानां बृह्स्पतिब्रह्मणेव युज्ञ सं दंधाति विच्छिन्नं युज्ञ समिमं दंधात्वित्यांह् सन्तत्यै विश्वं देवा इह मांदयन्तामित्यांह सन्तत्यैव युज्ञं देवेभ्योऽनुं दिशति सप्त ते अग्ने समिधंः सप्त जिह्वाः॥१५॥

इत्यांह सप्तसंप्त वै संप्तधाऽग्नेः प्रियास्तुनुवस्ता एवावं रुन्धे पुनंरूर्जा सह रय्येत्यभितः पुरोडाश्माहृती जहोति यर्जमानमेवोर्जा चं रय्या चोभ्यतः परि गृह्णात्यादित्या वा अस्माल्लोकादम् लोकमायन्तेऽमुष्मिल्लांके व्यंतृष्यन्त इमं लोकं पुनंरभ्यवेत्याग्निमाधायैतान् होमानजुहवुस्त आंर्प्रुवन् ते सुंवर्गल्लोकमायन् यः पंराचीनं पुनराधेयांदग्निमादधीत् स एतान् होमां अहुयाद्यामेवाऽऽदित्या ऋद्धिमार्प्रुवन् तामेवर्प्नीति॥१६॥

पुतमेव जिह्ना पुतान् पश्चेवि शतिश्च॥————[४]

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्नं वोचेमाग्नयें। आरे अस्मे चं शृण्वते॥ अस्य प्रव्नामनु द्युतर् शृक्तं दुंदुह्ने अहंयः। पर्यः सहस्रसामृषिम्॥ अग्निर्मूर्धा दिवः कुकुत् पतिः पृथिव्या अयम्। अपार रेतार्से जिन्वति॥ अयमिह प्रथमो धांयि धातृभिरहोता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः। यमप्रवानो भृगंवो विरुर्च्ववेनेषु चित्रं विभुवं विशेविशे॥ उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्यां॥१७॥

उभा राधंसः सह मांद्यध्यैं। उभा दातारांविषाः रंयीणामुभा वार्जस्य सातयें हुवे वाम्॥ अयं ते योनिंर्ऋत्वियो यतों जातो अरोंचथाः। तं जानन्नंग्र आ रोहाथां नो वर्धया र्यिम्॥ अग्र आयूर्षि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः। आरे बांधस्व दुच्छुनांम्॥ अग्रे पवंस्व स्वपां अस्मे वर्चः सुवीर्यम्॥ दधत्पोषः र्यिं॥१८॥

मियं॥ अग्ने पावक रोचिषां मृन्द्रयां देव जिह्नयां। आ देवान् वंक्षि यिक्षं च॥ स नः पावक दीदिवोऽग्नें देवा श इहाऽऽवंह। उपं यज्ञश् ह्विश्चं नः॥ अग्निः शुचिंव्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिंः कविः। शुचीं रोचत् आहुंतः॥ उदंग्ने शुचेयस्तवं शुक्रा भ्राजन्त ईरते। तव ज्योती शृंष्य्चर्यः॥ आयुर्दा अंग्नेऽस्यायुंमें॥१९॥

देहि वर्चोदा अंग्नेऽसि वर्चो मे देहि तनूपा अंग्नेऽसि तनुवं मे पाह्यग्ने यन्में तनुवां ऊनं तन्म आ पृण चित्रांवसो स्वस्ति ते पारमंशीयेन्धांनास्त्वा शतः हिमाँ द्युमन्तः समिधीमहि वर्यस्वन्तो वयस्कृतं यशस्वन्तो यशस्कृतः सुवीरांसो अदाँभ्यम्। अग्ने सपब्रदम्भनं वर्षिष्ठे अधि नाकै॥ सं त्वमंग्रे सूर्यस्य वर्चसाऽगथाः समृषीणाः स्तुतेन् सं प्रियेण धाम्ना। त्वमंग्रे सूर्यवर्चा असि सं मामायुषा वर्चसा प्रजयां सृज॥२०॥

आहुवध्यैं र्यिं में वर्चसा सप्तदंश च॥————[५]

सं पंश्यामि प्रजा अहमिडंप्रजसो मान्वीः। सर्वा भवन्तु नो गृहे॥ अम्भः स्थाम्भों वो भक्षीय महंः स्थ महों वो भक्षीय सहंः स्थ सहों वो भक्षीयोर्जः स्थोर्जं वो भक्षीय रेवंती रमंध्वमस्मिल्लोंकैंऽस्मिन् गो्षेंऽस्मिन् क्षयेऽस्मिन् योनांविहैव स्तेतो माऽपं गात बह्बीर्मं भूयास्त॥२१॥

स॰हितासिं विश्वरूपीरा मोर्जा विशाऽऽगौपत्येना-ऽऽरायस्पोषेण सहस्रपोषं वेः पुष्यासं मियं वो रायेः श्रयन्ताम्॥ उपं त्वाऽग्ने दिवेदिवे दोषांवस्तर्धिया वयम्। नमो भरंन्त् एमंसि। राजंन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्। वर्धमान् स्वे दमे॥ स नेः पितेवं सूनवेऽग्ने सूपायनो भेव। सर्चस्वा नः स्वस्तये॥ अग्ने॥२२॥ त्वं नो अन्तंमः। उत त्राता शिवो भेव वरूथ्यः॥ तं त्वां शोचिष्ठ दीदिवः। सुम्नायं नूनमीमहे सर्खिभ्यः॥ वसुंर्ग्निर्वसुंश्रवाः। अच्छां निक्ष द्युमत्तंमो र्यिं दाः॥ ऊर्जा वंः पश्याम्यूर्जा मां पश्यत रायस्पोषंण वः पश्यामि रायस्पोषंण मा पश्यतेडाः स्थ मधुकृतः स्योना माऽऽविंश्तरेग् मदः। सहस्रपोषं वंः पुष्यासं॥२३॥

मियं वो रायः श्रयन्ताम्॥ तथ्संवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्यं धीमित। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ सोमान् स्वरंणं कृणुित ब्रह्मणस्पते। कक्षीवंन्तं य औशिजम्॥ कदा चन स्तरीरिस् नेन्द्रं सश्चिस दाशुषे॥ उपोपेन्नु मंघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्यं पृच्यते॥ पिरं त्वाऽग्रे पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमित। धृषद्वंणं दिवेदिवे भेतारं भङ्गुरावंतः॥ अग्ने गृहपते सुगृहपतिरहं त्वयां गृहपंतिना भूयास सुगृहपतिर्मया त्वं गृहपंतिना भूयाः श्रतः हिमास्तामाशिषमा शांसे तन्तंवे ज्योतिष्मतीं तामाशिषमा शांसेऽमुष्मे ज्योतिष्मतीम्॥२४॥

भूयास्त स्वस्तयेऽग्ने पुष्यासं धृषद्वंर्णमेकान्नत्रिष्शर्च॥————[६]

अयंज्ञो वा एष योऽसामोपंप्रयन्तों अध्वरमित्यांह स्तोमंमेवास्में युन्त्त्युपेत्यांह प्रजा वै पृशव उपेमं लोकं प्रजामेव पृशूनिमं लोकमुपैंत्यस्य प्रवामनुद्युत्मित्यांह सुवर्गो वै लोकः प्रवः सुंवर्गमेव लोकः समारोहत्यग्निर्मूर्धा दिवः कुकुदित्यांह मूर्धानं-॥२५॥

मेवैन र समानानां करोत्यथां देवलोकादेव मनुष्यलोके प्रतितिष्ठत्ययमिह प्रथमो धायि धातृभिरित्यांह मुख्यंमेवैनं करोत्युभा वांमिन्द्राग्नी आहुवध्या इत्याहौजो बलंमेवावं रुन्धेऽयं ते योनिर्ऋत्विय इत्यांह पृशवो वै र्यिः पृशूनेवावं रुन्धे षङ्किरपं तिष्ठते षङ्घा-॥२६॥

ऋतवं ऋतुष्वेव प्रतिं तिष्ठति षङ्क्षिरुत्तराभिरुपं तिष्ठते द्वादंश् सं पंद्यन्ते द्वादंश् मासाः संवथ्सरः संवथ्सर एव प्रतिं तिष्ठति यथा व पुरुषोऽश्वो गौर्जीर्यत्येवमृग्निराहितो जीर्यति संवथ्सरस्यं पुरस्तांदाग्निपावमानीभिरुपं तिष्ठते पुनर्न्वमेवेनंम् जरं करोत्यथों पुनात्येवोपं तिष्ठते योगं पुवास्यैष उपं तिष्ठते॥२७॥

दमं प्वास्यैष उपं तिष्ठते याञ्जैवास्यैषोपं तिष्ठते यथा पापीयाञ्छ्रेयंस आहृत्यं नमस्यतिं ताहगेव तदायुर्दा अंग्रेऽस्यायुर्मे देहीत्याहाऽऽयुर्दा ह्यंष वर्चोदा अंग्रेऽसि वर्चों मे देहीत्यांह वर्चोदा ह्यंष तंनूपा अंग्नेऽसि तुनुवं मे पाहीत्यांह॥२८॥

तनूपा ह्येषोऽग्ने यन्में तनुवां ऊनं तन्म आ पृणेत्यांह यन्में प्रजार्ये पशूनामूनं तन्म आ पूरयेति वावैतदांह चित्रांवसो स्वस्ति ते पारमंशीयेत्यांह रात्रिवै चित्रावंसुरव्युंष्ट्रौ वा एतस्यै पुरा ब्राँह्मणा अंभैषुर्व्युष्टिमेवावं रुन्ध इन्धांनास्त्वा शत ५॥ २९॥

हिमा इत्यांह श्वातायुः पुरुषः श्वतेन्द्रिय आयुंष्येवेन्द्रिये प्रति तिष्ठत्येषा वै सूर्मी कर्णकावत्येतयां ह स्म वै देवा असुराणार शतत्र्हा स्तृर्हिन्त यदेतयां स्मिधंमादधाति वज्रमेवैतच्छंतुघ्रीं यजमानो भातृंव्याय प्रहंरित स्तृत्या अछंम्बद्भार सं त्वमंग्ने सूर्यस्य वर्चसा गथा इत्यांहैतत्त्वमसीदमृहं भूयासमिति वावैतदांह त्वमंग्ने सूर्यवर्चा असीत्यांहाऽऽशिषंमेवैतामा शाँस्ते॥३०॥ मूर्धानं वे तिष्ठंत आह शृतमृह पोर्डश च॥—

सं पंश्यामि प्रजा अहमित्यांह यावंन्त एव ग्राम्याः

प्शवस्तानेवावं रुन्धेऽम्भः स्थाम्भों वो भक्षीयेत्याहाम्भो ह्यंता महं स्थ महों वो भक्षीयेत्यांह महो ह्यंताः सहंः स्थ सहों वो भक्षीयेत्यांह सहो ह्यंता ऊर्ज्स्थोर्जं वो भक्षीये-॥३१॥

त्याहोर्जो ह्यंता रेवंती रमंध्वमित्यांह पृशवो वै रेवर्तीः पृश्नेवात्मन् रंमयत इहैव स्तेतो माऽपं गातेत्यांह ध्रुवा एवेना अनंपगाः कुरुत इष्टक्चिद्वा अन्यौऽग्निः पंशुचिद्न्यः सर्हितासिं विश्वरूपीरितिं वृथ्सम्भि मृंशृत्युपैवेनं धत्ते पशुचितंमेनं कुरुते प्र॥३२॥

वा पृषौंऽस्माल्लोकाच्यंवते य आंहवनीयंमुपतिष्ठंते गार्हंपत्यमुपं तिष्ठतेऽस्मिन्नेव लोके प्रतिं तिष्ठत्यथो गार्हंपत्यायैव नि ह्रुंते गायत्रीभिरुपं तिष्ठते तेजो वै गांयत्री तेजं एवात्मन् धत्तेऽथो यदेतं तृचम्नवाह् सन्तंत्यै गार्हंपत्यं वा अनुं द्विपादों वीराः प्रजांयन्ते य एवं विद्वान् द्विपदांभिर्गार्हंपत्यमुप्तिष्ठंत -॥३३॥

आऽस्यं वीरो जांयत ऊर्जा वेः पश्याम्यूर्जा मां पश्यतेत्यांहाऽऽशिषंमेवैतामा शांस्ते तथ्संवितुर्वरेणयमित्यांह प्रसूँत्यै सोमान् स्वरंणिमित्यांह सोमपीथमेवावं रुन्धे कृणुहि ब्रह्मणस्पत् इत्यांह ब्रह्मवर्चसमेवावं रुन्धे कृदा चन स्तुरीरुसीत्यांह न स्तुरी रात्रिं वसित्॥३४॥

य एवं विद्वानिश्चिम्पितिष्ठंते परि त्वाऽशे पुरं वयमित्यांह परिधिमेवेतं परि दधात्यस्केन्दायाशे गृहपत् इत्यांह यथायजुरेवेतच्छुत हिमा इत्यांह शृतं त्वां हेम्न्तानिन्धिषीयिति वावेतदांह पुत्रस्य नामं गृह्णात्यन्नादमेवेनं करोति तामाशिषमा शांसे तन्तंवे ज्योतिष्मतीमितिं ब्र्याद्यस्यं पुत्रोऽजांतः स्यात्तेज्ञस्व्येवास्यं ब्रह्मवर्च्सी पुत्रो जायते तामाशिषमा शांसेऽमुष्मे ज्योतिष्मतीमितिं ब्र्याद्यस्यं पुत्रो जातः स्यात् तेजं पुवास्मिन् ब्रह्मवर्च्सं दंधाति॥३५॥

ऊर्जं वो भक्षीयेति प्र गार्हंपत्यमुप्तिष्ठते वसित् ज्योतिष्मतीमेकान्नित्र्ःशाचं॥—[८] अग्निहोत्रं जुंहोति यदेव किं च यजमानस्य स्वं तस्यैव तद्रेतः सिश्चति प्रजनेने प्रजनेन् हि वा अग्निरथौषंधीरन्तंगता दहित तास्ततो भूयंसीः प्रजायन्ते यथ्मायं जुहोति रेतं एव तथ्मिश्चित् प्रैव प्रांतस्तनेन जनयित तद्रेतः सिक्तं न त्वष्ट्राऽविंकृतं प्रजायते यावच्छो

वै रेतंसः सिक्तस्य॥३६॥

त्वष्टां रूपाणिं विकरोतिं तावुच्छो वै तत्प्रजांयत एष वै दैव्यस्त्वष्टा यो यजंते बह्वीभिरुपं तिष्ठते रेतंस एव सिक्तस्यं बहुशो रूपाणि वि करोति स प्रैव जायते श्वःश्वो भूयाँन् भवति य एवं विद्वान्त्रिम्ंपृतिष्ठतेऽहंर्देवानामासीद्रात्रिरस्ंराणां ते-ऽसुंरा यद्देवानां वित्तं वेद्यमासीत्तेनं सह॥३७॥

रात्रिं प्राविंशन् ते देवा हीना अंमन्यन्त तेंऽपश्यन्नाग्नेयी

रात्रिराग्नेयाः प्रावं इममेवाग्निः स्तंवाम् स नंः स्तुतः प्रान् पुनंदिस्यतीति तेंऽग्निमंस्तुवन्थ्स एँभ्यः स्तुतो रात्रिया अध्यहंरिभ प्रशूत्रिराज्ति ते देवाः प्रशून् वित्वा कामाः अकुर्वत् य एवं विद्वानिग्नमंपतिष्ठंते पशुमान् भवत्या-॥३८॥ दित्यो वा अस्माल्लोकादमं लोकमैथ्सोऽमं लोकं गत्वा पुनंरिमं लोकमभ्यध्यायथ्स इमं लोकमागत्यं मृत्योरंबिभेन्मृत्युसंयुत इव ह्यंयं लोकः सोऽमन्यतेममेवाग्निः स्तंवानि स मां स्तुतः सुंवर्गं लोकं गमियष्यतीति सों-ऽग्निमंस्तौथ्स एनः स्तुतः सुंवर्गं लोकमंगमयद्य -॥३९॥

एवं विद्वानग्निमुंपतिष्ठंते सुवर्गमेव लोकमेंति

सर्वमायुरित्यभि वा एषों उग्नी आ रोहित य एनावुपितष्ठेते यथा खलु वै श्रेयांनभ्यारूढः कामयंते तथां करोति नक्तमुपं तिष्ठते न प्रातः स॰ हि नक्तं ब्रतानि सृज्यन्ते सह श्रेया ईश्च पापीया इश्वासाते ज्योतिर्वा अग्निस्तमो रात्रिर्यन्॥४०॥

नक्तं मुप्तिष्ठंते ज्योतिषैव तमंस्तरत्युप्स्थेयोऽग्नी(३)र्नीप्-स्थेया(३) इत्यांहुर्मनुष्यांयेन्नै योऽहंरहराहृत्याथैनं याचंति स इन्नै तमुपाँच्छ्त्यथ् को देवानहंरहर्याचिष्यतीति तस्मान्नोप्स्थेयोऽथो खल्वांहुराशिषे वै कं यर्जमानो यजत् इत्येषा खलु वा -॥४१॥

आहिताग्नेराशीर्यद्ग्निम्ंपतिष्ठंते तस्मांदुप्स्थेयः प्रजापंतिः प्रश्नंसृजत् ते सृष्टा अंहोरात्रे प्राविशन् ताञ्छन्दोभिरन्वंविन्द्द्यच्छन्दोभिरुपतिष्ठंते स्वमेव तदन्विच्छति न
तत्रं जाम्यस्तीत्यांहुर्योऽहरहरुपतिष्ठंत इति यो वा अग्निः
प्रत्यङ्कंपतिष्ठंते प्रत्येनमोषति यः पराङ् विष्वंङ प्रजयां
प्रश्निरेति कवांतिर्यिङ्किःवोपं तिष्ठेत नैनं प्रत्योषंति न विष्वंङ
प्रजयां प्रश्निरेति॥४२॥

सिक्तस्यं सह भंवित यो यत्खलु वै पृशुभिस्त्रयोदश च॥———[९]

मम् नामं प्रथमं जांतवेदः पिता माता चं दधतुर्यदग्रैं। तत्त्वं विभृिह पुन्रा मदेतोस्तवाहं नामं विभराण्यग्रे॥ मम् नाम् तवं च जातवेदो वासंसी इव विवसानौ ये चरावः। आयुंषे त्वं जीवसं व्यं यथायथं वि परि दधावहै पुन्स्ते॥ नमोऽग्नये-ऽप्रतिविद्धाय नमोऽनांधृष्टाय नमः सम्राजैं। अषांढो॥४३॥

अग्निर्बृहद्वया विश्वजिथ्महंन्त्यः श्रेष्ठों गन्ध्वंः॥ त्वित्पंतारो अग्ने देवास्त्वामांहृतयस्त्विद्वंवाचनाः। सं मामायंषा सं गौंपृत्येन सुहिते मा धाः॥ अयमृग्निः श्रेष्ठंतमोऽयं भगंवत्तमोऽयः संहस्रसातंमः। अस्मा अस्तु सुवीर्यम्॥ मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यं विच्छिन्नं यज्ञः सिम्मं दंधातु। या इष्टा उषसो निम्नुचंश्च ताः सं दंधामि ह्विषां घृतेनं॥ पर्यस्वतीरोषंधयः॥४४॥

पर्यस्वद्वीरुधां पर्यः। अपां पर्यसो यत्पयस्तेन मामिन्द्र स॰ सृंज॥ अग्ने व्रतपते व्रतं चेरिष्यामि तच्छेकेयं तन्मे राध्यताम्॥ अग्नि॰ होतांरमिह त॰ हुंवे देवान् यज्ञियांनिह यान् हवांमहे॥ आ यन्तु देवाः सुमनस्यमाना वियन्तुं देवा हविषों मे अस्य॥ कस्त्वां युनक्ति स त्वां युनक्तु यानिं घर्मे कपालांन्युपचिन्वन्तिं॥४५॥ वेधसंः। पूष्णस्तान्यपि व्रत इंन्द्रवायू विमुश्चताम्॥ अभिन्नो घर्मो जीरदांनुर्यत् आत्तस्तदंग्न् पुनः। इध्मो वेदिः पिर्धयंश्च सर्वे यज्ञस्याऽऽयुरनु सं चंरन्ति॥ त्रयंस्त्रिःश्चत्तन्तंवो ये वितित्वेरे य इमं यज्ञः स्वधया ददंन्ते तेषां छिन्नं प्रत्येतद्दंधामि स्वाहां घर्मो देवाः अप्येतु॥४६॥

वैश्वानरो नं ऊत्याऽऽप्र यांतु परावतः। अग्निरुक्थेन् वाहंसा॥ ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम्। अजंस्रं घुर्ममीमहे॥ वैश्वानरस्य दुर्सनाभ्यो बृहदरिणादेकः

अर्षांढु ओर्षधय उपचिन्वन्ति पश्चंचत्वारि १ शच॥————[१०]

स्वप्स्यंया क्विः। उभा पितरां महयंत्रजायताग्निर्घावापृथिवी भूरिरेतसा॥ पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषंधीरा विवेश। वैश्वानरः सहंसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स॥४७॥

रिषः पांतु नक्तम्॥ जातो यदंग्ने भुवंना व्यख्यः पृशुं न गोपा इर्यः परिज्मा। वैश्वानर् ब्रह्मणे विन्द गातुं यूयं पांत स्वस्तिभिः सदां नः॥ त्वमंग्ने शोचिषा शोशुंचान् आ रोदंसी अपृणा जायंमानः। त्वं देवा अभिशंस्तेरमुश्चो वैश्वांनर जातवेदो महित्वा॥ अस्माकंमग्ने मुघवंथ्सु धार्यानांमि क्षत्रम्जर र् सुवीर्यम्। वयं जयम शतिन र सहस्रिणं वैश्वानर॥४८॥

वार्जमग्ने तवोतिभिः॥ वैश्वान्रस्यं सुमृतौ स्यांम् राजा हिकं भुवनानामभिश्रीः। इतो जातो विश्वंमिदं वि चष्टे वैश्वान्रो यंतते सूर्यण॥ अवं ते हेडों वरुण् नमोभिरवं यज्ञेभिरीमहे ह्विभिः। क्षयंत्रस्मभ्यंमसुर प्रचेतो राज्ञेना रसि शिश्रथः कृतानि॥ उद्त्ममं वरुण् पाशंम्स्मद-वांधमं वि मध्यम ॥ श्रंथाय। अथां व्यमांदित्य॥ ४९॥

व्रते तवानांगसो अदितये स्याम॥ द्धिकाव्णों अकारिषं जिष्णोरश्वंस्य वाजिनंः॥ सुर्भि नो मुखां कर्त् प्र ण् आयूर्षेष तारिषत्॥ आ दंधिकाः शवंसा पश्चं कृष्टीः सूर्य इव ज्योतिंषाऽपस्तंतान। सहस्रसाः शंतसा वाज्यवां पृणकु मध्वा समिमा वचार्रसि॥ अग्निर्मूर्धा भुवंः। मरुतो यद्धं वो दिवः सुम्नायन्तो हवांमहे। आ तू न्॥५०॥

उपं गन्तन॥ या वः शर्मं शशमानाय सन्तिं त्रिधातूंनि दाशुषे यच्छताधिं। अस्मभ्यं तानिं मरुतो वि यन्त र्यिं नो धत्त वृषणः सुवीरम्ं॥ अदितिन उरुष्यत्वदितिः शर्म यच्छत्। अदिंतिः पात्व १ हंसः॥ महीमू षु मातर १ सुव्रतानां मृतस्य पत्नी मवंसे हुवेम। तुविक्षत्राम् जरेन्ती-मुरूची १ सुशर्मां णमदिंति १ सुप्रणींतिम्॥ सुत्रामां ण पृथिवीं द्यामं नेहस १ सुशर्मां णमदिंति १ सुप्रणींतिम्। दैवीं नाव १ स्वित्रामनां गस्मस्रं वन्तीमा रुहेमा स्वस्तये॥ इमा १ सु नावमा ८ रुहे १ शृतारित्रा १ शृतस्प्रणीम्। अच्छिंद्रां पारियष्णुम्॥ ५१॥

दिवा स संहुस्रिणं वैश्वानराऽऽदित्य तू नोंऽनेहसर् सुशर्माणमेकान्नविर्शातिश्चं॥—[११]

॥षष्ठमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां प्रथमकाण्डे षष्ठमः प्रश्नः॥

सं त्वां सिश्चामि यजुंषा प्रजामायुर्धनं च। बृह्स्पतिंप्रसूतो यजमान इह मा रिषत्॥ आज्यंमसि सृत्यमंसि सृत्यस्याध्यक्षमिस ह्विरंसि वैश्वान् वैश्वदेवमुत्पूंतशुष्म श् सृत्योजाः सहोऽसि सहंमानमिसे सहस्वारांतीः सहंस्वारातीयतः सहंस्व पृतंनाः सहंस्व पृतन्यतः। सहस्रंवीर्यमिस तन्मां जिन्वाऽऽज्यस्याऽऽज्यंमिस सृत्यस्यं सत्यमंसि सत्यायुं-॥१॥

रसि स्त्यश्रृष्ममिस स्त्येनं त्वाऽभि घांरयामि तस्यं ते भक्षीय पञ्चानां त्वा वातांनां युत्रायं धूर्तायं गृह्णामि पञ्चानां त्वां दिशां युत्रायं धूर्तायं गृह्णामि पञ्चानां त्वां दिशां युत्रायं धूर्तायं गृह्णामि पञ्चानां त्वां पञ्चजनानां युत्रायं धूर्तायं गृह्णामि चरोस्त्वा पञ्चंबिलस्य युत्रायं धूर्तायं गृह्णामि

ब्रह्मणस्त्वा तेजंसे युत्रायं धूर्त्रायं गृह्णामि क्षत्रस्य त्वौजंसे यन्नायं॥२॥

धूर्त्रायं गृह्णामि

विशे त्वां युत्रायं धूर्त्रायं गृह्णामि सुवीर्याय त्वा गृह्णामि सुप्रजास्त्वायं त्वा गृह्णामि

र्ययस्पोषांय त्वा गृह्णामि ब्रह्मवर्चसायं त्वा गृह्णामि भूरस्माक र ह्विर्देवानां माशिषो यज्ञंमानस्य देवानां त्वा

देवतांभ्यो गृह्णामि कामाय त्वा गृह्णामि॥३॥

सृत्यायुरोजंसे युत्राय त्रयंस्नि श्शच॥

[۶]

भ्रुवोऽसि भ्रुवोऽह स्रजातेषुं भ्र्यासं धीर्श्वेत्तां वसुविदुग्रोंऽस्युग्रोऽह स्रजातेषुं भ्र्यास-मुग्रश्चेत्तां वसुविदिभिभूरंस्यभिभूरह स्रजातेषुं भ्र्यास-मिभ्श्वेत्तां वसुविद्युनिज्मं त्वा ब्रह्मणा दैव्येन ह्व्यायास्मे वोढ्वे जांतवेदः। इन्धांनास्त्वा सुप्रजसंः सुवीरा ज्योग्जीवेम बिल्हितों व्यं तें॥ यन्में अग्ने अस्य युज्ञस्य रिष्या-॥४॥

द्यद्वा स्कन्दादाज्यंस्योत विष्णो। तेनं हिन्म स्पत्नं दुर्मरायुमैनं दधामि निर्ऋत्या उपस्थैं। भूर्भृवः सुव्रुच्छुंष्मो अग्ने यजंमानायैधि निश्रृंष्मो अभिदासंते। अग्ने देवेंद्व मिन्वंद्व मन्द्रंजिह्वामंर्त्यस्य ते होतर्मूर्धन्ना जिंधिम रायस्पोषांय सुप्रजास्त्वायं सुवीर्याय मनोऽसि प्राजापृत्यं मनंसा मा भूतेनाऽऽविंश् वागस्यैन्द्री संपत्नक्षयंणी॥५॥

वाचा मैन्द्रियेणाऽऽविंश वस्नतमृत्नां प्रीणामि स माँ प्रीतः प्रीणातु ग्रीष्ममृत्नां प्रीणामि स माँ प्रीतः प्रीणातु वर्षा ऋतूनां प्रीणामि ता माँ प्रीताः प्रीणन्तु श्रदेमृतूनां प्रीणामि सा माँ प्रीता प्रीणातु हेमन्तशिशिरावृंतूनां प्रीणामि तौ माँ प्रीतौ प्रीणीता-मुग्नीषोमयोर्हं देवयुज्यया चक्षुंष्मान् भूयासम्-ग्नेर्हं देवयुज्ययांन्नादो भूयासं॥६॥

दब्धिंर्स्यदंब्धो भूयास-

ममुं दंभयमुग्नीषोमयोर्हं देवयुज्ययां वृत्रहा भूयास-मिन्द्राग्नियोर्हं देवयुज्ययाँन्द्रियाव्यन्तादो भूयास्-मिन्द्रंस्याहं देवयुज्ययाँन्द्रियावी भूयासं महेन्द्रस्याहं देवयुज्ययां जेमानं महिमानं गमेयमुग्नेः स्विष्टकृतोऽहं देवयुज्ययाऽऽयुष्मान् युज्ञेनं प्रतिष्ठां गमेयम्॥७॥

रिष्याँथ्सपत्रक्षयंण्यन्नादो भूंयास् पद्गिरंशच॥———[२]

अग्निर्मा दुरिष्टात् पातु सिवताऽघश्यस्याद्यो मेऽन्तिं दूरे-ऽरातीयति तमेतेनं जेष्य सुरूपवर्षवर्ण एहीमान् भद्रान् दुर्यार्थ अभ्येहि मामनुंव्रता न्युं शीर्षाणि मृद्वमिड एह्यदित् एहि सरंस्वत्येहि रन्तिरसि रमंतिरसि सूनर्यसि जुष्टे जुष्टिं तेऽशीयोपंहूत उपहुवं॥८॥

तें ऽशीय सा में स्त्याशीर्स्य युज्ञस्यं भूयादरेंडता

मर्नसा तच्छंकेयं युज्ञो दिवर् रोहतु युज्ञो दिवं गच्छतु यो देवयानः पन्थास्तेनं युज्ञो देवार अप्येत्वस्मास्विन्द्रं इन्द्रियं दंधात्वस्मान्नायं उत युज्ञाः संचन्तामस्मासुं सन्त्वाशिषः सा नः प्रिया सुप्रतूर्तिर्म्घोनी जुष्टिरिस जुषस्वं नो जुष्टां नो-॥९॥

ऽसि जुष्टिं ते गमेयं मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यं विच्छिन्नं यज्ञ समिमं देधातु। बृह्स्पितिस्तनुतामिमं नो विश्वे देवा इह मादयन्ताम्॥ ब्रध्न पिन्वस्व ददंतो मे मा क्षांिय कुर्वतो मे मोपंदसत् प्रजापंतेर्भागौं ऽस्यूर्जस्वान् पर्यस्वान् प्राणापानौ में पाहि समानव्यानौ में पाह्यदानव्यानौ में पाह्यक्षित्यै त्वा मा में क्षेष्ठा अमुत्रामुष्मिन् लोके॥१०॥

उपहुबं जुष्टां नस्त्वा षद चं॥———[३]

बर्हिषोऽहं देवयञ्ययां प्रजावांन् भूयासं नराशश्संस्याहं देवयञ्ययां पशुमान् भूयासम्ग्नेः स्विष्टकृतोऽहं देवयञ्यया-ऽऽयुष्मान् यज्ञेनं प्रतिष्ठां गंमेयम्ग्नेरहम् ज्ञितिमन् ज्ञेष्ध् सोमंस्याहम् ज्ञितिमन् ज्ञेषम्ग्नेरहम् ज्ञितिमन् ज्ञेषम्ग्नीषोमयो-रहम् ज्ञितिमन् ज्ञेषमिन्द्राग्नियोरहम् ज्ञितिमन् ज्ञेषमिन्द्रंस्याहम्- 11 8 8 11

जितिमन् जेषं महेन्द्रस्याहम् जितिमन् जेषम् ग्रेः स्विष्टकृतो-ऽहम् जितिमन् जेषं वार्जस्य मा प्रस्वनो द्वाभेणादंग्रभीत्। अथां सपला इन्द्रों मे निग्राभेणाधंरा अकः॥ उद्ग्राभं चं निग्राभं च ब्रह्मं देवा अंवीवृधन्न्। अथां सपलानिन्द्राग्री में विष्चीनान्व्यंस्यताम्॥ एमा अंग्मन्नाशिषो दोहंकामा इन्द्रंवन्तो॥१२॥

वनामहे धुक्षीमिह प्रजामिषम्॥ रोहितेन त्वाऽग्निर्देवतां गमयतु हिरिभ्यां त्वेन्द्रो देवतां गमयत्वेतंशेन त्वा सूर्यो देवतां गमयत्वेतंशेन त्वा सूर्यो देवतां गमयतु वि ते मुश्चामि रश्ना वि रश्मीन् वि योक्रा यानि परिचर्तनानि धत्ताद्स्मासु द्रविणं यचं भद्रं प्र णौ ब्रूताद्भाग्धान् देवतांसु॥ विष्णौः शंयोर्हं देवयुज्ययां युज्ञेनं प्रतिष्ठां गमयु सोमंस्याहं देवयुज्ययां॥१३॥

सुरेता रेतों धिषीय त्वष्टुंरहं देवयुज्ययां पशूना र रूपं पुषेयं देवानां पत्नीर्निर्मृहपितिर्यज्ञस्यं मिथुनं तयोरहं देवयुज्ययां मिथुनेन प्र भूयासं वेदोऽसि वित्तिरिस विदेय कर्मासि कुरुणंमिस क्रियास र्स्सिनरिस सिन्तासि सुनेयं घृतवंन्तं कुलायिन र्रे रायस्पोष र्रे सहस्रिणं वेदो दंदातु वाजिनम्॥१४॥

इन्द्रंस्याहिमन्द्रंवन्तः सोमंस्याहं देवयुज्यया चतुंश्चत्वारि १शच॥————[४]

आ प्यांयतां ध्रुवा घृतेनं यज्ञं येज्ञं प्रति देवयद्भः। सूर्याया ऊधोऽदित्या उपस्थं उरुधारा पृथिवी यज्ञे अस्मिन्॥ प्रजापंतेर्विभान्नामं लोकस्तस्मि स्त्वा दधामि सह यजमानेन सदेसि सन्मे भूयाः सर्वमिस सर्वं मे भूयाः पूर्णमंसि पूर्णं में भूया अक्षितमिस मा में क्षेष्ठाः प्राच्यां दिशि देवा ऋत्विजो मार्जयन्तां दक्षिणायां॥१५॥

दिशि मासाः पितरो मार्जयन्तां प्रतीच्यां दिशि गृहाः पृशवो मार्जयन्तामुदींच्यां दिश्याप् ओषंधयो वनस्पतंयो मार्जयन्तामूर्ध्वायां दिशि युज्ञः संवथ्सरो युज्ञपंतिर्मार्जयन्तां विष्णोः क्रमों उस्यभिमातिहा गांयत्रेण छन्दंसा पृथिवीमनु वि क्रमे निर्मक्तः स यं द्विष्मो विष्णोः क्रमों उस्यभिशस्तिहा त्रेष्टुंभेन छन्दंसाऽन्तिरक्षिमनु वि क्रमे निर्मकः स यं द्विष्मो विष्णोः क्रमों उस्यभिशस्तिहा त्रेष्टुंभेन छन्दंसाऽन्तिरक्षमनु वि क्रमे निर्मकः स यं द्विष्मो विष्णोः क्रमों उस्यरातीयतो हन्ता जागंतेन छन्दंसा दिव्मनु

वि र्ऋमे निर्भक्तः स यं द्विष्मो विष्णोः क्रमोंऽसि शत्र्यतो हुन्ताऽऽनुष्टुभेन छन्दंसा दिशोऽनु वि र्ऋमे निर्भक्तः स यं द्विष्मः॥१६॥

दक्षिणायां द्विष्मो विष्णोरेकान्रतिर्श्यचं॥————[५] अर्गन्म सुवः सुवरगन्म सन्दर्शस्ते मा छिथ्सि यत्ते

अगन्म सुवः सुवरगन्म सुन्दशस्ते मा छिथ्सि यत्ते तप्स्तस्मै ते माऽऽवृक्षि सुभूरंसि श्रेष्ठो रश्मीनामांयुर्धा अस्यायुर्मे धेहि वर्चोधा असि वर्चो मियं धेहीदमहम्मुं भ्रातृंव्यमाभ्यो दिग्भ्यौऽस्यै दिवौऽस्मादन्तिरक्षाद्स्यै पृथिव्या अस्मादन्नाद्यान्निर्भजामि निर्मक्तः स यं द्विष्मः।॥१७॥

सं ज्योतिषाऽभूवमैन्द्रीमावृतंम्नवावंर्ते समहं प्रजया सं मया प्रजा समह र रायस्पोषेण सं मया रायस्पोषः सिमंद्धो अग्ने मे दीदिहि समेद्धा ते अग्ने दीद्यासं वसुंमान् यज्ञो वसीयान् भूयासमग्न आयूरेषि पवस् आ सुवोर्जिमिषं च नः। आरे बांधस्व दुच्छुनाम्॥ अग्ने पवंस्व स्वपां अस्मे वर्चः सुवीर्यम्॥१८॥

दध्त् पोष रं र्यिं मिये। अग्नें गृहपते सुगृहप्तिर्हं त्वयां गृहपंतिना भूयास र सुगृहप्तिर्मया त्वं गृहपंतिना

भूयाः शतः हिमास्तामाशिषमा शांसे तन्तंवे ज्योतिष्मतीं तामाशिषमाशांसेऽमुष्मै ज्योतिष्मतीं कस्त्वां युनक्ति स त्वा विमुंश्चत्वग्नै व्रतपते व्रतमंचारिषं तदंशकं तन्मेऽराधि यज्ञो बंभूव स आ॥१९॥

बंभूव स प्र जंज्ञे स वांवृधे। स देवानामधिपतिर्वभूव सो अस्मा शर्धिपतीन् करोतु वय स्यांम् पतंयो रयीणाम्॥ गोमा श्रेशेऽविंमा श्रश्वी यज्ञो नृवथ्संखा सदमिदंप्रमृष्यः। इडांवा रूषो अंसुर प्रजावांन् दीर्घो र्यिः पृथुबुध्नः सभावान्॥२०॥

द्विष्मः सुवीर्युर् स आ पश्चंत्रिरशच॥————[६]

यथा वै संमृतसोमा एवं वा एते संमृतयुज्ञा यद्वंरशपूर्णमासौ कस्य वाहं देवा यज्ञमा गच्छंन्ति कस्यं वा न बंहूनां यजंमानानां यो वै देवताः पूर्वः परिगृह्णाति स एनाः श्वो भूते यंजत एतद्वै देवानांमायतंनं यदांहवनीयौऽन्तराग्नी पंशूनां गार्हंपत्यो मनुष्यांणामन्वाहार्यपर्चनः पितृणामृग्निं गृह्णाति स्व एवायतंने देवताः परि॥२१॥

गृह्णाति ताः श्वो भूते यंजते व्रतेन वै मेध्यो-

ऽग्निर्व्यतपंतिर्ब्राह्मणो व्रंतुभृद् व्रतमुंपैष्यन् ब्रूयादग्नै व्रतपते व्रतं चेरिष्यामीत्यग्निर्वे देवानां व्रतपंतिस्तस्मां पुव प्रतिप्रोच्यं व्रतमालभते बर्हिषां पूर्णमांसे व्रतमुपैति वथ्सैरमावास्यांयामेतस्येतयोरायतंनमुप्स्तीर्यः पूर्वश्चाग्निरपंर-श्चेत्यांहर्मनुष्यां॥२२॥

इन्ना उपंस्तीर्णमिच्छन्ति किम् देवा येषां नवांवसान्-मुपाँस्मिञ्छो यक्ष्यमांणे देवतां वसन्ति य एवं विद्वानिग्नम्पस्तृणाति यजमानेन ग्राम्याश्चं पृशवी-ऽवरुध्यां आर्ण्याश्चेत्यांहुर्यद्वाम्यानुंप्वसंति तेनं ग्राम्यानवं रुन्धे यदांर्ण्यस्याश्ञाति तेनांर्ण्यान् यदनांश्वानुप्वसेंत् पितृदेव्त्यंः स्यादार्ण्यस्यांश्ञातीन्द्रियं॥२३॥

वा आंर्ण्यमिन्द्रियमेवाऽऽत्मन् धत्ते यदनाश्वानुप्वसेत् क्षोधुंकः स्याद्यदंश्जीयाद्रुद्रौऽस्य पृशूनिभमंन्येतापौऽश्जाति तन्नेवांशितं नेवानंशितं न क्षोधुंको भवंति नास्यं रुद्रः पृशूनिभ मन्यते वज्रो वै यज्ञः क्षुत्खलु वै मनुष्यंस्य भ्रातृंव्यो यदनाश्वानुप्वसंति वज्रेणैव साक्षात्क्षुधं भ्रातृंव्यः हन्ति॥२४॥

परिं मनुष्यां इन्द्रियर साक्षात् त्रीणिं च॥—____[9]

यो वै श्रृद्धामनारभ्य युज्ञेन यर्जते नास्येष्टाय श्रद्धंधतेऽपः प्र णयिति श्रृद्धा वा आपः श्रृद्धामेवाऽऽरभ्यं युज्ञेनं यजत उभयेंऽस्य देवमनुष्या इष्टाय श्रद्धंधते तदांहुरित वा एता वर्त्रनेदन्त्यित वाचं मनो वावैता नातिं नेदन्तीति मनसा प्र णयतीयं वै मनो-॥२५॥

ऽनयैवैनाः प्र णंयत्यस्कंन्नहिवर्भवित् य एवं वेदं यज्ञायुधानि सम्भरित यज्ञो वै यंज्ञायुधानि यज्ञमेव तथ्सम्भरित् यदेकंमेक सम्भरित् पितृदेवत्यांनि स्युर्यथ्सह सर्वाणि मानुषाणि द्वेद्वे सम्भरित याज्यानुवाक्यंयोरेव रूपं करोत्यथों मिथुनमेव यो वै दशं यज्ञायुधानि वेदं मुख्तौं उस्य यज्ञः कंत्पते स्फ्य-॥२६॥

श्चे क्रपालांनि चाग्निहोत्रहवंणी च शूर्पं च कृष्णाजिनं च शम्यां चोलूखंलं च मुसंलं च दृषचोपंला चैतानि वै दशं यज्ञायुधानि य एवं वेदं मुख्तौंऽस्य युज्ञः कंल्पते यो वै देवेभ्यः प्रतिप्रोच्यं युज्ञेन यजंते जुषन्तेंऽस्य देवा ह्व्य १ ह्विर्निर्प्यमाणम्भि मंत्रयेताग्नि १ होतांरिम्ह त १ ह्व इति॥२७॥

देवेभ्यं एव प्रंतिप्रोच्यं यज्ञेनं यजते जुषन्तें उस्य देवा ह्व्यमेष वै यज्ञस्य ग्रहों गृहीत्वैव यज्ञेनं यजते तदुंदित्वा वाचें यच्छिति यज्ञस्य धृत्या अथो मनंसा वै प्रजापंतिर्यज्ञमंतनुत मनंसैव तद्यज्ञं तंनुते रक्षंसामनंन्ववचाराय यो वै यज्ञं योग् आगंते युनिक्तं युङ्के युंज्ञानेषु कस्त्वां युनिक्तं स त्वां युनिक्तित्यांह प्रजापंतिवैवें कः प्रजापंतिनैवैनं युनिक्तं युङ्के युंज्ञानेषुं॥२८॥

प्रजापंतिर्यज्ञानंसृजताग्निहोत्रं चौग्निष्टोमं चं पौर्णमासीं चोक्थ्यं चामावास्यां चातिरात्रं च तानुदंमिमीत् यावंदग्निहोत्रमासीत् तावानग्निष्टोमो यावंती पौर्णमासी

वै मनः स्फा इति युनुक्तेकादश च॥______[८]

तावांनुक्थ्यों यावंत्यमावास्यां तावांनितरात्रो य एवं विद्वानंग्निहोत्रं जुहोति यावंदग्निष्टोमेनोंपाप्नोति तावदुपाँऽऽप्नोति य एवं विद्वान् पौंर्णमासीं यजंते यावंदुक्थ्येनोपाप्नोति॥२९॥ यज्ञोऽग्रं आसीत् तेन स पर्मां काष्ठांमगच्छुत् तेनं प्रजापंतिं निरवांसाययत् तेनं प्रजापंतिः पर्मां काष्ठांमगच्छुत् तेनेन्द्रं निरवांसाययत् तेनेन्द्रः पर्मां काष्ठांमगच्छुत् तेनाग्नीषोमौ निरवांसाययत् तेनाग्नीषोमौ पर्मां काष्ठांमगच्छतां य॥३०॥ एवं विद्वान् दंर्शपूर्णमासौ यजंते पर्मामेव काष्ठां गच्छति यो वै प्रजांतेन यज्ञेन यजंते प्र प्रजयां पश्भिंमिंथुनैर्जायते द्वादंश मासाः संवथ्सरो द्वादंश

द्वन्द्वानि दर्शपूर्णमासयोस्तानि सम्पाद्यानीत्यांहुर्वथ्सं

चौपावसृजत्युखां चाधि श्रयत्यवं च हन्ति दृषदौ च

समाहन्त्यिधं च वपंते कपालांनि चोपं दधाति पुरोडाशं

तावदुपाँऽऽप्नोति य एवं विद्वानंमावास्यां यजेते

यावंदितरात्रेणोंपाप्नोति तावदुपाँऽऽप्नोति परमेष्ठिनो वा एष

चा-॥३१॥
धिश्रयत्याज्यं च स्तम्बयजुश्च हरंत्यभि चं गृह्णाति वेदिं
च परिगृह्णाति पत्नीं च सं नह्यति प्रोक्षंणिश्चाऽऽसादयत्याज्यं
चैतानि वे द्वादंश द्वन्द्वानिं दर्शपूर्णमासयोस्तानि य
एव॰ सम्पाद्य यजेते प्रजांतेनैव यज्ञेनं यजते प्र प्रजयां

पुशुभिर्मिथुनैर्जायते॥३२॥

उक्थंनोपाप्रोत्यंगच्छतां यः पुंरोडार्शं च चत्वारिष्शचं॥———[९] ध्रुवोऽसि ध्रुवोऽह १ संजातेषुं भूयास्मित्याह ध्रुवानेवैनान्

ध्रुवाऽसि ध्रुवाऽहर सजातेषु मूयासामत्याह ध्रुवान्वनान् कुरुत उग्रौंऽस्युग्रोंऽहर संजातेषुं भूयासमित्याहाप्रतिवादिन एवैनौन्कुरुतेऽभिभूरंस्यभिभूरहर संजातेषुं भूयासमित्यांह् य एवैनं प्रत्युत्पिपीते तमुपौस्यते युनिज्मं त्वा ब्रह्मणा दैव्येनेत्यांहैष वा अग्नेयोंग्स्तेनै-॥३३॥

वैनं युनिक्त युज्ञस्य वै समृद्धिन देवाः सुंवर्गं लोकमायन् यज्ञस्य व्यृद्धेनासुरान् पराभावयन् यन्मं अग्ने अस्य युज्ञस्य रिष्यादित्यांह युज्ञस्यैव तथ्समृद्धेन यज्ञमानः सुवर्गं लोकमंति युज्ञस्य व्यृद्धेन भ्रातृंव्यान् पराभावयत्यग्निहोत्रमेताभिर्व्याहंतीभिरुपं सादयेद्यज्ञमुखं वा अग्निहोत्रं ब्रह्मैता व्याहंतयो यज्ञमुख एव ब्रह्मं॥३४॥

कुरुते संवथ्सरे पूर्यागंत एताभिरेवोपंसादयेद् ब्रह्मणैवोभ्यतः संवथ्सरं परिगृह्णाति दर्शपूर्णमासौ चांतुर्मास्यान्यालभंमान एताभिर्व्याहंतीभिर् ह्वीङ्ष्यासांद-येद्यज्ञमुखं वै दर्शपूर्णमासौ चांतुर्मास्यानि ब्रह्मैता व्याहंतयो यज्ञमुख एव ब्रह्मं कुरुते संवथ्सरे पूर्यागंत एताभिरेवासांद-येद् ब्रह्मणेवोभ्यतः संवथ्सरं परिंगृह्णाति यद्वे यज्ञस्य साम्ना क्रियते राष्ट्रं॥३५॥

यज्ञस्याऽऽशीर्गच्छति यद्चा विशं यज्ञस्याऽ-ऽशीर्गच्छत्यर्थं ब्राह्मणोंऽनाशीर्केण यज्ञेनं यजते सामिधेनीरंनुवृक्ष्यन्नेता व्याह्नंतीः पुरस्तांद्दध्याद् ब्रह्मेव प्रतिपदं कुरुते तथां ब्राह्मणः साशींर्केण यज्ञेनं यजते यं कामयेत यज्ञंमानं भ्रातृंव्यमस्य यज्ञस्याऽऽशीर्गच्छेदिति तस्यैता व्याह्नंतीः पुरोऽनुवाक्यांयां दध्याद् भ्रातृव्यदेवृत्यां वै पुरोऽनुवाक्यां भ्रातृंव्यमेवास्यं यज्ञस्या-॥३६॥

ऽऽशीर्गच्छिति यान् कामयेत् यजंमानान्थ्समावंत्येनान् यज्ञस्याऽऽशीर्गच्छेदिति तेषांमेता व्याहंतीः पुरोऽनुवाक्यांया अर्ध्व एकां दध्याद्याज्यांये पुरस्तादेकां याज्यांया अर्ध्व एकां तथेनान्थ्समावंती यज्ञस्याऽऽशीर्गच्छिति यथा वै पर्जन्यः सुवृष्टं वर्षत्येवं यज्ञो यजंमानाय वर्षिति स्थलंयोदकं परिगृह्णन्त्याशिषां यज्ञं यजंमानः परिगृह्णाति मनोऽसि प्राजाप्त्यं॥३७॥ मनंसा मा भूतेनाऽऽविशेत्यांह् मनो वै प्रांजापृत्यं प्रांजापृत्यो युज्ञो मनं एव युज्ञमात्मन् धंत्ते वागंस्यैन्द्री संपत्नक्षयंणी वाचा मैन्द्रियेणाऽऽविशेत्यांहैन्द्री वै वाग्वाचंमेवेन्द्रीमात्मन् धंत्ते॥३८॥

तेनैव ब्रह्मं राष्ट्रमेवास्यं यज्ञस्यं प्राजापृत्यः षद्गिरंशच॥———[१०]

यो वै संप्तद्शं प्रजापंतिं यज्ञम्नवायंत् वेद प्रतिं यज्ञेनं तिष्ठति न यज्ञाद् अर्श्यत् आ श्रांवयेति चतुरक्षर्मस्तु श्रोषडिति चतुरक्षर् यजेति द्यंक्षर् ये यजांमह् इति पश्चांक्षरं द्यक्षरो वंषद्वार एष वै संप्तद्शः प्रजापंतिर्यज्ञम्नवायंत्तो य एवं वेद प्रतिं यज्ञेनं तिष्ठति न यज्ञाद् अर्श्यते यो वै यज्ञस्य प्रायंणं प्रतिष्ठा-॥३९॥

मुदयंनं वेद प्रतिष्ठितेनारिष्टेन युज्ञेनं स्ड्स्थां गंच्छुत्या श्रांवयास्तु श्रोष्ड्यज् ये यजांमहे वषद्भार एतद्वै युज्ञस्य प्रायंणमेषा प्रतिष्ठेतदुदयंनं य एवं वेद प्रतिष्ठितेनारिष्टेन युज्ञेनं स्ड्स्थां गंच्छिति यो वै सूनृतांयै दोहं वेदं दुह एवैनां युज्ञो वै सूनृताऽऽश्रांवयेत्यैवैनांमह्बदस्तु॥४०॥ श्रोष्डित्युपावांस्राग्यजेत्युदंनैषीद्ये यजांमह इत्युपांस-

दह्मषद्भारेणं दोग्ध्येष वै सूनृतांयै दोहो य एवं वेदं दुह एवैनां देवा वै स्त्रमांसत् तेषां दिशोऽदस्यन्त एतामार्द्रां पङ्किमंपश्यन्ना श्रांवयेतिं पुरोवातमंजनयन्नस्तु श्रौष्डित्यब्भ्रः सम्प्रावयन् यजेतिं विद्युतं-॥४१॥

मजनयन् ये यजांमह् इति प्रावंर्षयन्नभ्यंस्तनयन् वषद्वारेण ततो वै तेभ्यो दिशः प्राप्यांयन्त य एवं वेद् प्रास्मै दिशः प्यायन्ते प्रजापंतिं त्वोवेदं प्रजापंतिस्त्वं वेद् यं प्रजापंतिर्वेद स पुण्यो भवत्येष वै छंन्द्स्यः प्रजापंतिरा श्रांवयास्तु श्रौषड्यज् ये यजांमहे वषद्वारो य एवं वेद पुण्यो भवति वसन्त-॥४२॥

मृंतूनां प्रीणामीत्यांहृत्वो वै प्रयाजा ऋतूनेव प्रीणाति तैंऽस्मै प्रीता यंथापूर्वं कंत्पन्ते कल्पन्तेऽस्मा ऋतवो य एवं वेदाग्नीषोमंयोर्हं देवयुज्यया चक्षुंष्मान् भूयास्मित्यांहाग्नीषोमांभ्यां वै युज्ञश्चक्षुंष्मान् ताभ्यांमेव चक्षुंरात्मन् धंत्तेऽग्नेर्हं देवयुज्ययांन्नादो भूयास्मित्यांहाग्निर्वे देवानांमन्नादस्तेनैवा-॥४३॥

ऽन्नार्द्यमात्मन् धंत्ते दिब्धंरुस्यदंब्धो भूयासमृमुं

दंभेयमित्यांहैतया वै दब्यां देवा असुंरानदभुवन् तयैव भ्रातृंव्यं दभ्नोत्यग्नीषोमंयोर्हं देवयुज्ययां वृत्रहा भूयासमित्यांहाग्नीषोमांभ्यां वा इन्द्रों वृत्रमहुन् ताभ्यांमेव भ्रातृंव्यः स्तृणुत इन्द्राग्नियोर्हं देवयुज्ययेन्द्रियाव्यंत्रादो भूयासमित्यांहेन्द्रियाव्यंवान्नादो भंवतीन्द्रंस्या-॥४४॥

ऽहं देवयुज्ययैन्द्रियावी भूयासमित्यांहेन्द्रियाव्येव भेवति महेन्द्रस्याहं देवयुज्ययां जेमानं महिमानं गमेयमित्यांह जेमानंमेव महिमानं गच्छत्यग्नेः स्विष्टकृतोऽहं देवयुज्यया-ऽऽयुष्मान् यज्ञेनं प्रतिष्ठां गमेयमित्याहायुरेवात्मन् धत्ते प्रतिं यज्ञेनं तिष्ठति॥४५॥

इन्ह्रं वो विश्वतस्पिर् हर्वामहे जर्नेभ्यः। अस्माकंमस्तु केवंलः॥ इन्द्रं नरों नेमिधिता हवन्ते यत्पार्या युनजंते धियस्ताः। शूरो नृषांता शवंसश्चकान आ गोमंति व्रजे भंजा त्वं नः॥ इन्द्रियाणि शतकतो या ते जनेषु पश्चस्तं। इन्द्र् तानि त आ वृणे॥ अनुं ते दािय मह इन्द्रियायं सत्रा ते

प्रतिष्ठामंह्रदस्तुं विद्युतं वसुन्तमेवेन्द्रंस्याऽष्टात्रि १शच॥_____

विश्वमन् वृत्रहत्यै। अनु॥४६॥

क्षत्रमन् सहों यज्त्रेन्द्रं देवेभिरन्ं ते नृषह्यं॥ आ यस्मिन्थ्सप्त वांस्वास्तिष्ठंन्ति स्वारुहों यथा। ऋषिंर्ह दीर्घश्रुत्तंम् इन्द्रंस्य घुमीं अतिंथिः॥ आमास्ं पृक्कमैरंय आ सूर्यर् रोहयो दिवि। घुमं न सामन्तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे गिरंः॥ इन्द्रमिद्गाथिनों बृहदिन्द्रंमुर्केभिर्किणः। इन्द्रं वाणीरनूषत॥ गायन्ति त्वा गायत्रिणो-॥४७॥

र्चन्त्यर्कमिकिणंः। ब्रह्माणंस्त्वा शतऋत्वुह् रशिमंव येमिरे॥ अर्होम्चे प्र भेरेमा मनीषामीषिष्ठदाळी सुमृतिं गृंणानाः। इदिमेन्द्र प्रतिं ह्व्यं गृंभाय सृत्याः सन्तु यर्जमानस्य कामाः॥ विवेष यन्मां धिषणां ज्जान स्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमह्नंः। अरहंसो यत्रं पीपर्द्यथां नो नावेव यान्तंमुभये हवन्ते॥ प्र सम्राजं प्रथममध्वराणां-॥४८॥

मश्होमुर्चं वृष्भं यज्ञियांनाम्। अपां नपांतमिश्वना हयन्तमस्मिन्नर इन्द्रियं धेत्तमोजः॥ वि नं इन्द्र मृधों जिहि नीचा येच्छ पृतन्यतः। अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माश् अभिदासंति॥ इन्द्रं क्षुत्रम्भि वाममोजोऽजांयथा वृषभ चर्षणीनाम्। अपांनुदो जनमित्रयन्तंमुरुं देवेभ्यों अकृणोरु लोकम्॥ मृगो न भीमः कुंचरो गिरिष्ठाः परावत् -॥४९॥

आ जंगामा परंस्थाः। सृक र स्रशायं प्विमिन्द्र तिगमं वि शत्रूंन् ताढि वि मृधों नुदस्व॥ वि शत्रून् वि मृधों नुद् वि वृत्रस्य हनूं रुज। वि मृन्युमिन्द्र भामितों ऽमित्रंस्याभिदासंतः॥ त्रातार्मिन्द्रंमवितार्मिन्द्र हवेहवे सुहव र शूरमिन्द्रम्। हुवे न शक्तं पुरुह्तमिन्द्र र स्वस्ति नों मुघवां धात्विन्द्रंः॥ मा तें अस्यार्॥५०॥

संहसावन् परिष्टाव्घायं भूम हरिवः परादै। त्रायंस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तवं प्रियासंः सूरिषुं स्याम॥ अनंवस्ते रथमश्वाय तक्षन् त्वष्टा वर्ज्ञं पुरुहूत द्युमन्तम्। ब्रह्माण् इन्द्रं महयन्तो अर्केरवर्धयन्नहंये हन्तवा उ॥ वृष्णे यत् ते वृषंणो अर्कमर्चानिन्द्र ग्रावाणो अदितिः स्जोषाः। अनश्वासो ये प्वयोऽर्था इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून्॥५१॥

बृत्रहत्येऽन् गायत्रिणौंऽध्वराणां परावतोऽस्यामृष्टाचंत्वारि १शच॥———[१२]

॥ सप्तमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां प्रथमकाण्डे सप्तमः प्रश्नः॥

पाक्यज्ञं वा अन्वाहिताग्नेः पृशव उपं तिष्ठन्त इडा खलु वै पाकयज्ञः सैषान्तरा प्रयाजान्याजान् यजमानस्य लोके-ऽवंहिता तामांहियमाणाम्भि मंत्रयेत् सुरूपवर्षवर्ण् एहीति पृशवो वा इडां पृशूनेवोपं ह्वयते यज्ञं वै देवा अदुंहन् यज्ञो-ऽसुरा अदुहृत् तेऽसुरा यज्ञदुंग्धाः परांऽभवन् यो वै यज्ञस्य दोहं विद्वान्॥१॥

यज्तेऽप्यन्यं यजंमानं दुहे सा में स्त्याऽऽशीर्स्य यज्ञस्यं भूयादित्यांहैष वे यज्ञस्य दोह्स्तेनैवेनं दुहे प्रता वे गौर्दुहे प्रत्तेडा यजंमानाय दुह एते वा इडांये स्तना इडोपंहूतेतिं वायुर्वथ्सो यर्हि होतेडांमुपृह्वयंत तर्हि यजंमानो होतांर्मीक्षंमाणो वायुं मनंसा ध्यायेत्॥२॥

मात्रे वृथ्समुपावंसृजित सर्वेण वै यज्ञेनं देवाः सुंवृर्गं लोकमायन् पाकयज्ञेन मनुरश्राम्यथ्सेडा मनुमुपावंर्तत् तान्देवासुरा व्यंह्वयन्त प्रतीचीं देवाः परांचीमसुराः सा देवानुपावर्तत पृशवो वै तद्देवानंवृणत पृशवोऽसुरानजहुर्यं कामयेतापृशुः स्यादिति परांचीं तस्येडामुपंह्वयेतापृशुरेव भविति यं॥३॥

कामयेत पशुमान्थ्स्यादितिं प्रतीचीं तस्येडामुपंह्वयेत पशुमानेव भविति ब्रह्मवादिनों वदन्ति स त्वा इडामुपंह्वयेत् य इडामुपहूयात्मान्मिडांयामुपह्वयेतेति सा नेः प्रिया सुप्रतूर्तिर्म्घोनीत्याहेडांमेवोपहूयाऽऽत्मान्मिडांयामुपं ह्वयते व्यस्तिमव वा पृतद्यज्ञस्य यदिडां सामि प्राश्वन्तिं॥४॥

सामि मांर्जयन्त एतत् प्रति वा असुंराणां यज्ञो व्यंच्छिद्यत् ब्रह्मंणा देवाः समंदधुर्बृहुस्पतिंस्तनुतामिमं न् इत्यांह् ब्रह्म वे देवानां बृहुस्पतिर्ब्रह्मंणेव यज्ञश् सन्दंधाति विच्छिन्नं यज्ञश् सिम्मं दंधात्वित्यांह् सन्तंत्यै विश्वं देवा इह मांदयन्तामित्यांह सन्तत्यैव यज्ञं देवेभ्योऽनुं दिशति यां वै॥५॥

यज्ञे दक्षिणां ददांति तामंस्य पृशवोऽनु सङ्गांमन्ति स एष ईजानोऽपृशुर्भावुंको यजमानेन खलु वै तत्कार्यमित्यांहुर्यथां देवत्रा दत्तं कुंरँवीतात्मन् पृशून् रमयेतेति ब्रध्न पिन्वस्वेत्यांह यज्ञो वै ब्रध्नो यज्ञमेव तन्महयत्यथों देवत्रैव दत्तं कुंरुत आत्मन् पृशून् रंमयते ददंतो मे मा क्षायीत्याहाक्षिंतिमेवोपैति कुर्वतो मे मोपं दस्दित्यांह भूमानंमेवोपैति॥६॥

विद्वान्थ्यांये द्यं प्राश्ञनित् यां वै म् एकान्नविर्श्शतिश्चं॥————[१]

सङ्श्रंवा ह सौवर्चन्सस्तुमिंञ्चमौपोंदितिमुवाच् यथ्मित्रणाः होताऽभूः कामिडामुपाँह्वथा इति तामुपाँह्व इतिं होवाच् या प्राणेनं देवान् दाधारं व्यानेनं मनुष्यांनपानेनं पितृनितिं छिनत्ति सा न छिन्ती (३) इतिं छिनत्तीतिं होवाच् शरींरं वा अंस्ये तदुपाँह्वथा इतिं होवाच गौर्वे॥७॥

अस्यै शरीरं गां वाव तौ तत्पर्यवदतां या यज्ञे दीयते सा प्राणेनं देवान् दांधार् ययां मनुष्यां जीवंन्ति सा व्यानेनं मनुष्यान् यां पितृभ्यो घ्रन्ति साऽपानेनं पितृन् य एवं वेदं पशुमान् भंवत्यथ् वै तामुपाँह्व इतिं होवाच् या प्रजाः प्रभवंन्तीः प्रत्याभवतीत्यन्नं वा अस्यै तत्॥८॥

उपाँह्वथा इति होवाचौषंधयो वा अस्या अन्नमोषंधयो वे प्रजाः प्रभवन्तीः प्रत्या भंवन्ति य एवं वेदाँन्नादो भंवत्यथ वै तामुपाँह्व इति होवाच् या प्रजाः पंराभवंन्तीरनुगृह्णाति प्रत्याभवंन्तीर्गृह्णातीतिं प्रतिष्ठां वा अस्यै तदुपाँह्वथा इति होवाचेयं वा अंस्यै प्रतिष्ठा॥९॥

ड्यं वै प्रजाः पंराभवंन्तीरनुंगृह्णाति प्रत्याभवंन्तीर्गृह्णाति य एवं वेद प्रत्येव तिष्ठत्यथ् वै तामुपाँह् इति होवाच् यस्यैं निक्रमणे घृतं प्रजाः संजीवंन्तीः पिबन्तीति छिनत्ति सा न छिन्ती (३) इति न छिन्तीति होवाच् प्र तु जनयतीत्येष वा इडामुपाँह्वथा इति होवाच् वृष्टिर्वा इडा वृष्ट्ये वै निक्रमणे घृतं प्रजाः संजीवंन्तीः पिबन्ति य एवं वेद प्रैव जांयतेऽन्नादो भवति॥१०॥

गोर्वा अंस्यै तत् प्रंतिष्ठाऽह्वंया इति विश्वातिश्चं॥———[२]
प्रोक्षं वा अन्ये देवा इज्यन्ते प्रत्यक्षमन्ये यद्यजते य एव

देवाः प्रोक्षंमिज्यन्ते तानेव तद्यंजिति यदंन्वाहार्यमाहरंत्येते वै देवाः प्रत्यक्षं यद् ब्राँह्मणास्तानेव तेनं प्रीणात्यथो दक्षिणेवास्येषाऽथो यज्ञस्येव छिद्रमपि दधाति यद्वे यज्ञस्यं क्ररं यद्विलिष्टं तदंन्वाहार्येण॥११॥

अन्वाहंरित तदंन्वाहार्यंस्यान्वाहार्यत्वं देवदूता वा एते यद्दत्विजो यदंन्वाहार्यंमाहरंति देवदूतानेव प्रीणाति प्रजापंतिर्देवेभ्यो यज्ञान् व्यादिश्थम रिरिचानोऽमन्यत् स पृतमंन्वाहार्यंमभंक्तमपश्यत् तमात्मन्नधत्त् स वा पृष प्रांजापत्यो यदंन्वाहार्यो यस्यैवं विदुषौऽन्वाहार्यं आह्रियते साक्षादेव प्रजापंतिमृभ्रोत्यपंरिमितो निरुप्योऽपंरिमितः प्रजापंतिः प्रजापंतेः॥१२॥

आस्यं देवा वे यद्यज्ञेऽकुंर्वत् तदसुंरा अकुर्वत् ते देवा एतं प्रांजापत्यमंन्वाहार्यमपश्यन् तम्न्वाहंरन्त् ततों देवा अभवन् परासुंरा यस्यैवं विदुषों उन्वाहार्यं आह्रियते भवंत्यात्मना परांस्य भ्रातृंव्यो भवति यज्ञेन वा इष्टी पृक्केनं पूर्ती यस्यैवं विदुषों उन्वाहार्यं आह्रियते स त्वेवेष्टांपूर्ती प्रजापंतेर्भागों- ऽसि॥१३॥

इत्यांह प्रजापंतिमेव भांगधेयेन समंध्यत्यूर्जंस्वान् पर्यस्वानित्याहोर्जंमेवास्मिन् पयो दधाति प्राणापानौ में पाहि समानव्यानौ में पाहीत्यांहाऽऽशिषंमेवेतामा शास्ते-ऽक्षितोऽस्यक्षित्ये त्वा मा में क्षेष्ठा अमुत्रामुष्मिं ह्याँक इत्यांह क्षीयंते वा अमुष्मि ह्याँकेऽन्नंमितः प्रदान् इं ह्यंमुष्मिं ह्याँके प्रजा उपजीवंन्ति यदेवमंभिमृशत्यिक्षंतिमेवेनंद्रमयित् नास्यामुष्मिं ह्याँके ऽन्नं क्षीयते॥१४॥

अन्वाहार्येण प्रजापंतरित हांमुष्मिं ह्याँके पश्चंदश च॥———[३]
बर्हिषो ऽहं देवयुज्ययाँ प्रजावाँन् भूयास्मित्यांह
बर्हिषा वै प्रजापंतिः प्रजा अंसृजत् तेनैव प्रजाः सृजते
नराशश्सेस्याहं देवयुज्ययां पशुमान् भूयास्मित्यांह
नराशश्सेन वै प्रजापंतिः पशूनंसृजत् तेनैव पशून्थ्सृंजतेऽग्नेः स्विष्टकृतोऽहं देवयुज्ययाऽऽयुष्मान् युज्ञेनं प्रतिष्ठां
गंमेयमित्याहाऽऽयुरेवात्मन् धंत्ते प्रति युज्ञेनं तिष्ठति
दर्शपूर्णमासयौः॥१५॥

र्वे देवा उन्नितिमनूदंजयन् दर्शपूर्णमासाभ्यामसुरानपानुदन्त दर्शपूर्णमासयोरेव देवतानां यजमान् उन्नितिमनून्नयिति दर्शपूर्णमासाभ्यां भ्रातृंच्यानपं नुदते वाजंवतीभ्यां व्यूहृत्यन्नं वै वाजोऽन्नमेवावंरुन्धे द्वाभ्यां प्रतिष्ठित्ये यो वै यज्ञस्य द्वौ दोहौं विद्वान् यजंत उभ्यतः॥१६॥

पुव यज्ञं दुंहे पुरस्तांचोपिरेष्टाचैष वा अन्यो यज्ञस्य दोह् इडायामन्यो यर्हि होता यजंमानस्य नामं गृह्णीयात् तर्हि ब्रयादेमा अंग्मन्नाशिषो दोहंकामा इति सङ्स्तुंता एव देवतां दुहेऽथों उभ्यतं एव यज्ञं दुंहे पुरस्तांचोपरिष्टाच् रोहिंतेन त्वाऽग्निर्देवतां गमयत्वित्यांहैते वै देवाश्वाः॥१७॥

यजंमानः प्रस्तरो यदेतेः प्रंस्तरं प्रहरंति देवाश्वरेव यजंमानः सुवर्गं लोकं गमयित वि ते मुश्रामि रशना वि रश्मीनित्यांहैष वा अग्नेर्विमोकस्तेनैवेनं वि मुंश्चित विष्णोः श्योरहं देवयुज्ययां यज्ञेनं प्रतिष्ठां गमेयमित्यांह यज्ञो वै विष्णुर्यज्ञ एवान्ततः प्रतिं तिष्ठति सोमंस्याहं देवयुज्ययां सुरेताः॥१८॥

रेतों धिषीयेत्यांह् सोमो वै रेतोधास्तेनैव रेतं आत्मन् धंते त्वष्टुंरहं देवयुज्ययां पशूनाः रूपं पुंषेयमित्यांह् त्वष्टा वै पंशूनां मिथुनानाः रूपकृत्तेनैव पंशूनाः रूपमात्मन् धंते देवानां पत्नीरिग्निर्गृहपंतिर्यज्ञस्यं मिथुनं तयोरहं देवयुज्ययां मिथुनेन् प्र भूयास्मित्यांहैतस्माद्वै मिथुनात्प्रजापंतिर्मिथुनेनं॥१९॥

प्राजांयत् तस्मांदेव यजंमानो मिथुनेन् प्र जांयते वेदों-ऽसि वित्तिरिस विदेयेत्यांह वेदेन् वै देवा असुंराणां वित्तं वेद्यमविन्दन्त् तद्वेदस्यं वेद्त्वं यद्यद् भ्रातृंव्यस्याभिध्यायेत् तस्य नामं गृह्णीयात् तदेवास्य सर्वं वृङ्के घृतवंन्तं कुलायिन र रायस्पोष रे सहस्रिणं वेदो दंदातु वाजिनमित्यांह प्र सहस्रं पश्नांप्रोत्याऽस्यं प्रजायां वाजी जायते य एवं वेदं॥२०॥

द्र्षृपूर्ण्मासयोरुभ्यतो देवाश्वाः सुरेताः प्रजापंतिर्मिथुनेनां ऽऽप्रोत्यष्टौ चं॥———[४]

ध्रुवां वै रिच्यंमानां यज्ञोऽनुं रिच्यते यज्ञं यजमानो यजमानं प्रजा ध्रुवामाप्यायमानां यज्ञोऽन्वा प्यायते यज्ञं यजमानो यजमानं प्रजा आ प्यायतां ध्रुवा घृतेनेत्यांह ध्रुवामेवाऽऽप्याययति तामाप्यायमानां यज्ञोऽन्वा प्यायते यज्ञं यजमानो यजमानं प्रजाः प्रजापंतिर्विभान्नामं लोकस्तिस्मई स्त्वा दधामि सह यजमानेनेतिं॥२१॥

आहायं वै प्रजापंतिर्विभान्नामं लोकस्तस्मिन्नेवैनं दधाति सह यजंमानेन रिच्यंत इव वा एतद्यद्यजंते यद्यंजमानभागं प्राश्ञात्यात्मानंमेव प्रीणात्येतावान् वै यज्ञो यावान् यजमानभागो यज्ञो यजंमानो यद्यंजमानभागं प्राश्ञाति यज्ञ एव यज्ञं प्रतिष्ठापयत्येतद्वे सूयवंस् सोदंकं यद्वर्हिश्चाऽऽपंश्चेतत्॥२२॥

यजमानस्याऽऽयतंनं यद्वेदिर्यत् पूर्णपात्रमंन्तर्वेदि

इत्येतदंवभृथो दिशः सप्त चं॥____

निनयंति स्व एवाऽऽयतंने सूयवंस् सोदंकं कुरुते सदंसि सन्में भूया इत्याहाऽऽपो वै यज्ञ आपोऽमृतं यज्ञमेवामृतंमात्मन्थंते सर्वाणि वै भूतानि वृतम्ंप्यन्तमनूपं यन्ति प्राच्यां दिशि देवा ऋत्विजो मार्जयन्तामित्यांहैष वै दंरशपूर्णमासयोरवभृथः॥२३॥

यान्येवेनं भूतानि व्रतमुंप्यन्तमनूपंयन्ति तैरेव सहावंभृथमवैति विष्णुंमुखा वे देवाश्छन्दोभिरिमाश्लाँकानंनप-ज्य्यमभ्यंजयन् यिद्वंष्णुऋमान् ऋमंते विष्णुंरेव भूत्वा यजमान्श्छन्दोभिरिमाश्लाँकानंनपज्य्यम्भि जंयित विष्णोः ऋमौंऽस्यभिमातिहेत्यांह गायत्री वे पृथिवी त्रेष्टुंभम्नत्तिरेक्षं जागंती द्यौरानुंष्टुभीर्दिश्श्छन्दोभिरेवेमाश्लाँकान् यंथापूर्वम्भि जंयति॥२४॥

अगंन्म सुवः सुवंरग्न्मेत्यांह सुव्गमेव लोकमेंति सन्दर्शस्ते मा छिथ्मि यत्ते तप्स्तस्मै ते मा वृक्षीत्यांह यथायजुरेवैतथ्सुभूरेसि श्रेष्ठों रश्मीनामांयुर्धा

वृक्षात्याह यथायुजुर्वतञ्सुमूरास् त्रष्ठा रश्मानामायुघा अस्यायुर्मे धेहीत्याहाऽऽशिषंमेवैतामा शास्ते प्र वा एषों ऽस्माल्लोकाच्यंवते यः॥२५॥

विष्णुक्रमान् क्रमंते सुवर्गाय हि लोकायं विष्णुक्रमाः क्रम्यन्ते ब्रह्मवादिनों वदन्ति स त्वै विष्णुक्रमान् क्रमेत् य इमाल्लोंकान् भ्रातृं व्यस्य संविद्य पुनिर्मं लोकं प्रत्यवरोहेदित्येष वा अस्य लोकस्यं प्रत्यवरोहो यदाहेदमहम्ममं भ्रातृं व्यमाभ्यो दिग्भ्यों ऽस्यै दिव इतीमानेव लोकान्भ्रातृं व्यस्य संविद्य पुनिर्मं लोकं प्रत्यवरोहित सं॥२६॥

सं॥२६॥ ज्योतिषाऽभूवमित्यांहास्मिन्नेव लोके प्रतिं तिष्ठत्यैन्द्रीमावृतंग इत्यांहासौ वा आंदित्य इन्द्रस्तस्यैवाऽऽवृत्मन् पूर्यावंर्तते दक्षिणा पर्यावर्तते स्वमेव वीर्यमनुं पर्यावर्तते तस्माद्दक्षिणो-ऽर्धं आत्मनों वीर्यावत्तरोऽथों आदित्यस्यैवाऽऽवृतमनुं पूर्यावर्तते समृहं प्रजया सं मया प्रजेत्याहाऽऽशिषम्॥२७॥ एवैतामा शाँस्ते समिंद्धो अग्ने मे दीदिहि समेद्धा तें अग्ने दीद्यासमित्यांह यथायजुरेवैतद्वसुंमान् यज्ञो वसीयान् भूयासमित्यांहाऽऽशिषंमेवैतामा शांस्ते बहु वै गार्हंपत्यस्यान्ते मिश्रमिंव चर्यत आग्निपावमानीभ्यां

गार्हंपत्यमुपं तिष्ठते पुनात्येवाग्निं पुनीत आत्मानं द्वाभ्यां प्रतिष्ठित्या अग्ने गृहपत इत्याह॥२८॥

यथायजुरेवैतच्छ्त हिमा इत्यांह शृतं त्वां हेमन्तानिन्धिषीयेति वावैतदांह पुत्रस्य नामं गृह्णात्यन्नादमेवैनं करोति तामाशिषमा शांसे तन्तंवे ज्योतिंष्मतीमितिं ब्रयाद्यस्यं पुत्रोऽजांतः स्यात् तेज्रस्येवास्यं ब्रह्मवर्चसी पुत्रो जांयते तामाशिषमा शांसेऽमुष्मे ज्योतिंष्मतीमितिं ब्रयाद्यस्यं पुत्रः॥२९॥

जातः स्यात् तेजं प्वास्मिन् ब्रह्मवर्चसं दंधाति यो वै युज्ञं प्रयुज्य न विमुश्चत्यंप्रतिष्ठानो वै स भविति कस्त्वां युनिक्ति स त्वा वि मुश्चत्वित्यांह प्रजापंतिर्वे कः प्रजापंतिनैवैनं युनिक्तं प्रजापंतिना वि मुश्चित् प्रतिष्ठित्या ईश्वरं वै वृतमविंसृष्टं प्रदहोऽग्ने वृतपते वृतमंचारिष्मित्यांह वृतमेव॥३०॥

वि सृंजते शान्त्या अप्रंदाहाय पराङ् वाव यज्ञ एंति न नि वंर्तते पुनर्यो वै यज्ञस्यं पुनरालम्भं विद्वान् यजेते तम्भि नि वंर्तते यज्ञो बंभूव स आ बंभूवेत्यांहैष वै यज्ञस्यं पुनरालम्भस्तेनैवेनं पुनरालंभतेऽनंवरुद्धा वा एतस्यं विराड्य आहिंताग्निः सन्नंस्भः पृशवः खलु वै ब्राँह्मणस्यं स्भेष्ट्वा प्राङ्क्त्रम्यं ब्र्याद्गोमार्थं अग्नेऽविमार अश्वी यज्ञ इत्यवं स्भार रुन्धे प्र सहस्रं पृश्नांप्रोत्यास्यं प्रजायां वाजी जांयते॥३१॥

यः स मा्शिषं गृहपत् इत्यांह् यस्यं पुत्रो बृतमेव खलु वे चतुंविं शतिश्चा—[६] देवं सवितः प्रसुव युज्ञं प्रसुव युज्ञपतिं भगाय दिव्यो

गंन्ध्रवः। केत्पूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचंम्द्य स्वंदाति नः॥ इन्द्रंस्य वज्रोऽसि वार्त्रघ्नस्त्वयाऽयं वृत्रं वंध्यात्॥ वार्जस्य नु प्रस्वे मातरं महीमदितिं नाम वर्चसा करामहे। यस्यांमिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः संविता धर्म साविषत्॥ अपसु॥३२॥

अन्तर्मृतंम्पस् भेष्जम्पामृत प्रशंस्तिष्वश्वां भवथ वाजिनः॥ वायुर्वां त्वा मनुंर्वा त्वा गन्ध्वाः सप्तवि श्रितिः। ते अग्रे अश्वंमायुञ्चन्ते अस्मिञ्चवमाद्धः॥ अपां नपादाशुहेम्न् य ऊर्मिः कुकुद्मान् प्रतूर्तिर्वाज्सातंमस्तेनायं वाज श्रे सेत्॥ विष्णोः क्रमोऽस् विष्णोः क्रान्तमंसि विष्णोर्विक्रांन्तमस्यङ्को न्यङ्काव्भितो रथं यो ध्वान्तं वाताग्रमनुं संचरन्तौ दूरेहेंतिरिन्द्रियावांन्पत्त्री ते नोऽग्नयः पप्रयः पारयन्तु॥३३॥

देवस्याहर संवितुः प्रस्वे बृह्स्पतिना वाज्जिता वाजं जेषं देवस्याहर संवितुः प्रसवे बृहस्पतिना वाजजिता

जेषं देवस्याहर संवितः प्रस्वे बृह्स्पतिना वाज्जिता वर्षिष्ठं नाकर्र रुह्यमिन्द्रांय वाचं वदतेन्द्रं वाजं जापयतेन्द्रो वाजंमजियत्। अश्वांजिन वाजिनि वाजेषु वाजिनीवृत्यश्वांन्थ्सम्थ्सं वाजय॥ अर्वासि सितंरिस वाज्यंसि वाजिनो वाजं धावत मुरुतां प्रस्वे जंयत् वि योजंना मिमीध्वमध्वंनः स्कभ्रीत॥३४॥

काष्ठां गच्छत् वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः॥ अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यांत पृथिभिर्देवयानैः॥ ते नो अर्वन्तो हवन्श्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनः॥ मितद्रंवः सहस्रुसा मेधसांता सिन्ष्यवंः। महो ये रत्नर्रं सिम्थेषुं जिभ्रिरे शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु॥ देवतांता मितद्रंवः स्वर्काः। जम्भयन्तोऽिहं वृक्र् रक्षार्रस् सनैम्यस्मद्यंयवन्न॥३५॥

अमीवाः॥ एष स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां

बद्धो अंपिकक्ष आसिनं। ऋतुं दिधिका अनुं सन्तवींत्वत् प्थामङ्कार्स्यन्वापनींफणत्॥ उत स्मास्य द्रवंतस्तुरण्यतः पूर्णं न वेरनुं वाति प्रगूर्धिनंः। श्येनस्येव ध्रजंतो अङ्कसं परिं दिधिकाळणंः सहोर्जा तरिंत्रतः॥ आ मा वार्जस्य प्रस्वो जंगम्यादा द्यावांपृथिवी विश्वशंम्भू। आ मां गन्तां पितरां॥३६॥

मातरा चाऽऽमा सोमों अमृत्त्वायं गम्यात्॥ वाजिनो वाजजितो वाजरं सिर्ष्यन्तो वाजं जेष्यन्तो बृह्स्पतेंर्भागमवं जिघ्रत् वाजिनो वाजजितो वाजरं ससृवारसो वाजं जिगिवँरसो बृह्स्पतेंर्भागे नि मृंद्विमियं वः सा स्त्या संधाऽभूद्यामिन्द्रेण स्मधंध्वमजीजिपत वनस्पतय इन्द्रं वाजं विमुच्यध्वम्॥३७॥

स्कुभ्रीत् युयवन्यितरा द्विचेत्वारि १शच॥————[८]

क्षत्रस्योल्बंमिस क्षत्रस्य योनिरिस् जाय एहि सुवो रोहांव रोहांव हि सुवंरहं नांवुभयोः सुवो रोक्ष्यामि वाजंश्च प्रस्वश्चांपिजश्च ऋतुंश्च सुवंश्च मूर्धा च व्यश्चिंयश्चाऽ-ऽन्त्यायनश्चान्त्यंश्च भौवनश्च भुवंनश्चाधिपतिश्च। आयुंर्यज्ञेनं कल्पतां प्राणो यज्ञेनं कल्पतामपानः॥३८॥

युज्ञेनं कल्पतां व्याना युज्ञेनं कल्पतां चक्षुंर्य्ज्ञेनं कल्पतां श्रोत्रं युज्ञेनं कल्पतां मनो युज्ञेनं कल्पतां वाग्यज्ञेनं कल्पतामात्मा युज्ञेनं कल्पतां युज्ञो युज्ञेनं कल्पताः स्वंदेवाः अंगन्मामृतां अभूम प्रजापंतेः प्रजा अंभूम समृहं प्रजया सं मयां प्रजा समृहः रायस्पोषेण सं मयां रायस्पोषोऽन्नांय त्वाऽन्नाद्यांय त्वा वाजांय त्वा वाजजित्याये त्वाऽमृतंमिस पृष्टिंरिस प्रजनंनमिस॥३९॥

अपानो वार्जाय नवं च॥———[९]

वार्जस्येमं प्रस्वः स्षुवे अग्रे सोम् राजान्मोषंधीष्वपस्। ता अस्मभ्यं मध्मतीर्भवन्तु वयः राष्ट्रे जांग्रियाम पुरोहिताः॥ वार्जस्येदं प्रस्व आ बंभूवेमा च विश्वा भुवंनानि सर्वतः। स विराजं पर्येति प्रजानन् प्रजां पुष्टिं वर्धयंमानो अस्मे॥ वार्जस्येमां प्रस्वः शिश्रिये दिवंमिमा च विश्वा भुवंनानि सम्राट्। अदिंथ्सन्तं दापयतु प्रजानन् र्यिं॥४०॥

च नः सर्ववीरां नि यंच्छत्॥ अग्ने अच्छां वदेह नः प्रतिं नः सुमनां भव। प्र णों यच्छ भुवस्पते धनुदा असि नुस्त्वम्॥ प्र णो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृह्स्पतिः। प्र देवाः प्रोत सूनृता प्र वाग्देवी दंदातु नः॥ अर्यमणं बृह्स्पतिमिन्द्रं दानांय चोदय। वाचं विष्णु सरंस्वती सवितारम्॥४१॥

च वाजिनम्॥ सोम् राजांनं वर्रणमृग्निम्नवारंभामहे। आदित्यान् विष्णु र सूर्यं ब्रह्माणं च बृह्स्पतिम्॥ देवस्यं त्वा सिवृतः प्रंस्वेंऽश्विनौर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्तौभ्या र सरंस्वत्ये वाचो यन्तुर्यन्नेणाग्नेस्त्वा साम्रौज्येनाभिषिश्चामीन्द्रंस्य बृह्स्पतैस्त्वा साम्रौज्येनाभिषिश्चामी॥४२॥

अभिरेकाँक्षरेण वाचमुदंजयदिश्वनौ द्यंक्षरेण प्राणापानावुदंज विष्णुस्र्यंक्षरेण त्रील्लौंकानुदंजयथ्सोम्श्रतुंरक्षरेण चतुंष्पदः पृश्नदंजयत् पूषा पश्चौक्षरेण पृङ्किमुदंजयद्धाता षडंक्षरेण

र्यि संवितार् षद्गि र्शच॥

षड्तूनुदंजयन्म्रुतः स्प्ताक्षरेण स्प्तपंदाः शक्करीमुदंजयन् बृह्स्पतिर्ष्टाक्षरेण गायत्रीमुदंजयन्मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृत्ड् स्तोम्मुदंजयत्॥४३॥ वर्रणो दशाक्षरेण विराज्मुदंजयदिन्द्र एकांदशाक्षरेण त्रिष्टुभमुदंजयद् विश्वं देवा द्वादंशाक्षरेण जगंतीमुदंजयन् वसंवस्त्रयोदशाक्षरेण त्रयोदश इस्तोम्मुदंजयन् रुद्राश्चतुंर्दशाक्षरे चतुर्दश इस्तोम्मुदंजयन्नादित्याः पश्चंदशाक्षरेण पश्चद्श इस्तोम्मुदंजयन्नदितिष्योडंशाक्षरेण षोड्श इस्तोम्मुदंजयत् प्रजापंतिः स्प्तदंशाक्षरेण सप्तद्श इस्तोम्मुदंजयत्॥ ४४॥

अज्यत पर्वत्वारिश्यम् [११]
उपयामगृहीतोऽसि नृषदं त्वा द्रुषदं भुवनसद्मिन्द्रांय
जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्रांय त्वोपयामगृहीतोऽस्यपस्षदं त्वा घृत्सदं व्योमसद्मिन्द्रांय जुष्टं गृह्णाम्येष
ते योनिरिन्द्रांय त्वोपयामगृहीतोऽसि पृथिविषदं त्वाऽन्तरिक्षसदं नाकसद्मिन्द्रांय जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्रांय
त्वा॥ ये ग्रहाः पश्चजनीना येषां तिस्रः परम्जाः। दैव्यः
कोशः॥४५॥

समुंजितः। तेषां विशिंप्रियाणामिष्मूर्ज्र सम्ग्रभीमेष ते योनिरिन्द्रांय त्वा॥ अपा॰ रस्मुद्वंयस्॰ सूर्यरिश्म॰ समाभृंतम्। अपा॰ रसंस्य यो रस्स्तं वो गृह्णाम्युत्तममेष ते योनिरिन्द्रांय त्वा॥ अया विष्ठा जनयन्कर्वराणि स हि घृणिरुरुर्वरांय गातुः। स प्रत्युदैंद्धरुणो मध्वो अग्रुङ् स्वायां यत्त्नुवं त्नूमैरंयत। उपयामगृंहीतोऽसि प्रजापंतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिः प्रजापंतये त्वा॥४६॥

कोशंस्तुनुवां त्रयोदश च॥______[१२]

अन्वह् मासा अन्विद्वनान्यन्वोषंधीरनु पर्वतासः। अन्विन्द्रश्ररोदंसी वावशाने अन्वापो अजिहत् जायंमानम्॥ अनुं ते दायि मह इंन्द्रियायं सुत्रा ते विश्वमनुं वृत्रहत्यें। अनु क्षत्रमनु सहो यज्तत्रेन्द्रं देवेभिरनुं ते नृषह्ये॥ इन्द्राणीमासु नारिषु सुपत्नीमहमंश्रवम्। न ह्यस्या अप्रं चन जरसां॥४७॥

मरंते पतिः॥ नाहिमिन्द्राणि रारण् सख्युंर्वृषाकंपेर् ऋते। यस्येदमप्य हिविः प्रियं देवेषु गच्छंति॥ यो जात एव प्रथमो मनंस्वान् देवो देवान् ऋतुंना पर्यभूंषत्। यस्य शुष्माद्रोदंसी अभ्यंसेतां नृम्णस्यं मृह्रा स जंनास् इन्द्रः॥ आ ते मृह्र इंन्द्रोत्युंग्र समन्यवो यथ्समरंन्त सेनाः। पतांति दिद्युन्नर्यंस्य बाहुवोर्मा तै॥४८॥

मनों विष्वद्रियग्विचारीत्॥ मा नों मधींरा भंरा दुद्धि तन्नः प्र दाशुषे दातंवे भूरि यत् तें। नव्यें देष्णे शुस्ते अस्मिन् तं उक्थे प्र ब्रंवाम व्यमिन्द्र स्तुवन्तः॥ आ तू भेर् मार्किरेतत् परिष्ठाद्विद्मा हि त्वा वसुंपितं वसूंनाम्। इन्द्र यत् ते माहिनं दत्रमस्त्यस्मभ्यं तद्धंर्यश्व॥४९॥

प्र यंन्धि॥ प्रदातार हवामह् इन्द्रमा ह्विषां वयम्। उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वाऽऽप्र यंच्छ् दक्षिणादोत सव्यात्॥ प्रदाता वज्री वृष्भस्तुंराषाद्भुष्मी राजां वृत्रहा सोम्पावां। अस्मिन् यज्ञे ब्रहिष्या निषद्यार्था भव यज्ञंमानाय शं योः॥ इन्द्रंः सुत्रामा स्ववार् अवोंभिः सुमृडीको भंवतु विश्ववंदाः। बार्धतां द्वेषो अभंयं कृणोतु सुवीर्यस्य॥५०॥

पतंयः स्याम॥ तस्यं वयः सुमतौ यज्ञियस्यापि भुद्रे सौमनुसे स्याम। स सुत्रामा स्ववाः इन्द्रो अस्मे आराचिद्देषः सनुतर्युयोतु॥ रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवांजाः। क्षुमन्तो याभिर्मदेम॥ प्रो ष्वंस्मै पुरोर्थमिन्द्रांय शूषमंर्चत। अभीके चिदु लोककृथ्सङ्गे समथ्सुं वृत्रहा। अस्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषाम्। ज्याका अधि धन्वंसु॥५१॥

जुरसा मा ते हर्यश्व सुवीर्यस्याध्येकं च॥———[१३]

॥ अष्टमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां प्रथमकाण्डे अष्टमः प्रश्नः॥

अनुंमत्यै पुरोडाशंमृष्टाकंपालं निर्वपित धेनुर्दक्षिणा ये प्रत्यश्चः शम्यांया अवशीयंन्ते तन्नैर्ऋतमेकंकपालं कृष्णं वासंः कृष्णतूषं दक्षिणा वीहि स्वाहाऽऽहुंतिं जुषाण एष ते निर्ऋते भागो भूते ह्विष्मंत्यिस मुश्चेमम॰हंसः स्वाहा नमो य इदं चकारांऽऽदित्यं चरुं निर्वपिति वरो दक्षिणाऽऽग्नावैष्ण्वमेकांदशकपालं वाम्नो वही दक्षिणाऽग्नीषोमीयम्॥१॥

एकांदशकपाल् हिरंण्यं दक्षिंणेन्द्रमेकांदशकपालमृष्भो वही दक्षिंणाऽऽग्नेयमृष्टाकंपालमैन्द्रं दध्यृष्भो वही दक्षिंणेन्द्राग्नं द्वादंशकपालं वैश्वदेवं चुरुं प्रथम्जो वृथ्सो दक्षिंणा सौम्य इयांमाकं चुरुं वासो दक्षिंणा सरंस्वत्यै चुरु सरंस्वते चुरुं मिथुनौ गावौ दक्षिंणा॥२॥

अ्ग्रीषोमीयं चतुंस्त्रि १ शच॥———[१]

आग्नेयमृष्टाकंपालं निर्वपति सौम्यं चुरुः सांवित्रं द्वादेशकपालः सारस्वतं चुरुं पौष्णं चुरुं मारुतः स्प्तकंपालं वैश्वदेवीमामिक्षां द्यावापृथिव्यंमेकंकपालम्॥३॥

पुन्द्राग्नमेकांदशकपालं मारुतीमामिक्षां वारुणीमामिक्षां कायमेकेकपालं प्रघास्यान् हवामहे मुरुतो यज्ञवाहसः कर्म्भेणं स्जोषंसः॥ मो षू णं इन्द्र पृथ्सु देवास्तुं स्म ते शुष्मित्रवया। मही ह्यस्य मीढुषो यव्या। ह्विष्मंतो मुरुतो वन्दंते गीः॥ यद् ग्रामे यदर्णये यथ्सभायां यदिन्द्रिये। यच्छूद्रे यद्र्यं एनंश्चकृमा वयम्। यदेकस्याधि धर्मणि तस्यावयजनमिस् स्वाहां॥ अऋन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मंयोभुवा॥ देवेभ्यः कर्म कृत्वाऽस्तं प्रेतं सुदानवः॥४॥

व्यं यद् विर्श्शृतिश्चं॥————[3]

अग्नयेऽनींकवते पुरोडाशंमृष्टाकंपालं निर्वपित साकश् सूर्येणोद्यता मुरुद्धाः सान्तपनेभ्यो मुध्यन्दिने चुरुं मुरुद्धो गृहमेधिभ्यः सर्वांसां दुग्धे सायं चुरुं पूर्णा देविं पर्रा पत् सुपूर्णा पुन्रापंत। वुस्नेव वि क्रीणावहा इष्मूर्ज १ शतकतो॥ देहि मे दर्दांमि ते नि में धेहि नि ते दधे। निहार्मिन्नि में हरा निहारम्॥५॥

नि हंरामि ते॥ मुरुद्धाः ऋीडिभ्यः पुरोडाशः सप्तकंपालं निर्वपति साकः सूर्येणोद्यताग्रेयमृष्टाकंपालं निर्वपति सौम्यं चुरुः सावित्रं द्वादंशकपालः सारस्वतं चुरुं पौष्णं चुरुमैन्द्राग्नमेकांदशकपालमैन्द्रं चरुं वैश्वकर्मणमेकंकपालम्॥६॥

ह्रा निहारं त्रिष्शर्च॥——[४]

सोमांय पितृमते पुरोडाशु षद्वंपालं निर्वपित पितृभ्यों बर्हिषद्धों धानाः पितृभ्योंऽग्निष्वात्तेभ्योंऽभिवान्यांयै दुग्धे मन्थमेतत् ते तत् ये च त्वामन्वेतत् ते पितामह प्रपितामह् ये च त्वामन्वत्रं पितरो यथाभागं मन्दध्व सुसन्दर्शं त्वा वयं मधंवन् मन्दिषीमहिं॥ प्र नूनं पूर्णवंन्धुरः स्तुतो यांसि वशा अनुं॥ योजा न्विन्द्र ते हरीं॥७॥

अक्षन्नमीमदन्त ह्यवं प्रिया अंधूषत॥ अस्तोषत् स्वभानवो विष्रा नविष्ठया मृती॥ योजा न्विन्द्र ते हरी॥ अक्षेन् पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरोऽमीमृजन्त पितरंः॥ परेत पितरः सोम्या गम्भीरैः पृथिभिः पूर्वेः॥ अथां पितॄन्थ्सुंविदत्रा अपीत यमेन ये संधमादं मदेन्ति॥ मनो न्वा हुंवामहे नाराश्र १ सेन् स्तोमेंन पितृणां च मन्मंभिः॥ आ॥८॥

न एतु मनः पुनः ऋत्वे दक्षांय जीवसें॥ ज्योक च सूर्यं हशे॥ पुनर्नः पितरो मनो ददांतु दैव्यो जनः॥ जीवं व्रातर्थं सचेमहि॥ यदन्तिरक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितरं वा जिहिश्सिम॥ अग्निर्मा तस्मादेनंसो गार्हंपत्यः प्र मुंश्रतु दुरिता यानि चकृम करोतु मामनेनसम्॥९॥

हरी मन्मंभिरा चतुंश्चत्वारि १ शच॥------[५]

प्रतिपूरुषमेकंकपालान्निर्वपत्येकमितिरिक्तं यावंन्तो गृह्याः समस्तेभ्यः कमंकरं पशूना शर्मासि शर्म यजंमानस्य शर्म मे यच्छैकं एव रुद्रो न द्वितीयांय तस्थ आखुस्ते रुद्र पृशुस्तं जुंषस्वैष ते रुद्र भागः सह स्वस्नाऽम्बिकया तं जुंषस्व भेषजं गवेऽश्वांय पुरुषाय भेषजमथों अस्मभ्यं भेषजश्माश्रा

यथाऽसंति॥ सुगं मेषायं मेष्यां अवाम्ब रुद्रमंदिम्ह्यवं देवं च्यंम्बकम्॥ यथां नुः श्रेयंसः कर्द्यथां नो वस्यंसः कर्द्यथां

नः पशुमतः कर्द्यथां नो व्यवसाययाँत्॥ त्र्यम्बकं यजामहे सुगुन्धिं पृष्टिवर्धनम्॥ उर्वारुकिमेव बन्धनान्मृत्योर्मृक्षीय मा-ऽमृतात्॥ एष ते रुद्र भागस्तं जुषस्व तेनांवसेन पुरो मूर्जवतोऽतीृह्यवंततधन्वा पिनांकहस्तः कृत्तिंवासाः॥११॥

सुभेषजमिहि त्रीणि च॥———[६]

पुरोडाशं द्वादंशकपालं वैश्वदेवं च्रुक्तिन्द्रांय शुनासीरांय पुरोडाशं द्वादंशकपालं वाय्व्यं पर्यः सौर्यमेकंकपालं द्वादशग्व सीरं दक्षिणाऽऽग्रेयमृष्टाकंपालं निर्वपित रौद्रं गांवीधुकं च्रुक्तेन्द्रं दिधे वारुणं येव्मयं च्रुं वृहिनीं धेनुर्दक्षिणा ये देवाः पुरःसदोऽग्निनैत्रा दक्षिणसदो यमनेत्राः पश्चाथ्मदः सिवृतनेत्रा उत्तर्सदो वरुणनेत्रा उपरिषदो बृह्स्पितिनेत्रा रक्षोहणस्ते नः पान्तु ते नोऽवन्तु तेभ्यः॥१२॥

नम्स्तेभ्यः स्वाह्य समूढ्र रक्षः सन्दंग्ध्र रक्षं इदम्हर रक्षोऽभि सं दंहाम्यग्रयं रक्षोघ्ने स्वाहां यमायं सिवत्रे वरुणाय बृह्स्पतंये दुवंस्वते रक्षोघ्ने स्वाहां प्रष्टिवाही रथो दक्षिणा देवस्यं त्वा सिवतुः प्रस्वेऽिश्वनौर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्तौभ्यार् रक्षंसो वधं जुंहोमि हृतर रक्षोऽविधिष्म रक्षो

-[८]

यद्वस्ते तद्दक्षिणा॥१३॥

तेभ्यः पश्चंचत्वारि १शच॥ धात्रे पुरोडाशं द्वादेशकपालं निर्वपत्यनुंमत्यै चुरु राकार्यं चुरु सिनीवाल्ये चुरुं कुहैं चुरुं मिथुनौ गावौ दक्षिणाऽऽग्नावैष्णवमेकांदशकपालं निर्वपत्यैन्द्रावैष्णवमेकांदशकपालं वैष्णवं त्रिकपालं वामनो वही दक्षिणाऽग्नीषोमीयमेकांदशकपालं निर्वपतीन्द्रासोमीयमेक सौम्यं चरुं बभुर्दक्षिणा सोमापौष्णं चरुं निर्वपत्यैन्द्रापौष्णं चरं पौष्णं चरु श्यामो दक्षिणा वैश्वान्रं द्वादशकपालं निर्वपिति हिरंण्यं दक्षिणा वारुणं यंवमयं चरुमश्वो दक्षिंणा॥१४॥

बार्हस्पत्यं चरुं निर्वपति ब्रह्मणों गृहे शितिपृष्ठो दक्षिणैन्द्रमेकादशकपाल राजन्यंस्य गृह ऋष्भो दक्षिणा-ऽऽदित्यं चरुं महिष्यै गृहे धेनुर्दक्षिणा नैर्ऋतं चरुं

परिवृत्त्यै गृहे कृष्णानां व्रीहीणां नुखिनिर्मिन्नं कृष्णा कूटा

दक्षिणाऽऽग्नेयम्ष्टाकंपालः सेनान्यों गृहे हिरंण्यं दक्षिणा वारुणं दशकपालः सूतस्यं गृहे महानिरष्टो दक्षिणा मारुतः सप्तकंपालं ग्राम्ण्यों गृहे पृश्ञिदक्षिणा सावित्रं द्वादेशकपालं॥१५॥

क्षुत्तर्गृह उपध्वस्तो दक्षिणाऽऽश्विनं द्विकपाल संग्रहीतुर्गृहे संवात्यौ दक्षिणा पौष्णं चरुं भागदुघस्यं गृहे श्यामो दक्षिणा रौद्रं गांवीधुकं चरुमंक्षावापस्यं गृहे श्वल उद्घारो दक्षिणेन्द्राय सुत्राम्णे पुरोडाश्मेकांदशकपालं प्रति निर्वपतीन्द्राया होमुचेऽयं नो राजां वृत्रहा राजां भूत्वा वृत्रं वध्यान्मैत्राबारहस्पत्यं भवति श्वेतायै श्वेतवंथ्साय दुग्धे स्वयम्मूर्ते स्वयम्म्थित आज्य आश्वंत्थे॥१६॥

पात्रे चतुंःस्रक्तौ स्वयमवप्त्रायै शाखांयै कुर्णाः श्चाकंर्णाः श्च तण्डुलान् वि चिनुयाद्ये कुर्णाः स पर्यसि बार्हस्पत्यो येऽकंर्णाः स आज्ये मैत्रः स्वयं कृता वेदिर्भवति स्वयन्दिनं बर्हिः स्वयं कृत इध्मः सैव श्वेता श्वेतवंथ्सा दक्षिणा॥१७॥ सावित्रं द्वादंशकपालुमाश्वरेथे त्रयंस्निरश्च॥—————[९]

अग्नये गृहपंतये पुरोडाशंमुष्टाकंपालं निर्वपति कृष्णानां

पुशूनां व्राताः पश्चवि शतिश्च॥

व्रीहीणाः सोमाय वनस्पतिये श्यामाकं च्रुः संवित्रे सत्यप्रंसवाय पुरोडाशं द्वादंशकपालमाशूनां व्रीहीणाः रुद्रायं पशुपतिये गावीधुकं च्रुं बृहुस्पतिये वाचस्पतिये नैवारं च्रुमिन्द्राय ज्येष्ठायं पुरोडाश्मेकांदशकपालं महाव्रीहीणां मित्रायं सत्यायाऽऽम्बानां च्रुं वर्रुणाय धर्मपतये यवमयं च्रुः संविता त्वां प्रस्वानाः सुवताम्ग्रिगृहपतीनाः सोमो वनस्पतीनाः रुद्रः पंशूनां॥१८॥

बृह्स्पतिर्वाचामिन्द्रौ ज्येष्ठानौं मित्रः सत्यानां वर्रणो धर्मपतीनां ये देवा देवसुवः स्थ त इममांमुष्यायणमंनिमृत्रायं सुवध्वं महृते क्षृत्रायं महृत आधिपत्याय महृते जानंराज्यायेष वो भरता राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाः राजा प्रति त्यन्नामं राज्यमंधायि स्वां तनुवं वर्रणो अशिश्रेच्छुचैर्मित्रस्य व्रत्यां अभूमामंन्मिह महृत ऋतस्य नाम सर्वे व्राता वर्रणस्याभूवन्वि मित्र एवैररांतिमतारीदसूंषुदन्त यज्ञियां ऋतेन व्यं त्रितो जरिमाणं न आन्इ विष्णोः क्रमोऽसि विष्णोः क्रान्तमंसि विष्णोर्विक्रौन्तमिस॥१९॥

अर्थतः स्थाऽपां पतिरिस् वृषांस्यूर्मिवृंषसेनोऽसि वृज्ञिक्षतः स्थ मुरुतामोजः स्थ सूर्यवर्चसः स्थ सूर्यत्वचसः स्थ मान्दाः स्थ वाशाः स्थ शक्वरीः स्थ विश्वभृतः स्थ जन्भृतः स्थाऽग्रेस्तेज्ञस्याः स्थाऽपामोषंधीनाः रसः स्थाऽपो देवीर्मधुंमतीरगृह्वन्नूर्जस्वती राज्ञसूयांय चितानाः। याभिर्मित्रावरुणावभ्यषिश्चन् याभिरिन्द्रमनयन्नत्यरांतीः॥ राष्ट्रदाः स्थं राष्ट्रं देत्त स्वाहां राष्ट्रदाः स्थं राष्ट्रममुष्में दत्त॥२०॥

अत्येकांदश च॥——[११]

देवीरापः सं मधुंमतीर्मधुंमतीभिः सृज्यध्वं मिह् वर्चः क्षुत्रियांय वन्वाना अनांधृष्टाः सीद्तोर्जस्वतीर्मिह् वर्चः क्षुत्रियांय दर्धतीरिनंभृष्टमिस वाचो बन्धुंस्तपोजाः सोमस्य दात्रमंसि शुक्रा वंः शुक्रेणोत्पुंनामि चन्द्राश्चन्द्रेणामृतां अमृतेन स्वाहां राजसूयांय चितांनाः॥ सधमादौ चुम्निनीरूर्ज एता अनिभृष्टा अपस्युवो वसांनः। पस्त्यांसु चक्रे वर्रणः सधस्थंमपा शिशुंः॥२१॥

मातृतंमास्वन्तः॥ क्षुत्रस्योल्बंमसि क्षुत्रस्य योनिर्स्याविन्नो

अग्निर्गृहपंतिरावित्र इन्द्रों वृद्धश्रंवा आवित्रः पूषा विश्ववेदा आवित्रौ मित्रावरुणावृतावृधावावित्रे द्यावांपृथिवी धृतव्रंते आवित्रा देव्यदितिर्विश्वरूप्यावित्रोऽयम्सावांमुष्यायणौऽस्यां विश्यंस्मिन् राष्ट्रे मंहते क्षत्रायं महत आधिपत्याय महते जानराज्यायैष वो भरता राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणाना र राजेन्द्रंस्य॥२२॥

वज्रोऽसि वार्त्रघूस्त्वयायं वृत्रं वध्याच्छत्रुबाधंनाः स्थ पात माँ प्रत्यश्चं पात मां तिर्यश्चंम्नवश्चं मा पात दिग्भ्यो मां पात विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यः पात हिरंण्यवर्णावुषसां विरोकेऽयः स्थूणावुदितौ सूर्यस्याऽऽरोहतं वरुण मित्र गर्तं ततंश्चक्षाथामदितिं दितिं च॥२३॥

शिशुरिन्द्रस्यैकंचत्वारि १श च॥-----[१२]

स्मिध्मा तिष्ठ गायत्री त्वा छन्दंसामवत् त्रिवृथ्स्तोमो रथन्तर सामाग्निर्देवता ब्रह्म द्रविणमुग्रामा तिष्ठ त्रिष्टुप् त्वा छन्दंसामवत् पश्चद्शः स्तोमो बृहथ्सामेन्द्रो देवता क्षत्रं द्रविणं विराजमा तिष्ठ जगंती त्वा छन्दंसामवत् सप्तद्शः स्तोमो वैरूप साम मुरुतो देवता विङ्गविणमुदीचीमा तिष्ठानुष्टुप् त्वां॥२४॥

छन्दंसामवत्वेकविष्शः स्तोमों वैराज सामं मित्रावरंणो देवता बलं द्रविणमूर्ध्वामा तिष्ठ पङ्किस्त्वा छन्दंसामवतु त्रिणवत्रयस्त्रिष्शौ स्तोमौ शाक्तररैवते सामनी बृह्स्पतिंद्वता वर्चो द्रविणमीदङ् चौन्यादङ् चैतादङ् च प्रतिदङ् च मितश्च सम्मितश्च सभराः। शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च स्त्यज्योतिश्च ज्योतिष्मा इश्च स्त्यश्चर्त्पाश्चं॥२५॥

अत्य १ हाः। अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहां सिवृत्ते स्वाहा सर्गस्वत्ये स्वाहां पूष्णे स्वाहा बृह्स्पतंये स्वाहेन्द्राय स्वाहा घोषाय स्वाहा श्लोकाय स्वाहाऽ १ शाय स्वाहा भगाय स्वाहा क्षेत्रंस्य पतंये स्वाहां पृथिव्ये स्वाहाऽन्तरिक्षाय स्वाहां दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहां चन्द्रमंसे स्वाहा नक्षंत्रेभ्यः स्वाहाऽद्यः स्वाहौषंधीभ्यः स्वाहां वनस्पतिभ्यः स्वाहां चराचरेभ्यः स्वाहां परिप्रवेभ्यः स्वाहां सरीसृपेभ्यः स्वाहां॥२६॥

अनुष्टुप्त्वंर्तृपाश्चं सरीसृपेभ्यः स्वाहाँ॥———[१३]

सोमंस्य त्विषिरसि तवेव मे त्विषिभूयादमृतंमसि मृत्योमां पाहि दिद्योन्मां पाह्यवेष्टा दन्दशूका निरस्तं नमुंचेः शिरंः॥

अग्नेस्तैकांदश च

सोमो राजा वरुणो देवा धर्मसुवश्च ये। ते ते वाच र सुवन्तां ते ते प्राण र सुवन्तां ते ते चक्षुः सुवन्तां ते ते श्रोत्र र सुवन्ता र सोमस्य त्वा द्युम्नेनाभिषिश्चाम्यग्नेः॥२७॥

तेजंसा सूर्यस्य वर्चसेन्द्रंस्येन्द्रियेणं मित्रावरुणयोर्वीर्येण मुरुतामोर्जसा क्षत्राणां क्षत्रपंतिरस्यितं दिवस्पांहि समावंवृत्रन्नधरागुदींचीरिहं बुधियमनुं संचर्नतीस्ताः पर्वतस्य वृष्भस्यं पृष्ठे नावंश्चरन्ति स्वसिचं इयानाः॥ रुद्र यत्ते ऋयी परं नाम तस्में हुतमंसि यमेष्टंमिस। प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वां जातानि परि ता बंभूव। यत्कांमास्ते जुहमस्तन्नों अस्तु वय इस्याम प्रतयो रयीणाम्॥२८॥

इन्द्रंस्य वज्रोंऽसि वार्त्रघ्नस्त्वयाऽयं वृत्रं वंध्यान्मित्रावरुणयोस् प्रशास्त्रोः प्रशिषां युनज्मि यज्ञस्य योगेन विष्णोः क्रमोंऽसि विष्णोः क्रान्तमंसि विष्णोविकान्तमसि मुरुतां प्रसुवे

जेषमाप्तं मनः सम्हिमेन्द्रियेणं वीर्येण पश्नां मृन्युरंसि तवेव मे मृन्युर्भूयात्रमों मात्रे पृथिव्यै माऽहं मातरं पृथिवी १ हिर्रसिषं मा॥२९॥ मां माता पृथिवी हि सीदियंदस्यायुंरस्यायुंर्मे धेह्यर्गस्यूर्जं मे धेहि युड्डंसि वर्चोऽसि वर्चो मिये धेह्यग्नये गृहपंतये स्वाहा सोमाय वनस्पतये स्वाहेन्द्रंस्य बलाय स्वाही मुरुतामोजंसे स्वाही हु सः श्रुंचिषद्वसुंरन्तिरक्षसद्धोतां वेदिषदितिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वंरसदंत्सद्धोमसद्जा गोजा ऋतजा अद्विजा ऋतं बृहत्॥३०॥

हिर्सिषुं मर्तुजास्त्रीणिं च॥————[१५]

मित्रोंऽसि वरुणोऽसि समहं विश्वैद्वैः क्षत्रस्य नाभिरसि क्षत्रस्य योनिरसि स्योनामा सींद सुषदामा सींद मा त्वां हिश्सीन्मा मां हिश्सीन्निषंसाद धृतव्रतो वरुणः पुस्त्यांस्वा साम्रांज्याय सुऋतुर्ब्रह्मा(३)न् त्वश्रांजन् ब्रह्माऽसिं सविता-ऽसिं स्त्यसंवो ब्रह्मा(३)न् त्वश्रांजन् ब्रह्माऽसीन्द्रोंऽसि सत्योजाः॥३१॥

ब्रह्मा(३)न् त्व॰ रांजन् ब्रह्माऽसिं मित्रोंऽसि सुशेवो ब्रह्मा(३)न् त्व॰ रांजन् ब्रह्माऽसि वरुंणोऽसि सृत्यधुर्मेन्द्रेस्य वज्रोंऽसि वार्त्रघृस्तेनं मे रध्य दिशोऽभ्यंय॰ राजां-ऽभूथ्सुश्लोकाँ(४) सुमंङ्गलाँ(४) सत्यंराजा(३)न्। अपां नि्र स्वाहोर्जो नम्ने स्वाहाऽग्नये गृहपंतये स्वाहाँ॥३२॥

स्त्योजाँश्चत्वारि र्शर्च॥———[१६]

आग्नेयम्ष्टाकंपालं निर्वपित हिरंण्यं दक्षिणा सारस्वतं च्रं वंथ्मत्री दक्षिणा सावित्रं द्वादंशकपालमुपध्वस्तो दक्षिणा पौष्णं च्रु श्यामो दक्षिणा बार्हस्पत्यं च्रु शितिपृष्ठो दक्षिणेन्द्रमेकांदशकपालमृष्मो दक्षिणा वारुणं दशंकपालं महानिरष्टो दक्षिणा सौम्यं च्रु बुभुदक्षिणा त्वाष्ट्रमृष्टाकंपाल श् शुण्ठो दक्षिणा वैष्ण्वं त्रिकपालं वामनो दक्षिणा॥३३॥

आुभ्रेयं द्विचंत्वारिरशत्॥———[१७]

स्द्यो दींक्षयन्ति स्द्यः सोमं क्रीणन्ति पुण्डरिस्रजां प्र यंच्छति दृशभिवंध्सत्ररेः सोमं क्रीणाति दशपेयो भवति शृतं ब्राह्मणाः पिबन्ति सप्तदृश् स्तोत्रं भवति प्राकाशावंध्वर्यवे ददाति स्रजंमुद्गात्रे रुक्म होत्रे- ऽश्वं प्रस्तोतृप्रतिहृतृभ्यां द्वादंश पष्टौहीर्ब्रह्मणे वृशां मैंत्रावरुणायंर्षमं ब्राह्मणाच्छु स्सिने वासंसी नेष्टापोतृभ्या इस्थूरि यवाचितमंच्छावाकायांनु ब्राहंमग्रीधे भार्गवो होतां भवति श्रायन्तीयं ब्रह्मसामं भवति वारवन्तीयंमग्निष्टोमसाम इ

आग्नेय सप्तचंत्वारि शत्॥

सांरस्वतीरपो गृंह्णाति॥३४॥

बारुवुन्तीर्यं चुत्वारिं च॥———[१८]

आग्नेयम्ष्टाकंपालं निर्वपित हिरंण्यं दक्षिणेन्द्रमेकांदशकपाल दक्षिणा वैश्वदेवं चुरुं पिशङ्गी पष्टौही दक्षिणा मैत्रावरुणीमामिक्षां वृशा दक्षिणा बार्हस्पृत्यं चुरुश् शितिपृष्ठो दक्षिणाऽऽदित्यां मुलुहां गुर्भिणीमा लेभते मारुतीं पृश्चिं पष्टौहीमृश्विभ्यां पूष्णे पुरोडाश्चं द्वादेशकपालं निर्वपिति सरंस्वते सत्यवाचे चुरुश् संवित्रे सत्यप्रसवाय पुरोडाश्चं द्वादेशकपालं तिसृधन्वश् शुंष्कदितिर्दक्षिणा॥३५॥

आग्नेयम्ष्टाकंपालं निर्वपति सौम्यं चुरुः सांवित्रं द्वादेशकपालं बार्हस्पत्यं चुरुं त्वाष्ट्रमृष्टाकंपालं वैश्वान्रं

द्वार्वशकपालं दक्षिणो रथवाहनवाहो दक्षिणा सारस्वतं चुरुं निर्वपति पौष्णं चुरुं मैत्रं चुरुं वारुणं चुरुं क्षेत्रपृत्यं चुरुमादित्यं चुरुमुत्तरो रथवाहनवाहो दक्षिणा॥३६॥

आुग्नेयं चतुंिस्त्रिश्शत्॥————[२०]

स्वाद्वीं त्वौ स्वादुनां तीव्रां तीव्रेणामृतांममृतेन सृजामि स॰सोमेन सोमोंऽस्यिधभ्यां पच्यस्व सरंस्वत्यै पच्यस्वेन्द्रांय सुत्राम्णे पच्यस्व पुनातुं ते परिस्नुत् सोम् सूर्यस्य दुहिता। वारेण शर्श्वता तना॥ वायुः पूतः प्वित्रेण प्रत्यङ्ख्सोमो अतिद्रुतः। इन्द्रस्य युज्यः सखाँ॥ कुविदङ्ग यवंमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यंनुपूर्वं वियूयं। इहेहैंषां कृणुत् भोजनानि ये ब्रहिषो नमीवृक्तिं न ज्ग्मः॥ आश्विनं धूम्रमा लंभते सारस्वतं मेषमैन्द्रमृषभमैन्द्रमेकांदशकपालं निर्वपति सावित्रं द्वादेशकपालं वारुणं दर्शकपाल सोमप्रतीकाः पितरस्तृप्णुत वर्डबा दक्षिणा॥३७॥

भोर्जनानि षड्विर्शितिश्च॥———[२१]

अग्नंविष्णू मिह तद्वां मिहत्वं वीतं घृतस्य गृह्यांनि नामं। दमेदमे सप्त रत्ना दधांना प्रतिं वां जिह्वा घृतमा चंरण्येत्॥ अग्नांविष्णू मिह धामं प्रियं वां वीथो घृतस्य गृह्यां जुषाणा। दमेदमे सुष्टुतीर्वावृधाना प्रतिं वां जिह्वा घृतमुचंरण्येत्॥ प्रणों देवी सरंस्वती वाजेंभिर्वाजिनीवती। धीनामंवित्र्यंवतु। आ नो दिवो बृहतः॥३८॥

पर्वतादा सरंस्वती यज्ञता गंन्तु यज्ञम्। हवं देवी जुंजुषाणा घृताची शृग्मां नो वाचंमुश्ती शृंणोतु॥ बृहंस्पते जुषस्व नो ह्व्यानि विश्वदेव्य। रास्व रत्नांनि दाशुषे॥ एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमंसा ह्विर्मिः। बृहंस्पते सुप्रजा वीरवंन्तो वय स्यांम पतंयो रयीणाम्॥ बृहंस्पते अति यद्यों अर्हांद्युमद्विभाति ऋतुंमु अनेषु। यद्दीदयच्छवंसा॥३९॥

ऋतुप्रजात तद्स्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्॥ आ नों मित्रावरुणा घृतेर्गव्यूतिमुक्षतम्। मध्वा रजारेसि सुऋतू॥ प्र बाहवां सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेनं। आ नो जने श्रवयतं युवाना श्रुतं में मित्रावरुणा हवेमा॥ अग्निं वेः पूर्व्यं गिरा देवमींडे वसूनाम्। सुपर्यन्तेः पुरुप्रियं मित्रं न क्षेत्रसाधंसम्॥ मुक्षू देववंतो रथः॥४०॥

शूरों वा पृथ्सु कासुं चित्। देवानां य इन्मनो यर्जमान् इयंक्षत्यभीदयंज्वनो भुवत्॥ न यंजमान रिष्यसि न सुंन्वान् न देवयो॥ अस्दत्रं सुवीर्यमुत त्यदाश्वश्वियम्॥ निकृष्टं कर्मणा नश्त्र प्र योष्त्र योषति॥ उपं क्षरन्ति सिन्धंवो मयोभुवं ईजानं चं युक्ष्यमाणं च धेनवंः। पृणन्तं च पपुरिं च॥४१॥

श्रवस्यवी घृतस्य धारा उपं यन्ति विश्वतः॥ सोमांरुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयंमाविवेशं। आरे बांधेथां निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्रमुंमुक्तमस्मत्॥ सोमांरुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वां तनूषुं भेषजानिं धत्तम्। अवं स्यतं मुश्रतं यन्नो अस्ति तनूषुं बृद्धं कृतमेनों अस्मत्॥ सोमांपूषणा जनंना रयीणां जनंना दिवो जनंना पृथिव्याः। जातौ विश्वंस्य भुवंनस्य गोपौ देवा अंकृण्वन्नमृतंस्य नाभिम्॥ इमौ देवौ जायंमानौ जुषन्तेमौ तमा सि गृहताम जुंष्टा। आभ्यामिन्द्रः पक्षमामास्वन्तः सोमापूषभ्यां जनदुस्त्रियांसु॥४२॥

बृह्तः शर्वसा रथः पर्पुरिं च दिवो जनना पर्श्ववि शतिश्च॥————[२२]

वायुर्व्यं प्रजापंतिस्ता वर्रुणं देवासुरा पृष्वंसावंदित्यो दशंर्षभामिन्द्री वलस्यं बार्हस्पृत्यं वंषद्कारोऽसौ सौरीं वर्रुणमाश्विनमिन्द्रं वो नर् एकांदश॥11॥ वायुव्यंमाग्नेयीं कृष्णग्रीवीमसावंदित्यो वा अहोरात्राणिं वषद्कारः प्रजनयिता हुंवे तुराणां पश्चंषष्टिः॥65॥ वायुव्यं प्रमोपीः॥ ——

—॥ प्रथमः प्रश्नः समाप्तः॥ —————[२३]

॥काण्डम् २॥

॥प्रथमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां द्वितीयकाण्डे प्रथमः प्रश्नः॥

वायव्य ईश्वेतमालंभेत भूतिंकामो वायुर्वे H क्षेपिष्ठा देवतां वायुमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावित स एवैनं भूतिंङ्गमयित् भवंत्येवातिंक्षिप्रा देवतेत्यांहुः सैनमिश्वरा प्रदह् इत्येतमेव सन्तं वायवें नियुत्वंत आलंभेत नियुद्वा अंस्य धृतिंर्द्धृत एव भूतिमुपेत्यप्रंदाहाय भवंत्येव (1)

वायवें नियुत्वंत आलंभेत ग्रामंकामो वायुर्वा इमाः प्रजा नंस्योता नेनीयते वायुमेव नियुत्वंन्त् स्वनं भाग्धेयेनोपंधावित स एवास्मै प्रजा नंस्योता नियंच्छिति ग्राम्येंव भंवित नियुत्वंते भवित ख्रुवा एवास्मा अनंपगाः करोति वायवें नियुत्वंत आलंभेत प्रजाकांमः प्राणो वै वायुरंपानो नियुत्प्राणापानौ खलु वा एतस्यं प्रजायाः (2)

अपंक्रामतो योऽलं प्रजायै सन्प्रजान्न विन्दते वायुमेव नियुत्वन्तु स्वेनं भागुधेयेनोपंधावति स एवास्मैं प्राणापाना-भ्यां प्रजां प्रजनयति विन्दतें प्रजाँबायवे नियुत्वंत आलंभेत् ज्योगांमयावी प्राणो वै वायुरंपानो नियुत् प्रांणापानौ खलु वा एतस्मादपंक्रामतो यस्य ज्योगामयंति वायुमेव नियुत्वंन्त्ड् स्वेनं भागधेयेनोपं (3)

धावति स एवास्मिन्प्राणापानौ दंधात्युत यदीतासुर्भवंति जीवंत्येव प्रजापंतिर्वा इदमेकं आसीथ्सोऽकामयत प्रजाः प्रशून्थ्यंज्येति स आत्मनो वपामुदंक्खिद्तामुग्नौ प्रागृह्णात्ततोऽजस्तूपुरः सम्भवत्तक्ष् स्वाये देवताया आ-ऽलंभत् ततो वै स प्रजाः पृशूनंसृजत् यः प्रजाकांमः (4)

पृश्वकांमः स्याथ्स एतं प्रांजापृत्यम्जन्तूंप्रमालंभेत प्रजापंतिमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावति स एवास्मैं प्रजां पृश्वन्प्रजनयति यच्चेश्रुणस्तत्पुरुषाणाः रूपं यत्तूंप्रस्तदश्वांनां यद्न्यतोद्न्तद्गवां यदव्यां इव श्रफास्तदवींनां यद्जस्तद्जानांमेतावंन्तो वे ग्राम्याः पृशवस्तान् (5)

रूपेणैवावंरुन्धे सोमापौष्णश्रैतमालंभेत पृशुकांमो द्वौ वा अजायै स्तनौ नानैव द्वावभिजायेते ऊर्जं पृष्टिंन्तृतीयेः सोमापूषणांवेव स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावति तावेवास्मैं पृश्न्यजंनयतः सोमो वै रेतोधाः पूषा पंशूनां प्रंजनियता सोमं पुवास्मै रेतो दधांति पूषा पृश्न्यजंनयत्यौदंम्बरो यूपो भवत्यूर्ग्वा उंदुंबर ऊर्क्पृशवं ऊर्जेवास्मा ऊर्जं पृश्नवंरुन्थे॥६॥

—[१]भवंत्येव प्रजायां आमयंति वायुमेव नियुत्वंन्त् श् स्वेनं भाग्धेयेनोपं प्रजाकांमुस्तान् यूपुस्त्रयोदश च।]

प्रजापंतिः प्रजा अंसृजत् ता अंस्माथ्सृष्टाः परांचीरायन्ता वरुणमगच्छुन्ता अन्वैत्ताः पुनंरयाचत् ता अंस्मै न पुनंरददाथ्सौंऽब्रवीद्वरं वृणीष्वार्थं मे पुनंदेंहीति तासां वर्माऽलंभत् स कृष्ण एकंशितिपादभवद्यो वरुणगृहीतः स्याथ्स एतं वांरुणं कृष्णमेकंशितिपादमालंभेत् वरुणम् (7)

पुव स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावति स पुवैनं वरुणपाशान्मंश्चिति कृष्ण एकंशितिपाद्भवति वारुणो ह्यंष देवतंया समृद्धे सुवंभानुरासुरः सूर्यन्तमंसाऽविद्धत्तस्में देवाः प्रायंश्चित्तिमैच्छुन्तस्य यत्प्रंथमन्तमोऽपाघ्नन्थ्सा कृष्णा-ऽविंरभवद्यद्वितीय् सा फल्गुंनी यत्तृतीय् सा बेलुक्षी

यदं द्धास्थादपाकृंन्तन्थ्साऽविंऽर्वशा (8)

समंभवत्ते देवा अंब्रुवन्देवपृशुर्वा अय समंभूत्कस्मां इममालंफ्स्यामह् इत्यथ् वै तर्ह्याल्पां पृथिव्यासीदजाता ओषंधयस्तामिवं वृशामांदित्येभ्यः कामायाऽलंभन्त ततो वा अप्रंथत पृथिव्यजायन्तौषंधयो यः कामयेत प्रथेय पृश्भिः प्र प्रजयां जायेयेति स पृतामिवं वृशामांदित्येभ्यः कामाय (9)

आ लंभेतादित्यानेव काम् स्वनं भाग्धेयेनोपंधावित् त एवैनं प्रथयंन्ति पृश्भिः प्र प्रजयां जनयन्त्यसावांदित्यो न व्यंरोचत् तस्मे देवाः प्रायंश्चित्तिमैच्छुन्तस्मां एता मलहा आलंऽभन्ताग्नेयीं कृष्णग्रीवी स्पर्हितामैन्द्री स्थेतां बांर्हस्पत्यान्ताभिरेवास्मिन्नचंमदध्यों ब्रह्मवर्चसकांमः स्यात्तस्मां एता मलहा आलंभेत (10) आग्नेयीं कष्णग्रीवी स्पर्हितामैन्द्री श्रेतां

आग्नेयीं कृष्णग्रीवी स् स हितामैन्द्री श्वेतां बांर्हस्पत्यामेता एव देवताः स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावित् ता एवास्मिन्ब्रह्मवर्च्सन्दंधित ब्रह्मवर्च्स्येव भेवित वसन्ता प्रातरांग्नेयीं कृष्णग्रीवीमालंभेत ग्रीष्मे मुद्धन्दिने स हितामैन्द्री श्रारद्यंपराह्वे श्वेतां बांर्हस्पत्यात्रीणि वा आंदित्यस्य तेजा श्रीस वसन्तां प्रातर्ग्रीष्मे मुद्धन्दिने शुरद्यंपराह्णे यावंन्त्येव तेजा श्रीसे तान्येव (11)

अवं रुन्धे सं वथ्सरं पूर्यालंभ्यन्ते सं वथ्सरो वै ब्रह्मवर्च्सस्यं प्रदाता सं वथ्सर एवास्मैं ब्रह्मवर्च्सं प्रयंच्छिति ब्रह्मवर्चस्येव भविति गुर्भिणयो भवन्तीन्द्रियं वै गर्भ इन्द्रियमेवास्मिन्दधित सारस्वतीं मेषीमालंभेत य ईश्वरो वाचो विदेतोः सन्वाचन्न वदेद्वाग्वै सरस्वती सरस्वतीमेव स्वेनं भागधेयेनोपंधावित सैवास्मिन्नं (12)

वार्चन्दधाति प्रविद्ता वा्चो भंवत्यपंत्रदती भवित् तस्मान्मनुष्याः सर्वां वाचं वदन्त्याग्नेयं कृष्णग्रीवमा लंभेत सोम्यं बुभुं ज्योगांमयाव्यग्निं वा एतस्य शरीरं गच्छिति सोम् रसो यस्य ज्योगामयंत्यग्नेरेवास्य शरीरित्रिष्क्रीणाति सोमाद्रसंमुत यदीतासुर्भवंति जीवंत्येव सोम्यं बुभुमालंभेताग्नेयं कृष्णग्रीवं प्रजाकामः सोमः (13)

वै रेंतोधा अग्निः प्रजानां प्रजनियता सोमं एवास्मै रेतो दधाँत्यग्निः प्रजां प्रजनयति विन्दतें प्रजामाँग्नेयं कृष्णग्रीवमालभेत सौम्यं बुभुं यो ब्राह्मणो विद्यामनूच्य न विरोचेंत यदाँग्रेयो भवंति तेजं एवास्मिन्तेनं दधाति यथ्सौम्यो ब्रह्मवर्चसन्तेनं कृष्णग्रींव आग्रेयो भंवति तमे एवास्मादपंहन्ति श्वेतो भंवति (14)

रुचंमेवास्मिन्दधाति बुभुः सौम्यो भेवति ब्रह्मवर्चसमेवास्मिनि कृष्णग्रीवमालंभेत सौम्यं बुभुमाँग्नेयं कृष्णग्रीवं पुरोधायाः स्पर्धमान आग्नेयो वै ब्राह्मणः सौम्यो राजन्यों- ऽभितः सौम्यमाँग्नेयौ भेवतस्ते जंसैव ब्रह्मणोभ्यतों राष्ट्रं परिगृह्णात्येकधा समावृंद्धे पुर एनन्दधते॥ (15)

लुभेतु वर्रुणं वृशैतामिवं वृशामादित्येभ्यः कामाय मुल्हा आर्लभेतु तान्येव सैवास्मिन्थ्सोमः .

श्वेतो भंवति त्रिचंत्वारि शच। (2)।॥————[२]

देवासुरा एषु लोकेष्वंस्पर्छन्त स एतं विष्णुंवाम्नमंपश्यत्त स्वायं देवताया आऽलंभत् ततो वे स इमाल्लोंकान्भ्यंजयद्वैष्ण्वं वांम्नमालंभेत स्पर्छंमानो विष्णुंरेव भूत्वेमाल्लोंकान्भिजंयित विषमा अलंभेत विषमा इव हीमे लोकाः समृंख्या इन्द्रांय मन्युमते मनंस्वते लुलामं प्राशृङ्गमालंभेत सङ्ग्रामे (16)

सं यत्त इन्द्रियेण वै मृन्युना मनंसा सङ्ग्रामञ्जयतीन्द्रंमेव मन्युमन्तं मनस्वन्त् स्वेन भाग्धेयेनोपंधावित स प्वास्मिन्निन्द्रियं मृन्युं मनों दधाति जयंति तश् संङ्गामिनद्राय मुरुत्वंते पृश्ञिस्क्थमालंभेत ग्रामंकाम् इन्द्रमेव मुरुत्वंन्तु स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावति स एवास्मै सजातान्प्रयंच्छति ग्राम्येव भवति यदंष्भस्तेनं (17)

पुन्द्रो यत्पृश्चिस्तेनं मारुतः समृद्धौ पुश्चात्पृंश्चिस्वथो भेवति पश्चादन्ववसायिनींमेवास्मै विश्वङ्करोति सौम्यं बश्रुमालंभेतान्नंकामः सौम्यं वा अन्नु सोमंमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावित स पुवास्मा अन्नं प्रयंच्छत्यन्नाद एव भंवति बश्रुर्भवत्येतद्वा अन्नंस्य रूप समृद्धौ सौम्यं बश्रुमालंभेत यमलम् (18)

राज्याय सन्तरं राज्यन्नोपनमें थ्योम्यं वै राज्यः सोमंमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावित स एवास्मे राज्यं प्रयंच्छुत्युपैनः राज्यन्नंमित बुभुर्भवत्येतद्वे सोमंस्य रूपः समृद्धा इन्द्रांय वृत्रत्रे ललामं प्राशृङ्गमालंभेत गृतश्रीः प्रतिष्ठाकांमः पाप्मानंमेव वृत्रन्तीत्वा प्रतिष्ठां गंच्छुतीन्द्रांयाभिमातिष्ठे ललामं प्राशृङ्गमा (19) लुभेत यः पाप्मनां गृहीतः स्यात्पाप्मा वा

अभिमांतिरिन्द्रंमेवाभिमातिहन् स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावित् स एवास्मांत्पाप्मानंमभिमातिं प्रणुंदत् इन्द्रांय वृज्ञिणे लुलामं प्राशृङ्गमालंभेत् यमल् राज्याय सन्तर्र राज्यन्नोपनमेदिन्द्रंमेव वृज्ञिण्ड् स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावित् स एवास्मै वज्रं प्रयच्छिति स एनं वज्रो भूत्यां इन्ध् उपैनर्र राज्यन्नमिति लुलामंः प्राशृङ्गो भवत्येतद्वै वर्ज्ञस्य रूपर्र समृद्धौ॥ (20)

सङ्ग्रामे तेनालंमभिमातिष्रे ल्लामं प्राशृङ्गमेनं पश्चंदश च।३।॥———[३]
असार्वादित्यो न व्यरोचत् तस्मै देवाः प्रायंश्चित्तिमैच्छुन्तस्मौ
एतान्दशंर्षभामाऽलंभन्त तयैवास्मिन्नुचंमदध्यों ब्रेह्मवर्चसकाम्
स्यात्तस्मां एतान्दशंर्षभामाऽलंभेतामुमेवादित्यः स्वेनं
भाग्धेयेनोपंधावति स एवास्मिन्ब्रह्मवर्चसन्दंधाति

ग्रीष्मे मृद्धिन्दिने (21) त्रीञ्छितिपृष्ठाञ्छरद्यंपराह्णे त्रीञ्छितिवारात्रीणि वा आंदित्यस्य तेजार्श्स वसन्तौ प्रातर्ग्रीष्मे मृद्धिन्दिने श्ररद्यंपराह्णे यावन्त्येव तेजार्श्सि तान्येवावंरुन्थे त्रयंस्रय आलंभ्यन्तेऽभिपूर्वमेवास्मिन्तेजो दधाति सं वथ्सरं

ब्रह्मवर्चस्येव भेवति वसन्तौ प्रातस्त्रीहँलामानालंभेत

पूर्वालंभ्यन्ते सं वथ्सरो वै ब्रंह्मवर्च्सस्यं प्रदाता सं वथ्सर एवास्मैं ब्रह्मवर्च्सं प्रयंच्छति ब्रह्मवर्चस्येव भंवति सं वथ्सरस्यं परस्तात्प्राजापत्यङ्कद्रम् (22)

आलंभेत प्रजापंतिः सर्वा देवतां देवतांस्वेव प्रतितिष्ठति यदिं बिभीयादुश्चर्मां भविष्यामीतिं सोमापौष्णाः श्याममालंभेत सौम्यो व देवतंया पुरुषः पौष्णाः पृशवः स्वयैवास्में देवतंया पृशुभिस्त्वचंङ्करोति न दुश्चर्मां भवित देवाश्च व यमश्चास्मिल्लोंकैंऽस्पर्छन्त स यमो देवानांमिन्द्रियं वीर्यमयुवत तद्यमस्यं (23)

यम्त्वन्ते देवा अंमन्यन्त यमो वा इदमंभूद्यद्वयः स्म इति ते प्रजापंतिमुपांधावन्थ्य एतौ प्रजापंतिरात्मनं उक्षवृशौ निरंमिमीत् ते देवा वैष्णावरुणीं वृशामा- उलंभन्तैन्द्रमुक्षाण्न्तं वरुणेनैव ग्रांहियत्वा विष्णुंना यज्ञेन प्राणुंदन्तैन्द्रेणेवास्यैन्द्रियमंवृञ्जत् यो भ्रातृंव्यवान्थ्स्याथ्य स्पर्द्धमानो वेष्णावरुणीम् (24)

वृशामालंभेतैन्द्रमुक्षाणं वर्रणेनैव भ्रातृंव्यङ्गाहयित्वा विष्णुंना युज्ञेन प्रणुंदत ऐन्द्रेणैवास्यैन्द्रियं वृंङ्के भवंत्यात्मना परांस्य भ्रातृं व्यो भवतीन्द्रों वृत्रमंहन्तं वृत्रो ह्तष्यों डशि भें गेरे रि वृत्रस्यं शीर्षतो गाव उदांयन्ता वैदेह्यो ऽभवन्तासां मृष्भो ज्यने ऽन्दैत्तमिन्द्रंः (25)

अचायथ्सोऽमन्यत् यो वा इममालभेत् मुच्येतास्मात्पाप्मन् इति स आग्नेयं कृष्णग्रीवमालभतैन्द्रमृष्भन्तस्याग्निरेव स्वेनं भाग्धेयेनोपंसृतष्षोडश्धा वृत्रस्यं भोगानप्यंदहदैन्द्रेणैन्द्रियमात्म् यः पाप्मनां गृहीतः स्याथ्स आग्नेयं कृष्णग्रीवमालभेतैन्द्रमृष्भम् स्वेनं भागधेयेनोपंसृतः (26)

पाप्मान्मपि दहत्यैन्द्रेणैन्द्रियमात्मन्धत्ते मुच्यंते पाप्मनो भवंत्येव द्यांवापृथिव्यान्धेनुमालभेत ज्योगंपरुद्धोऽनयोर्हि वा एषोऽप्रंतिष्ठितोऽथैष ज्योगपरुद्धो द्यावापृथिवी एव स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावित ते एवैनं प्रतिष्ठाङ्गंमयतः प्रत्येव तिष्ठति पर्यारिणी भवित पर्यारीव ह्यंतस्यं राष्ट्रं यो ज्योगंपरुद्धः समृद्धौ वाय्व्यम् (27) वथ्समा लंभेत वायुर्वा अनयौर्वथ्स इमे वा एतस्मै लोका

अपंशुष्का विडपंशुष्काऽथैष ज्योगपंरुद्धो वायुमेव स्वेनं भागुधेयेनोपंधावित स एवास्मां इमाल्लौंकान् विशं प्रदापयित

प्रास्मां इमे लोकाः स्रुवन्ति भुञ्जत्येनं विडुपंतिष्ठते॥ (28)

मुद्धन्दिंने कर्द्रं युमस्य स्पर्द्धमानो वैष्णावरुणीन्तमिन्द्रौंऽस्य स्वेनं भागुधेयेनोपंसृतो वायुर्व्यं

इन्द्रों वलस्य बिलमपौणींथ्स य उत्तमः पृशुरासीतं पृष्ठं प्रितं सङ्गृह्योदंक्खिदत्त स् सहस्रं पृशवोऽनूदांयन्थ्स उन्नतो-ऽभवद्यः पृशुकांमः स्याथ्स पृतमैन्द्रम्नेन्नतमालंभेतेन्द्रंमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावित स पृवास्मे पृशून्प्रयंच्छिति पशुमानेव भंवत्युन्नतः (29)

भ्वति साह्स्री वा एषा लक्ष्मी यद्त्रितो लक्ष्मियैव प्रशूनवंरुन्थे यदा सहस्रं प्रशून्प्राप्पुयादथं वैष्ण्वं वांमनमा लेभेतैतस्मिन्वे तथ्सहस्रमद्धातिष्ठत्तस्मादेष वांमनः समीषितः प्रशुभ्यं एव प्रजातेभ्यः प्रतिष्ठान्दंधाति कोऽर्हित सहस्रं प्रशून्प्राप्तुमित्यांहुरहोरात्राण्येव सहस्रं सम्पाद्यालंभेत प्रश्वंः (30)

वा अंहोरात्राणि पृशूनेव प्रजातान्प्रतिष्ठाङ्गंमयत्योषंधीभ्यो वेहतमालंभेत प्रजाकाम् ओषंधयो वा एतं प्रजायै परिबाधन्ते योऽलं प्रजायै सन्प्रजान्न विन्दत् ओषंधयः खलु वा एतस्यै सूतुमिपं घ्रन्ति या वेहद्भवत्योषंधीरेव स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावित ता एवास्मै स्वाद्योनें प्रजां प्रजनयन्ति विन्दतें (31)

प्रजामापो वा ओषंध्योऽस्त्पुरुंष् आपं प्रवास्मा असंतः सद्दंदित तस्मांदाहुर्यश्चैवं वेद यश्च नाप्स्त्वावासंतः सद्दंदित तस्मांदाहुर्यश्चैवं वेद यश्च नाप्स्त्वावासंतः सद्दंदितित्यैन्द्री स्मूतवंशामालंभेत भूतिंकामोऽजांतो वा एष योऽलं भूत्यै सन्भूतिन्न प्राप्नोतीन्द्रं खलु वा एषा सूत्वा वशाऽभंवत् (32)

इन्द्रमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावति स एवैनं भूतिंङ्गमयति भवंत्येव यः सूत्वा वृशा स्यात्तमैन्द्रमेवालंभेतैतद्वाव तिदिन्द्रियः साक्षादेवेन्द्रियमवंरुन्ध ऐन्द्राग्नं पुनरुथ्सृष्टमालंभेत् य आ तृतीयात्पुरुषाथ्सोमन्न पिबेद्विच्छंन्नो वा एतस्यं सोमपीथो यो ब्राह्मणः सन्ना (33)

तृतीयात्पुरुषाथ्सोम्न पिबंतीन्द्राग्नी एव स्वेनं भागधेयेनोपंधावित तावेवास्में सोमपीथं प्रयंच्छत् उपैन सोमपीथो नमिति यदैन्द्रो भवंतीन्द्रियं वै सोमपीथ इंन्द्रियमेव सोमपीथमवं रुखे यदांग्रेयो भवंत्याग्रेयो वै ब्राह्मणः स्वामेव देवतामनु सन्तंनोति पुनरुथ्सृष्टो भंवति पुनरुथ्मृष्ट इंव ह्यंतस्यं (34)

सोमपीथः समृद्धौ ब्राह्मणस्पत्यन्तूपरमालंभेताभिचरन्ब्रह्मण्स् स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावित तस्मां एवैन्मा वृंश्चिति ताजगार्तिमार्च्छंति तूपरो भंवित क्षुरपंविवां एषा लक्ष्मी यत्तूंपरः समृद्धौ स्फ्यो यूपो भवित वज्रो वै स्फ्यो वज्रमेवास्मै प्रहंरित शर्मयं ब्रहिः शृणात्येवैनं वैभीदक इद्धो भिनत्त्येवैनम्॥ (35)

भ्वत्युकृतः पृथवं जनयन्ति विन्दर्तेऽभवृथ्यक्रेतस्येद्धाक्षीणि चा———[५]
बार्ह्स्पृत्य १ शितिपृष्ठमालंभेत् ग्रामंकामो यः
कामयेत पृष्ठ १ संमानाना १ स्यामिति बृह्स्पितिमेव स्वेनं
भाग्धेयेनोपंधावित स एवैनं पृष्ठ १ संमानाना इरोति ग्राम्येव
भविति शितिपृष्ठो भविति बार्ह्स्पृत्यो ह्येष देवतंया समृद्धौ
पौष्ण १ श्याममालंभेतान्नंकामोऽन्नं वै पूषा पूषणंमेव स्वेनं
भाग्धेयेनोपंधावित स एवास्मै (36)

अत्रं प्रयंच्छत्यन्नाद एव भेवति श्यामो भेवत्येतद्वा अन्नस्य रूप॰ समृद्धौ मारुतं पृश्चिमालंभेतान्नंकामोऽत्रं वै मुरुतों मुरुतं एव स्वेनं भागुधेयेनोपंधावति त एवास्मा अन्नं प्रयंच्छन्त्यन्नाद एव भंवति पृश्चिभंवत्येतद्वा अन्नस्य रूप॰ समृद्धा ऐन्द्रमंरुणमालंभेतेन्द्रियकांम् इन्द्रंमेव (37)

स्वनं भाग्धेयेनोपंधावति स एवास्मिन्निन्द्रियन्दंधातीन्द्रियाव्ये भंवत्यरुणो भूमान्भवत्येतद्वा इन्द्रंस्य रूप॰ समृंख्ये सावित्रम्ंपद्धस्तमालंभेत सिनकांमः सिवता व प्रंस्वानांमीशे सिवतारंमेव स्वनं भाग्धेयेनोपंधावति स एवास्में सिनं प्रसुवित दानंकामा अस्मै प्रजा भंवन्त्युपद्धस्तो भंवित सावित्रो ह्यंषः (38)

देवतंया समृद्धौ वैश्वदेवं बंहुरूपमालंभेतान्नंकामो वैश्वदेवं वा अन्नं विश्वानेव देवान्थ्स्वेनं भागधेयेनोपंधावित त एवास्मा अन्नं प्रयंच्छन्त्यनाद एव भविति बहुरूपो भविति बहुरूप् ह्यन्न् समृद्धौ वैश्वदेवं बंहुरूपमालंभेत ग्रामंकामो वैश्वदेवा वै संजाता विश्वानेव देवान्थ्स्वेनं भागधेयेनोपंधावित त एवास्मैं (39)

स्जातान्प्रयंच्छन्ति ग्राम्थेव भवति बहुरूपो भवति बहुदेवृत्यो ई ह्येष समृद्धौ प्राजापृत्यन्तूप्रमालंभेत् यस्यानांज्ञातिमव् ज्योगामयेंत्प्राजापृत्यो वै पुरुषः प्रजापंतिः खलु वै तस्यं वेद यस्यानांज्ञातिमव् ज्योगामयंति प्रजापंतिमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावित् स प्वेनन्तस्माथ्स्रामान्मुश्चिति तूपरो भंविति प्राजापत्यो ह्यंष देवतया समृद्धौ॥ (40)

अस्मा इन्द्रमेवैष संजाता विश्वांनेव देवान्थ्स्वेनं भागुधेयेनोपंधावति त एवास्मैं प्राजापत्यो

2 42 ---

वृषद्भारो वै गांयत्रियै शिरौंऽच्छिन्तस्यै रसः परां-ऽपत्तं बृह्स्पतिरुपांगृह्णाथ्मा शितिपृष्ठा वृशाऽभंवद्यो द्वितीयः प्रापंत्तं मित्रावरुणावुपांगृह्णीता सा द्विंरूपा वृशाऽभंवद्यस्तृतीयः प्रापंत्ततं विश्वे देवा उपांगृह्ण-थ्मा बंहुरूपा वृशाऽभंवद्यश्चंतुर्थः प्रापंत्थ्म पृथिवीं प्राविंश्तं बृहस्पतिंरिभ (41)

अगृह्णादस्त्वेवायं भोगायिति स उक्षवशः समंभवद्यक्षोहितं प्रापंतृत्तद्रुद्र उपांगृह्णाथ्मा रौद्री रोहिणी वृशाऽभंव-द्वार्हस्पृत्याः शितिपृष्ठामालंभेत ब्रह्मवर्चसकांमो बृह्स्पितेमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावित स एवास्मिन्ब्रह्म-वर्चसन्दंधाित ब्रह्मवर्चस्थेव भविति छन्दंसां वा एष रसो यद्वशा रसं इव खलुं (42)

वै ब्रंह्मवर्च्सञ्छन्दंसामेव रसेन रसं ब्रह्मवर्च्समवंरुन्धे मैत्रावरुणीं द्विरूपामालंभेत वृष्टिंकामो मैत्रं वा अहंवरिंणी रात्रिंरहोरात्राभ्याङ्खलु वै पूर्जन्यों वर्षित मित्रावरुंणावेव स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावित तावेवास्मां अहोरात्राभ्यां पूर्जन्यं वर्षयत्रछन्दंसां वा एष रसो यद्वशा रसं इव खलु वै वृष्टिश्छन्दंसामेव रसेन (43)

रसं वृष्टिमवंरुन्धे मैत्रावरुणीं द्विंरूपामालंभेत प्रजाकांमो मैत्रं वा अहंवारुणी रात्रिरहोरात्राभ्याङ्खलु वै प्रजाः प्रजायन्ते मित्रावरुणावेव स्वेनं भागधेयेनोपंधावित तावेवास्मां अहोरात्राभ्यां प्रजां प्रजानयत्रछन्दंसां वा एष रसो यद्वशा रसं इव खलु वै प्रजा छन्दंसामेव रसेन रसं प्रजामवं (44)

रुन्थे वैश्वदेवीं बंहुरूपामालंभेतान्नंकामो वैश्वदेवं वा अन्नं विश्वानेव देवान्थ्यवेन भाग्धेयेनोपंधावित त एवास्मा अन्नं प्रयंच्छन्त्यन्नाद एव भंवित छन्दंसां वा एष रसो यद्वशा रसं इव खलु वा अन्नञ्छन्दंसामेव रसेन रसमन्नमवंरुन्थे वैश्वदेवीं बंहुरूपामालंभेत ग्रामंकामो वैश्वदेवा वै (45)

सजाता विश्वांनेव देवान्थ्स्वेनं भागधेयेनोपंधावति त एवास्मै सजातान्प्रयंच्छन्ति ग्राम्यंव भंवति छन्दंसां वा एष रसो यद्वशा रसं इव खलु वै संजाताश्छन्दंसामेव रसेन रसर् सजातानवंरुन्धे बार्हस्पत्यमुक्षवशमालंभेत ब्रह्मवर्च्सकामो बृहस्पतिमेव स्वेनं भागधेयेनोपंधावति स पुवास्मिन्ब्रह्मवर्चसम् (46)

द्धाति ब्रह्मवर्चस्येव भवति वशं वा एष चरित यदुक्षा वशं इव खलु वै ब्रह्मवर्चसं वशेनैव वशं ब्रह्मवर्चसमवंरुन्धे रौद्री ध रोहिंणीमालंभेताभिचरंत्रुद्रमेव स्वेनं भागधेयेनोपंधावति तस्मां पुवेनमावृश्चति ताजगार्तिमार्च्छति रोहिंणी भवति रौद्री ह्यंषा देवतंया समृद्धौ स्फ्यो यूपों भवति वज्रो वै स्फ्यो वर्ज्रमेवास्मे प्रहंरति शरमयं बर्हिः शृणात्येवैनं वैभीदक इद्धो भिनत्त्येवैनम्॥ (47)

अभि खलु वृष्टिश्छन्दंसामेव रसेन प्रजामवं वैश्वदेवा वै ब्रह्मवर्च्सं यूप एकान्नवि श्रातिश्चं।

असावांदित्यो न व्यंरोचत तस्मैं देवाः प्रायंश्चित्तिमैच्छन्तस्मां एता र सौरी इ श्वेतां वृशामा ऽलंभन्त तयैवास्मिन्नुचंमदधुर्यो

ब्रह्मवर्चसकामः स्यात्तस्मां एता सौरी इ श्वेतां

वशामालंभेतामुमेवादित्य इस्वेनं भागधेयेनोपंधावति

स एवास्मिन्ब्रह्मवर्चसन्दंधाति ब्रह्मवर्चस्यंव भंवति बैल्वो

यूपों भवत्यसौ (48)
वा आंदित्यो यतोऽजांयत् ततो बिल्वं उदंतिष्ठथ्सयौन्येव ब्रह्मवर्च्समवंरुन्थे ब्राह्मणस्पत्यां बंभुकुणीमा लंभेताभिचरंन्वारुष पुरस्तान्निवंपेद्वरुणेनैव भ्रातृंव्यङ्गाहयित्वा ब्रह्मणा स्तृणुते बभुकणी भेवत्येतद्वै ब्रह्मणो रूप समृद्धौ स्फ्यो यूपों

भवति वज्रो वै स्फ्यो वर्ज्जमेवास्मै प्रहंरति शरमयं बर्हिः

शृणातिं (49)

एवेनं वैभीदक इद्ध्यो भिनत्त्येवेनं वैष्ण्वं वांमनमालंभेत यं यज्ञो नोपनमेद्विष्णुर्वे यज्ञो विष्णुमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावति स एवास्में यज्ञं प्रयंच्छुत्युपैनं यज्ञो नंमित वामनो भंवित वैष्णुवो ह्येष देवत्या समृद्धौ त्वाष्ट्रं वंडुबमालंभेत पशुकांमस्त्वष्टा वै पंशूनां मिथुनानांम् (50)

प्रजन्यिता त्वष्टांरमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावित स एवास्मै पृश्कियुनान्प्रजनयित प्रजा हि वा एतस्मिन्प्शवः प्रविष्टा अथैष पुमान्थ्सन्वंडबः साक्षादेव प्रजां प्शूनवंरुन्थे मैत्र श्वेतमालंभेत सङ्गामे सं यत्ते समयकामो मित्रमेव स्वेनं भागधेयेनोपंधावति स एवैनं मित्रेण सन्नंयति (51)

विशालो भंवति व्यवंसाययत्येवैनं प्राजापत्यं कृष्णमालंभेत् वृष्टिंकामः प्रजापंतिवै वृष्ट्यां ईशे प्रजापंतिमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावति स एवास्मैं पूर्जन्यं वर्षयित कृष्णो भंवत्येतद्वे वृष्टमें रूप र रूपेणेव वृष्टिमवंरुन्धे शुबलों भवति विद्युतंमेवास्मैं जनियत्वा वंर्षयत्यवाशृङ्गो भंवति वृष्टिंमेवास्मै नियंच्छिति॥ (52)

____[८]शृणातिं मिथुनानांन्नयति यच्छति॥]

वर्रण १ सृषुवाणम्त्राद्यत्रोपां नम्थ्स एतां वार्रुणीं कृष्णां वृशामंपश्यत्ता १ स्वार्यं देवतांया आऽलंभत ततो वै तम्त्राद्यमुपां नम्द्यमलं मृत्राद्यांय सन्तं मृत्राद्यत्रोप नम्थ्स एतां वार्रुणीं कृष्णां वृशामालंभेत वर्रुणमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावति स एवास्मा अत्रं प्रयंच्छत्यन्नादः (53)

पुव भंवति कृष्णा भंवति वारुणी ह्यंषा देवतंया समृद्धौ मैत्र क्षेतमालंभेत वारुणं कृष्णम्पाश्चौषंधीनाश्च स्यावन्नंकामो मैत्रीर्वा ओषंधयो वारुणीरापोऽपां च खलु वा ओषंधीनां च रस्मुपंजीवामो मित्रावरुणावेव स्वेन भाग्धेयेनोपंधावित तावेवास्मा अन्नं प्रयंच्छतोऽन्नाद एव भंवति (54)

अपाश्चौषंधीनाश्च सुन्धावालंभत उभयस्यावंरुद्धौ विशांखो यूपो भवित द्वे ह्यंते देवते समृद्धौ मैत्र श्वेतमा लंभेत वारुणं कृष्णं ज्योगांमयावी यन्मैत्रो भविति मित्रेणैवास्मै वरुण शमयित यद्वारुणः साक्षादेवैनं वरुणपाशान्मंश्चत्युत यदीतासुर्भविति जीवंत्येव देवा वै पृष्टिन्नाविन्दन्न (55)

तां मिथुनेऽपश्यन्तस्यान्न समेराधयन्तावृश्विनांवब्रूतामावयोव एषा मैतस्याः वदद्धमिति साऽश्विनोरेवाभंवद्यः पृष्टिंकामः स्याथ्स एतामांश्विनीं यमीं वृशामालंभेताश्विनांवेव स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावित तावेवास्मिन्पृष्टिं धत्तः पृष्यंति प्रजयां पृश्मिः॥ (56)

अन्नादौँऽन्नाद एव भंवत्यविन्द्न्यश्चंचत्वारिश्शच।।॥———[९] आश्विनन्धूम्रलेलाम्मालेभेत् यो दुर्ब्रोह्मण्ः सोम्ं पिपांसेदश्विनौ वै देवानामसोमपावास्तान्तौ पश्चा सोमपीथं प्राप्नुताम्श्विनांवेतस्यं देवता यो दुर्ब्राह्मणः सोमं पिपांसत्यश्विनांवेव स्वेनं भागधेयेनोपंधावित तावेवास्में सोमपीथं प्रयंच्छत् उपैन॰ सोमपीथो नंमित यद्धूम्रो भवंति धूम्रिमाणंमेवास्मादपंहन्ति लुलामः (57)

भ्वति मुख्त एवास्मिन्तेजों दधाति वायव्यंङ्गोमृगमालंभेत् यमजंघ्रिवा समिभिश संयुरपूंता वा एतं वागृंच्छति यमजंघ्रिवा समिभिश संन्ति नैष ग्राम्यः पृशुर्नार्ण्यो यद्गोमृगो नेवैष ग्रामे नारंण्ये यमजंघ्रिवा समिभिश संन्ति वायुर्वे देवानां प्वित्रं वायुमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावति स एव (58)

पुनं प्वयति परांची वा पृतस्मैं व्युच्छन्ती व्यंच्छिति तमः पाप्मानं प्रविंशति यस्यांश्विने शस्यमाने सूर्यो नाविर्भवंति सौर्यं बंहुरूपमालंभेतामुमेवादित्य स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावित स पुवास्मात्तमः पाप्मान्मपंहन्ति प्रतीच्यंस्मै व्युच्छन्ती व्यंच्छत्यप् तमः पाप्मान हते॥ (59)

लुलामुः स पुव षद्वंत्वारि १शच॥____

[۶ ه]

इन्हें वो विश्वतस्परीन्द्रन्नरो मर्रुतो यद्धं वो दिवो या वः शर्म। भरेष्विन्द्र स्मृहव स्हवामहेऽ स्होम्च स् सुकृतं दैव्यं जनम्। अग्निं मित्रं वर्रुण स्मातये भगन्द्यावापृथिवी म्रुतः स्वस्तये। ममत्तुं नः परिजमा वस्रहा ममत्तु वातो अपां वृषंण्वान्। शिशीतिमिन्द्रापर्वता युवन्नस्तन्नो विश्वं विरवस्यन्तु देवाः। प्रिया वो नामं (60)

हुवे तुराणांम्। आयत्तृपन्मंरुतो वावशानाः। श्रियसे कं भानुभिः सम्मिंमिक्षिरे ते रिश्मिभिस्त ऋकंभिः सुखादयः। ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः। अग्निः प्रथमो वस्भिनी अव्याथ्सोमो रुद्रेभिर्भिरक्षतु त्मनां। इन्द्रो मुरुद्धिर्ऋतुधा कृणोत्वादित्यैनी वरुणः सर्शिशातु। सन्नो देवो वस्भिरग्निः सम् (61)

सोमंस्तनूभी रुद्रियांभिः। समिन्द्रों मुरुद्धिर्युज्ञियैः समादित्यैर्नो वर्रुणो अजिज्ञिपत्। यथांऽऽदित्या वसुंभिः सम्बभूवुर्मुरुद्धीं रुद्राः समजानताभि। एवा त्रिणामुन्नह्रंणीयमाना विश्वे देवाः समनसो भवन्तु। कुत्रांचिद्यस्य समृतौ रुण्वा नरों नृषदंने। अर्हन्तश्चिद्यमिन्धते संञ्जनयंन्ति जन्तवंः। सं यदिषो वनांमहे स॰ ह्व्या मानुषाणाम्। उत द्युम्नस्य शवंसः (62)

ऋतस्यं रिष्मिमादंदे। यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवंता मृड्यन्तंः। आवोऽर्वाची सुमृतिर्ववृत्याद् १ होश्चिद्या वंरिवोवित्तराऽसंत्। शुचिर्पः सूयवंसा अदंब्य उपंक्षेति वृद्धवंयाः सुवीरंः। निकृष्टं घ्रन्त्यन्तितो न दूराद्य आदित्यानां भवंति प्रणीतौ। धारयंन्त आदित्यासो जगथस्था देवा विश्वंस्य भुवंनस्य गोपाः। दीर्घाधियो रक्षमाणाः (63)

असुर्यमृतावांनश्चयंमाना ऋणानि। तिस्रो भूमींधारयन्त्रीश् रुत द्यूत्रीणि वृता विदर्थे अन्तरेषाम्। ऋतेनांदित्या मिहं वो मिह्त्वन्तदेर्यमन्वरुण मित्र चारु। त्यान्नु क्षृत्रियाश् अवं आदित्यान् यांचिषामहे। सुमृडीकाश् अभिष्टंये। न देक्षिणा विचिकिते न स्व्या न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा। पाक्यांचिद्वसवो धीर्यांचित् (64)

युष्मानीतो अभयं ज्योतिंरश्याम्। आदित्यानामवंसा नूतंनेन सक्षीमिह शर्मणा शन्तंमेन। अनागास्त्वे अंदितित्वे तुरासं इमं यज्ञन्दंधतु श्रोषंमाणाः। इमं में वरुण श्रुधी हवंम्द्या चं मृडय। त्वामंवस्युराचंके। तत्त्वां यामि ब्रह्मणा वन्दंमान्स्तदाशांस्ते यजंमानो ह्विर्भिः। अहेडमानो वरुणेह बोद्ध्युरुंश रस् मा न् आयुः प्रमोषीः॥ (65)

नामाग्निः स॰ शवंसो रक्षंमाणा धीर्याचिदेकान्नपंश्राशचं॥———[११]

॥द्वितीयः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां द्वितीयकाण्डे द्वितीयः प्रश्नः॥

प्रजापंतिः प्रजा अंसृजत् ताः सृष्टा इंन्द्राग्नी अपांगूहताः सोंऽचायत्प्रजापंतिरिन्द्राग्नी वे में प्रजा अपांघुक्षतामिति स एतमैंन्द्राग्नमेकांदशकपालमपश्यत्तन्निरंवप्तावंस्मे प्रजाः प्रासांधयतामिन्द्राग्नी वा एतस्यं प्रजामपंगूहतो योऽलं प्रजाये सन्प्रजान्न विन्दतं ऐन्द्राग्नमेकांदशकपालन्निर्वपेत्प्रजाकांम इन्द्राग्नी (1)

एव स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावति तावेवास्मैं प्रजां प्रसाधयतो विन्दतें प्रजामैंन्द्राग्नमेकांदशकपालित्रिवंपेथ्स्पर्छमानः क्षेत्रे वा सजातेषुं वेन्द्राग्नी एव स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावित ताभ्यांमेवेन्द्रियं वीर्यं भ्रातृंव्यस्य वृङ्के वि पाप्मना भ्रातृं व्येण जयतेऽप वा एतस्मांदिन्द्रियं वीर्यं क्रामित यः

संङ्गाममुंपप्रयात्यैन्द्राग्नमेकादशकपालन्निः (2)

(3)

तावेवास्मिन्निन्द्रयं वीर्यं धत्तः सहेन्द्रियेणं वीर्येणोपप्रयाति जयंति त र संङ्गामं वि वा एष इंन्द्रियेणं वीर्येणर्द्धाते यः संङ्गामञ्जयंत्यैन्द्राग्नमेकांदशकपालन्निर्वपेथ्सङ्गामञ्जित्वेन्द्राग्नी एवं स्वेनं भागधेयेनोपंधावति तावेवास्मिन्निन्द्रियं वीर्यम्

वपेथ्सङ्गामम्पप्रयास्यन्निन्द्राग्नी एव स्वेनं भागधेयेनोपंधावित

धत्तो नेन्द्रियेणं वीर्येण व्यृंद्धतेऽप वा एतस्मांदिन्द्रियं वीर्यङ्कामति य एति जनतांमैन्द्राग्नमेकांदशकपालन्निर्वपेञ्जनतांमे एव स्वेनं भागधेयेनोपंधावति तावेवास्मिन्निन्द्रयं वीर्यं धत्तः सहेन्द्रियेणं वीर्येण जनतांमेति पौष्णं चरुमनुनिर्वपेतपूषा वा इंन्द्रियस्यं वीर्यस्यानुप्रदाता पूषणंमेव (4)

स्वेनं भागधेयेनोपंधावति स एवास्मां इन्द्रियं वीर्यमनु प्रयंच्छति क्षेत्रपृत्यं चुरुं निर्वपेञ्चनतामागत्येयं वै क्षेत्रंस्य पतिंरस्यामेव प्रतिंतिष्ठत्यैन्द्राग्नमेकांदशकपालमुपरिंष्टान्निर्वपेदस प्रंतिष्ठायेन्द्रियं वीर्यमुपरिष्टादात्मन्धंत्ते॥ (5)

ऽतिपादयैंत्पथो वा एषोऽद्धपंथेनैति यो दंर्शपूर्णमासयाजी सन्नमावास्यौं वा पौर्णमासीं वाऽतिपादयंत्यग्निमेव पंथिकृत् इस्वेनं भाग्धेयेनोपंधावित स एवैन्मपंथात्पन्थामिपं नयत्यनुङ्गान्दक्षिणा वही ह्यंष समृद्धा अग्नये व्रतपंतये (6)

दंर्शपूर्णमासयाजी सन्नमावास्याः वा पौर्णमासीं वां-

प्रजाकाम इन्द्राग्नी उपप्रयात्यैन्द्राग्नमेकांदशकपालृत्रिर्वीर्यं पूषणमेवैकात्रचंत्वारिष्शचं॥1।॥[१]

अग्नयें पथिकृतें पुरोडाशंमष्टाकंपालन्निवंपेद्यो

पुरोडाशंमृष्टाकंपालृत्तिर्वपेद्य आहिताग्निः सन्नंबृत्यिमेव चरेद्गिमेव ब्रुतपंतिङ् स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावित् स पुवैनंब्बुँतमालंभयित् ब्रत्यो भवत्यग्नये रक्षोघ्ने पुरोडाशंमृष्टाकंपालृत्तिर्वपेद्य रक्षारंसि सचेरन्नग्निमेव रक्षोहणङ् स्वेनं भागधेयेनोपंधावित स एवास्माद्रक्षारस्यपंहन्ति

निशिंतायान्त्रिवंपेत् (7)
निशिंताया्र् हि रक्षार्श्स प्रेरतें सम्प्रेणांन्येवैनांनि हिन्ति परिश्रिते याजयेद्रक्षंसामनंन्ववचाराय रक्षोघ्री याजयानुवाक्ये भवतो रक्षंसा्र् स्तृत्यां अग्नये रुद्रवंते

पुरोडाशंमष्टाकंपालन्निर्वपेदभिचरंन्नेषा वा अंस्य घोरा तनूर्यद्रुद्रस्तस्मां एवेनमावृंश्चति ताजगार्तिमार्च्छंत्यग्नयं सुरभिमते पुरोडाशंमष्टाकंपालन्निर्वपेद्यस्य गावो वा पुरुषाः (8)

वा प्रमीयेर्न् यो वा बिभीयादेषा वा अस्य

भेषज्यां तनूर्यथ्सुंरभिमती तयैवास्में भेषजङ्कंरोति सुरभिमते भवति पूतीगुन्धस्यापंहत्या अग्नये क्षामंवते पुरोडाशंमुष्टाकंपालुन्निवंपेथ्सङ्गामे सं यत्ते भाग्धेयेंनैवैन ई शमयित्वा परानिभ निर्दिशति यमवेरेषां विद्धान्ति जीवंति स यं परेषां प्र स मीयते जयति त संङ्गामम् (9)

अभि वा एष एतानुंच्यति येषां पूर्वापुरा अन्वश्चः प्रमीयंन्ते पुरुषाहुतिर्ह्यस्य प्रियतंमाऽग्रये क्षामंवते पुरोडाशंमुष्टाकंपालुन्निर्वपद्भाग्धेयेनैवैन १ शमयति नैषां पुरा-ऽऽयुषोऽपंरः प्रमीयतेऽभि वा एष एतस्यं गृहानुंच्यति यस्यं

गृहान्दहंत्यग्रये क्षामंवते पुरोडाशंमष्टाकंपालन्निर्वपद्भागधेयेंनैवैन

शमयति नास्यापंरङ्गृहान्दंहति॥ (10)

ब्रतपंतये निश्तितायानिर्विपेत्पुरुषाः सङ्ग्रामत्र च्त्वारि च॥———[२]
अग्नये कामाय पुरोडाशम्षाकपालनिर्वपेदाङ्कामो

नोपनमेंद्ग्रिमेव काम् इ स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावित स एवैन्ङ्कामेन समर्द्धयत्युपैन्ङ्कामो नमत्यग्नये यविष्ठाय पुरोडाश्मेष्टाकंपाल्तिर्वपेथ्स्पर्द्धमानः क्षेत्रं वा सजातेषुं वाऽग्निमेव यविष्ठइ स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावित तेनैविन्द्रियं

वीर्यं भ्रातृंव्यस्य (11)

युवते वि पाप्मना भ्रातृं व्येण जयतेऽग्नये यविष्ठाय पुरोडाशंमुष्टाकंपालुन्निर्वपेदभिचर्यमाणोऽग्निमेव यविष्ठ्र स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावति स एवास्माद्रक्षा श्रेसि यवयति नैनंमिन् चर्रन्थस्तृणुतेऽग्नय आयुंष्मते पुरोडाशंमुष्टाकंपालुन्निर्वपेष कामयेत् सर्वमायुंरियामित्यग्निमेवायुंष्मन्त्र स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावति स एवास्मिन्नं (12)

आयुंर्दधाति सर्वमायुंरेत्युग्नये जातवेदसे पुरोडाशंमुष्टाकंपाल ऽग्निमेव जातवेदस् स्वनं भाग्धेयेनोपंधावति स एवैनं भूतिंङ्गमयति भवंत्येवाग्नये रुकांते पुरोडाशंमष्टाकंपालन्निवंपेद्रुव

ऽग्निमेव रुक्मन्तः स्वेनं भागधेयेनोपंधावति स

एवास्मिन्नुचंन्दधाति रोचंत एवाग्नये तेर्जस्वते पुरोडाशम्

(13)

अष्टाकंपालृत्तिवंपृत्तेजंस्कामोऽग्निमेव तेजंस्वन्त्र स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावित स एवास्मिन्तेजो दधाित तेज्स्व्येव भंवत्यग्नये साह्न्त्यायं पुरोडाशंम्ष्टाकंपालृत्तिवंपृथ्सीक्षंमाणो-ऽग्निमेव साह्न्त्य स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावित तेनैव सहते य सीक्षंते॥ (14)

स्वनं भाग्धेयेनोपंधावति स एवैन्मर्न्नवन्तङ्करोत्यन्नंवानेव भंवत्यग्नयेंऽन्नादायं पुरोडाशंमुष्टाकंपाल न्निर्वपेद्यः कामयेतान्नादः स्यामित्यग्निमेवान्नादः स्वनं भाग्धेयेनोपंधावति स एवैनंमन्नादङ्कंरोत्यन्नादः (15) एव भंवत्यग्नयेऽन्नंपतये पुरोडाशंमुष्टाकंपालन्निर्वपेद्यः

अग्रयेऽन्नवते पुरोडाशंमष्टाकंपालन्निर्वपेद्यः कामयेतान्नवान्थ्य

कामयेतान्नंपतिः स्यामित्यग्निमेवान्नंपति इ स्वेनं भागधेयेनोपंधा

स एवैनमन्नंपतिङ्करोत्यन्नंपतिरेव भंवत्यग्रये पर्वमानाय

ज्योगांमयावी यदग्रये पर्वमानाय निर्वपति प्राणमेवास्मिन्तेन

पुरोडाशंमष्टाकंपालन्निवंपेदग्नयं पावकायाग्नये

दधाति यदग्नयें (16)

पावकाय वाचंमेवास्मिन्तेनं दधाति यदग्रये श्चंय आयुंरेवास्मिन्तेनं दधात्युत यदीतासुर्भवंति जीवंत्येवैतामेव निर्वपे चक्षुंष्कामो यदग्रये पर्वमानाय निर्वपंति प्राणमेवास्मिन्तेनं दधाति यदग्रये पावकाय वाचमेवास्मिन्तेनं दधाति यदग्रये शुचंये चक्ष्रंवास्मिन्तेनं दधाति (17) उत यद्यन्धो भवंति प्रैव पंश्यत्यग्नयं पुत्रवंते

पुरोडाशंमुष्टाकंपालुन्निवंपेदिन्द्रांय पुत्रिणं पुरोडाश्मेकांदशकपा

प्रजाकांमोऽग्निरेवास्मैं प्रजां प्रजनयंति वृद्धामिन्द्रः

प्रयंच्छत्यग्रये रसंवतेऽजक्षीरे चरुं निवंपेद्यः कामयेत

रसंवान्थस्यामित्यग्निमेव रसंवन्त इंस्वेनं भागधेयेनोपंधावति रसंवानेव भंवत्यजक्षीरे भंवत्याग्नेयी वा एषा यदुजा साक्षादेव रसमवंरुन्धेऽग्नये वसुंमते पुरोडाशंमष्टाकंपालन्निवंपेद कामयेत वसुंमान्थ्स्यामित्यग्निमेव वसुंमन्त्र स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावित स एवैनं वसुंमन्तङ्करोति वसुंमानेव भंवत्यग्नये वाज्ञस्ते पुरोडाशंमुष्टाकंपालृन्निर्वपेथ्सङ्गामे सं यत्ते वाजम् (19)

वा एष सिंसीर्षित यः संङ्ग्रामञ्जिगीषत्यग्निः खलु वे देवानां वाज्रसृद्ग्निमेव वाज्रसृत्र् स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावित धावंति वाज्र हिन्तं वृत्रञ्जयंति तः संङ्ग्राममथो अग्निरिव न प्रतिधृषे भवत्यग्नयेऽग्निवते प्रोडाशंम्ष्टाकंपाल्तिर्वपेद्यस्याग्नाव्ग्निमंभ्युद्धरेयुर्निर्दिष्टभागो वा एतयोर्न्योऽनिर्दिष्टभागोऽन्यस्तौ सम्भवंन्तौ यजंमानम् (20)

अभिसम्भंवतः स ईंश्वर आर्तिमार्तोर्यद्म्ययेंऽग्निवतें निर्वपंति भाग्धेयेंनैवैनौं शमयति नार्तिमार्छति यजंमानो-ऽम्नये ज्योतिंष्मते पुरोडाशंमुष्टाकंपालृन्निर्वपेद्यस्याग्निरुद्धृतो-ऽहुंतेऽग्निहोत्र उद्घायेदपंर आदीप्यांनूद्धृत्य इत्यांहुस्तत्तथा न कार्यं यद्घांग्धेयंम्भि पूर्व उद्धियते किमपंरोऽभ्युत् (21) हियेतेति तान्येवावक्षाणांनि सन्निधायं मन्थेदितः प्रथमश्रंज्ञे अग्निः स्वाद्योनेरिधं जातवेदाः। स गांयित्रया त्रिष्टुभा जगंत्या देवेभ्यों हृव्यं वंहतु प्रजानन्निति छन्दोभिरेवैन्ड् स्वाद्योनेः प्रजनयत्येष वाव सौ-ऽग्निरित्यांहुज्योतिस्त्वा अंस्य परांपतित्मिति यद्ग्रये ज्योतिष्मते निर्वपंति यदेवास्य ज्योतिः परांपतित्नतदेवावंरुन्थे। (22)

करोत्यन्नादो दंधाति यद्ग्रये शुचंये चक्षुरेवास्मिन्तेनं दधाति करोति वाजं यजमानमुदेवास्य

वैश्वान् रन्द्वादेशकपालृ त्रिवंपद्वारुणं च्रुन्दंधिकाव्यणे च्रुमंभिशस्यमानो यद्वैश्वान् रो द्वादेशकपालो भवंति सं वथ्सरो वा अग्निवेश्वान् रः सं वथ्सरेणैवैन ई स्वदयत्यपं पापं वर्ण ई हते वारुणेनैवैनं वरुणपाशान्मुं श्वति दिधकाव्यणां पुनाति हिर्णयन्दिक्षणा पवित्रं वै हिर्ण्यं

पुनात्येवैनमाद्यंमस्यान्नं भवत्येतामेव निर्वपेत्प्रजाकांमः सं

वथ्सरः (23) वा एतस्याशाँन्तो योनिं प्रजाये पशूनान्निर्दहित् योऽलं प्रजाये सन्प्रजान्न विन्दते यहैंश्वानरो द्वादंशकपालो भवंति सं वथ्सरो वा अग्निर्वेश्वान्रः सं वथ्सरमेव भांग्धेयंन शमयित् सौंऽस्मै शान्तः स्वाद्योनैंः प्रजां प्रजनयित वारुणेनैवैनं वरुणपाशान्मुंश्वित दिधिकाळणां पुनाति हिरंण्यन्दिक्षणा पवित्रं वै हिरंण्यं पुनात्येवैनम्ं (24)

विन्दतें प्रजां वैश्वान्रन्द्वादेशकपालं निर्वपेत्पुत्रे जाते

यद्रष्टाकंपालो भवंति गायत्रियैवैनं ब्रह्मवर्चसेनं पुनाति यत्रवंकपालिस्रिवृतैवास्मिन्तेजो दधाति यद्दर्शकपालो विराजैवास्मिन्नन्नाद्यंन्दधाति यदेकांदशकपालिस्रिष्टुभैवास्मिन्निन्द्रयं दधाति यद्वादंशकपालो जगत्यैवास्मिन्पशून्दधाति यस्मिन्नात एतामिष्टिन्निर्वपंति पूतः (25)

पुव तेज्रस्त्र्यंन्नाद इन्द्रियावी पंशुमान्भेवत्यव वा पुष स्वर्गालोकाच्छिद्यते यो दर्शपूर्णमासयाजी सन्नमावास्याः वा पोर्णमासी वांऽतिपादयंति सुवर्गाय हि लोकायं दर्शपूर्णमासाविज्येते वैश्वानरन्द्वादंश-

वथ्सरो वा अग्निर्वैश्वानुरः सं वथ्सरमेव प्रीणात्यथी सं वथ्सरमेवास्मा उपद्धाति सुवर्गस्य लोकस्य समध्यै (26)

कपालिन्नवंपेदमावास्याः वा पौर्णमासीं वांऽतिपाद्यं सं

अथों देवतां एवान्वारभ्यं सुवृर्गल्लांकमेति वीर्हा वा एष देवानां योंऽग्निमुद्धासयेते न वा एतस्यं ब्राह्मणा ऋतायवेः पुराऽन्नमक्षन्नाग्नेयमष्टाकंपालन्निर्वपेद्वैश्वानरन्द्वादंशकपालमग्निमुं

यद्ष्टाकंपालो भवंत्यष्टाक्षंरा गायत्री गांयत्रौंऽग्निर्यावांनेवाग्निस्तर आतिथ्यक्कंरोत्यथो यथा जनं यतेऽवसङ्करोति तादक (27)

पुव तद्वादेशकपालो वैश्वान् भेवित द्वादेश मासाः सं वथ्सरः सं वथ्सरः खलु वा अग्नेर्योिनः स्वामेवैनं योनिङ्गमयत्याद्यंमस्यान्नं भवित वैश्वान् रन्द्वादंशकपालि न्निर्वपेन्मा सप्तकंपालङ्गामंकाम आहवनीये वैश्वान् रमिश्रयित गार्हंपत्ये मारुतं पापवस्यसस्य विधृत्ये द्वादंशकपालो वैश्वान् भेवित द्वादंश मासाः सं वथ्सरः सं वथ्सरेणेवासमें सजाता इश्चांवयित मारुतो भेवित (28)

मुरुतो वै देवानां विशो देवविशेनैवास्मै मनुष्यविशमवंरुन्धे सप्तकपालो भवति सप्तगंणा वै मुरुतो गण्श एवास्मै सजातानवंरुन्धेऽनूच्यमान् आसांदयति विशंमेवास्मा अनुवर्त्मानङ्करोति॥ (29)

प्रजाकांमः सं वथ्सरः पुनात्येवैनं पूतः समध्ये तादङ्कांकृतो भंवत्येकान्नत्रिष्शचं॥—[५]

आदित्यं चुरुं निर्वपेथ्सङ्ग्राममुपप्रयास्यन्नियं वा

अदितिरस्यामेव पूर्वे प्रतितिष्ठन्ति वैश्वानरन्द्वादंशकपालन्निर्वपेद

सं वथ्सरो वा अग्निर्वैश्वान्रः सं वथ्सरः खलु वे देवानामायतनमेतस्माद्वा आयतनाद्देवा असुरानजयन् यद्वैश्वान्रन्द्वादेशकपालन्निर्वपति देवानामेवायतने यतते जयति त॰ संङ्गाममेतस्मिन्वा एतौ मृंजाते (30) यो विद्विषाणयोरन्नमित्तं वश्वान्रन्द्वादेशकपालन्निर्वपद्विद्विषा

सं वथ्सरो वा अग्निर्वैश्वान्रः सं वथ्सरस्वंदितमेवाति नास्मिन्मृजाते सं वथ्सराय वा एतौ सममाते यो सममाते तयोर्यः पूर्वोऽभिद्रुह्यति तं वरुणो गृह्णाति वैश्वान्रन्द्वादेशकपालन्निर्वपेथ्सममानयोः पूर्वोऽभिद्रुह्यं सं वथ्सरो वा अग्निर्वैश्वान्रः सं वथ्सरमेवास्वा निर्वरुणम् (31)

प्रस्तांद्भिद्रुंह्यति नैनं वर्रुणो गृह्णात्यार्व्यं वा एष प्रतिंगृह्णाति योऽविं प्रतिगृह्णातिं वैश्वान्रन्द्वादंशकपालुन्निर्वपेदविं प्रतिगृह्यं सं वथ्सरो वा अग्निर्वेश्वान्रः सं वथ्सरस्वंदितामेव प्रतिंगृह्णाति नार्व्यं प्रतिंगृह्णात्यात्मनो वा एष मात्रांमाप्नोति य उंभयादेत्प्रतिगृह्णात्यर्थं वा पुरुषं वा वैश्वानरन्द्वादंशकपालन्निवंधे (32)

प्रतिगृह्यं सं वथ्सरो वा अग्निर्वेश्वानरः सं वथ्सरस्वंदितमेव प्रतिंगृह्णाति नात्मनो मात्रांमाप्रोति वैश्वानरन्द्वादंशकपालन्निर्वपेश वथ्सरो वा अग्निर्वैश्वानरो यदा खलु वै सं वथ्सरञ्जनतांयाश्चरत्य स धंनार्घो भंवति यहैंश्वानरन्द्वादंशकपालन्निर्वपंति सं वथ्सरसातामेव सनिम्भि प्रच्यंवते दानंकामा अस्मै प्रजा भंवन्ति यो वै सं वथ्सरम् (33)

प्रयुज्य न विंमुश्चत्यंप्रतिष्ठानो वै स भंवत्येतमेव वैश्वानरं पुनरागत्य निर्वपेद्यमेव प्रयुङ्के तं भागधेयेन विमुंश्रति प्रतिष्ठित्यै यया रख्यों तमाङ्गामाजेतां भ्रातृं व्याय प्रहिंणुयान्निर्ऋतिमेवास्मै प्रहिंणोति॥ (34) -[६] निर्वरुणं वंपेदुभयादद्यो वै सं वथ्सर पद्गिर्शशच।]

ऐन्द्रं चरुं निवंपेत्पशुकांम ऐन्द्रा वै पृशव इन्द्रंमेव

स्वेन भागधेयेनोपंधावति स एवास्मै पशून्प्रयंच्छति

पशुमानेव भवति चुरुर्भवति स्वादेवास्मै योनैंः

पश्नम्प्रजंनयतीन्द्रांयेन्द्रियावंते पुरोडाशमेकांदशकपालन्निवंपेत्प

इन्द्रियं वै पशव इन्द्रंमेवेन्द्रियावंन्त इ स्वेनं भागधेयेनोपं

धावति सः (35)

भवंत्येवेन्द्रांय (37)

पुवास्मां इन्द्रियं पृश्न्य्यच्छिति पशुमानेव भवतीन्द्राय धर्मवंते पुरोडाश्मेकांदशकपालि विषेद्वह्मवर्चसकांमो ब्रह्मवर्चसं वै धर्म इन्द्रंमेव धर्मवन्त्र स्वनं भाग्धेयेनोपंधावित स पृवास्मिन्ब्रह्मवर्चसन्दंधाति ब्रह्मवर्चस्येव भवतीन्द्रांयार्कवंते पुरोडाश्मेकांदशकपालि विषेद्रत्रंकामोऽर्को वै देवानामन्त्रिमन्द्रं स्वेनं भाग्धेयेन (36)

उपंधावति स एवास्मा अन्नं प्रयंच्छत्यन्नाद एव भंवतीन्द्रांय

घर्मवंते पुरोडाशमेकांदशकपालन्निवंपेदिन्द्रांयेन्द्रियावंत

इन्द्रांयार्कवंते भूतिंकामो यदिन्द्रांय घर्मवंते निर्वपंति शिरं

एवास्य तेनं करोति यदिन्द्रांयेन्द्रियावंत आत्मानंमेवास्य

तेनं करोति यदिन्द्रांयार्कवंते भूत एवान्नाद्ये प्रतितिष्ठति

युरहोमुचे पुरोडाशुमेकांदशकपालुन्निर्वपेद्यः पाप्मनां

सप्त चं।7।।

मृधोऽभि प्रवेपेरत्राष्ट्राणि वाऽभिसंमियुरिन्द्रंमेव वैमृध इस्वेन भाग्धेयेनोपंधावित स एवास्मान्मृधः (38)
अपंहन्तीन्द्रांय त्रात्रे पुरोडाश्मेकांदशकपालृत्रिवंपद्धद्धो वा परियत्तो वेन्द्रंमेव त्रातार् स्वेन भाग्धेयेनोपंधावित स एवेन त्रायत्त इन्द्रांयार्कश्वमेधवंत पुरोडाश्मेकांदशकपालृत्रिवंपद्ध महाय्ज्ञो नोपनमेंदेते व महाय्ज्ञस्यान्त्ये तन यदंकिश्वमेधाविन्द्रं स्वेन भाग्धेयेनोपंधावित स एवास्मां अन्ततो महाय्ज्ञश्चांवयृत्युपैन महाय्ज्ञो नमिति॥ (39)
इत्रियावंन् इस्वेन भाग्धेयेनोपंधावित सांप्रकिवंन् इस्वेन भाग्धेयेनेवन्द्रांयास्मान्मृधाँऽस्मे

गृहीतः स्यात्पाप्मा वा अश्ह इन्द्रमेवाश्होमुच् ध्

स्वेनं भागधेयेनोपंधावति स एवैनं पाप्मनोऽ इंसो

मुश्रृतीन्द्रांय वैमृधायं पुरोडाशमेकांदशकपालन्निर्वपेद्यं

इन्द्रंमेवान्वृंजु र् स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्मैं सजाताननुंकान्करोति ग्राम्येव भवतीन्द्राण्ये चुरुं निर्विपेद्यस्य सेनाऽस रेशितेव स्यादिन्द्राणी वै सेनांये देवतेन्द्राणीमेव

इन्द्रायान्वृंजवे पुरोडाशमेकांदशकपालन्निर्वपद्ग्रामंकाम

स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावति सैवास्य सेना् सङ्श्यंति बल्बंजानिपं (40)

इद्धो सर्त्रह्येद्गीर्यत्राधिष्कन्ना न्यमेंहृत्ततो बल्बेजा उदितिष्ठन्गवांमेवैनं न्यायमंपिनीय गा वेदयतीन्द्रांय मन्युमते मनंस्वते पुरोडाश्मेकांदशकपालृन्निर्वपेथ्सङ्गामे सं यंत्त इन्द्रियेण वै मन्युना मनंसा सङ्गामञ्जयतीन्द्रमेव मन्युमन्तं मनंस्वन्त स्वनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्मिन्निन्द्रियं मन्युं मनो दधाति जयंति तम् (41)

सङ्गाममेतामेव निर्वपेद्यो हृतमंनाः स्वयं पांप इव् स्यादेतानि हि वा एतस्मादपंक्रान्तान्यथैष हृतमंनाः स्वयं पांप इन्द्रंमेव मंन्युमन्तं मनस्वन्त् इ स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावित् स एवास्मिन्निन्द्रियं मृन्युं मनो दधाित् न हृतमंनाः स्वयं पांपो भवतीन्द्रांय दात्रे पुंरोडाश्मेकांदशकपालिन्निर्वपेद्यः कामयेत् दानंकामा मे प्रजाः स्युंः (42)

इतीन्द्रंमेव दातार्ड् स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावित स एवास्मै दानंकामाः प्रजाः करोति दानंकामा अस्मै प्रजा भंवन्तीन्द्रांय प्रदात्रे पुरोडाश्मेकांदशकपालृत्रिवंपेद्यस्मै प्रत्तंमिव सन्न प्रंदीयेतेन्द्रंमेव प्रंदातार इस्वेनं भागधेयेनोपंधावति स एवास्मै प्रदापयतीन्द्रांय सुत्राम्णे पुरोडाशमेकांदशकपालन्निर्वपेदपंरुद्धो वा (43) अपुरुद्धमानो वेन्द्रमेव सुत्रामाण इस्वेनं भागधेयेनोपंधावति

स एवैनंत्रायतेऽनपरुद्धो भंवतीन्द्रो वै सदङ् देवतांभिरासीथ्स न व्यावृतंमगच्छथ्स प्रजापंतिमुपांधावत्तस्मां एतमैन्द्रमेकांदशक मंदधाच्छक्वंरी याज्यानुवाक्यें अकरोद्वज्रो वै शक्वंरी स एनं

वज्रो भूत्यां ऐन्ध (44) सों उभवथ्सों उबिभेद्भतः प्र मां धक्ष्यतीति स प्रजापंतिं पुनरुपांधावथ्स प्रजापंतिः शक्वंयां अधिं रेवतीन्निरंमिमीत

शान्त्या अप्रदाहाय योऽलई श्रिये सन्थ्सदङ्ख्संमानैः स्यात्तस्मां एतमैन्द्रमेकांदशकपालन्निवंपेदिन्द्रंमेव स्वेनं भागधेयेनोपंधावति स एवास्मिन्निन्द्रियन्दंधाति रेवतीं पुरोनुवाक्यां भवति शान्त्या अप्रदाहाय शक्वरी याज्यां वज्रो

वै शक्करी स एंनं वज्रो भूत्यां इन्धे भवंत्येव॥ (45) अपि तक्ष स्युंर्वैन्ध भवति चतुंर्दश च॥

आग्नावैष्णवमेकांदकपालन्निर्वपेदभिचर्न्थ्सरंस्वत्याज्यंभागा

स्याद्वांर्हस्पृत्यश्चरुर्यदांग्रावैष्ण्व एकांदशकपालो भवंत्यग्निः सर्वा देवता विष्णुंर्यज्ञो देवतांभिश्चेवैनं यज्ञेनं चाभिचंरित सरंस्वत्याज्यंभागा भवित वाग्वै सरंस्वती वाचैवैनंमभिचंरित बार्हस्पृत्यश्चरुर्भवित ब्रह्म वै देवानां बृह्स्पितुर्ब्बह्मंणैवैनंमभिचंरित (46)

प्रति वै प्रस्तांदिभ्चरंन्तम्भिचंरिन्त् द्वेद्वं पुरोनुवाक्यं कुर्यादित्प्रयंक्त्या एतयेव यंजेताभिचर्यमाणो देवतांभिरेव देवताः प्रतिचरित यज्ञेनं यज्ञं वाचा वाचं ब्रह्मणा ब्रह्म स देवतांश्चेव यज्ञं चं मद्ध्यतो व्यवंसपिति तस्य न कुतंश्चनोपां व्याधो भविति नैनंमिभ्चरंन्स्तृणुत आग्नावैष्ण्वमेकांदशकपालुन्निर्वपृद्धं यज्ञो न (47)

उपनमेंद्गिः सर्वा देवता विष्णुंर्यज्ञौऽग्निश्चैव विष्णुं च स्वेन भाग्धेयेनोपंधावित तावेवास्में यज्ञं प्रयंच्छत उपैनं यज्ञो नमत्याग्नावैष्णवं घृते चुरुं निर्वप्चक्षुंष्कामोऽग्नेर्वे चक्षुंषा मनुष्यां वि पंश्यन्ति यज्ञस्यं देवा अग्निश्चैव विष्णुं च स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावित तावेव (48)

अस्मि अक्षुंर्धत्त अक्षुंष्मानेव भंवति धेन्वै वा एतद्रेतो

यदाज्यंमनुडुहंस्तण्डुला मिथुनादेवास्मै चक्षुः प्रजनयति

घृते भंवति तेजो वै घृतन्तेज्रश्चसुस्तेजंसैवास्मै

तेज्श्रक्षुरवंरुन्ध इन्द्रियं वै वीर्यं वृङ्के भातृंच्यो यजमानो-

ऽयंजमानस्याद्धरकेल्पां प्रति निर्वपेद्भातृंव्ये यजंमाने

नास्यैन्द्रियम् (49) वीर्यं वृङ्के पुरा वाचः प्रवंदितोर्निर्वपेद्यावंत्येव वाक्तामप्रोदितां भ्रातृं व्यस्य वृङ्के तामस्य वाचं प्रवदेन्तीम्न्या वाचो ऽनु प्रवंदन्ति ता इंन्द्रियं वीर्यं यजंमाने दधत्याग्नावैष्णवमष्ट सवनस्योकाले सरस्वत्याज्यंभागा स्याद्वांर्हस्पत्यश्चरुर्यदष्टाकेष भवंत्यष्टाक्षंरा गायत्री गांयत्रं प्रांतः सवनं प्रांतः सवनमेव तेनाँप्रोति (50)

आग्नावैष्णवमेकांदशकपालन्निर्वपेन्मार्ख्यन्दिनस्य

मार्स्यन्दिनमेव सर्वनन्तेनौप्रोत्याग्नावैष्णवन्द्वादेशकपालन्निर्वपेतृत सरंस्वत्याज्यंभागा स्याद्वांर्हस्पत्यश्चरुर्यद्वादंशकपालो भवंति द्वादंशाक्षरा जगंती जागंतन्तृतीयसवनन्तृंतीयसवनमेव

सर्वनस्याकाले सरेस्वत्याज्येभागा स्याद्वांर्हस्पत्यश्चरुर्यदेकांदः

भवत्येकांदशाक्षरा त्रिष्टुत्रेष्टुंभं मार्द्धान्दिन संवनं

तेनाँप्रोति देवतांभिरेव देवताः (51)

प्रतिचरित युज्ञेनं युज्ञं बाचा वाचं ब्रह्मणा ब्रह्मं क्पालेरेव छन्दा रस्याप्नोति पुरोडाशैः सर्वनानि मैत्रावरुणमेकंकपालित्रिविपद्धशाये काले यैवासौ भ्रातृं व्यस्य वृशाऽनूं बन्ध्यां सो पृवेषेतस्यैकंकपालो भवति निह कृपालैः पृशुमर्हत्याप्तुम्॥ (52)

ब्रह्मंणैवैनंम्भिचंरित युज्ञो न ताबेबास्यैन्द्रियमाँप्रोति देवताः सप्तित्रिरंशच।१।॥——[९]

असावांदित्यो न व्यंरोचत् तस्मैं देवाः प्रायंश्चित्तिमैच्छुन्तस्मीं पृत सोमारौद्रं च्रुं निरंवपन्तेनैवास्मिन्नुचंमदधुर्यो ब्रह्मवर्च्सकांमः स्यात्तस्मां पृत सोमारौद्रं च्रुं निर्वपेथ्सोमंश्चेव रुद्रं च् स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावित तावेवास्मिन्ब्रह्मवर्च्सन्धंत्तो ब्रह्मवर्च्स्यंव भवित तिष्यापूर्णमासे निर्वपेद्रद्रः (53)

वै तिष्यः सोमः पूर्णमांसः साक्षादेव ब्रंह्मवर्चसमवंरुन्धे परिश्रिते याजयित ब्रह्मवर्चसस्य परिगृहीत्यै श्वेतायै श्वेतवंथसायै दुग्धं मंथितमाज्यं भवत्याज्यं प्रोक्षंणमाज्येन मार्जयन्ते यावंदेव ब्रंह्मवर्चसन्तथ्सर्वं ङ्करोत्यितं ब्रह्मवर्चसङ्किंयत्

इत्यांहुरीश्वरो दुश्चर्मा भिवतोरिति मान्वी ऋचौ धाय्ये कुर्याद्यद्वै किं च मनुरवदत्तद्वेषुजम् (54)

भेषजमेवास्में करोति यदि बिभीयादुश्चर्मा भविष्यामीति सोमापौष्णं चुरुं निर्वपेथ्सौम्यो वै देवत्या पुरुषः पौष्णाः पृशवः स्वयैवास्में देवत्या पृश्विस्त्वचंङ्करोति न दुश्चर्मा भवित सोमारौद्रं चुरुं निर्वपेत्प्रजाकांमः सोमो वै रेतोधा अग्निः प्रजानां प्रजनयिता सोमं एवास्मै रेतो दधांत्यग्निः पृजां प्रजनयित विन्दतें (55)

प्रजार सोंमारौद्रं चुरुं निर्वपदिभिचरंन्थ्सौम्यो वै देवतंया पुरुष एष रुद्रो यद्ग्निः स्वायां एवैनं देवतांयै निष्क्रीयं रुद्रायापि दधाति ताजगार्तिमार्च्छति सोमारौद्रं चुरुं निर्वपुत्रयोगांमयावी सोमं वा एतस्य रसो गच्छत्यग्निर शरीरं यस्य ज्योगामयंति सोमांदेवास्य रसंन्निष्क्रीणात्यग्नेः शरीरमृत यदि (56)

इतासुर्भवंति जीवंत्येव सोमारुद्रयोवां एतङ्गंसित रहोता निष्यिंदति स ईंश्वर आर्तिमार्तोरनु बान् होत्रा देयो विह्वर्वा अंनुङ्गान् विहुर्होता विह्निनेव विह्निमात्मान स्पृणोति सोमारौद्रं चुरुं निर्विपेद्यः कामयेत् स्वैंऽस्मा आयतेने भ्रातृं व्यं जनयेयमिति वेदिं परिगृह्यार्द्धमृंद्धन्याद्र्द्धन्नार्द्धं बर्रहिषेः स्तृणीयाद्र्द्धं नार्द्धमिष्ट्रास्यौभ्याद्द्याद्र्द्धं न स्व एवास्मां आयतेने भ्रातृं व्यं जनयति॥ (57)

रुब्रो भेषुजं विन्दते यदि स्तृणीयादुर्बन्द्वादेश च।१०॥———[१०] ऐन्द्रमेकादशकपालुन्निर्विपेन्मारुत स्प्तकपालुङ्गामेकाम् इन्द्रेश्चैव मुरुतंश्च स्वेनं भागुधेयेनोपं धावति त एवास्मे

इन्द्रेश्चैव मुरुतंश्च स्वेनं भागुधेयेनोपं धावित त एवास्में सजातान्प्रयंच्छन्ति ग्राम्यंव भंवत्याहवनीयं ऐन्द्रमधिश्रयित् गार्हंपत्ये मारुतं पांपवस्यसस्य विधृत्ये सप्तकंपालो मारुतो भंवित सप्तगंणा व मुरुतो गणुश एवास्में सजातानवंरुन्थेऽनूच्यमांन आसांदयित विशंमेव (58)

अस्मा अनुंवर्त्मानङ्करोत्येतामेव निर्वपेद्यः कामयेत क्षत्रायं च विशे चं समदंन्दद्धामित्यैन्द्रस्यांवद्यन्त्रूंयादिन्द्रायानुं ब्रूहीत्याश्राव्यं ब्रूयान्म्रुतो यजेति मारुतस्यांवद्यन्त्रूंयान्म्रुद्धो-ऽनुंब्रूहीत्याश्राव्यं ब्रूयादिन्द्रं यजेति स्व एवैभ्यो भाग्धेये समदन्दधाति वितृ हाणास्तिष्ठन्त्येतामेव (59) निर्वपेद्यः कामयेत् कल्पेरिन्नितिं यथादेवतमंवदायं यथादेवतं यंजेद्भाग्धेयेनैवैनान् यथायथङ्कंल्पयित् कल्पंन्त एवैन्द्रमेकांदशकपालृन्निर्वपेद्धैश्वदेवन्द्वादेशकपालृङ्गामंकाम् इन्द्रेश्चैव विश्वारंश्च देवान्थ्र्य्वनं भाग्धेयेनोपं धावित् त एवास्में सजातान्प्रयंच्छन्ति ग्राम्येव भंवत्यैन्द्रस्यांवदायं वैश्वदेवस्यावंद्येदथैन्द्रस्यं (60)

उपरिष्टादिन्द्रियेणैवास्मां उभ्यतः सजातान्परिगृह्णात्युपाधाय वासो दक्षिणा सजातानामुपहित्यै पृश्चिये दुग्धे प्रेयंङ्गवं च्रं निर्विपन्मरुद्धो ग्रामंकामः पृश्चिये वै पर्यसो मुरुतो जाताः पृश्चिये प्रियङ्गवो मारुताः खलु वै देवत्या सजाता मुरुतं पृव स्वेनं भाग्धेयेनोपंधावति त पृवास्मै सजातान्प्रयंच्छन्ति ग्राम्येव भवति प्रियवंती याज्यानुवाक्ये (61)

भ्वतः प्रियमेवैन र समानानां द्वारोति द्विपदां पुरोनुवाक्यां भवति द्विपदं एवावं रुन्धे चतुंष्पदा याज्यां चतुंष्पद एव प्रान्वं रुन्धे देवासुराः सं यंत्ता आस्नते देवा मिथो विप्रिया आस्नते इंऽन्यों न्यस्मै ज्यैष्ठ्यायातिंष्ठमानाश्चतुर्धा व्यं क्रामन्नृ ग्निर्वसं भेः सोमों रुद्रै रिन्द्रों म्रु द्विवं रुंण आदित्यैः

स इन्द्रेः प्रजापंतिमुपांधावृत्तम् (62)

एतयां संज्ञान्यांऽयाजयदग्नये वसुंमते पुरोडाशंमष्टाकंपालन्नि रुद्रवंते चुरुमिन्द्रांय मरुत्वंते पुरोडाशमेकांदशकपालं वर्रणायाऽऽदित्यवंते चरुन्ततो वा इन्ह्रं देवा ज्यैष्ट्यांयाभि समंजानत यः संमानैर्मिथो विप्रियः स्यात्तमेतयां संज्ञान्यां याजयेदग्रये वसुंमते पुरोडाशंमष्टाकंपालन्निवंपेथ्सोमांय रुद्रवंते चरुमिन्द्रांय मरुत्वंते पुरोडाशमेकांदशकपालं वर्रुणायाऽऽदित्यवंते चुरुमिन्द्रंमेवेनं भूत अयेष्ठांय समाना अभिसञ्जानते वसिष्ठः समानानां भवति॥ (63) विशंमेव तिष्ठन्त्येतामेवाथैन्द्रस्यं याज्यानुवाक्यें तं वर्रुणाय चतुर्दश च।11।॥——[११] हिर्ण्युगुर्भ आपों ह यत्प्रजांपते। स वेंद पुत्रः पितर् स

हिर्ण्यगर्भ आपो ह् यत्प्रजांपते। स वेंद पुत्रः पितर् समातर् स सूनुर्भुवथ्स भुवत्पुनंभिघः। स द्यामौर्णोदन्तिरक्षि स सुवः स विश्वा भुवो अभव्थ्स आऽभवत्। उदुत्यश्चित्रम्। सप्रत्वत्रवीयसाऽग्रे द्युम्नेनं सं यता। बृहत्तंतन्थ भानुना। निकाव्यां वेधसः शर्श्वतस्कर्हस्ते दर्धानः (64)

नर्यां पुरूणिं। अग्निर्भुंवद्रयिपतीं रयीणाः सत्रा चंक्राणो अमृतांनि विश्वां। हिरंण्यपाणिमूतयें सिवतार्मुपं ह्वये। स चेत्तां देवतां प्रम्। वामम्द्य संवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वामम्स्मभ्य सावीः। वामस्य हि क्षयंस्य देव भूरेंर्या धिया वाम्भाजः स्याम। बिड्तथा पर्वतानाङ्क्षिद्धं बिभर्षि पृथिवि। प्रया भूमि प्रवत्वति मृहा जिनोषिं (65)

महिनि। स्तोमांसस्त्वा विचारिणि प्रतिष्टोभन्त्यक्तभिः। प्र या वाज्ञन्न हेषंन्तं पेरुमस्यंस्यर्जुनि। ऋदूदरेण सख्यां सचेय यो मा न रिष्येंद्धर्यश्व पीतः। अयं यः सोमो न्यधांय्यस्मे तस्मा इन्द्रं प्रतिरंमेम्यच्छं। आपान्तमन्युस्तृपलंप्रभर्मा धुनिः शिमीवाञ्छरुमा॰ ऋजीषी। सोमो विश्वान्यत्सा वनानि नार्वागिन्द्रं प्रतिमानांनि देभुः। प्र (66)

सुवानः सोमं ऋत्युश्चिकेतेन्द्रांय ब्रह्मं ज्ञमदेश्चिर्चन्नं। वृषां यन्तासि शवंसस्तुरस्यान्तर्यंच्छ गृण्ते धृत्रं दृ है। स्बाधंस्ते मदेश्च शुष्म्यं च ब्रह्म नरों ब्रह्मकृतः सपर्यन्न। अर्को वा यत्तुरते सोमंचक्षास्तत्रेदिन्द्रों दधते पृथ्सु तुर्याम्। वषंद्वे विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट ह्व्यम्। (67)

वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरों मे यूयं पांत स्वस्तिभिः सदां

नः। प्र तत्ते अद्य शिंपिविष्ट् नामार्यः शर्सामि वयुनांनि विद्वान्। तं त्वां गृणामि त्वस्मतंवीयान्क्षयंन्तम्स्य रजंसः पराके। किमित्तें विष्णो परिचक्ष्यं भूत्प्रयद्वंवक्षे शिंपिविष्टो अस्मि। मा वर्षो अस्मदपंगृह एतद्यद्न्यरूपः सिम्थे ब्भूथं। (68)

अग्ने दा दाशुषे रियं वीरवंन्तं परीणसम्। शिशीहि नंः सूनुमतः। दा नो अग्ने शितिनो दाः संहस्निणो दुरो न वाज् कृश्वर्या अपांवृधि। प्राची द्यावांपृथिवी ब्रह्मणा कृधि सुवर्णशुक्रमुषसो विदिद्युतुः। अग्निर्दा द्रविणं वीरपेशा अग्निर्ऋषिं यः सहस्रां सनोति। अग्निर्दिवि ह्व्यमातंतानाग्नेर्धामांनि विभृता पुरुत्रा। मा (69)

नो मर्द्धीरा तू भेर। घृतं न पूतं तुनूरेरेपाः शुचि हिरंण्यम्। तत्ते रुक्भो न रोचत स्वधावः। उभे सृश्चन्द्र सूर्पिषो दर्वी श्रीणीष आसिन। उतो न उत्पूंपूर्या उक्थेषुं शवसस्पत इष स्तोतृभ्य आ भेर। वायो शृत हरीणां युवस्व पोष्याणाम्। उत वां ते सहस्रिणो रथ आ यांतु पार्जसा। प्र याभिः (70) यासि दाश्वा समच्छां नियुद्धिर्वायविष्टये दुरोणे। नि नो

र्यि स्मुभोर्जसं युवेह नि वीरवृद्गव्यमिश्वयं च रार्धः। रेवर्तीर्नः सधमाद इन्द्रें सन्तु तुविवाजाः। क्षुमन्तो याभिर्मदेम। रेवा इद्रेवतः स्तोता स्यात्त्वावंतो मुघोनः। प्रेदुं हरिवः श्रुतस्यं॥ (71)

जिनोषि देभुः प्र हुव्यं बुभूथ मा यार्भिश्चत्वारि्रश्चे॥ (12)॥———[१२]

प्रजापंतिस्ताः सृष्टा अग्रयें पथिकृतेऽग्रये कामांयाग्रयेऽत्र्यंतते वैश्वान्रमांदित्यं चरुमैन्द्रं चरुमिन्द्रायान्वंजव आग्नावेष्ण्वम्सौ सोमारौद्रमैन्द्रमेकांदशकपालर हिरण्यगुर्भो द्वादंश॥ (12) प्रजापंतिरुग्रये कामांयाभि सम्भवतो यो विद्विषाणयोरिब्बो सन्नंहोदाग्रावेष्ण्वसुपरिष्टाद्यासिं दाश्वारसमेकंसप्ततिः॥ (71) प्रजापंतिः प्रेदं हरिवः श्रुतस्यं॥

आदित्येभ्यों देवा वै मृत्योर्देवा वै सुत्रमंर्यम्भे प्रजापंतेस्वयंश्विश्शास्त्रजापंतिर्देवेभ्योऽत्राद्यंन्देवासुरास्तात्रजंनो ह्रुवंऽिस् यत्रवंम्पित्रं वै प्रजापंतिर्वर्रुणाय् या वामिन्द्रावरुणा् सप्त्रंबवचतुर्दश॥14॥ आदित्येभ्यस्त्वष्ट्रंरस्मै दानंकामा एवावंरुन्धेऽित्रं वै सप्त्रंबवथ्यदंश्वाशत्॥56॥ आदित्येभ्यः सुवंरुपो जिंगाय॥

॥ तृतीयः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां द्वितीयकाण्डे तृतीयः प्रश्नः॥

आदित्येभ्यो भुवंद्वज्रश्चरं निवंपेद्भूतिकाम आदित्या वा एतम्भूत्यै प्रति नुदन्ते योऽलम्भूत्यै सन्भूतिं न प्राप्नोत्यांदित्यानेव भुवंद्वतः स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति त एवैनम्भूतिं गमयन्ति भवंत्येवादित्येभ्यों धारयंद्वज्यश्चरं निर्वेपेदपंरुद्धो वाऽपरुध्यमानो वाऽऽदित्या वा अंपरोद्धारं आदित्या अंवगमयितारं आदित्यानेव धारयंद्वतः॥१॥

स्वनं भाग्धेयेनोपं धावति त एवैनं विशि दाँध्रत्यनपरुध्यो भंवत्यदितेऽनुं मन्यस्वेत्यंपरुध्यमांनोऽस्य पदमा दंदीतेयं वा अदितिरियमेवास्में राज्यमनुं मन्यते सत्याशीरित्यांह सत्यामेवाशिषं कुरुत इह मन् इत्यांह प्रजा एवास्मै समनसः करोत्युप् प्रेतं मरुतः॥२॥

सुदान्व एना विश्पतिनाभ्यंमु राजांन्मित्यांह मारुती वै विद्योष्ठो विश्पतिर्विशेवन रे राष्ट्रेण समर्धयित यः प्रस्तांद्वाम्यवादी स्यात्तस्यं गृहाद्वीहीना हंरेच्छुक्का इश्चं कृष्णा इश्च वि चिनुयाद्ये शुक्काः स्युस्तमांदित्यं च्रुं निर्विपदादित्या वै देवत्या विड्विशंमेवावं गच्छति॥३॥

अवंगतास्य विडनंवगतः राष्ट्रमित्यांहुर्ये कृष्णाः स्युस्तं वांरुणं चुरुं निर्वपेद्वारुणं वै राष्ट्रमुभे एव विशं च राष्ट्रं चावं गच्छति यदि नावगच्छेदिममहमांदित्येभ्यों भागं निर्वपाम्यामुष्मांदमुष्यै विशोऽवंगन्तोरिति निर्वपेदादित्या एवैनंम्भागधेयंम्प्रेफ्सन्तो विशमवं॥३॥

ग्मयन्ति यदि नाव्गच्छेदाश्वंत्थान्मयूखांन्थ्सप्त मध्यमेषायामुपं हन्यादिदम्हमांदित्यान्बंध्राम्यामुष्मांदमुष्ये विशोऽवंगन्तोरित्यांदित्या एवेनंम्बद्धवीरा विश्वमवं गमयन्ति यदि नाव्गच्छेदेतमेवादित्यं चुरुं निवंपेदिध्मेऽपिं मयूखान्थ्मं नंह्येदनपरुध्यमेवावं गच्छत्याश्वंत्था भवन्ति मुरुतां वा एतदोजो यदंश्वत्थ ओजंसैव विश्वमवं गच्छति सप्त भवन्ति सप्तगंणा वे मुरुतां गणश एव विश्वमवं गच्छति॥५॥

धारयंद्वतो मरुतो गच्छति विश्वमवैतद्धादंश च॥——[१]

देवा वै मृत्योरंबिभयुस्ते प्रजापंतिमुपांधावन्तेभ्यं प्रताम्प्रांजापत्या शतकृष्णलां निरंवपत्तयैवैष्वमृतंमदधाद्यो मृत्योर्बिभीयात्तस्मां एताम्प्रांजापत्या शतकृष्णलां

निर्वपेत्प्रजापंतिमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्मिन्नायुंर्दधाति सर्वमायुंरेति शतकृष्णला भवति शतायुः पुरुषः शतेन्द्रिय आयुंष्येवेन्द्रिये॥६॥

प्रतिं तिष्ठति घृते भंवत्यायुर्वे घृतम्मृत् हरंण्यमायंश्चेवास्मां अमृतंं च समीचीं दधाति चत्वारिचत्वारि कृष्णलान्यवं द्यति चतुरवृत्तस्यास्यां एक्धा ब्रह्मण् उपं हरत्येक्धैव यजंमान् आयुर्दधात्यसावांदित्यो न व्यरोचत् तस्मै देवाः प्रायंश्चित्तिमैच्छुन्तस्मां एतः सौर्यं चुरुं निरंवपन्तेनैवास्मिन्नं॥७

रुचंमदधुर्यो ब्रंह्मवर्च्सकांमः स्यात्तस्मां एतः सौर्यं चरुं निर्वपेदमुमेवादित्यः स्वेनं भागधेयेनोपं धावित स एवास्मिन्ब्रह्मवर्चसं दंधाित ब्रह्मवर्चस्येव भंवत्युभ्यतों रुक्मौ भंवत उभ्यतं एवास्मिन्नुचं दधाित प्रयाजेप्रयाजे कृष्णलं जुहोित दिग्भ्य एवास्मैं ब्रह्मवर्च्समवं रुन्द्ध आग्नेयमृष्टाकंपालं निर्वपेथ्सािवृत्रं द्वादंशकपालुम्भूम्यै॥८॥ चरुं यः कामयेत् हिरंण्यं विन्देय हिरंण्यम्मोपं नमेदिति यदांग्नेयो भवत्याग्नेयं व हिरंण्यं यस्यैव हिरंण्यं

नमेदिति यदाँग्नेयो भवंत्याग्नेयं वे हिरंण्यं यस्यैव हिरंण्यं तेनैवैनंद्विन्दते सावित्रो भवति सिवतृप्रंसूत एवैनंद्विन्दते भूम्ये चरुर्भवत्यस्यामेवैनंद्विन्दत् उपैन् हिरंण्यं नमित वि वा एष इंन्द्रियेणं वीर्येणर्ध्यते यो हिरंण्यं विन्दतं एताम्॥९॥

पुव निर्वपेद्धिरंण्यं वित्त्वा नेन्द्रियेणं वीर्येण् व्यृध्यत पुतामेव निर्वपेद्यस्य हिरंण्यं नश्येद्यदांग्नेयो भवंत्याग्नेयं वै हिरंण्यं यस्यैव हिरंण्यं तेनैवैनंद्विन्दति सावित्रो भंवति सिवतृप्रंसूत एवैनिद्विन्दिति भूम्यै चरुर्भवत्यस्यां वा एतन्नंश्यति यन्नश्यंत्यस्यामेवैनिद्विन्दतीन्द्रः॥१०॥

त्वष्टुः सोमंमभीषहांपिब्ध्स विष्वुद्ध्यांच्छ्र्थ्स इंन्द्रियेणं सोमपीथेन व्यार्ध्यत् स यदूर्ध्वमुदवंमीत्ते श्यामाकां अभवन्थ्स प्रजापंतिमुपांधावृत्तस्मां एतः सोमेन्द्रः श्यामाकं च्रं निरंवपृत्तेनैवास्मिन्निन्द्रियः सोमपीथमंदधाद्वि वा एष इंन्द्रियेणं सोमपीथेनंध्यंते यः सोमं विमिति यः सोमवामी स्यात्तस्मै॥११॥

पुतः सोमन्द्रः श्यांमाकं चुरुं निर्वपृथ्योमं चैवेन्द्रं च स्वनं भाग्धेयेनोपं धावति तावेवास्मिन्निन्द्रियः सोमपीथं धंत्तो नेन्द्रियेणं सोमपीथेन व्यृध्यते यथ्सौम्यो भवंति सोमपीथमेवावं रुन्द्वे यदैन्द्रो भवंतीन्द्रियं वै सोमपीथ इंन्द्रियमेव सोमपीथमवं रुन्द्वे श्यामाको भवत्येष वाव स सोमः॥१२॥

साक्षादेव सोमपीथमवं रुन्द्धेऽग्नयं दात्रे पुरोडाशंम्ष्टाकंपालं निर्वपेदिन्द्रांय प्रदात्रे पुरोडाश्मेकांदशकपालम् पृशुकांमो-ऽग्निरेवास्मै पृशून्प्रंजनयंति वृद्धानिन्द्रः प्र यंच्छति दिध मधुं घृतमापों धाना भंवन्त्येतद्वै पंशूना र रूप र रूपेणैव पृश्नवं रुन्द्वे पश्चगृहीतम्भंवति पाङ्गा हि पृशवों बहुरूपम्भंवति बहुरूपा हि पृशवंः॥१३॥

समृद्धै प्राजापृत्यम्भविति प्राजापृत्या वै पृशवंः प्रजापितिरेवास्मै पृश्न्य जंनयत्यात्मा वै पुरुंषस्य मधु यन्मध्वग्नौ जुहोत्यात्मानमेव तद्यजंमानोऽग्नौ प्र दंधाति पृङ्गौ याज्यानुवाको भवतः पाङ्कः पुरुंषः पाङ्काः पृशवं आत्मानमेव मृत्योर्निष्क्रीयं पृश्न्नवं रुन्द्दे॥१४॥

इन्द्रियेंऽस्मि-भूम्यां एतामिन्द्रः स्यात्तस्मै सोमों बहुरूपा हि पृशव एकंचत्वारि १शच॥[२]

देवा वै स्त्रमांस्तर्छिंपरिमितं यशंस्कामास्तेषा् सोम् र राजानं यशं आर्च्छ्थ्स गिरिमुदैत्तम्ग्निरनूदैत्तावृग्नीषोमौ समंभवतान्ताविन्द्रों युज्ञविश्रष्टोऽनु परैत्तावंब्रवीद्याजयंतम्मेति तस्मां पुतामिष्टिं निर्रवपतामाग्नेयम्ष्टाकंपालमैन्द्रमेकांदशकपात सौम्यं चुरुन्तयैवास्मिन्तेर्जः॥१५॥

इन्द्रियम्ब्रंह्मवर्च्सम्धत्तां यो युज्ञविभ्रष्टः स्यात्तस्मां एतामिष्टिं निर्वपदाश्चेयम्ष्टाकंपालमैन्द्रमेकांदशकपाल १ सौम्यं चुरुं यदाँश्चेयो भवंति तेर्ज्ञं एवास्मिन्तेनं दधाति यदैन्द्रो भवंतीन्द्रियमेवास्मिन्तेनं दधाति यथ्मौम्यो ब्रह्मवर्च्सं तेनाँग्नेयस्यं च सौम्यस्यं चैन्द्रे समाश्लेषयेत्तेजंश्लेवास्मिन्ब्रह्मवर्चसं च समीचीँ॥१६॥

द्धात्यश्रीषोमीयमेकांदशकपालं निर्वपेद्यं कामो नोपनमेदाश्रेयो वै ब्राँह्मणः स सोमंग्पिबित स्वामेव देवता इ स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावित सैवैनं कामेन समर्धयत्युपैनं कामों नमत्यश्रीषोमीयंमुष्टाकंपालं निर्वपेद्वह्मवर्च्सकांमो-ऽग्नीषोमांवेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावित तावेवास्मिन्ब्रह्मवर्च्सं धंत्तो ब्रह्मवर्चस्येव॥१७॥

भ्वति यद्ष्टाकंपाल्स्तेनांग्नेयो यच्छांमाकस्तेनं सौम्यः समृं सौमाय वाजिनें श्यामाकं च्रुं निर्वपृद्धः क्रैव्यांद्विभीयाद्रेतो हि वा एतस्माद्वाजिनमपुक्रामृत्यथेष क्रैब्यांद्विभाय सोमंमेव वाजिन् स्वनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्मिन्नेतो वाजिनं दधाति न क्रीबो भवति ब्राह्मणस्पत्यमेकांदशकपालं निर्वपद्भामंकामः॥१८॥

ब्रह्मण्स्पतिमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्मैं सजातान्त्र येच्छति ग्राम्थेव भवति गुणवंती याज्यानुवाक्ये भवतः सजातैरेवैनं गुणवंन्तं करोत्येतामेव निर्वपेद्यः कामयेत् ब्रह्मन्विशं वि नांशयेयमितिं मारुती यांज्यानुवाक्ये कुर्याद्वह्मन्नेव विशं वि नांशयति॥१९॥

तेर्जः सुमीची ब्रह्मवर्च्स्येव ग्रामंकामुस्त्रिचंत्वारि १शच॥————[३]

अर्यम्णे चरुं निर्वपेथ्सुवर्गकामोऽसौ वा आंदित्यौंऽर्यमा-ऽर्यमणमेव स्वेनं भागधेयेनोपं धावति स एवैन ५ सुवर्गं लोकं गंमयत्यर्यम्णे चरुं निर्वपेद्यः कामयेत दानंकामा मे प्रजाः स्युरित्यसौ वा आदित्यौऽर्यमा यः खलु वै ददांति सौंऽर्यमाऽर्यमणंमेव स्वेनं भागधेयेनोपं धावति स एव॥२०॥ अस्मै दानंकामाः प्रजाः करोति दानंकामा अस्मै प्रजा भंवन्त्यर्थम्णे चरुं निर्वपेद्यः कामयेत स्वस्ति जनतांमियामित्यसौ वा आंदित्यौंऽर्यमाऽर्यमणंमेव स्वेनं भागधेयेनोपं धावति स एवैनं तद्गंमयति यत्र जिगंमिषतीन्द्रो वै देवानांमानुजावर आंसीथ्स प्रजापंतिमुपांधावत्तस्मां एतमैन्द्रमानुषूकमेकांदशकपालं निः॥२१॥

अवपत्तेनैवैन्मग्रं देवतानां पर्यणयहुभ्रवंती अग्रंवती

याज्यानुवाक्यें अकरोह्नुध्नादेवैन्मग्रं पर्यणयद्यो राजन्यं आनुजावरः स्यात्तस्मां एतमैन्द्रमानुषूकमेकांदशकपालं निर्वपेदिन्द्रमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवैन्मग्रं समानानां परि णयति बुध्नवंती अग्रंवती याज्यानुवाक्ये भवतो बुध्नादेवैन्मग्रम्॥२२॥

परि णयत्यानुषूको भेवत्येषा ह्यंतस्यं देवता य आंनुजावरः समृंख्ये यो ब्राँह्मण आंनुजावरः स्यात्तस्मां पृतम्बांर्हस्पत्यमांनुषूकं चुरुं निर्वपेद्वहृस्पतिंमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स पृवेनमग्रं समानानां परि णयति बुध्रवंती अग्रंवती याज्यानुवाक्यं भवतो बुध्रादेवेनमग्रं परि णयत्यानुषूको भंवत्येषा ह्यंतस्यं देवता य आंनुजावरः समृंख्ये॥२३॥

पूजापंतेस्त्रयंस्त्रि शहुहितरं आस्नाः सोमाय राज्ञं-ऽददात्तासा रे रोहिणीमुपैत्ता ईर्ष्यन्तीः पुनरगच्छुन्ता अन्वैत्ताः पुनरयाचत् ता अस्मै न पुनरददाथ्सो ऽब्रवीदृतमंमीष्व यथां समाव्च्छ उपैष्याम्यथं ते पुनर्दास्यामीति स ऋतमांमीत्ता अंस्मै पुनंरददात्तासार् रोहिणीमेवोपं॥२४॥

पुत्तं यक्ष्मं आर्च्छ्द्राजांनं यक्ष्मं आर्दिति तद्रांजयक्ष्मस्य जन्म यत्पापीयानभंवत्तत्पापयक्ष्मस्य यज्ञायाभ्यो-ऽविन्दत्तज्ञायेन्यंस्य य पुवमेतेषां यक्ष्मांणां जन्म वेद् नैनंमेते यक्ष्मां विन्दन्ति स पुता पुव नंमस्यन्नुपांधावृत्ता अंब्रुवन्वरं वृणामहै समावृच्छ पुव न उपाय इति तस्मां पुतम्॥२५॥

आदित्यं चुरुं निरंवपन्तेनैवैनंम्पापाध्स्नामांदमुश्चन् यः पापयक्ष्मगृहीतः स्यात्तस्मां एतमांदित्यं चुरुं

निर्वपेदादित्यानेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति त एवैनं पापाथ्स्नामान्मश्चन्त्यमावास्यायां निर्वपेदमुमेवैनंमाप्यायंमानमन् प्याययति नवोनवो भवति जायंमान् इति पुरोनुवाक्यां भवत्यायुरेवास्मिन्तयां दधाति यमांदित्या अरशुमांप्याययन्तीति

याज्यैवेनंमेतयाँ प्याययति॥२६॥

^{एवोष्}तमंस्मित्रयोदश_{च॥}——[५] प्रजापंतिर्देवेभ्योऽन्नाद्यं व्यादिश्यभौऽब्रवीद्यदिमाल्लौंकानुभ्यंति

तन्ममास्दिति तदिमाश्लौकान्भ्यत्यरिच्यतेन्द्रश्र राजान्मिन्द्रमधि

स्वराजांन्नततो वै स इमाल्लोंका इस्रोधादुंह्ततिश्रिधातों स्रिधातुत्वय्य कामयेतान्नादः स्यादिति तस्मां एतं त्रिधातुं निर्वपेदिन्द्रांय राज्ञे पुरोडाशम्॥२७॥

एकांदशकपाल्मिन्द्रांयाधिराजायेन्द्रांय स्वराज्ञेऽयं वा इन्द्रो राजायमिन्द्रांऽधिराजोंऽसाविन्द्रंः स्वराडिमानेव लोकान्थ्स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावित त एवास्मा अन्नम्प्र यंच्छन्त्यन्नाद एव भंवित यथां वृथ्सेन प्रत्तां गां दुह एवमेवेमाल्लाँकान्प्रत्तान्कामंमन्नाद्यं दुह उत्तानेषुं कपालेष्विधं श्रयत्ययातयामत्वाय त्रयः पुरोडाशां भवन्ति त्रयं इमे लोका एषाल्लाँकानामात्र्या उत्तरउत्तरो ज्यायांन्भवत्येविमेव हीमे लोकाः समृद्धौ सर्वेषामभिग्मयन्नवं द्यत्यर्छम्बद्धार्व्यात्यासमन्वाहानिद्याः। २८॥

देवासुराः संयंत्ता आस्नन्तां देवानसुरा अजयन्ते देवाः पराजिग्याना असुराणां वैश्यमुपायन्तेभ्यं इन्द्रियं वीर्यमपाकाम्त्तदिन्द्रोऽचाय्त्तदन्वपाकामृत्तदेव्रुधं

पुरोडाश्त्रयष्यिङ्ग ५शतिश्च॥

नाशंक्रोत्तदंस्मादभ्यर्थोऽचर्थ्स प्रजापंतिमुपांधावृत्तमेतया

सर्वपृष्ठयाऽयाजयृत्तयैवास्मिन्निन्द्रियं वीर्यमदधाद्य इन्द्रियकामः॥२९॥

वीर्यकामः स्यात्तमेतया सर्वपृष्ठया याजयेदेता एव देवताः स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति ता एवास्मिन्निन्द्रियं वीर्यं दधित यदिन्द्रांय राथंतराय निर्वपिति यदेवाग्नेस्तेज्ञस्तदेवावं रुन्द्वे यदिन्द्रांय बार्हताय यदेवेन्द्रंस्य तेज्ञस्तदेवावं रुन्द्वे यदिन्द्रांय वैरूपाय यदेव संवितुस्तेजस्तत्॥३०॥

एवावं रुन्द्धे यदिन्द्रांय वैराजाय यदेव धातुस्तेजस्तदेवावं रुन्द्धे यदिन्द्रांय शाक्षराय यदेव मुरुतां तेजस्तदेवावं रुन्द्धे यदिन्द्रांय रैवताय यदेव बृहुस्पतेस्तेजस्तदेवावं रुन्द्ध एतावंन्ति वै तेजार्स्सि तान्येवावं रुन्द्ध उत्तानेषुं कृपालेष्वधिं श्रयत्ययातयामत्वाय द्वादंशकपालः पुरोडाशंः॥३१॥

भ्वति वैश्वदेवत्वायं सम्नतम्पर्यवंद्यति सम्नतमेवेन्द्रियं वीर्यं यजमाने दधाति व्यत्यासमन्वाहानिर्दाहायाश्वं ऋषभो वृष्णिर्वस्तः सा दक्षिणा वृष्त्वायैतयैव यंजेताभिशस्यमान एताश्चेद्वा अस्य देवता अन्नमदन्त्यदन्त्युंवेवास्यं मनुष्याः॥३२॥

इन्द्रियकांमः सिवृत्सतेज्सत्त्रंगेडाशोऽष्टात्रिर्श्या——[७] रजनो वै कौणेयः ऋतुजितं जानंकिं चक्षुर्वन्यमयात्तस्मां एतामिष्टिं निरंवपदग्नये भ्राजस्वते पुरोडाशंमष्टाकंपाल १

प्तामिष्ट निरंवपद्श्रय श्राजस्वत पुराडाशम्ष्टाकपाल १ सौर्यं चरुम् ग्रये श्राजस्वते पुरोडाशं मृष्टाकपाल-तयेवास्मिश्चक्षं रव स्यात्तस्मां पृतामिष्टिं निर्वपद्ग्रये श्राजंस्वते पुरोडाशं मृष्टाकंपाल सौर्यं चरुम् ग्रये श्राजंस्वते पुरोडाशं मृष्टाकंपालम् ग्रेवे चक्षंषा मनुष्यां वि॥३३॥

पृश्यन्ति सूर्यस्य देवा अग्निं चैव सूर्यं च स्वनं भाग्धेयेनोपं धावित तावेवास्मिश्चक्षुंधत्तश्चक्षुंष्मानेव भंवित यदांग्नेयो भवंतश्चक्षुंषी प्वास्मिन्तत्प्रति दधाित यथ्मौर्यो नासिकां तेनाभितः सौर्यमांग्नेयौ भंवतस्तस्मांदिभितो नासिकां चक्षुंषी तस्मान्नासिकया चक्षुंषी विधृते समानी यांज्यानुवाक्ये भवतः समान हि चक्षुः समृद्धा उद् त्यं जातवेदस सप्त त्वां हिरतो रथे चित्रं देवानामुदंगादनींकिमिति पिण्डान्प्र यंच्छिति चक्षुंरेवास्मै प्र यंच्छिति यदेव तस्य तत्॥३४॥

वि ह्यंष्टाविर्शितिश्च॥———[८]

ध्रुवोंऽसि ध्रुवोंऽह संजातेषुं भूयासं धीर्श्वेत्तां वसुविद्धुवोंऽसि ध्रुवोंऽह संजातेषुं भूयासम्ग्रश्चेत्तां वसुविद्धुवोंऽसि ध्रुवोंऽह संजातेषुं भूयासमिभ्श्चेत्तां वसुविदामंनम्स्यामंनस्य देवा ये संजाताः कुंमाराः समनस्सतान्हं कांमये हृदा ते मां कांमयन्ता हृदा तान्म आमंनसः कृषि स्वाहामंनमिस॥३५॥

आमंनस्य देवा याः स्त्रियः समंनस्सता अहं कांमये हृदा ता मां कांमयन्ता हृदा ता म् आमंनसः कृधि स्वाहां वैश्वदेवी स्माङ्गहृणीं निर्वपद्भामंकामो वैश्वदेवा वै संजाता विश्वानेव देवान्थ्स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति त एवास्मे सजातान्त्र यंच्छन्ति ग्राम्थेव भंवति साङ्गहृणी भंवति मनोग्रहंणं वै संग्रहंणम्मनं एव संजातानांम्॥३६॥

गृह्णाति ध्रुवोऽसि ध्रुवोऽहर संजातेषुं भूयासमितिं परिधीन्परिं दधात्याशिषंमेवैतामा शास्तेऽथों पृतदेव सर्वरं सजातेष्वधिं भवति यस्यैवं विदुषं पृते परिधयः परिधीयन्त आमनमस्यामंनस्य देवा इति तिस्र आहुंतीर्जुहोत्येतावंन्तो व संजाता ये महान्तो ये क्षुं छुका याः स्त्रियस्तानेवावं रुन्छे

त एंनुमवंरुद्धा उपं तिष्ठन्ते॥३७॥

स्वाहामंनमि सजाताना रे रुन्हे पर्श्व च॥———[९]
यत्रवमैत्तत्रवंनीतमभव्द्यदसंप्त्तथ्सपिरंभव्द्यदिध्रंयत्
तद्धृतमंभवदिश्वनौः प्राणोऽसि तस्यं ते दत्तां ययौः प्राणोऽसि
स्वाहेन्द्रंस्य प्राणोऽसि तस्यं ते ददातु यस्यं प्राणोऽसि
स्वाहां मित्रावरुंणयोः प्राणोऽसि तस्यं ते दत्तां ययौः
प्राणोऽसि स्वाहा विश्वंषां देवानां प्राणोऽसि॥३८॥

प्राणोऽसि स्वाहा विश्वेषां देवानां प्राणोऽसि॥३८॥
तस्यं ते ददतु येषां प्राणोऽसि स्वाहां घृतस्य धारांममृतंस्य पन्थामिन्द्रेण दत्ताम्प्रयंताम्मरुद्धिः। तत्त्वा विष्णुः पर्यपश्यत्तत्त्वेडा गव्यैरंयत्। पावमानेनं त्वा स्तोमेन गायत्रस्यं वर्तन्योपा शोर्वीर्येण देवस्त्वां सिवतोथ्सृंजतु जीवातंवे जीवनस्याये बृहद्रथन्त्रयो सत्वा स्तोमेन त्रिष्टुभो वर्तन्या शुक्रस्यं वीर्येण देवस्त्वां सिवतोत्॥३९॥
सृज्तु जीवातंवे जीवनस्यायां अग्नेस्त्वा मात्रंया

सृज्तु जीवातंवे जीवन्स्यायां अग्नेस्त्वा मात्रया जगत्यै वर्तन्याग्रंयणस्यं वीर्येण देवस्त्वां सिवतोथ्सृंजतु जीवातंवे जीवन्स्यायां इममंग्न आयुंषे वर्चसे कृधि प्रिय रेतों वरुण सोम राजन्न। मातेवाँसमा अदिते शर्म यच्छ विश्वं देवा जरंदष्टिर्यथासंत्। अग्निरायुंष्मान्थ्स वनस्पतिंभिरायुंष्मान्तेन त्वायुषायुंष्मन्तं करोमि सोम आयुंष्मान्थ्स ओषंधीभिर्यज्ञ आयुंष्मान्थ्स दक्षिणाभिर्न्नह्मायुंष्मत्तद्भाँह्मणैरायुंष्मद्देवा आयुंष्मन्तस्तेऽमृतेन पितर आयुंष्मन्तस्ते स्वधयायुंष्मन्तस्तेन त्वायुषायुंष्मन्तं करोमि॥४०॥

विश्वेषां देवानां प्राणोंऽसि त्रिष्टभों वर्तन्या शुक्रस्यं वीर्येण देवस्त्वां सिवतोथ्सोम् आर्युष्मान्पश्चेवि १ शतिश्च॥————[१०]

अग्निं वा एतस्य शरीरं गच्छति सोम् रसो वर्रण एनं वरुणपाशेनं गृह्णाति सरंस्वतीं वागुग्नाविष्णूं आत्मा यस्य ज्योगामयंति यो ज्योगांमयावी स्याद्यो वा कामयेत सर्वमायुरियामिति तस्मां एतामिष्टिं निर्वपेदाग्नेयमृष्टाकंपाल सौम्यं चुरुं वारुणं दर्शकपाल स् सारस्वतं चुरुमांग्नावैष्ण्वमेकांदशकपालमृग्नेरेवास्य शरीरं निष्क्रीणाति सोमाद्रसम्॥४१॥

वारुणेनैवैनं वरुणपाशान्मं अति सारस्वतेन वार्च

दधात्यग्निः सर्वा देवता विष्णुर्यज्ञो देवतांभिश्चैवैनं

युज्ञेनं च भिषज्यत्युत यदीतासुर्भवंति जीवंत्येव

यन्नवमैत्तन्नवंनीतमभवदित्याज्यमवें क्षते रूपमेवास्यैतन्मंहिमानं

व्याचंष्ट्रेऽश्विनोः प्राणोंऽसीत्यांहाश्विनौ वै देवानांम्॥४२॥

भिषजौ ताभ्यांमेवास्में भेषजं कंरोतीन्द्रंस्य प्राणोंऽसीत्यांहेन्द्रियमेवास्मिन्नेतेनं दधाति मित्रावरुंणयोः
प्राणोंऽसीत्यांह प्राणापानावेवास्मिन्नेतेनं दधाति विश्वेषां
देवानां प्राणोंऽसीत्यांह वीर्यमेवास्मिन्नेतेनं दधाति घृतस्य

आह् प्राणमेवास्मिन्नेतेनं दधाति बृहद्रथन्त्रयौस्त्वा स्तोमेनेत्याहौजं प्रवास्मिन्नेतेनं दधात्यग्नेस्त्वा मात्रयेत्यांहात्मानं दधात्यृत्विजः पर्याहुर्यावंन्त प्रवर्त्विज्स्त एनम्भिषज्यन्ति

धारांममृतंस्य पन्थामित्यांह यथायजुरेवैतत्पांवमानेनं त्वा

स्तोमेनेतिं॥४३॥

ब्रह्मणो हस्तंमन्वारभ्य पर्याहुरेक्धैव यजमान् आयुर्दधित यदेव तस्य तिद्धरेण्यात्॥४४॥ घृतं निष्पिंबत्यायुर्वे घृतम्मृत् हिरंण्यम्मृतांदेवायुर्निष्पिंबति

श्तमानम्भवति श्तायुः पुरुषः श्तिन्द्रिय आयुष्येवेन्द्रिये

प्रतिं तिष्ठत्यथो खलु यावंतीः समां पृष्यन्मन्यंत तावंन्मानः स्याथ्समृद्धा इमम्ग्र आयुंषे वर्चसे कृधीत्याहायुंरेवास्मिन्वर्चो दधाति विश्वं देवा जरंदष्टिर्यथास्वित जरंदष्टिमेवेनं करोत्यग्निरायुंष्मानिति हस्तं गृह्णात्येते वै देवा आयुंष्मन्तस्त पुवास्मिन्नायुंदधित सर्वमायुंरेति॥४५॥

रसं देवाना इं स्तोमेनेति हिरंण्यादस्विति द्वाविर्शितिश्व॥———[११]
प्रजापितिर्वरुणायाश्वमनयथ्स स्वां देवतामार्च्छथ्स
पर्यदीर्यत् स एतं वारुणं चतुष्कपालमपश्यत्तं निरंवपत्ततो
वै स वंरुणपाशादमुच्यत् वरुणो वा एतं गृह्णाति

वै स वंरुणपाशादमुच्यत् वरुणो वा एतं गृह्णाति योऽश्वं प्रतिगृह्णाति यावतोऽश्वांन्प्रतिगृह्णीयात्तावंतो वारुणाञ्चतुंष्कपालान्निर्वपृद्धरुणमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवेनं वरुणपाशान्मुंञ्चति॥४६॥

चतुंष्कपाला भवन्ति चतुंष्पाद्धश्वः समृद्धा एकमितिरिक्तं निर्वपृद्यमेव प्रतिग्राही भवति यं वा नाध्येति तस्मादेव वंरुणपाशान्मुंच्यते यद्यपंरं प्रतिग्राही स्याथ्सौर्यमेकंकपालमनु निर्वपेदमुमेवादित्यमुंचारं कुंरुतेऽपोंऽवभृथमवैत्यफ्सु वै वर्रणः साक्षादेव वर्रणमवं यजतेऽपोन्त्रीयं च्रम्पुन्रेत्य निर्वपेदफ्सुयोनिर्वा अश्वः स्वामेवैनं योनिं गमयति स एन श शान्त उपं तिष्ठते॥४७॥

मुश्रुति चुरुर सुप्तदंश चा-----[१२]
या वांमिन्द्रावरुणा यत्वव्यां तुनूस्तयेममर्श्हंसो मुञ्जतं या
मिन्द्रावरुणा सहस्यां रक्षस्यां तेजस्यां तनस्तयेममर्श्हंसो

वांमिन्द्रावरुणा सहस्यां रक्षस्यां तेज्ञस्यां तन्न्स्तयेममे १ हंसो मुश्रतं यो वांमिन्द्रावरुणावृग्नौ स्नाम्स्तं वांमेतेनावं यजे यो वांमिन्द्रावरुणा द्विपाथ्सं पृशुषु चतुंष्पाथ्सं गोष्ठे गृहेष्वपस्वोषंधीषु वनस्पतिषु स्नाम्स्तं वांमेतेनावं यज्ञ इन्द्रो वा एतस्यं॥४८॥

इन्द्रियेणापं क्रामित् वर्रण एनं वरुणपाशेनं गृह्णाति यः पाप्मनां गृहीतो भवंति यः पाप्मनां गृहीतः स्यात्तस्मां पृतामैंन्द्रावरुणीम्पंयस्यां निर्वपेदिन्द्रं पृवास्मिन्निन्द्रियं दंधाति वरुण एनं वरुणपाशान्मुंश्चित पयस्यां भवित पयो हि वा पृतस्मादप्कामृत्यथेष पाप्मनां गृहीतो यत्पंयस्यां भविति पयं पृवास्मिन्तयां दधाति पयस्यायाम्॥४९॥ पुरोडाश्मवं दधात्यात्मन्वन्तंमेवैनं करोत्यथों आयतंनवन्तमेव चंतुर्धा व्यूहित दिश्वेव प्रति तिष्ठति पुनः समूहित दिग्भ्य एवास्मै भेषजं करोति समूह्यावं द्यति यथाविद्धं निष्कृन्तिति ताहगेव तद्यो वांमिन्द्रावरुणावुग्नौ स्नाम्स्तं वांमेतेनावं यज् इत्यांह दुरिष्ट्र्या एवैनंम्पाति यो वांमिन्द्रावरुणा द्विपार्थ्सु पृशुषु स्नाम्स्तं वांमेतेनावं यज् इत्यांहैतावंतीवां आप ओषंधयो वनस्पतंयः प्रजाः पृशवं उपजीवनीयास्ता एवास्मै वरुणपाशान्मुंश्वति॥५०॥

पुतस्यं पयुस्यांयाम्पाति षड्विर्श्शतिश्च॥————[१३]

स प्रंत्वित्त काव्येन्द्रं वो विश्वतस्परीन्द्रं नरंः। त्वं नंः सोम विश्वतो रक्षां राजन्नघायतः। न रिष्येत्त्वावंतः सखाँ। या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषधीष्वपसु। तेभिनी विश्वैः सुमना अहेड्न्राजैन्थ्सोम् प्रति ह्व्या गृभाय। अग्नीषोमा सर्वेदसा सहूती वनतं गिरंः। सं देव्ना बंभूवथुः। युवम्॥५१॥

पुतानिं दिवि रोचनान्यग्निश्चं सोम् सर्ऋतू अधत्तम्। युवः सिन्धः रिभशंस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुंश्चतं गृभीतान्। अग्नीषोमाविमः सु में शृणुतं वृषणा हवम्। प्रति सूक्तानि हर्यतम्भवंतं दाशुषे मर्यः। आन्यं दिवो मांतिरिश्वां जभारामंथ्रादन्यं परि श्येनो अद्रैः। अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञायं चऋथुरु लोकम्। अग्नीषोमा हृविषः प्रस्थितस्य वीतम्॥५२॥

हर्यतं वृषणा जुषेथाँम्। सुशर्माणा स्ववंसा हि भूतमथां धत्तं यजंमानाय शं योः। आ प्यांयस्व सं तें। गणानां त्वा गणपंति हवामहे कविं कवीनामुंपमश्रंवस्तमम्। ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत् आ नंः शृण्वन्नूतिभिः सीद् सादंनम्। स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाजंम्भरते धना नृभिः। देवानां यः पितरंमाविवांसित॥५३॥

श्रुद्धामंना ह्विषा ब्रह्मणस्पतिम्। स सुष्टुभा स ऋक्वंता गणेनं वल १ रुरोज फलिग १ रवेण। बृह्स्पतिरुस्नियां हव्यसूदः किनं ऋदृद्धावंशती रुदां जत्। मरुतो यद्धं वो दिवो या वः शर्म। अर्यमा यांति वृष्यभस्तु विष्मान्दाता वसूनां पुरुहूतो अर्ह्न्नं। सहस्राक्षो गौन्नभिद्वर्ज्ञंबाहुर्स्मासुं देवो द्रविणं दधातु। ये तैंऽर्यमन्बह्वों देवयानाः पन्थांनः॥५४॥

राजन्दिव आचरंन्ति। तेभिनीं देव महि शर्म यच्छ शं

नं एधि द्विपदे शं चतुंष्पदे। बुध्रादग्रमङ्गिरोभिर्गृणानो वि पर्वतस्य दृश्हितान्यैरत्। रुजद्रोधाश्सि कृत्रिमाँण्येषाश् सोमस्य ता मद् इन्द्रेश्वकार। बुध्रादग्रेण् वि मिमाय् मानैवंग्रेण् खान्यंतृणन्नदीनाँम्। वृथांसृजत्प्थिभिर्दीर्घयाथैः सोमस्य ता मद् इन्द्रेश्वकार॥५॥

प्र यो ज्ञे विद्वा अस्य बन्धुं विश्वानि देवो जनिमा विवक्ति। ब्रह्म ब्रह्मण् उज्जेभार् मध्यांन्नीचादुचा स्वधयाभि प्र तंस्थौ। महान्मही अस्तभायद्वि जातो द्या सद्म पार्थिवं च् रजः। स बुधादाष्ट जनुषाभ्यग्रम्बृह्स्पतिर्देवता यस्यं सम्राट्। बुधाद्यो अग्रमभ्यर्त्योजंसा बृह्स्पतिमा विवासन्ति देवाः। भिनद्वलं वि पुरो दर्दरीति कनिन्नद्रथ्सुवंरपो जिंगाय॥५६॥

युवं वीतमा विवासिति पन्थानी दीर्घयाथैः सोमस्य ता मद् इन्द्रंश्वकार देवा नवं च॥—————————[१४]

देवा मंनुष्यां देवासुरा अंब्रुवन्देवासुरास्तेषाँङ्गायुत्री प्रजापंति्स्ता यत्राग्ने गोभिंश्चित्रयां मारुतन्देवां वसव्या अग्ने मारुतमिति देवां वसव्या देवाः शर्मण्यास्त्वष्टां हृतपुंत्रो देवा व राजुन्यांन्नवोनवश्चतुंर्दश॥———[१५]

[देवा मेनुष्याः प्रजां पुशून्देवां वसव्याः परिद्ध्याद्दिमस्म्यृष्टाचंत्वारि १शत्॥४८॥ देवा मेनुष्यां मादयध्वम्॥]

॥चतुर्थः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां द्वितीयकाण्डे चतुर्थः प्रश्नः॥

देवा मंनुष्याः पितर्स्तेंऽन्यतं आस्त्रसंरा रक्षारंसि पिशाचास्तेंऽन्यत्स्तेषां देवानांमुत यदल्पं लोहित्मकुर्वन्तद्रक्षारंसि रात्रीभिरस्भ्रन्तान्थ्सुब्धान्मृतान्भि व्यौच्छत्ते देवा अविदुर्यो वै नोऽयिम्प्रियते रक्षारंसि वा इमं घ्रन्तीति ते रक्षार्स्युपामन्त्रयन्त तान्यंब्रुवन्वरं वृणामहै यत्॥१॥

असुंराञ्जयांम् तन्नः सहास्विति ततो वै देवा असुंरानजयन्तेऽसुंराञ्चित्वा रक्षार्स्यपांनुदन्त तानि रक्षार्स्यनृंतमकर्तेतिं समन्तं देवान्पर्यविशन्ते देवा अग्नावंनाथन्त तैंऽग्रये प्रवंते पुरोडाशंम्ष्टाकंपालं निरंवपन्नग्नयें विबाधवंतेऽग्नये प्रतींकवते यद्ग्रये प्रवंते निरवंपन् यान्येव पुरस्ताद्रक्षार्रसार्शे॥२॥

आस्न्तानि तेन् प्राणुंदन्त् यद्ग्रये विबाधवंते यान्येवाभितो रक्षाः स्यास्न्तानि तेन् व्यंबाधन्त् यद्ग्रये प्रतीकवते यान्येव पश्चाद्रक्षाः स्यास्न्तानि तेनापानुदन्त् ततो देवा अभवन्यरासुरा यो भ्रातृंव्यवान्थ्रस्याथ्स स्पर्धमान एतयेष्ट्यां यजेताः प्रवंते पुरोडाशंमुष्टाकंपालुं निर्वपेद्ग्रये विबाधवंते॥३॥

अग्नये प्रतीकवते यद्ग्रये प्रवंते निर्वपिति य एवास्माच्छ्रेयान्त्रातृंव्यस्तं तेन् प्र णुंदते यद्ग्रये विवाधवंते य एवैनेन सहङ्गं तेन् वि बाधते यद्ग्रये प्रतीकवते य एवास्मात्पापीयान्तं तेनापं नुदते प्र श्रेयार्स्सम्भ्रातृंव्यं नुदतेऽति सहशं कामित नैन्म्पापीयानाप्रोति य एवं विद्वानेतयेष्ट्या यजंते॥४॥

वृणामहै यत्पुरस्ताद्रक्षा रसि वपेद्रग्रये विबाधवंत एवं चत्वारि च॥————[१]

देवासुराः संयंत्ता आस्नते देवा अंब्रुवन् यो नो वीर्यावत्तम्स्तमनुं स्मारंभामहा इति त इन्द्रंमब्रुवन्त्वं वै नो वीर्यावत्तमोऽसि त्वामनुं स्मारंभामहा इति सौंऽब्रवीतिस्रो मं इमास्तुनुवो वीर्यावतीस्ताः प्रीणीताथासुरान्भि भंविष्यथेति ता वै ब्रूहीत्यंब्रुवन्नियम रहोमुगियं विमृधेयमिन्द्रियावंती॥५॥

इत्यंब्रवीत्त इन्द्रांया रहोमुचे पुरोडाशमेकांदशकपालं निरंवपन्निन्द्रांय वैमृधायेन्द्रांयेन्द्र्यावंते यदिन्द्रांया रहोमुचे निरवपन्निरहंस एव तेनांमुच्यन्त् यदिन्द्रांय वैमृधाय मृधं एव तेनापांग्नत् यदिन्द्रांयेन्द्रियावंत इन्द्रियमेव तेनात्मन्नंदधत् त्रयंस्त्रिरशत्कपालं पुरोडाशं निरंवपन्नयंस्त्रिरशृद्धै देवतास्ता इन्द्रं आत्मन्ननं समारंम्भयत् भूत्यै॥६॥

तां वाव देवा विजितिमृत्तमामस्ंरैर्व्यंजयन्त् यो भ्रातृंव्यवान्थ्स्याथ्स स्पर्धमान पुतयेष्ट्यां यजेतेन्द्रांयाश्होमुचे पुरोडाश्मेकांदशकपालं निर्वपिदिन्द्रांय वैमृधायेन्द्रांयेन्द्रियावतेऽश्हंसा वा एष गृंहीतो यस्माच्छ्रेयान्भ्रातृंव्यो यदिन्द्रांयाश्होमुचे निर्वपत्यश्हंस एव तेन मुच्यते मृधा वा एषोऽभिषंण्णो यस्मांथ्समानेष्वन्यः श्रेयांनुत॥७॥

अभ्रांतृब्यो यदिन्द्रांय वैमृधाय मृधं एव तेनापं हते यदिन्द्रांयेन्द्रियावंत इन्द्रियमेव तेनात्मन्धंत्ते त्रयंस्त्रिश्शत्कपालं पुरोडाशुं निर्वपति त्रयंस्त्रिश्शुद्धे देवतास्ता एव यजंमान आत्मन्ननुं समारंम्भयते भूत्ये सा वा एषा विजिंतिनीमेष्टिर्य एवं विद्वानेतयेष्ट्या यजंत उत्तमामेव विजितिम्भातृंब्येण वि जयते॥८॥

इन्द्रियावंती भूत्यां उतैकान्नपंश्चाशचं॥_____

rc I

देवासुराः संयंत्ता आस्-तेषां गायत्र्योजो बर्लमिन्द्रियं वीर्यं प्रजां पृश्-स्यंगृह्यादायांपुकम्यांतिष्ठत्तेऽमन्यन्त यत्रान् वा इयमुंपावध्स्यति त इदम्भेविष्यन्तीति तां व्यह्वयन्त विश्वंकर्मृत्रितिं देवा दाभीत्यसुराः सा नान्यंतराङ्श्च नोपावंर्तत् ते देवा पृतद्यजुरपश्यन्नोजोऽसि सहोऽसि बलंमसि॥९॥

भ्राजोऽसि देवानां धाम् नामांसि विश्वंमिस विश्वायुः सर्वमिस सुर्वायुंरिभुरिति वाव देवा असुंराणामोजो बर्लमिन्द्रियं वीर्यं प्रजां पृश्ननृवश्चत् यद्गाय्त्र्यप्रम्यातिष्ठत्तस्मादेतां गायत्रीतीष्टिमाहुः सं वथ्सरो वै गायत्री संवथ्सरो वै तदंप्रमम्यातिष्ठद्यदेतयां देवा असुराणामोजो बर्लमिन्द्रियं वीर्यम्॥१०॥

प्रजां प्रानृवंश्वत् तस्मदिताः संवर्ग इतीष्टिमाहुर्यो भ्रातृंव्यवान्थस्याथ्स स्पर्धमान एतयेष्ट्यां यजेताग्रयं संवर्गायं पुरोडाशंमुष्टाकंपालं निर्वपेत्तः शृतमासंत्रमेतेन यज्ञंषाभि मृंशेदोजं एव बलंमिन्द्रियं वीर्यं प्रजां पुशून्भ्रातृंव्यस्य वृङ्के भवंत्यात्मना परांस्य भ्रातृंव्यो भवति॥११॥

बर्लमस्येतयां देवा असुंराणामोजो बर्लमिन्द्रियं वीर्यं पश्चंचत्वारि॰शच॥———[३]

प्रजापंतिः प्रजा अंस्रजत् ता अंस्माथ्सृष्टाः परांचीरायन्ता यत्रावंसन्ततों गुर्मुदुदंतिष्ठत्ता बृहुस्पतिश्चान्ववैता सौंऽब्रवीद्बृहुस्पतिर्नयां त्वा प्र तिष्ठान्यथं त्वा प्रजा उपावंथर्स्यन्तीति तम्प्रातिष्ठत्ततो वे प्रजापंति प्रजा उपावंतन्त यः प्रजाकांमः स्यात्तस्मां एतम्प्रांजापृत्यं गांमुतं चरुं निर्वपेत्प्रजापंतिम्॥१२॥

एव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावित् स एवास्मैं प्रजाम्प्र जंनयित प्रजापंतिः पृशूनंसृजत् तैं-ऽस्माथ्सृष्टाः पराश्च आयन्ते यत्रावंसन्ततों गुर्मुदुदितिष्ठत्तान्पूषा चान्ववैतार् सौंऽब्रवीत्पूषानयां मा प्र तिष्ठार्थं त्वा प्रशवं उपावंथ्स्यन्तीति माम्प्र तिष्ठेति सोमोंऽब्रवीन्मम् वै॥१३॥

अकृष्टप्च्यमित्युभौ वाम्प्र तिष्ठानीत्यंब्रवीत्तौ प्रातिष्ठत्ततो वै प्रजापंतिम्प्शवं उपावंतिन्त् यः पृश्वकांमः स्यात्तस्मां एतः सोमापौष्णं गाँमीतं चुरुं निर्वपेथ्सोमापूषणांवेव स्वेनं भागधेयेनोपं धावित् तावेवास्मैं पृश्न्य जनयतः सोमो वै रेतोधाः पूषा पंश्नाम्प्रंजनियता सोमं एवास्मै रेतो दर्धाति पूषा पृश्न्य जनयित॥१४॥

अभ्रे गोर्भिर्न् आ गृहीन्दों पुष्ट्या जुंषस्व नः। इन्द्रों धुर्ता गृहेषुं नः॥ स्विता यः संह्सियः स नों गृहेषुं रारणत्। आ पूषा एत्वा वसुं॥ धाता देदातु नो र्यिमीशानो जगतस्पतिः। स नः पूर्णेनं वावनत्॥ त्वष्टा यो वृष्भो वृषा स नों गृहेषुं रारणत्। सहस्रेणायुतेन च॥ येनं देवा अमृतम्॥१५॥

दीर्घ ॥ श्रवी दिव्यैरंयन्त। रायंस्पोष् त्वम्स्मभ्यं गर्वां कुल्मिं जीवस् आ युंवस्व। अग्निर्गृहपंतिः सोमों विश्वविनंः सिवृता सुमेधाः स्वाहां। अग्ने गृहपते यस्ते घृत्यों भागस्तेन् सह् ओर्ज आक्रमंमाणाय धेहि श्रैष्ठगांत्पथो मा योषं मूर्धा भूयास् ॥ स्वाहां॥१६॥

अुमृतंमुष्टात्रिर्श्शच॥______[५]

चित्रयां यजेत पृशुकांम इयं वै चित्रा यद्वा अस्यां विश्वंम्भूतमिधं प्रजायंते तेनेयं चित्रा य एवं विद्वा श्रश्चित्रयां पृशुकांमो यजंते प्र प्रजयां पृशुभिर्मिथुनैर्जायते प्रैवाग्नेयेनं वापयति रेतः सौम्येनं दधाति रेतं एव हितं त्वष्टां रूपाणि वि कंरोति सारस्वतौ भंवत एतद्वै दैव्यंग्मिथुनं दैव्यंमेवास्मै॥१७॥

मिथुनम्मंध्यतो दंधाति पृष्टें प्रजनंनाय सिनीवाल्ये च्रुर्भवित वाग्वे सिनीवाली पृष्टिः खलु वे वाक्पुष्टिमेव वाचमुपैत्येन्द्र उत्तमो भविति तेनैव तन्मिथुन स्प्तेतानि ह्वी १ षि भवन्ति सप्त ग्राम्याः पृशवः स्प्तार्ण्याः स्प्त छन्दार्श्रस्युभयस्यावं रुद्धा अथैता आहुंतीर्जुहोत्येते वे देवाः पृष्टिंपतयस्त एवास्मिन्पृष्टिं दधित पृष्यंति प्रजयां पृश्मिरथो यदेता आहुंतीर्जुहोति प्रतिष्ठित्यै॥१८॥

अस्मै त एव द्वादंश च॥------[६]

मा्रुतमंसि मुरुत्यमोजोऽपां धारां भिन्द्धि र्मयंत मरुतः श्येनमा्यिन्म्मनोजवसं वृषंण स्वृतिम्। येन् शर्धं उग्रमवंसृष्ट्रमेति तदंश्विना परि धत्त स्वस्ति। पुरोवातो वर्षंश्चिन्वरावृथ्स्वाहां वातावृद्धर्षंत्रुग्ररावृथ्स्वाहां स्तृनयन्वर्षंन्भीमरावृथ्स्वाहांनशुन्यंवृस्फूर्जन्दिद्युद्व वर्षंन्यूर्तिरावृत्॥१९॥

स्वाहां बहु ह्।यमंवृषादितिं श्रुतरावृथ्स्वाह्।तपंति वर्षिन्विराडावृथ्स्वाहांव्स्फूर्जन्दुद्युद्धर्षेन्भूत मान्दा वाशाः शुन्थ्यूरजिराः। ज्योतिष्मतीस्तमंस्वरीरुन्दंतीः सुफेनाः। मित्रंभृतः क्षत्रंभृतः सुराष्ट्रा इह मांऽवत। वृष्णो अर्श्वस्य संदानमसि वृष्ट्यै त्वोपं नह्यामि॥२०॥

पूर्तिरावृद्धिचंत्वारिश्शच॥————[७]

देवां वसव्या अग्नें सोम सूर्य। देवाः शर्मण्या मित्रांवरुणार्यमत्र्। देवाः सपीत्योऽपां नपादाशुहेमत्र्। उद्रो दंत्तोऽद्धिम्भिन्त दिवः पूर्जन्यादुन्तिरक्षात्पृथिव्यास्ततों नो वृष्ट्यांऽवत। दिवां चित्तमः कृण्वन्ति पूर्जन्येनोदवाहेनं। पृथिवीं यद्युन्दन्ति। आ यं नरः सुदानंवो ददाशुषे दिवः कोशुमचुंच्यवुः। वि पूर्जन्याः सृजन्ति रोदंसी अनु धन्वंना यन्ति॥२१॥

वृष्टयंः। उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वेर्षयथा पुरीषिणः। न वो दस्रा उपं दस्यन्ति धेनवः शुभं यातामनु रथां अवृथ्सत। सृजा वृष्टिं दिव आद्भिः संमुद्रं पृणा अज्ञा असि प्रथम्जा बलंमसि समुद्रियम्। उन्नम्भय पृथिवीम्भिन्द्धीदं दिव्यं नभः। उद्गो दिव्यस्यं नो देहीशांनो वि सृजा दितम्। ये देवा दिविभागा येँऽन्तरिक्षभागा ये पृथिविभागाः। त हुमं यज्ञमंबन्तु त हुदं क्षेत्रमा विंशन्तु त हुदं क्षेत्रमनु वि विंशन्तु॥२२॥

युन्ति देवा विर्श्मतिश्चं॥———[८]

मा्रुतमंसि म्रुतामोज् इतिं कृष्णं वासः कृष्णतूषं परि धत्त एतद्वै वृष्टै रूप स्र स्रूप एव भूत्वा पूर्जन्यं वर्षयति र्मयंत मरुतः श्येनमायिन्मितिं पश्चाद्वातं प्रतिं मीवति पुरोवातमेव जनयति वर्षस्यावरुद्धै वातनामानि जुहोति वायुर्वे वृष्ट्यां ईशे वायुमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्मैं पूर्जन्यं वर्षयत्यष्टौ॥२३॥

जुहोति चर्तस्रो वै दिश्श्वतंस्रोऽवान्तरिद्धा दिग्भ्य एव वृष्टि सम्प्र च्यांवयित कृष्णाजिने सं यौति ह्विरेवाकंरन्तर्वेदि सं यौत्यवरुद्धौ यतीनामुद्यमानाना शीर्षाणि परापतन्ते खुर्जूरा अभवन्तेषा रसं ऊर्ध्वोऽपत्तानि क्रीराणि भवंन्ति॥२४॥ सौम्या खलु वा आहुंतिर्दिवो वृष्टिं च्यावयित यत्क्रीराणि भवंन्ति॥२४॥

सौम्ययैवाहुंत्या दिवो वृष्टिमवं रुन्द्धे मधुंषा सं यौंत्यपां वा एष ओषंधीनाः रसो यन्मध्वद्ध एवौषंधीभ्यो वर्षत्यथों अद्ध एवौषंधीभ्यो वृष्टिं नि नंयति मान्दा वाशा इति सं यौति नामुधेयैरे्वैना अच्छैत्यथो यथां ब्रूयादसावेहीत्येवमेवेनां नामुधेयैरा॥२५॥

च्यावयति वृष्णो अश्वंस्य संदानंमसि वृष्ट्ये त्वोपं नह्यामीत्यांह् वृषा वा अश्वो वृषां पर्जन्यः कृष्ण इंव खलु वे भूत्वा वंर्षित रूपेणैवेन् समर्थयति व्रषस्यावंरुद्धौ॥२६॥

अष्टौ भवंन्ति नाम्धेयैरैकान्नत्रिर्शर्च॥———[९]

देवां वसव्या देवाः शर्मण्या देवाः सपीतय इत्या बंध्नाति देवतांभिरेवान्बहं वृष्टिंमिच्छति यदि वर्षेत्तावंत्येव होत्व्यं यदि न वर्षेच्छ्वो भूते ह्विर्निवंपेदहोरात्रे वे मित्रावरुणावहोरात्राभ्यां खलु वै पूर्जन्यों वर्षिति नक्तं वा हि दिवां वा वर्षिति मित्रावरुणावेव स्वेनं भागुधेयेनोपं धावित तावेवास्मै॥२७॥

अहोरात्राभ्यां पूर्जन्यं वर्षयतोऽग्रये धामुच्छदे पुरोडाशंमुष्टाकंपालं निर्वपेन्मारुत र सप्तकंपाल र सौर्यमेकंकपालमृग्निर्वा इतो वृष्टिमुदीरयित मुरुतः सृष्टां नयन्ति यदा खलु वा असावादित्यो न्यंङ्र्श्मिभिः पर्यावर्ततेऽथं वर्षित धामुच्छिदिव खलु वै भूत्वा वर्षित्येता वै देवता वृष्ट्यां ईशते ता एव स्वेनं भागुधेयेनोपं धावित ताः॥२८॥ पुवास्मैं पूर्जन्यं वर्षयन्त्युतावंर्षिष्यन्वर्षत्येव सृजा वृष्टिं दिव आद्भिः संमुद्रं पृणेत्यांहेमाश्चेवामूश्चापः समर्धयत्यथां आभिरेवामूरच्छैत्युज्ञा असि प्रथमजा बर्लमसि समुद्रियमित्यांह यथायुजुरेवैतदुन्नंम्भय पृथिवीमितिं वर्षाह्वां जुंहोत्येषा वा ओषंधीनां वृष्टिविनस्तयैव वृष्टिमा च्यांवयित ये देवा दिविभांगा इतिं कृष्णाजिनमवं धूनोतीम एवास्मैं लोकाः प्रीता अभीष्टां भवन्ति॥२९॥

अस्मै धावति ता वा एकंवि श्यतिश्च॥____

[86]

सर्वाणि छन्दारेस्येतस्यामिष्ठाम्मन्च्यानीत्यांहुिश्चष्टभो वा एतद्वीर्यं यत्कुकुदुण्णिहा जगत्यै यद्ंिणहिकुकुभावन्वाह् तेनैव सर्वाणि छन्दार्स्यवं रुन्दे गायत्री वा एषा यद्णिहा यानि चत्वार्यध्यक्षराणि चतुंष्पाद एव ते पृशवो यथां पुरोडाशे पुरोडाशोऽध्येवमेव तद्यहच्यध्यक्षराणि यञ्चगंत्या॥३०॥

पुरिद्रिष्यादन्तं युज्ञं गंमयेत्रिष्टुभा परि दधातीन्द्रियं वै वीर्यं त्रिष्टुगिन्द्रिय एव वीर्यं युज्ञं प्रति ष्ठापयित् नान्तं गमयृत्यग्ने त्री ते वाजिना त्री ष्रथस्थेति त्रिवंत्या परि दधाति सरूपत्वाय सर्वो वा एष युज्ञो यत्रैधात्वीयङ्कामायकामाय प्र युंज्यते सर्वेभ्यो हि कामेंभ्यो युज्ञः प्रंयुज्यते त्रैधात्वीयंन यजेताभिचर्न्थ्सर्वो वै॥३१॥

एष युज्ञो यत्रैधात्वीय् सर्वेणेवैनं युज्ञेनाभि चंरित स्तृणुत एवैनंमेतयैव यंजेताभिचर्यमाणः सर्वो वा एष युज्ञो यत्रैधात्वीय् सर्वेणेव यज्ञेनं यजते नैनंमभिचरंन्थ्स्तृणुत एतयैव यंजेत सहस्रेण युक्ष्यमाणः प्रजातमेवैनंद्दतत्येतयैव यंजेत सहस्रेणेजानोऽन्तुं वा एष पंशूनां गंच्छति॥३२॥

यः सहस्रंण यजंते प्रजापंतिः खलु वै पृशूनंसृजत् ताः स्रैधात्वीयेंनैवासृंजत् य एवं विद्वाः स्रैधात्वीयेंन पृशुकांमो यजंते यस्मादेव योनैः प्रजापंतिः पृशूनसृंजत् तस्मादेवेनान्थ्सृजत् उपैनुमुत्तंरः सहस्रं नमित देवतान्यो वा एष आ वृंश्च्यते यो युक्ष्य इत्युक्ता न यजंते त्रैधात्वीयेंन यजेत् सर्वो वा एष यज्ञः॥३३॥

यत्रैधात्वीय् सर्वेणैव यज्ञेनं यजते न देवताँभ्य आ वृंश्च्यते द्वादंशकपालः पुरोडाशों भवति ते त्रयश्चतुंष्कपालास्त्रिष्ममृद्धत्वाय त्रयः पुरोडाशां भवन्ति त्रयं इमे लोका पुषां लोकानामास्या उत्तंरउत्तरो ज्यायाँन्भवत्येवमिव हीमे लोका यंवमयो मध्यं एतद्वा अन्तरिक्षस्य रूप॰ समृद्धै सर्वेषामभिगुमयुत्रवं द्युत्यछम्बद्धार्॰ हिरंण्यं ददाति तेजं एव॥३४॥

अवं रुन्द्वे ताप्यं दंदाति पृश्न्नेवावं रुन्द्वे धेनुं दंदात्याशिषं पृवावं रुन्द्वे साम्नो वा पृष वर्णो यद्धिरंण्यं यर्जुषां ताप्यमुंक्थाम्दानां धेनुरेतानेव सर्वान् वर्णानवं रुन्द्वे॥३५॥

जर्गत्याऽभिचर्न्थ्सर्वो वै गंच्छति यज्ञस्तेजं एव त्रिष्ट्शचं॥______[११]

त्वष्टां हृतपुंत्रो वीन्द्रक्ष सोम्माहंर्त्तस्मिन्निन्द्रं उपह्वमैंच्छत् तं नोपांह्वयत पुत्रम्में-ऽवधीरिति स यंज्ञवेश्चसं कृत्वा प्रासहा सोमंमपिबत्तस्य यद्त्यशिष्यत् तत्त्वष्टांहवनीयमुप् प्रावंत्यथ्स्वाहेन्द्रंशत्रुवध्स्वेति स यावंदूर्धः पंराविध्यंति तावंति स्वयमेव व्यंरमत् यदि वा तावंत्प्रवणम्॥३६॥

आसीचिदिं वा ताव्दध्यभ्रेरासीथ्स सम्भवंत्रग्नीषोमांविभ समंभव्थ्स इंषुमात्रिमेषुमात्रं विष्वंङ्कावर्धत् स इमाल्लाँकानंवृणोचिदिमाल्लाँकानवृंणोत्तद्दृत्रस्यं वृत्रत्वन्तस्मादिन्द्रोऽविभेदिप् त्वष्टा तस्मै त्वष्टा वर्ज्रमसिश्चत्तपो वै स वर्ज्ञ आसीत्तमुद्यंन्तुं नाशंक्रोदथ् वै तर्हि विष्णुं:॥३७॥

अन्या देवतांसीथ्सौंऽब्रवीद्विष्ण्वेहीदमा हंरिष्यावो येनायमिदमिति स विष्णुंस्रोधात्मानं वि न्यंधत्त पृथिव्यां तृतींयम्न्तरिक्षे तृतींयं दिवि तृतीयमभिपर्यावृत्तीद्धविभेद्यत्पृंथिव्यां तृतीयमासीत्तेनेन्द्रो वज्रमुदंयच्छुद्विष्ण्वंनुस्थितः सौंऽब्रवीन्मा मे प्र हारस्ति वा इदम्॥३८॥

मियं वीर्यं तत्ते प्र दाँस्यामीति तदंस्मै प्रायंच्छत्तत्प्रत्यंगृह्णादधा मेति तद्विष्ण्वेति प्रायंच्छत्तद्विष्णुः प्रत्यंगृह्णादस्मास्विन्द्रं इन्द्रियं दंधात्विति यदन्तिरंक्षे तृतीयमासीत्तेनेन्द्रो वज्रुमुदंयच्छद्विष्ण्वंनुस्थितः सौंऽब्रवीन्मा मे प्र हारस्ति वा इदम्॥३९॥

मियं वीर्यं तत्ते प्र दाँस्यामीति तदंस्मै प्रायंच्छतत्प्रत्यंगृह्णाद्विर्माधा इति तद्विष्ण्वेति प्रायंच्छत्तद्विष्णुः प्रत्यंगृह्णाद्वस्मास्विन्द्रं इन्द्रियं दंधात्विति यद्दिवि तृतींयमासीत्तेनेन्द्रो वज्रमुदंयच्छद्विष्ण्वंनुस्थितः सौंऽब्रवीन्मा मे प्र हार्येनाहम्॥४०॥

इदमस्मि तत्ते प्र दौस्यामीति त्वी (३) इत्यंब्रवीथ्सन्थान्तु सं दंधावहै त्वामेव प्र विंशानीति यन्माम्प्रविशेः किम्मां भुआया इत्यंब्रवीत्त्वामेवेन्थीय तव भोगाय त्वाम्प्र विंशयमित्यंब्रवीत्तं वृत्रः प्राविंशदुदरं वै वृत्रः क्षुत्खलु वै मंनुष्यंस्य भ्रातृंच्यो यः॥४१॥ पुवं वेद् हिन्त् क्षुधम्भ्रातृंव्यन्तदंस्मै प्रायंच्छ्तत्प्रत्यंगृह्णात्रिर्माधा इति तद्विष्ण्वेति प्रायंच्छ्तिद्विष्णुः प्रत्यंगृह्णादस्मास्विन्द्रं इन्द्रियं दंधात्विति यित्रः प्रायंच्छ्तिश्च प्रत्यगृह्णात्तिष्ठियातोष्टिश्चातुत्वं यद्विष्णुंग्न्वतिष्ठत् विष्ण्वेति प्रायंच्छ्तस्मादिन्द्रावैष्ण्व स् ह्विर्भविति यद्वा इदं किं च तदंस्मै तत्प्रायंच्छ्दचः सामानि यजूर्षेषि सहस्रं वा अंस्मै तत्प्रायंच्छत्तस्मांथ्सहस्रंदक्षिणम्॥४२॥

देवा वै राजन्यां ज्ञायंमानादिषभयुस्तम्नत्वेव सन्तं दाम्नापौँम्भुन्थ्स वा पृषोऽपौँब्यो जायते यद्गाजन्यों यद्वा एषोऽनेपोब्यो जायते वृत्रान्प्रः श्चेरेद्यं कामयेत राजन्यमनेपोब्यो जायते वृत्रान्प्रः श्चेरेदिति तस्मां एतमैंन्द्राबार्हस्पत्यं चुरुं निर्विपेदैन्द्रो वै राजन्यों ब्रह्म बृह्स्पतिर्ब्रह्मणेवैनं दाम्नोऽपोम्भेनान्मु अति हिर्ण्मयं दाम् दक्षिणा साक्षादेवैनं दाम्नो-ऽपोम्भेनान्मु अति॥४३॥

पुन-द्वादंश च॥———[१३]

नवोनवो भवति जायंमानोऽह्नां केतुरुषसांमेत्यग्रें। भागं देवेभ्यो वि दंधात्यायन्त्र चन्द्रमांस्तिरति दीर्घमायुंः। यमांदित्या अश्शुमांप्याययंन्ति यमिक्षेत्याक्षेत्यः पिबंन्ति। तेनं नो राजा वर्रुणो बृहस्पित्रा प्याययन्तु भुवंनस्य गोपाः। प्राच्यां दिशि त्विमन्द्रासि राजोतोदींच्यां वृत्रहन्वृत्रहासिं। यत्र यन्तिं स्रोत्यास्तत्॥४४॥

जितं तें दक्षिणतो वृंष्म एंधि हव्यः। इन्द्रों जयाति न परां जयाता अधिराजो राजंसु राजयाति। विश्वा हि भूयाः पृतंना अभिष्टीरुंपसद्यों नमस्यों यथासंत्। अस्येदेव प्र रिंरिचे महि्त्वं दिवः पृंधिव्याः पर्यन्तरिक्षात्। स्वराडिन्द्रो दम् आ विश्वगूर्तः स्वरिरमंत्रो ववक्षे रणाय। अभि त्वां शूर नोनुमोऽदुंग्धा इव धेनवंः। ईशांनम्॥४५॥

अस्य जर्गतः सुवृर्दश्मीशानिमन्द्र तस्थुषः। त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः। त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नर्स्त्वां काष्टास्वर्वतः। यद्यावं इन्द्र ते शतर शतम्भूमींरुत स्युः। न त्वां वज्ञिन्थ्सहस्रुर् सूर्या अनु न जातमष्ट् रोदंसी। पिबा सोमीमन्द्र मन्दंतु त्वा यं ते सुषावं हर्यशाद्रिः।॥४६॥

सोतुर्बाहुभ्या १ सुयंतो नार्वां। रेवर्तीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवांजाः। क्षुमन्तो

याभिर्मिदेम। उदंग्रे शुचंयस्तव वि ज्योतिषोदु त्यं जातवेदस॰ सप्त त्वां हिरितो रथे वहंन्ति देव सूर्य। शोचिष्केशं विचक्षण। चित्रं देवानामुदंगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आऽप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष॰ सूर्यं आत्मा जगंतस्तस्थुषंः॥४७॥

च। विश्वे देवा ऋंतावृधे ऋतुभिर्हवनश्रुतंः। जुषन्तां युज्यम्पर्यः। विश्वे देवाः शृणुतेम १ हर्वम्मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यवि ष्ठ। ये अग्निजिह्वा उत वा यजंत्रा आसद्यास्मिन्ब्रहिषिं मादयध्वम्॥४८॥

तदीशांनमद्रिंस्तस्थुषंस्त्रि १शर्चं॥---

-[१४]

विश्वरूपस्त्वष्टेन्द्रं वृत्रम्ब्रंह्मवादिनः स त्वै नासोमयाज्येष वै देवर्थो देवा वै नर्चि नायुज्ञोऽग्ने महान्नीत्रिवीत्मायुंष्टे द्वादेश॥-[१4][विश्वरूपो नैन 4 शीतरूरावद्य वसुं पूर्वेद्युर्वाजा इत्यग्ने महान्निवीतम्न्या यन्ति चतुंःसप्ततिः॥74॥ विश्वरूपोऽनुं ते दायि॥]

॥पञ्चमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां द्वितीयकाण्डे पञ्चमः प्रश्नः॥

विश्वरूपो वै त्वाष्ट्रः पुरोहितो देवानांमासीथ्स्वस्रीयोऽसुंराणान्तस्य त्रीणिं शीर्षाण्यांसन्थ्सोम्पान र सुरापानंमन्नादंन स प्रत्यक्षं देवेभ्यो भागमंवदत्परोक्षमसुंरेभ्यः सर्वस्मै वै प्रत्यक्षं भागं वंदन्ति यस्मा एव प्रोक्षं वदन्ति तस्य भाग उंदितस्तस्मादिन्द्रों-ऽबिभेदीदङ्के राष्ट्रं वि पूर्यावंत्रयतीति तस्य वन्नमादायं शीर्षाण्यंच्छिन्द्यथ्सोम्पानम्॥१॥

आसीथ्स कृपिञ्जलोऽभव्द्यथ्सुंरापान् स कंलिविङ्को यदन्नादंन् स तितितिरस्तस्यां ञ्चलिनां ब्रह्महृत्यामुपांगृह्णाताः संवथ्सरमंबिभस्तम्भूतान्यभ्यंक्रोश्-ब्रह्महृन्निति स पृथिवीमुपांसीदद्स्यै ब्रह्महृत्यायै तृतीयं प्रति गृह्णोति साब्रवीद्वरं वृणै खातात्पराभविष्यन्तीं मन्ये ततो मा परां भूवमितिं पुरा तें॥२॥

संवृथ्सरादिपं रोहादित्यंब्रवीत्तस्मांत्पुरा संवथ्सरात्पृंथिव्यै खातमिपं रोहित् वारंवृत्ड् ह्यंस्यै तृतीयं ब्रह्महृत्यायै प्रत्यंगृह्णात्तथ्स्वकृतिमिरिंणमभवृत्तस्मादाहिताग्निः श्रृद्धादेवः स्वकृत् इरिंणे नावं स्येद्वह्महृत्यायै ह्यंष वर्णः स वनस्पतीनुपासीदद्स्यै ब्रह्महृत्यायै तृतीयं प्रति गृह्णीतेति ते ऽब्रुव्नवरं वृणामहै वृक्णात्॥३॥

प्राभृविष्यन्तों मन्यामहे ततो मा परां भूमेत्याव्रश्चनाद्वो भूयार्रस् उत्तिष्ठानित्यंत्रवीत्तरमादाव्रश्चनाद्वुक्षाणाम्भूयार्रस् उत्तिष्ठन्ति वारेवृत्र् ह्येषान्तृतीयं ब्रह्महृत्यायै प्रत्यंगृह्न-थ्स निर्यासोऽभवृत्तरमात्रिर्यासस्य नाश्यं ब्रह्महृत्यायै ह्येष वर्णोऽथो खलु य एव लोहितो यो वाऽऽव्रश्चनात्रिर्येषति तस्य नाश्यम्॥४॥

कामंम्न्यस्य स स्नींष १ सादमुपांसीदद्स्यै ब्रह्महृत्यायै तृतीयं प्रति गृह्णीतेति ता अंबुवन्वरं वृणामहा ऋत्वियात्प्रजां विन्दामहै काम्मा विजीनितोः सम्भवामिति तस्मादृत्वियाथ्ब्रियः प्रजां विन्दन्ते काम्मा विजीनितोः सम्भवन्ति वारेवृत् ह्यांसान्तृतीयं ब्रह्महृत्यायै प्रत्यंगृह्णन्थ्सा मलंबद्वासा अभवत्तस्मान्मलंबद्वाससा न सं वेदेत॥५॥

न सहासींत नास्या अन्नंमद्याद्वसहृत्यायै ह्येषा वर्णं प्रतिमुच्यास्तेऽथो खल्बांहुर्भ्यञ्जंनं वाव स्त्रिया अन्नंम्भ्यञ्जनमेव न प्रतिगृह्यं कामंम्न्यदिति याम्मलंबद्वाससः सम्भवन्ति यस्ततो जायंते सोऽभिश्वस्तो यामरंण्ये तस्यै स्तेनो यां परांचीं तस्यै ह्वीतमुख्यंपगृत्भो या स्नाति तस्यां अपसु मारुंको या॥६॥

अभ्यङ्के तस्यै दुश्चर्मा या प्रंतिखते तस्यै खलितरंपमारी याऽऽङ्के तस्यै काणो या दतो धावंते तस्यै श्यावदन् या नखानि निकृन्तते तस्यै कुनखी या कृणति तस्यै क्रीबो या रज्जु स्मादंको या खुर्वेण क्रिबोत तस्यौ खुर्वस्तिस्रो रात्रीं र्वृतं चरेदञ्जलिनां वा पिबेदखंर्वेण वा पात्रेण प्रजायै गोपीथायं॥७॥

यथ्सोम्पानन्ते वृक्णात्तस्य नाश्यं वदेत मारुको याऽखंर्वेण वा त्रीणि च॥———[१]

त्वष्टां हृतपुत्रो वीन्द्रक्ष सोम्माहंर्त्तस्मित्रिन्द्रं उपहुवमैंच्छत् तं नोपांह्वयत पुत्रम्में-ऽवधीरिति स यंज्ञवेश्चसं कृत्वा प्रासहा सोमंमपिबत्तस्य यद्त्यशिष्यत् तत्त्वष्टांहवनीयमुप् प्रावर्तय्थस्वाहेन्द्रंशत्रुवधेस्वेति यदवर्तय्त्तद्दृत्रस्यं वृत्रत्वं यदब्रवीथ्स्वाहेन्द्रंशत्रुवधेस्वेति तस्मादस्य॥८॥

इन्द्रः शत्रुंरभवृथ्स सम्भवंत्रृग्नीषोमांवृभि समंभवृथ्स इंषुमात्रिमिषुमात्रुं विष्वंङ्कःवर्धत् स इमाल्लाँकानंवृणोद् यदिमाल्लाँकानवृणोत्तद्दृत्रस्यं वृत्रत्वन्तस्मादिन्द्रोऽिबभेथ्स प्रजापंतिमुपांधावृच्छत्रुंर्मेऽजुनीति तस्मै वज्रर्थं सिक्का प्रायंच्छदेतेनं जहीति तेनाभ्यायत् तावंब्रूतामुग्नीषोमौ मा॥९॥

प्र हारावम्नतः स्व इति मम् वै युवः स्थ इत्यंब्रवीन्माम्भ्येत्मिति तौ भागिधेयंमैच्छेतान्ताभ्यांमेतमंश्रीषोमीयमेकादशकपालम्पूर्णमांसे प्रायंच्छतावंब्र्ताम्भि सन्दंष्टौ वै स्वो न शंक्रुव ऐतुमिति स इन्द्रं आत्मनः शीतरूरावंजनयत्तच्छीतरूरयोर्जन्म य एवः शीतरूरयोर्जन्म वेदं॥१०॥

नैनर् शीतरूरो हंतुस्ताभ्यांमेनम्भ्यंनय्त्तस्मां अञ्चभ्यमांनाद्ग्रीषोमो निरंकामतां प्राणापानो वा एंनं तदंजिहताम् प्राणो वे दक्षों ऽपानः कतुस्तस्मां अञ्चभ्यमांना ब्रूयान्मियं दक्षकृत् इतिं प्राणापानावेवात्मन्धेत्ते सर्वमायुरिति स देवतां वृत्रात्रिर्हूय वार्त्रघर हुविः पूर्णमांसे निरंवपद्भन्ति वा एंनम्पूर्णमांस आ॥११॥

अमावास्यायययित् तस्माद्वार्त्रघी पूर्णमासेऽनूँच्येते वृधंन्वती अमावास्यायान्तथ्स् इस्था वार्त्रघर ह्विर्वज्रमादाय पुनंर्भ्यायत् ते अंब्रूतान्द्यावापृथिवी मा प्र हारावयोर्वे श्रित इति ते अंब्रूतां वरं वृणावहै नक्षंत्रविहिताऽहमसानीत्यसावंब्रवीचित्रविहिता-ऽहमितीयन्तस्मान्नक्षंत्रविहिताऽसौ चित्रविहितेयं य एवं द्यावापृथिव्योः॥१२॥

वरं वेदैनं वरों गच्छिति स आभ्यामेव प्रसूत् इन्द्रों वृत्रमंहन्ते देवा वृत्र हत्वा-ऽग्नीषोमांवब्रुवन्ह्व्यं नों वहत्मिति तावंब्रूतामपंतेजसौ वै त्यौ वृत्रे वै त्ययोस्तेज इति तैंऽब्रुवन्क इदमच्छैतीति गौरित्यंब्रुवन्गौर्वाव सर्वस्य मित्रमिति साऽब्रंबीत्॥१३॥

वरं वृणै मय्येव स्तोभयेन भुनजाध्वा इति तद्गौराहंर्त्तस्माद्गवि स्तोभयेन भुञ्जत एतद्वा अग्नेस्तेजो यद्धृतमेतथ्सोमेस्य यत्पयो य एवम्ग्नीषोमेयोस्तेजो वेदं तेज्स्व्येव भेवित ब्रह्मवादिनो वदन्ति किन्देवृत्यंम्पौर्णमासिमिति प्राजापृत्यमिति ब्रूयात्तेनेन्द्रं ज्येष्ठम्पुत्रं निरवांसाययदिति तस्माँ अथेष्ठम्पुत्रं धनेन निरवंसाययन्ति॥१४॥

अस्य मा वेदा द्यावापृथिव्योरंब्रवीदिति तस्मांचत्वारिं च॥————[२]

इन्द्रं वृत्रं जिघ्निवारसम्मृथोऽभि प्रावेपन्त स एतं वैमृथम्पूणमांसेऽनुनिर्वाप्यंमपश्यत्तं निरंवपत्तेन वै स मृथोऽपाहत् यद्वैमृथः पूर्णमांसेऽनुनिर्वाप्यों भवंति मृथं एव तेन् यज्ञमानोऽपं हत् इन्द्रों वृत्रर हत्वा देवतांभिश्चेन्द्रियेणं च व्यार्ध्यत् स एतमाँग्नेयमृष्टाकंपालममावास्यांयामपश्यदेन्द्रं दिधं॥१५॥ तं निरंवपत्तेन् वे स देवतांश्चेन्द्रियं चावांरुन्द्ध् यदांश्चेयोंऽष्टाकंपालोऽमावास्यांयाम्भवंत्यैन्द्रं दिधं देवतांश्चेव तेनेन्द्रियं च यजमानोऽवं रुन्द्ध् इन्द्रंस्य वृत्रं ज्ञघ्नुषं इन्द्रियं वीर्यं पृथिवीमनु व्यांच्छ्तितदोषंधयो वीरुधोंऽभवन्थ्स प्रजापंतिमुपांधावद्दृत्रं में जुघ्नुषं इन्द्रियं वीर्यम्॥१६॥

पृथिवीमन् व्यार्त्तदोषंधयो वी्रुधोऽभूवन्निति स प्रजापंतिः पुशूनंब्रवीदेतदंस्मै सं नंयतेति तत्पुशव् ओषंधीभ्योऽध्यात्मन्थसमनयन्तत्प्रत्यंदुहुन् यथ्समनयन्तथ्सान्नाय्यस्यं सान्नाय्यत्वं यत्प्रत्यदुंहुन्तत्प्रंतिधुषंः प्रतिधुक्तः समनेषुः प्रत्यंधुक्षन्न तु मियं श्रयत् इत्यंब्रवीदेतदंस्मै॥१७॥

शृतं कुंरुतेत्यंब्रवीत्तदंस्मै शृतमंकुर्वन्निन्द्र्यं वावास्मिन्वीर्यं तदंश्रयन्तच्छृतस्यं शृत्तव र समनेषुः प्रत्यंधुक्षञ्छृतमंऋन्न तु मां धिनोतीत्यंब्रवीदेतदंस्मै दिधं कुरुतेत्यंब्रवीत्तदंस्मै दध्यंकुर्वन्तदेनमधिनोत्तद्द्धो दंधित्वं ब्रह्मवादिनों वदन्ति दुधः पूर्वस्यावदेयम्॥१८॥

दिध हि पूर्वं क्रियत् इत्यनांदत्य तच्छृतस्यैव पूर्वस्यावं द्येदिन्द्रियमेवास्मिन्वीर्यर्ध् श्रित्वा दुधोपरिष्टाद्धिनोति यथापूर्वमुपैति यत्पूतीकैर्वा पर्णवृत्कैर्वातृश्च्याथ्सौम्यं तद्यत्क्रेले राक्षुसं तद्यत्तंण्डुलैर्वैश्वदेवं तद्यदातश्चेनेन मानुषं तद्यद्वध्ना तथ्सेन्द्रं दुधा तनिक्ति॥१९॥

स्-द्रत्वायाँग्निहोत्रोच्छेष्णम्भ्यातंनक्ति यज्ञस्य सन्तंत्या इन्द्रों वृत्र हत्वा पराँ परावतंमगच्छुदपाराधृमिति मन्यंमान्स्तं देवताः प्रैषंमैच्छुन्थ्सौंऽब्रवीत्प्रजापंतिर्यः प्रथमो-ऽनुिबन्दित् तस्यं प्रथमम्भाग्धेयमिति तम्पितरोऽन्वंविन्दन्तस्मौत्पितृभ्यः पूर्वेद्यः क्रियते सोऽमावास्यां प्रत्यागंच्छत्तं देवा अभि समंगच्छन्तामा वै नः॥२०॥

अद्य वसुं वस्तीतीन्द्रो हि देवानां वसु तदंमावास्यांया अमावास्यत्वं ब्रंह्मवादिनों वदन्ति किन्देवत्यर्थ सान्नाय्यमितिं वैश्वदेवमितिं ब्रूयाद्विश्वे हि तद्देवा भांगुधेयंमुभि समर्गच्छुन्तेत्यथो खल्वैन्द्रमित्येव ब्रूयादिन्द्रं वाव ते तद्भिष्उयन्तोऽभि समंगच्छुन्तेतिं॥२१॥

दिधं मे जुन्नुषं इन्द्रियं वीर्यमित्यंब्रवीदेतदंस्मा अवदेयंन्तनिक्त नो द्विचंत्वारि श्राच॥-[३]

ब्रह्मवादिनों वदन्ति स त्वै दंर्शपूर्णमासौ यंजेत् य एंनौ सेन्द्रौ यजेतेति वैमृधः पूर्णमासेऽनुनिर्वाप्यों भवित तेनं पूर्णमासः सेन्द्रौ ऐन्द्रं दध्यमावास्यायां तेनामावास्यां सेन्द्रा य एवं विद्वान्दंर्शपूर्णमासौ यजंते सेन्द्रांवेवैनौ यजते श्वःश्वौंऽस्मा ईजानाय वसीयो भवित देवा वै यद्यज्ञेऽकुर्वत् तदसुरा अकुर्वत् ते देवा एताम्॥२२॥

इष्टिंमपश्यन्नाग्नावैष्णुवमेकांदशकपालुर् सरंस्वत्यै चुरुर सरंस्वते चुरुं ताम्पौर्णमासर स्र्थाप्यानु निरंवपन्ततों देवा अभवन्यरासुंग् यो भ्रातृंव्यवान्थ्स्याथ्स पौर्णमासर स्र्थाप्येतामिष्टिमनु निर्वपेत्पौर्णमासेनैव वज्रम्भ्रातृंव्याय प्रहृत्यांग्नावैष्णुवेनं देवतांश्च युज्ञं च भ्रातृंव्यस्य वृक्के मिथुनान्पुशून्थ्सारस्वताभ्यां यावंदेवास्यास्ति तत्॥२३॥

सर्वं वृङ्के पौर्णमासीमेव यंजेत् भ्रातृंव्यवान्नामांवास्यारं हृत्वा भ्रातृंव्युं ना प्याययित साकम्प्रस्थायीयेन यजेत पृशुकांमो यस्मे वा अल्पेनाहरंन्ति नात्मना तृप्यंति नान्यस्में ददाति यस्में महता तृप्यंत्यात्मना ददात्यन्यस्में महता पूर्णर होत्व्यंन्तृप्त एवैन्मिन्द्रेः प्रजयां पृशुभिस्तर्पयित दारुपात्रेणं जुहोति न हि मृन्मयमाहुंतिमान्श औदुंम्बरम्॥२४॥

भ्वत्यूर्ग्वा उंदुम्बर् ऊर्क्प्शवं ऊर्जैवास्मा ऊर्जं पृशूनवं रुन्द्वे नागंतश्रीर्महेन्द्रं यंजेत् त्रयो वे गृतश्रियः शुश्रुवान्प्रामणी राजन्यंस्तेषाँम्महेन्द्रो देवता यो वे स्वां देवतामित्यजंते प्र स्वाये देवताये च्यवते न पराम्प्राप्नोति पापीयान्भवति संवथ्सरिमन्द्रं यजेत संवथ्सर हि ब्रुतं नाति स्वा॥२५॥

पुवैनं देवतेज्यमाना भूत्यां इन्द्धे वसीयान्भवति संवथ्सरस्यं पुरस्तांदुग्नयें व्रतपंतये पुरोडाशंमुष्टाकंपालं निर्वपेथ्संवथ्सरमेवेनं वृत्रं जिघ्नवाश्संमृग्निर्वृतपंतिर्वृतमा लम्भयित ततो-ऽधि कामं यजेत॥२६॥

एतान्तदौदुंम्बर्ड् स्वा त्रिर्शर्च॥

rx1

नासोमयाजी सं नंयेदनांगतं वा एतस्य पयो योऽसोमयाजी यदसोमयाजी संनयेँत्पिरमोष एव सोऽनृतं करोत्यथो परैव सिंच्यते सोमयाज्येव सं नंयेत्पयो वे सोमः पर्यः सान्नाय्यम्पयंसैव पर्य आत्मन्यंत्ते वि वा एतम्प्रजयां पृश्भिरर्धयति वर्धयंत्यस्य भ्रातृंव्यं यस्यं हविर्निरुप्तम्पुरस्तां चुन्द्रमाः॥२७॥

अभ्युंदेति त्रेधा तंण्डुलान् वि भंजेद्ये मंध्यमाः स्युस्तान्म्रये दात्रे पुरोडाशंम्ष्टाकंपालं कुर्याद्ये स्थविष्ठास्तानिन्द्राय प्रदात्रे द्धः श्चरं येऽणिष्ठास्तान् विष्णंवे शिपिविष्टायं शृते चरुम्भ्रिरेवास्मैं प्रजाम्प्रंजनयंति वृद्धामिन्द्रः प्र यंच्छति यज्ञो वै विष्णंः पृशवः शिपिर्यज्ञ एव पृशुषु प्रति तिष्ठति न द्वे॥२८॥

युजेत यत्पूर्वया सम्प्रति यजेतोत्तंरया छम्बद्धंर्याद्यदुत्तंरया सम्प्रति यजेत् पूर्वया

छुम्बद्भंर्यान्नेष्टिर्भवंति न यज्ञस्तदनुं हीतमुख्यंपगुल्भो जायत् एकांमेव यंजेत प्रगुल्भौंऽस्य जायतेऽनांदत्य तद्के एव यंजेत यज्ञमुखमेव पूर्वयालभेते यजेत् उत्तरया देवतां एव पूर्वयावरुन्द्व इंन्द्रियमुत्तरया देवलोकमेव॥२९॥

पूर्वयाभिजयंति मनुष्यलोकमुत्तंरया भूयंसो यज्ञकृतूनुपैत्येषा वै सुमना नामेष्टिर्यमुद्येजानम्पश्चाच्चन्द्रमां अभ्युंदेत्यस्मिन्नेवास्मैं लोकेऽर्धुकम्भवति दाक्षायणयज्ञेनं सुवर्गकामो यजेत पूर्णमासे सं नयेन्मैत्रावरुण्याऽऽमिक्षयामावास्यायां यजेत पूर्णमासे वै देवाना स्युतस्तेषांमृतमर्धमासम्प्रसृतस्तेषांम्मैत्रावरुणी वृशामांवास्यायामनूबन्ध्यां यत्॥३०॥

पूर्वेद्युर्यजंते वेदिमेव तत्करोति यद्वथ्सानपाकरोति सदोहविर्धाने एव सिम्मिनोति यद्यजंते देवैरेव सुत्यार सम्पादयित स एतर्मर्थमासर संधुमादं देवैः सोमिम्पबित यन्मैत्रावरुण्यामिक्षयामावास्यायां यजंते यैवासौ देवानां वृशानूंबन्ध्यां सो एवैषैतस्य साक्षाद्वा एष देवानुभ्यारोहित य एषां युज्ञम्॥३१॥

अभ्यारोहंति यथा खलु वै श्रेयांनभ्यारूढः कामयंते तथां करोति यद्यंविविध्यंति पापीयान्भवित यदि नाविविध्यंति सदद्भावित्कांम एतेनं यज्ञेनं यजेत क्षुरपविर्ह्णेष यज्ञस्ताजक्युण्यों वा भविति प्र वां मीयते तस्यैतद्वृतं नानृतं वदेन्न मार्समंश्रीयान्न स्त्रियमुपेयान्नास्य पल्पूलनेन वासंः पल्पूलयेयुरेतिद्धि देवाः सर्वं न कुर्वन्ति॥३२॥

चुन्द्रमा द्वे देवलोकमेव यद्यज्ञं पंल्पूलयेयुष्यद्वं॥————[५]

पृष वै देवर्थो यद्दंरशपूर्णमासौ यो दंरशपूर्णमासाविष्ट्वा सोमेन यजंते रथंस्पष्ट पृवावसाने वरं देवानामवं स्यत्येतानि वा अङ्गापरूर्षेषे संवथ्सरस्य यद्दंरशपूर्णमासौ य पृवं विद्वान्दंरशपूर्णमासौ यज्तेऽङ्गापरूर्षेष्येव संवथ्सरस्य प्रति दधात्येते वै संवथ्सरस्य चक्षेषी यद्दंरशपूर्णमासौ य पृवं विद्वान्दंरशपूर्णमासौ यजंते ताभ्यांमेव सुंवर्गं लोकमन् पश्यति॥३३॥

पृषा वै देवानां विक्रांन्तिर्यर्द्वर्शपूर्णमासौ य पृवं विद्वान्दंर्शपूर्णमासौ यजंते देवानांमेव विक्रांन्तिमनु वि कंमत पृष वै देवयानः पन्था यद्दंरशपूर्णमासौ य पृवं विद्वान्दंर्शपूर्णमासौ यजंते य पृव देवयानः पन्थास्त समारोहत्येतौ वै देवाना हिरी यद्दंरशपूर्णमासौ य पृवं विद्वान्दंर्शपूर्णमासौ यजंते यावेव देवाना हिरी ताभ्यांम्॥३४॥

पृवैभ्यों हृव्यं वंहत्येतद्वे देवानांमास्यं यद्दंरशपूर्णमासौ य पृवं विद्वान्दंरशपूर्णमासौ यजंते साक्षादेव देवानांमास्यें जुहोत्येष वै हंविर्धानी यो दंरशपूर्णमासयाजी सायम्प्रांतरग्निहोत्रं जुंहोति यजंते दरशपूर्णमासावहंरहर्हविर्धानिना स् सुतो य पृवं विद्वान्दंरशपूर्णमासौ यजंते हिवर्धान्यंस्मीति सर्वमेवास्यं बर्हिष्यं दत्तम्भवित देवा वा अहं:॥३५॥

युज्ञियं नाविन्दन्ते दंर्शपूर्णमासावंपुनन्तौ वा एतौ पूतौ मेध्यौ यद्दंर्शपूर्णमासौ य एवं विद्वान्दंर्शपूर्णमासौ यजंते पूतावेवेनौ मेध्यौ यजते नामांवास्यायां च पौर्णमास्यां च स्त्रियमुपेयाद्यदुंपेयात्रिरिन्द्रियः स्याथ्सोमंस्य वै राज्ञौंऽर्धमासस्य रात्रयः पत्नय आसुन्तासांममावास्यां च पौर्णमासीं च नोपैत्॥३६॥

ते एनम्भि समनह्येतान्तं यक्ष्मं आर्च्छ्रंद्राजांनं यक्ष्मं आर्दिति तद्रांजयक्ष्मस्य जन्म् यत्पापीयानभवत्तत्पापयक्ष्मस्य यज्ञायाभ्यामविन्दत्तज्ञायेन्यंस्य य एवमेतेषां यक्ष्माणां जन्म् वेद नैनंमेते यक्ष्मां विन्दन्ति स एते एव नंमस्यन्नुपाधावत्ते अंब्र्तां वरं वृणावहा आवं देवानां भाग्धे अंसाव॥३७॥

आवदिधे देवा इंज्यान्ता इति तस्माँथ्सदृशीना र रात्रीणाममावास्यायां च पौर्णमास्यां चं देवा इंज्यन्त एते हि देवानां भाग्धे भाग्धा अस्मै मनुष्यां भवन्ति य एवं वेदं भूतानि क्षुधंमग्नन्थ्यद्यो मंनुष्यां अर्धमासे देवा मासि पितरंः संवथ्सरे वनस्पतंयस्तस्मादहंरहर्मनुष्यां अर्शनिमच्छन्तेऽर्धमासे देवा इंज्यन्ते मासि पितृभ्यः क्रियते संवथ्सरे वनस्पतंयः फर्लं गृह्णन्ति य एवं वेद हन्ति क्षुधम्भ्रातृंव्यम्॥३८॥

देवा वै नर्चि न यजुंष्यश्रयन्त् ते सामन्त्रेवाश्रयन्त् हिं केरोति सामैवाकुर्हिं केरोति यत्रैव देवा अश्रयन्त् ततं पृवेनान्त्र युंङ्के हिं केरोति वाच पृवेष योगो हिं केरोति प्रजा पृव तद्यजमानः सृजते त्रिः प्रथमामन्वाह त्रिरुंत्तमां युज्ञस्यैव तद्वर्सम्॥३९॥

नृह्यत्यप्रस्नश्साय सन्तंतमन्बाह प्राणानांमुन्नाद्यस्य सन्तंत्या अथो रक्षंसामपंहत्यै राथंतरीम्प्रथमामन्बांह राथंतरो वा अयं लोक इममेव लोकम्भि जंयित त्रिविं गृह्णाति त्रयं इमे लोका इमानेव लोकान्भि जंयित बार्हतीमुत्तमामन्बांह बार्हतो वा असौ लोकोऽमुमेव लोकम्भि जंयित प्र वंः॥४०॥

वाजा इत्यनिरुक्ताम्प्राजापत्यामन्वांह युज्ञो वै प्रजापितर्युज्ञमेव प्रजापितिमा रंभते प्र वो वाजा इत्यन्वाहान्नं वै वाजोऽन्नमेवावं रुन्द्धे प्र वो वाजा इत्यान्वाह् तस्मात्प्राचीन् १ रेतो धीयुतेऽम्र आ याहि वीतय् इत्याह तस्मात्प्रतीचीः प्रजा जायन्ते प्र वो वाजाः॥४१॥

इत्यन्वांह् मासा वै वाजां अर्धमासा अभिद्यंवो देवा ह्विष्मंन्तो गौर्घृताचीं यज्ञो देवाञ्जिगाति यजमानः सुम्रयुरिदमंसीदम्सीत्येव यज्ञस्यं प्रियं धामावं रुन्द्धे यं कामयेत् सर्वमायुरियादिति प्र वो वाजा इति तस्यानूच्याग्र आ याहि वीतय इति सन्तंतमुत्तंरमर्ध्चमा लंभेत॥४२॥

प्राणेनैवास्यापानं दांधार् सर्वमायुरिति यो वा अर्बिश् सांमिधेनीनां वेदांर्बावेव भ्रातृंव्यं कुरुतेऽर्ध्वी सं दंधात्येष वा अर्बिः सांमिधेनीनां य एवं वेदांर्बावेव भ्रातृंव्यं कुरुत ऋषेर्ंऋषेवां एता निर्मिता यथ्सांमिधेन्यंस्ता यदसंयुक्ताः स्युः प्रजयां पृशुभिर्यजंमानस्य वि तिष्ठेरन्नर्ध्वी सन्दंधाति सं युनक्त्येवैनास्ता अस्मै संयुक्ता अवरुद्धाः सर्वामाशिषं दुह्रे॥४३॥

ब्र्सं वो जायन्ते प्र वो वार्जा लभेत दधाति सन्दर्श च॥_____[७]

अयंज्ञो वा एष योऽसामाऽग्र आ यांहि वीतय इत्यांह रथन्तरस्यैष वर्णस्तं त्वां समिद्भिरङ्गिर् इत्यांह वामदेव्यस्यैष वर्णो बृहदंग्ने सुवीर्यमित्यांह बृह्त एष वर्णो यदेतं तृचम्न्वाहं यज्ञमेव तथ्सामन्वन्तं करोत्यग्निर्मुष्मिंश्लौंक आसींदादित्योंऽस्मिन्ताविमो लोकावशान्तौ॥४४॥

आस्तान्ते देवा अंब्रुवन्नेतेमौ वि पर्यूह्मित्यम् आ याहि वीतय इत्यस्मिल्रौंकैं-ऽग्निमंदधुर्बृहदंग्ने सुवीर्यमित्यमुष्मिल्लौंक आदित्यन्ततो वा इमौ लोकावंशाम्यतां यदेवमुन्वाहानयौर्लोकयोः शान्त्यै शाम्यंतोऽस्मा इमौ लोकौ य एवं वेद पर्श्वंदश सामिधेनीरन्वांहु पर्श्वंदश॥४५॥

वा अर्धमासस्य रात्रंयोऽर्धमास्याः संवथ्सर आंप्यते तासां त्रीणि च शतानिं पृष्टिश्चाक्षरांणि तावंतीः संवथ्सरस्य रात्रंयोऽक्षर्श एव संवथ्सरमांप्रोति नृमेधेश्च परुंच्छेपश्च ब्रह्मवाद्यंमवदेताम्स्मिन्दारांवाद्रैंऽग्निं जंनयाव यत्रो नौ ब्रह्मींयानितिं नृमेधोऽभ्यंवद्थ्स धूममंजनयुत्परुंच्छेपोऽभ्यंवद्थ्सांऽग्निमंजनयुद्दष् इत्यंब्रवीत्॥४६॥

यथ्समाविद्विद्व कथा त्वमृग्निमजींजनो नाहिमितिं सामिधेनीनांमेवाहं वर्णं वेदेत्यंत्रवीद्यद्धृतवंत्पदमंनूच्यते स आंसां वर्ण्सतं त्वां स्मिद्धिरङ्गिर् इत्यांह सामिधेनीष्वेव तज्ञ्योतिंर्जनयति स्निय्स्तेन यद्द्यः स्नियस्तेन यद्गांयत्रियः स्नियस्तेन यथ्सांमिधेन्यों वृषंण्वतीमन्वांह॥४७॥

तेन् पुङ्स्वंतीस्तेन् सेन्द्रास्तेनं मिथुना अग्निर्देवानां दूत आसींदुशनां काव्यो-ऽसुंराणान्तौ प्रजापंतिम्प्रश्नमेंता् स प्रजापंतिर्प्निं दूतं वृंणीमह् इत्यभि पर्यावंर्तत् ततो देवा अभवन्परासुंरा यस्यैवं विदुषोऽग्निं दूतं वृंणीमह् इत्यन्वाह् भवंत्यात्मना परांस्य भ्रातृंच्यो भवत्यध्वरवंतीमन्वांह भ्रातृंच्यमेवैतयां॥४८॥

ध्वर्ति शोचिष्केंश्स्तमीमह् इत्यांह प्वित्रमेवैतद्यजंमानमेवैतयां पवयति समिद्धो अग्न आहुतेत्यांह परिधिमेवैतं परि दधात्यस्कन्दाय् यदतं ऊर्ध्वमेभ्याद्ध्याद्यथां बहिःपरिधि स्कन्दिति ताद्दगेव तत्रयो वा अग्नयो हव्यवाहंनो देवानां कव्यवाहंनः पितृणार सहरंक्षा असुराणान्त एतर्ह्या शर्रसन्ते मां विरिष्यते माम्॥४९॥

इति वृणीध्वः हंव्यवाहंनमित्यांह् य एव देवानां तं वृणीत आर्षेयं वृणीते बन्धोरेव नैत्यथो सन्तंत्यै पुरस्तांदर्वाचो वृणीते तस्मांत्पुरस्तांद्वाश्चों मनुष्यांन्यितरोऽनु प्र पिपते॥५०॥

अशाँन्तावाह् पश्चंदशाब्रवीदन्वांहैतयां वरिष्यते मामेकान्नत्रिष्ट्शचं॥————[८]

अग्ने महार असीत्यांह महान् ह्यंष यद्ग्निर्ब्राह्मणेत्यांह ब्राह्मणो ह्यंष भार्तेत्यांहै्ष हि देवेभ्यों ह्व्यम्भरित देवेद्ध इत्यांह देवा ह्यंतमैन्धंत मन्विद्ध इत्यांहु मनुरह्यंतमुत्तरो देवेभ्य ऐन्द्धर्षिष्टुत इत्याहर्षयो ह्यंतमस्तुंवन्विप्रांनुमदित इत्यांह॥५१॥

विप्रा ह्येते यच्छुंश्रुवारसंः कविश्वस्त इत्यांह क्वयो ह्येते यच्छुंश्रुवारसो ब्रह्मंसर्शित् इत्यांह् ब्रह्मंसर्शितो ह्येष घृताहंवन इत्यांह घृताहुतिर्ह्यस्य प्रियतमा प्रणीर्यज्ञानामित्यांह प्रणीर्ह्येष युज्ञानारं रुथीरंध्वराणामित्यांहैष हि देवरुथोंऽतूर्तो होतेत्यांह् न ह्येतं कश्चन॥५२॥

तरंति तूर्णिर्हव्यवाडित्यांह् सर्वेड् ह्यंष तर्त्यास्पात्रं जुहूर्देवानामित्यांह जुहूर्ह्यंष देवानाश्चमसो देवपान् इत्याह चमसो ह्यंष देवपानोऽरार इंवाग्ने नेमिर्देवाड्स्त्वं परिभूरसीत्यांह देवान् ह्यंष परिभूर्यद्भूयादा वंह देवान्देवयते यजंमानायेति भ्रातृंव्यमस्मै॥५३॥ जन्येदा वह देवान् यर्जमाना्येत्यांह् यर्जमानमेवैतेनं वर्धयत्यग्निमंग्न आ वह सोम्मा वहेत्यांह देवतां एव तद्यंथापूर्वमुपं ह्वयत् आ चाँग्ने देवान् वहं सुयर्जा च यज जातवेद इत्यांहाग्निमेव तथ्स इंश्वित सौंऽस्य सर्शितो देवेभ्यों हव्यं वहत्यग्निर्होतां॥५४॥

इत्यांहाभ्रिर्वे देवाना् होता य एव देवाना् होता तं वृंणीते स्मो व्यमित्यांहात्मानंमेव स्त्त्वं गंमयित साधु ते यजमान देवतेत्यांहाशिषंमेवैतामा शाँस्ते यद्भूयाद्याँऽभि होतांर्मवृंथा इत्यभिनोंभ्यतो यजमानं परिं गृह्णीयात् प्रमायुंकः स्याद्यजमानदेवत्यां वै जुहुर्भांतृव्यदेवत्योंपुभृत्॥५॥

यद्वे इंव ब्रूयाद्भातृंव्यमस्मै जनयेद्भृतवंतीमध्वर्यो सुच्मास्यस्वेत्यांह् यजंमानमे्वैतेनं वर्धयित देवायुव्मित्यांह देवान् ह्यंषावंति विश्ववांग्मित्यांह् विश्वर् ह्यंषावृतीडांमहे देवार ईंडेन्यांन्नमस्यामं नम्स्यान् यजांम यज्ञियानित्यांह मनुष्यां वा ईंडेन्यांः पितरों नम्स्यां देवा यज्ञियां देवतां एव तद्यंथाभागं यंजति॥५६॥

विप्रांनुमदित् इत्यांह चनास्मै होतोंपुभृद्देवतां एव त्रीणिं च॥————[९]

त्री इस्तुचानन् ब्रूयाद्राजन्यंस्य त्रयो वा अन्ये रांजन्यांत्पुरुषा ब्राह्मणो वैश्यः श्रूदस्तानेवास्मा अनुकान्करोति पश्चंदशान् ब्रूयाद्राजन्यंस्य पश्चदशो वे रांजन्यः स्व पृवेन् इस्तोमे प्रति ष्ठापयति त्रिष्टुभा परि दध्यादिन्द्रियं वे त्रिष्टुगिन्द्रियकांमः खलु वे रांजन्यों यजते त्रिष्टुभैवास्मां इन्द्रियं परि गृह्णाति यदि कामयेत॥५७॥

ब्रह्मवर्चसम्स्त्वितं गायित्रया परि दथ्याद्रह्मवर्चसं वै गायत्री ब्रह्मवर्चसमेव भेवित सप्तद्वशानुं ब्र्याद्वेश्यंस्य सप्तद्वशो वै वैश्यः स्व एवेन्ड् स्तोमे प्रति ष्ठापयित् जगत्या परि दथ्याञ्जागता वै पृशवः पृश्चकांमः खलु वै वैश्यों यजते जगत्येवास्में पृश्न्यिरं गृह्णात्येकविश्शतिमनुं ब्र्यात्प्रतिष्ठाकांमस्यैकविश्शः स्तोमानां प्रतिष्ठा प्रतिष्ठित्यै॥५८॥

चतुंर्वि शतिमन् ब्रूयाद्वह्मवर्च सकांमस्य चतुंर्वि शत्यक्षरा गायत्री गायत्री ब्रह्मवर्च सङ्गायत्रियेवास्मे ब्रह्मवर्च समवं रुन्छे त्रि श्रातमन् ब्रूयादन्नेकामस्य त्रि श्रात विराडन्नं विराडिन्द्रा विराहिन्द्रा विराहिन्द्र विराहिन्द विराहिन्द विराहिन्द विराहिन्

अवं रुन्द्धे चतुंश्चत्वारि शत्मन् ब्रूयादिन्द्रियकां मस्य चतुंश्चत्वारि श्वदक्षरा त्रिष्टुगिन्द्रियं

त्रिष्टुत्रिष्टुभैवास्मां इन्द्रियमवं रुन्द्वेऽष्टाचंत्वारि शत्मनं ब्रूयात्पशुकां मस्याष्टाचंत्वारि श्रवक्षरा जगंती जागंताः प्रावो जगंत्यैवास्मे पृश्नवं रुन्द्वे सर्वाणि छन्दा स्स्यनं ब्रूयाद्बहुयाजिनः सर्वाणि वा एतस्य छन्दा १ स्यवं रुन्द्वानि यो बंहुयाज्यपंरिमित् मनं ब्रूयादपंरिमित्स्यावं रुद्धै॥६०॥

कामयेत प्रतिष्ठित्यै पशून्थ्सप्तचंत्वारि १ शच॥

1 م و آ

निर्वीतम्मनुष्यांणाम्प्राचीनावीतिम्पितृणामुपंवीतं देवानामुपं व्ययते देवलुक्ष्ममेव तत्कुंरुते तिष्ठन्नन्वांह् तिष्ठन् ह्याश्रुंततर् वदंति तिष्ठन्नन्वांह सुवर्गस्यं लोकस्याभिजित्या आसीनो यजत्यस्मिन्नेव लोके प्रति तिष्ठति यत्क्रोश्चम्न्वाहांसुरं तद्यन्मुन्द्रम्मानुषं तद्यदंन्तरा तथ्सदेवमन्तरानूच्यरं सदेवत्वायं विद्वारसो वै॥६१॥

पुरा होतारोऽभूवन्तस्माद्विधृंता अध्वानोऽभूंवन्न पन्थांनः समंरुक्षन्नन्तर्वेद्यंन्यः पादो भवंति बहिर्वेद्यंन्योऽथान्वाहाध्वंनां विधृंत्यै पृथामसर्ररोहायाथो भूतं चैव भविष्यचावं रुन्द्धेऽथो परिमितं चैवापरिमितुं चावं रुन्द्धेऽथौ ग्राम्याङ्श्वेव पृशूनारुण्याङ्श्वावं रुन्द्धेऽथौ॥६२॥

देवलोकं चैव मंनुष्यलोकं चाभि जंयित देवा वै सांमिधेनीर्नूच्यं युज्ञं नान्वंपश्यन्थस प्रजापंतिस्तूष्णीमांघारमाघारयत्ततो वै देवा युज्ञमन्वंपश्यन् यत्तूष्णीमांघारमाघारयति युज्ञस्यानुंख्यात्या अर्थो सामिधेनीरेवाभ्यंनुत्त्वालूँक्षो भवित् य एवं वेदार्थो तर्पयंत्येवैनास्तृप्यंति प्रजयां पशुभिंः॥६३॥

य पुवं वेद् यदेक्वयाघारयेदेकां प्रीणीयाद्यद्वाभ्यां द्वे प्रीणीयाद्यत्तिस्भिरति तद्वेचयेन्मन्सा घारयति मनसा ह्यनाप्तमाप्यते तिर्यश्चमा घारयत्यछम्बद्वारं वाक् मनश्चार्तीयतामहं देवेभ्यो हृव्यं वहामीति वागन्नवीदहं देवेभ्य इति मनुस्तौ प्रजापितम्प्रश्यमैतार् सौंऽन्नवीत्॥६४॥

प्रजापितिर्दूतीरेव त्वं मनंसोऽसि यिद्ध मनंसा ध्यायेति तद्वाचा वद्तीति तत्खलु तुभ्यं न वाचा जुहवन्नित्यंब्रवीत् तस्मान्मनंसा प्रजापंतये जुह्वति मनं इव हि प्रजापंतिः प्रजापंतरेये परिधीन्थ्सम्माँष्टिं पुनात्येवैनान्त्रिर्मध्यमं त्रयो वै प्राणाः प्राणानेवाभि जयिति निर्दक्षिणाध्यं त्रयः॥६५॥

इमे लोका इमानेव लोकान्भि जंयित त्रिरुंत्तरार्ध्यं त्रयो वै देवयानाः पन्थानस्तानेवाभि जंयित त्रिरुपं वाजयित त्रयो वै देवलोका देवलोकानेवाभि जंयित द्वादंश सम्पंद्यन्ते द्वादंश मासाः संवथ्सरः संवथ्सरमेव प्रीणात्यथी संवथ्सरमेवास्मा उपं दधाति सुवर्गस्यं लोकस्य समध्या आघारमा घारयति तिर इंव॥६६॥

वै सुंवर्गो लोकः सुंवर्गमेवास्मैं लोकम्प्र रोयत्यृज्ञुमा घारयत्यृज्ञुरिव हि प्राणः सन्तंतमा घारयति प्राणानामन्नाद्यस्य सन्तंत्या अथो रक्षसामपेहत्यै यं कामयेत प्रमायुकः स्यादिति जिह्मं तस्या घारयेत्प्राणमेवास्मांज्ञिह्मं नयति ताजक्प्र मीयते शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदांघार आत्मा ध्रुवा॥६७॥

आघारमाघार्य ध्रुवाः समंनक्त्यात्मन्नेव यज्ञस्य शिरः प्रतिं दधात्यग्निर्देवानां दूत आसी्द्देव्याऽसुंराणान्तौ प्रजापंतिम्प्रश्ञमेताः स प्रजापंतिर्ब्राह्मणमंत्रवीदेतद्वि ब्रूहीत्या श्रांवयेतीदं देवाः शृणुतेति वाव तदंब्रवीदिग्निर्देवो होतेति य एव देवानां तमंवृणीत् ततो देवाः॥६८॥

अभंवन्परांसुरा यस्यैवं विदुषंः प्रवरम्प्रंवृणते भवंत्यात्मना परांस्य भ्रातृंच्यो भवति यद्ग्राह्मणश्चाब्राह्मणश्च प्रश्ञमेयातां ब्राह्मणायाधि ब्रूयाद्यद्ग्राह्मणायाध्याहात्मनेऽध्यांह् यद्ग्राह्मणम्पुराहात्मनं परांह तस्माद्गाह्मणो न पुरोच्यः॥६९॥

वा आंर्ण्याङ्श्चावं रुन्धेऽथों पृशुभिः सौंऽब्रवीद्दक्षिणाुर्ध्यंत्रयं इव ध्रुवा देवाश्चंत्वारि्ष्शचं॥[११]

आयुष्ट आयुर्दा अंग्र् आ प्यांयस्व सं तेऽवं ते हेड उद्वंत्तमम्प्र णों देव्या नों दिवोऽग्नांविष्णू अग्नांविष्णू इमं में वरुण तत्त्वां याम्युद् त्यं चित्रम्। अपां नपादा ह्यस्थांदुपस्थं जिह्नानांमूर्ध्वो विद्युतं वसानः। तस्य ज्येष्ठम्महिमानं वहंन्तीर्हिरंण्यवर्णाः परिं यन्ति यहीः। सम्॥७०॥

अन्या यन्त्युपं यन्त्यन्याः संमानमूर्वं नद्यः पृणन्ति। तम् शुचिर् शुचंयो दीदिवारसंमुपां नपातं परि तस्थुरापंः। तमस्मेरा युवतयो युवानम्मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापंः। स शुक्रेण् शिक्षंना रेवद्ग्निदीदायांनिध्मो घृतिर्निर्णिगुफ्स्। इन्द्रावरुणयोर्हर सम्राजोरव आ वृंणे। ता नौ मृडात ईदृशैं। इन्द्रावरुणा युवमंध्वरायं नः॥७१॥

विशे जनाय मिह् शर्म यच्छतम्। दीर्घप्रयज्युमित् यो वनुष्यिति वयं जयेम् पृतनासु दूढ्यः। आ नो मित्रावरुणा प्र बाहवाँ। त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वां देवस्य हेडोऽवं यासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वहिंतमः शोशुंचानो विश्वा द्वेषार्रस् प्र मुंमुग्ध्यस्मत्। स त्वं नो अग्नेऽवमो भंवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ। अवं यक्ष्व नो वर्रुणम्॥७२॥

ररांणो वीहि मृंडीकर सुहवों न एधि। प्रप्रायम्प्रिर्भर्तस्यं शृण्वे वि यथ्सूर्यो न रोचंते बृहद्भाः। अभि यः पूरुं पृंतनासु तस्थौ दीदाय दैव्यो अतिथिः शिवो नंः। प्र ते यक्षि प्र तं इयर्मि मन्म भुवो यथा वन्द्यों नो हवेषु। धन्वंन्निव प्रपा असि त्वमंग्न इयक्षवें पूरवें प्रत्न राजन्न्।॥७३॥

वि पाजंसा वि ज्योतिषा। स त्वमंग्ने प्रतीकेन् प्रत्योष यातुधान्यः। उ्रुक्षयेषु दीद्यंत्। तर सुप्रतीकर सुदृश्र् स्वश्रमविद्वारसो विदुष्टरर सपेम। स येक्षद्विश्वां वयुनानि विद्वान्प्र ह्व्यम्ग्निर्मृतेषु वोचत्। अर्होमुचे विवेष यन्मा वि नं इन्द्रेन्द्रं क्षुत्रमिन्द्रियाणि शतक्रतोऽनुं ते दायि॥७४॥

युद्धीः समध्यरायं नो वर्रुणर राजुङ् श्चतुंश्चत्वारिरशच॥———[१२]

[स्मिध्श्रक्षुंषी प्रजापंतिराज्यं देवस्य स्फाम्ब्रंह्मवादिनोऽद्भिरग्नेस्रयो मर्नुः पृथिव्याः पृशवोऽग्नीधे देवा वै यज्ञस्य युक्ष्वोशन्तंस्त्वा द्वादंश]

॥षष्ठमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां द्वितीयकाण्डे षष्ठमः प्रश्नः॥

स्मिधों यजित वस्नतमेवर्तूनामवं रुन्द्धे तनूनपातं यजित ग्रीष्ममेवावं रुन्द्ध इडो यंजित वर्षा पुवावं रुन्द्धे ब्रिश्चंजिति श्रदंमेवावं रुन्द्धे स्वाहाकारं यंजित हेम्नतमेवावं रुन्द्धे तस्माथ्स्वाहांकृता हेमन्युशवोऽवं सीदिन्त स्मिधों यजत्युषसं पुव देवतांनामवं रुन्द्धे तनूनपातं यजित युज्ञमेवावं रुन्द्धे॥१॥

इडो यंजित पुशूनेवावं रुन्ध्रे बुर्हियंजित प्रजामेवावं रुन्ध्रे सुमानंयत उपभृतुस्तेजो वा आज्यं प्रजा बुर्हिः प्रजास्वेव तेजों दधाति स्वाहाकारं यंजित वाचंमेवावं रुन्ध्रे दश् सम्पंचन्ते दशाक्षरा विराह्विराजैवान्नाचमवं रुन्ध्रे सुमिधों यजत्यस्मिन्नेव लोके प्रति तिष्ठति तनूनपातं यजित॥२॥

युज्ञ एवान्तरिक्षे प्रतिं तिष्ठतीडो यंजति पुशुष्वेव प्रतिं तिष्ठति बुर्हियंजिति य

एव देवयानाः पन्थांनस्तेष्वेव प्रतिं तिष्ठति स्वाहाकारं यंजति सुवर्ग एव लोके प्रतिं तिष्ठत्येतावंन्तो वै देवलोकास्तेष्वेव यंथापूर्वं प्रतिं तिष्ठति देवासुरा एषु लोकेष्वंस्पर्धन्त ते देवाः प्रयाजैरेभ्यो लोकेभ्योऽसुरान्प्राणुंदन्त तत्प्रयाजानाम्॥३॥

प्रयाज्ञत्वं यस्यैवं विदुषंः प्रयाजा इज्यन्ते प्रैभ्यो लोकेभ्यो भ्रातृंव्यान्नुदतेऽभिकामं जुहोत्यभिजित्यै यो वै प्रयाजानांम्मिथुनं वेद प्र प्रजयां पृशुभिर्मिथुनैर्जायते समिधों बह्वीरिव यजित तनूनपात्मेकिमिव मिथुनं तिदेडो बह्वीरिव यजित बर्हिरेकिमिव मिथुनं तदेतद्वै प्रयाजानांम्मिथुनम् य एवं वेद प्र॥४॥

प्रजयां प्रश्निर्मिथुनैर्जायते देवानां वा अनिष्टा देवता आसन्नथासुरा युज्ञमंजिघारसन्ते देवा गांयत्रीं व्यौह्न पञ्चाक्षराणि प्राचीनांनि त्रीणि प्रतीचीनांनि ततो वर्म युज्ञायाभंवद्वर्म् यर्जमानाय यत्प्रयाजानूयाजा इज्यन्ते वर्मेव तद्यज्ञायं क्रियते वर्म यर्जमानाय भ्रातृंव्याभिभृत्यै तस्माद्वर्रूथयर्रस्ताद्वर्षीयः पृक्षाद्वसीयो देवा वै पुरा रक्षोभ्यः॥५॥

इतिं स्वाहाकारेणं प्रयाजेषुं यज्ञर स्र्इस्थाप्यंमपश्यन्तः स्वांहाकारेणं प्रयाजेषु समस्थापयन्वि वा एतद्यज्ञं छिंन्दन्ति यथ्स्वांहाकारेणं प्रयाजेषुं सङ्स्थापयंन्ति प्रयाजानिष्ट्वा ह्वीरप्यभि घारयति यज्ञस्य सन्तंत्या अथो ह्विरेवाक्ररथो यथापूर्वमुपैति पिता वै प्रयाजाः प्रजानूयाजा यत्प्रयाजानिष्ट्वा ह्वीरप्यंभिघारयंति पितेव तत्पुत्रेण साधारणम्॥६॥

कुरुते तस्मादाहुर्यश्चैवं वेद यश्च न कथा पुत्रस्य केवेलं कथा साधारणम्पितुरित्यस्कंन्नमेव तद्यत्प्रयाजेष्विष्टेषु स्कन्दंति गायत्र्येव तेन गर्मं धत्ते सा प्रजां पुशून् यर्जमानाय प्र जनयति॥७॥

युज्ति युज्ञमेवावंरुन्धे तनूनपातं यजति प्रयाजानामेवं वेद् प्र रक्षोंभ्यः साधारण् पर्श्वति १शच॥

चक्षुंषी वा एते यज्ञस्य यदाज्यंभागी यदाज्यंभागी यजंति चक्षुंषी एव तद्यज्ञस्य प्रतिं दधाति पूर्वार्धे जुंहोति तस्मांत्पूर्वार्धे चक्षुंषी प्रवाहुंग्जुहोति तस्मांत्प्रवाहुकक्षुंषी देवलीकं वा अग्निना यजंमानोऽनुं पश्यति पितृलोकः सोमेनोत्तरार्धेंऽग्नये जुहोति दक्षिणार्धे सोमायैविमेव हीमौ लोकावनयोंलीकयोरनुंख्यात्ये राजांनी वा एतौ देवतांनाम्॥८॥ यद्ग्नीषोमांवन्तुरा देवतां इज्येते देवतांनां विधृत्ये तस्माद्राज्ञां मनुष्यां

विधृंता ब्रह्मवादिनों वदन्ति किं तद्यज्ञे यजंमानः कुरुते येनान्यतोंदतश्च पृश्रून्दाधारोंभ्यतोंदतश्चेत्यृचंमृनूच्याज्यंभागस्य जुषाणेनं यजित तेनान्यतोंदतो दाधारर्चमृनूच्यं हुविषं ऋचा यंजित तेनोंभ्यतोंदतो दाधार मूर्धन्वतीं पुरोनुवाक्यां भवित मूर्धानंमेवैनर्ं समानानां करोति॥९॥

नियुत्वंत्या यजित् आतृंव्यस्यैव पृश्नि युंवते केशिन है ह दार्भ्यं केशी सात्यंकामिरुवाच सप्तपंदां ते शक्कंरी है श्वी यज्ञे प्रयोक्तासे यस्यै वीर्येण प्र जातान्आतृंव्यानुदते प्रतिं जिन्ष्यमाणान् यस्यै वीर्येणोभयौंलींकयोज्यीतिर्धत्ते यस्यै वीर्येण पूर्वार्धनां नुड्वान्भुनिक्तं जघनार्धेनं धेनुरितिं पुरस्तां छक्ष्मा पुरोनुवाक्यां भवित जातानेव आतृंव्यान्प्र णुंदत उपरिष्टा छक्ष्मा॥१०॥

याज्यां जिन्छ्यमांणान्व प्रतिं नुदते पुरस्तां स्नक्ष्मा पुरोनुबाक्यां भवत्यस्मिन्नेव लोके ज्योतिर्धत्त उपरिष्टा स्नक्ष्मा याज्यां मुष्मिन्नेव लोके ज्योतिर्धत्ते ज्योतिष्मन्तावस्मा इ.मौ लोकौ भंवतो य एवं वेदं पुरस्तां स्नक्ष्मा पुरोनुबाक्यां भवित् तस्मां त्पूर्वर्धनां नुङ्गान्भुं नक्त्युपरिष्टा स्नक्ष्मा याज्यां तस्मां स्नवित् वज्र आज्यं वज्र आज्यं भागौ॥११॥

वज्रों वषद्वारिश्चिवृतंमेव वज्रर्थ सम्भृत्य भ्रातृंव्याय प्र हंर्त्यछंम्बद्वारमप्गूर्य वर्षद्वरोति स्तृत्यें गायत्री पुरोनुवाक्यां भवति त्रिष्टुग्याज्यां ब्रह्मत्रेव क्षत्रमन्वारंम्भयति तस्माद्वाह्मणो मुख्यो मुख्यो भवति य एवं वेद प्रैवेनं पुरोनुवाक्ययाह् प्र णयति याज्यया गुमयंति वषद्वारेणैवेनं पुरोनुवाक्यया दत्ते प्र यंच्छति याज्यया प्रति॥१२॥

वृषद्भारेणं स्थापयित त्रिपदां पुरोनुवाक्यां भवित त्रयं इमे लोका एष्वेंव लोकेषु प्रितं तिष्ठति चतुंष्पदा याज्यां चतुंष्पद एव पृशूनवं रुन्द्धे द्धक्षरो वंषद्भारो द्विपाद्यजंमानः पृशुष्वेवोपरिष्टात्प्रितिं तिष्ठति गायत्री पुरोनुवाक्यां भवित त्रिष्टुग्याज्यैषा वै सप्तपंदा शक्तरी यद्वा एतयां देवा अशिक्षन्तदंशक्रुवन् य एवं वेदं शुक्रोत्येव यच्छिक्षंति॥१३॥

देवतांनाङ्करोत्युपरिष्टालुक्ष्माऽऽज्यंभागौ प्रतिं शुक्रोत्येव द्वे चं॥————[२]

प्रजापंतिर्देवेभ्यों युज्ञान्व्यादिश्वथ्स आत्मन्नाज्यंमधत्त् तं देवा अंब्रुवन्नेष वाव युज्ञो यदाज्यमप्येव नोत्रास्त्वित् सौंऽब्रवीद्यजान् व आज्यंभागावुपं स्तृणान्भि घारयानिति तस्माद्यजन्त्याज्यंभागावुपं स्तृणन्त्यभि घारयन्ति ब्रह्मवादिनों वदन्ति कस्माध्मत्याद्यातयांमान्यन्यानिं हवीश्ष्ययांतयामुमाज्यमितिं प्राजापुत्यम्॥१४॥ इति ब्र्यादयांतयामा हि देवानां प्रजापंतिरिति छन्दार्रस देवेभ्योऽपाँकामृत्र वी-ऽभागानि हव्यं वेक्ष्याम् इति तेभ्यं एतचंतुरवृत्तमंधारयन्युरोनुवाक्याये याज्याये देवताये वपद्गाराय् यचंतुरवृत्तं जुहोति छन्दार्रस्येव तत्प्रीणाति तान्यंस्य प्रीतानि देवेभ्यो ह्व्यं वहन्त्यङ्गिरसो वा इत उत्तमाः सुंवर्गं लोकमायन्तदृषयो यज्ञवास्त्वंभ्यवायन्ते॥१५॥

अपृष्यन्पुरोडार्शं कूर्मम्भूत १ सर्पन्तं तमंब्रुवित्रन्द्राय भ्रियस्व बृह्स्पतंये भ्रियस्व विश्वेभ्यो देवेभ्यों भ्रियस्वेति स नाभ्रियत् तमंब्रुवत्रुग्नयें भ्रियस्वेति सौंऽग्नयेंऽभ्रियत् यदांग्नेयोंऽष्टाकंपालो-ऽमावास्यायां च पौर्णमास्यां चाँच्युतो भवंति सुवर्गस्य लोकस्याभिजिंत्ये तमंब्रुवन्कथाहाँस्था इत्यनुपाक्तोऽभूविमित्यंब्रवीद्यथाक्षोऽनुपाक्तः॥१६॥

अवार्च्छंत्येवमवांरमित्युपरिष्टाद्भ्यज्याधस्तादुपांनक्ति सुवर्गस्यं लोकस्य समिष्ठ्ये सर्वाणि कृपालांन्यभि प्रथयति तार्वतः पुरोडाशांनमुष्मिल्लांकेऽभि जयति यो विदंग्धः स नैर्ंऋतो योऽश्वंतः स रौद्रो यः श्वतः स सदेवस्तस्मादविदहता श्वतंकृत्यः सदेवत्वाय भस्मनाभि वांसयति तस्मान्मा सेनास्थिं छुत्रं वेदेनाभि वांसयति तस्मान्॥१७॥

केशैः शिर्रश्छुन्नं प्रच्युंतं वा एतद्स्माल्लोकादर्गतं देवलोकं यच्छुत १ ह्विरनंभिघारितमभिघार्योद्वांसयित देवत्रैवैनंद्रमयित यद्येकं कृपालं नश्येदेको मासंः संवथ्सरस्यानंवेतः स्यादथ् यजमानः प्र मीयेत् यद्वे नश्येतां द्वौ मासौ संवथ्सरस्यानंवेतौ स्यातामथ् यजमानः प्र मीयेत संख्यायोद्वांसयित यजमानस्य॥१८॥

गोपीथाय यदि नश्येदाश्विनं द्विकपालं निर्वपद्मावापृथिव्यंमेकंकपालमृश्विनौ वै देवानौं भिषजौ ताभ्यामेवास्में भेषजं कंरोति द्यावापृथिव्यं एकंकपालो भवत्यनयोवी एतन्नश्यिति यन्नश्यंत्यनयोर्वेनंद्विन्दिति प्रतिष्ठित्यै॥१९॥

प्राजापत्यन्तेऽक्षोऽनुंपाक्तो वेदेनाभि वांसयित तस्माद्यजंमानस्य द्वात्रिरंशच॥———[३]

देवस्यं त्वा सिवतुः प्रंसव इति स्फामा दंते प्रसूँत्या अश्विनौंर्बाहुभ्यामित्यांहाश्विनौ हि देवानांमध्वर्यू आस्तौम् पूष्णो हस्तौभ्यामित्यांहु यत्यै शतर्भृष्टिरसि वानस्पत्यो द्विषतो वध इत्यांहु वर्ज्रमेव तथ्सङ् श्यंति भ्रातृंव्याय प्रहिष्यन्थ्स्तम्बय्जुर्हंरत्येतावंती वै पृथिवी यावंती वेदिस्तस्यां पुतावंत पुव भ्रातृंव्यां निर्मजिति॥२०॥

तस्मान्नाभागं निर्भजन्ति त्रिर्हरित त्रयं इमे लोका एभ्य एवैनं लोकेभ्यो निर्भजति

तूष्णीं चंतुर्थः हंर्त्यपंरिमितादेवैनं निर्भंजृत्युद्धंन्ति यदेवास्यां अमेध्यं तदपं हुन्त्युद्धंन्ति तस्मादोषंधयः परां भवन्ति मूलं छिनत्ति भ्रातृंव्यस्यैव मूलं छिनत्ति पितृदेवृत्यातिंखातेयंतीं खनति प्रजापंतिना॥२१॥

यज्ञमुखेन सम्मितामा प्रतिष्ठायै खनित यजमानमेव प्रतिष्ठां गमयित दक्षिणतो वर्षीयसीं करोति देवयजनस्यैव रूपमेकः पुरीषवतीं करोति प्रजा वै पृशवः पुरीषम्प्रजयैवैनेम्प्रश्चिः पुरीषवन्तं करोत्युत्तरं परिग्राहं पिरं गृह्णात्येतावंती वै पृथिवी यावंती वेदिस्तस्यां पुतावंत एव भ्रातृंव्यं निर्भज्यात्मन उत्तरं परिग्राहं पिरं गृह्णाति कूरिमेव वै॥२२॥

पुतत्कंरोति यद्वेदिं क्रोति धा अंसि स्वधा असीति योयुप्यते शान्त्यै प्रोक्षंणीरा सादयत्यापो वै रक्षोघी रक्षंसामपंहत्यै स्फ्यस्य वर्त्मन्थ्सादयति यज्ञस्य सन्तंत्यै यं द्विष्यात्तं ध्यायेच्छुचैवैनमपंयति॥२३॥

भुजुित प्रजापंतिनेव वै त्रयंस्त्रि॰शच॥______

[8]

ब्रह्मवादिनों वदन्त्युद्धिर्ह्वी १ षि प्रौक्षीः केनाप इति ब्रह्मणेतिं ब्र्यादुद्धिर्ह्मेव हुवी १ षि प्रोक्षिति ब्रह्मणाप इध्माब्र्हिः प्रोक्षेति मेध्यमेवैनंत्करोति वेदिं प्रोक्षेत्युक्षा वा एषाऽलोमकां-ऽमेध्या यद्वेदिर्मेध्यांमेवैनां करोति दिवे त्वान्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वेतिं ब्रहिरासाद्य प्र॥ २४॥

उक्षत्येभ्य एवैनं ह्योकेभ्यः प्रोक्षंति क्रूरमिंव वा एतत्कंरोति यत्खनंत्यपो नि नंयित शान्त्ये पुरस्तां त्प्रस्त् गृह्णाति मुख्यंमेवेनं करोतीयंन्तं गृह्णाति प्रजापंतिना यज्ञमुखेन् सम्मितम्बर्हः स्तृंणाति प्रजा वे ब्र्हः पृथिवी वेदिः प्रजा एव पृथिव्यां प्रति ष्ठापयुत्यनंतिदश्रक्ष स्तृणाति प्रजयैवैनंम्पृश्वभिरनंतिदृष्यं करोति॥२५॥

उत्तरम्ब्र्हिषंः प्रस्तरः सांदयित प्रजा वै ब्र्हिर्यजंमानः प्रस्तरो यजंमानमेवायंजमानादुत्तरं करोति तस्माद्यजंमानोऽयंजमानादुत्तरोऽन्तर्दथाित व्यावृत्त्या अनिक्तं हिविष्कृंतमेवैन स्वृवर्गं लोकं गंमयित त्रेधानंक्ति त्रयं हुमे लोका पृभ्य पृवैनं लोकभ्योऽनिक्ति न प्रति शृणाित यत्प्रंतिशृणी्यादनूष्विम्भावुकं यजमानस्य स्यादुपरीव प्र हंरित॥२६॥

उपरींव हि स्वंगों लोको नि यंच्छिति वृष्टिंमेवास्मै नि यंच्छिति नात्यंग्रम्प्र हेरेद्यदत्यंग्रम्प्रहरेंदत्यासारिण्यंध्वयींनीशुंका स्यान्न पुरस्तात्प्रत्यंस्येद्यत्पुरस्तांत्प्रत्यस्येंध्सुवृगीलोकात् प्रतिं नुदेत्प्राश्चम्प्र हंरिति यजंमानमेव सुंवृगं लोकं गंमयित न विष्वंश्चं वि युंयाद्यद्विष्वंश्चं वियुयात्॥२७॥

स्र्यंस्य जायेतोर्ध्वमुद्यौंत्यूर्ध्वमिंव हि पुर्सः पुमांनेवास्यं जायते यथ्स्प्येनं वोपवेषेणं वा योयुप्येत स्तृतिरेवास्य सा हस्तेन योयुप्यते यजमानस्य गोपीथायं ब्रह्मवादिनों वदन्ति किं यज्ञस्य यजमान इति प्रस्त्र इति तस्य क्षं सुवर्गो लोक इत्याहवनीय इति ब्र्याद्यत्प्रंस्त्रमाहवनीये प्रहरंति यजमानमेव॥२८॥

सुवर्गं लोकं गंमयित वि वा एतद्यजंमानो लिशते यत्प्रंस्तरं योयुप्यन्ते ब्रिहरनु प्रहंरित शान्त्यां अनारम्भण इंव वा एतर्ह्यांध्वर्युः स ईंश्वरो वेपनो भवितोर्धुवासीतीमाम्भि मृंशतीयं वे ध्रुवाऽस्यामेव प्रति तिष्ठति न वेपनो भंवत्यगा(३)नंग्रीदित्यांहु यद्भूयादगंत्रग्निरित्यग्नावृग्निं गंमयेत्रिर्यजंमान स्वृग्णं लोकं गंमयित॥२९॥

आसाद्य प्रानंतिदृश्ञं करोति हरति वियुयाद्यजंमानम्वाग्निरितिं सप्तदंश च॥———[५]

अग्नेस्नयो ज्याया रेसो भ्रातंर आसन्ते देवेभ्यों हुव्यं वहंन्तः प्रामीयन्त सौंऽग्निरंबिभेदित्थं वाव स्य आर्तिमारिष्यतीति स निलायत् सोंऽपः प्राविश्ततं देवताः प्रैषंमैच्छुन्तम्मथ्स्यः प्रान्नवीत्तमंशपिद्धियािथया त्वा वध्यासुर्यो मा प्रावोच् इति तस्मान्मथ्स्यं धियािथया प्रन्ति श्वाः॥३०॥

हि तमन्वंविन्दन्तमंब्रुवृत्रुपं न आ वंर्तस्व हृव्यं नो वृहेति सौंऽब्रवीद्वरं वृणै यदेव गृहीतस्याहुंतस्य बहिःपरिधि स्कन्दात्तन्मे भ्रातृंणाम्भाग्धेयंमस्विति तस्माद्यद्गृंहीतस्याहुंतस्य बहिःपरिधि स्कन्दंति तेषां तद्भांगुधेयं तानेव तेनं प्रीणाति परिधीन्परिं दधाति रक्षंसामपहत्यै सङ् स्पर्शयति॥३१॥

रक्षंसामनंन्ववचाराय न पुरस्तात्परिं दधात्यादित्यो ह्येंवोद्यन्पुरस्ताद्रक्षारंस्यपहन्त्यूर्ध्वे स्मिधावा दंधात्युपरिष्टादेव रक्षारंस्यपं हन्ति यज्ञंषान्यां तूष्णीमन्याम्मिथुनृत्वाय द्वे आ दंधाति द्विपाद्यज्ञमानः प्रतिष्ठित्ये ब्रह्मवादिनों वदन्ति स त्वे यंजेत् यो यज्ञस्यार्त्या वसीयान्थ्रस्यादिति भूपंतये स्वाहा भुवनपतये स्वाहां भूतानाम्॥३२॥

पतंये स्वाहेति स्कन्नमनुं मन्नयेत युज्ञस्यैव तदार्त्या यर्जमानो वसीयान्भवति भूयंसी्र्हि

देवताः प्रीणातिं जामि वा पृतद्यज्ञस्यं क्रियते यद्न्वश्चौ पुरोडाशांवुपारशुयाजमंन्तरा यंज्ञत्यजांमित्वायाथों मिथुन्त्वायाग्निर्मुष्मिं ह्याँक आसीं द्यमों ऽस्मिन्ते देवा अंब्रुवन्नेतेमौ वि पर्यूहामेत्यन्नाद्येन देवा अग्निम्॥३३॥

उपामंत्रयन्त राज्येनं पितरों यमं तस्मांद्ग्निर्देवानांमन्नादो यमः पिंतृणा॰ राजा य एवं वेद प्र राज्यमृन्नाद्यंमाप्नोति तस्मां एतद्भांगधेयम्प्रायंच्छन् यद्ग्रयें स्विष्टकृतेंऽवृद्यन्ति यद्ग्रयें स्विष्टकृतेंऽवृद्यति भागधेयेंनैव तद्गुद्र॰ समर्धयति स्कृथ्संकृदवं द्यति स्कृदिवं हि रुद्र उत्तरार्धादवं द्यत्येषा वे रुद्रस्यं॥३४॥

दिख्स्वायांमेव दिशि रुद्रं निरवंदयते द्विर्भि घारयित चतुरवत्तस्यास्यै पृशवो वै पूर्वा आहुंतय एष रुद्रो यद्ग्निर्यत्पूर्वा आहुंतीर्भि जुंहुयाद्रुद्रायं पृश्क्निपे दध्यादपृशुर्यजमानः स्यादितहाय पूर्वा आहुंतीर्जुहोति पशूनां गोपीथायं॥३५॥

शुप्तः स्पर्शयति भूतानांमृग्नि र रुद्रस्यं सप्तित्रिरंशच॥______[६]

मनुः पृथिव्या युज्ञियंमैच्छुथ्स घृतं निषिक्तमविन्द्थ्सौंऽब्रवी्त्कौंऽस्येश्वरो युज्ञेऽपि कर्तोरिति तावंब्रूताम्मित्रावर्रुणौ गोरेवावमींश्वरौ कर्तोः स्व इति तौ ततो गार समैरयतार् सा यत्रयत्र न्यकांमृत्ततो घृतमंपीड्यत् तस्मांद्भृतपंद्युच्यते तदंस्यै जन्मोपंहूतर रथन्त्रर सह पृथिव्येत्यांह॥३६॥

ड्यं वै रंथन्त्रिम्मामेव सहान्नाद्येनोपं ह्वयत् उपंहूतं वामदेव्य सहान्तिरिक्षेणेत्यांह पृशवो वै वामदेव्यं पृश्नेव सहान्तिरिक्षेणोपं ह्वयत् उपंहूतम्बृहथ्सह दिवेत्याहैरं वै बृहदिरामेव सह दिवोपं ह्वयत् उपंहूताः सप्त होत्रा इत्याह् होत्रा एवोपं ह्वयत् उपंहूता धेनुः॥३७॥

सहर्षभेत्यांह मिथुनमेवोपं ह्वयत् उपंहूतो भृक्षः सखेत्यांह सोमपीथमेवोपं ह्वयत् उपंहूताँ (4) हो इत्यांहात्मानमेवोपं ह्वयत आत्मा ह्युपंहूतानां विसेष्ठ इडामुपं ह्वयते पृशवो वा इडां पृश्नेवोपं ह्वयते चतुरुपं ह्वयते चतुंष्पादो हि पृशवों मानवीत्यांह मनुर्ह्येताम्॥३८॥

अग्रेऽपंश्यद्भृतप्दीत्यांह् यदेवास्यै प्दाद्भृतमपींड्यत् तस्मादेवमांह मैत्रावरुणीत्यांह मित्रावरुणी ह्येना स्मेरयतां ब्रह्मं देवकृत्मुपंहृतमित्याह् ब्रह्मेवोपं ह्वयते देव्यां अध्वर्यव् उपंहृता उपंहृता मनुष्यां इत्यांह देवमनुष्यानेवोपं ह्वयते य इमं यज्ञमवान् ये युज्ञपंतिं वर्धानित्यांह॥३९॥

यज्ञायं चैव यजंमानाय चाशिषमा शाँस्त उपंहूते द्यावांपृथिवी इत्यांह द्यावांपृथिवी एवोपं ह्वयते पूर्वजे ऋतावंरी इत्यांह पूर्वजे ह्येते ऋतावंरी देवी देवपुत्रे इत्यांह देवी ह्येते देवपुत्रे उपंहूतोऽयं यजंमान इत्यांह यजंमानमेवोपं ह्वयत् उत्तरस्यां देवयुज्यायामुपंहूतो भूयंसि हविष्करण उपंहृतो दिव्ये धामनुपंहृतः॥४०॥

इत्यांह प्रजा वा उत्तरा देवयुज्या पृशवो भूयों हिव्षष्करण सुवुर्गी लोको दिव्यं धामेदमंसीदम्सीत्येव यज्ञस्यं प्रियं धामोपं ह्वयते विश्वंमस्य प्रियमुपंहृत्मित्याहाछंम्बद्वारमेवोपं ह्वयते॥४१॥

आह् धेनुरेतां वर्धानित्यांह् धामृत्रुपंहूत्श्चतुंस्नि १ शच॥

-[16]

पृशवो वा इडाँ स्वयमा देत्ते काममेवात्मनां पश्नूनामा देत्ते न ह्यंन्यः कामम्पश्नूनाम्प्रयच्छंति वाचस्पतंये त्वा हुतम्प्राश्नामीत्यांह वाचमेव भांगुधेयेन प्रीणाति सदेस्स्पतंये त्वा हुतम्प्राश्नामीत्यांह स्वगाकृत्ये चतुरवृत्तम्भविति हुविर्वे चंतुरवत्तम्पशवंश्चतुरवत्तं यद्धोतां प्राश्नीयाद्धोतां॥४२॥

आर्तिमार्च्छेद्यदुग्नौ जुंहुयाद्रुद्रायं पृश्निपं दध्यादपृशुर्यजंमानः स्याद्वाचस्पतंये त्वा हुतम्प्राश्नामीत्याह पुरोक्षंमेवैनज्जहोति सदंसस्पतंये त्वा हुतम्प्राश्नामीत्याह स्वगाकृत्यै प्राश्नेन्ति तीर्थ एव प्राश्नेन्ति दक्षिणां ददाति तीर्थ एव दक्षिणां ददाति वि वा एतद्यज्ञम्॥४३॥

छिन्दन्ति यन्मध्यतः प्राश्नन्त्यद्भिर्माजयन्त आपो वै सर्वा देवतां देवतांभिरेव यज्ञश् सं तन्वन्ति देवा वै यज्ञाद्रुद्रमन्तरायन्थ्य यज्ञमंविध्यत्तं देवा अभि समगच्छन्त कल्पेतां न इदमिति तेंऽब्रुवन्थ्य्विष्टं वै नं इदम्भंविष्यति यदिमश् राधियुष्याम् इति तथ्य्विष्टकृतेः स्विष्टकृत्त्वन्तस्याविद्धं निः॥४४॥

पूषा प्रार्श्य दुतोऽरुणृत्तस्मांत्पूषा प्रंपिष्टभांगोऽदुन्तको हि तं देवा अंब्रुवन्वि वा

अयमाँर्ध्यप्राशित्रियो वा अयमंभूदिति तद्वहुस्पतंये पर्यहर्न्थ्सोऽबिभेद्वहुस्पतिंरित्थं वाव स्य आर्तिमारिष्यतीति स एतम्मन्नंमपश्यथ्सूर्यस्य त्वा चक्षुंषा प्रति पश्यामीत्यंब्रवीन्न हि सूर्यस्य चक्षुंः॥४६॥

किं चन हिनस्ति सोंऽबिभेत्प्रतिगृह्णन्तंं मा हिश्सिष्यतीतिं देवस्यं त्वा सिवृतुः प्रंस्वें-ऽश्विनौंर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्तौभ्यां प्रतिं गृह्णामीत्यंब्रवीथ्सिवृतुप्रंसूत पृवैनृद्वह्मंणा देवतांभिः प्रत्यंगृह्णाथ्सोऽबिभेत्प्राश्नन्तं मा हिश्सिष्यतीत्यग्नेस्त्वास्येन प्राश्नामीत्यंब्रवीन्न ह्यंग्नेरास्यं किं चन हिनस्ति सोऽबिभेत्॥४७॥

प्राशितं मा हि॰सिष्यतीतिं ब्राह्मणस्योदरेणेत्यंब्रवीन्न हि ब्राह्मणस्योदरं किं चन हिनस्ति बृह्स्पतेर्ब्रह्मणेति स हि ब्रह्मिष्ठोऽप् वा एतस्मात्प्राणाः क्रांमन्ति यः प्रांशित्रम्प्राक्षात्यद्भिर्मांर्जयित्वा प्राणान्थ्सम्मृंशतेऽमृतं वे प्राणा अमृत्मापंः प्राणानेव यंथास्थानमुपं ह्रयते॥४८॥

प्राश्जीयाद्धोतां यज्ञन्निरंहर्न्तचक्षुंरास्यंिङ्कं चन हिनस्ति सोऽविभेचतुंश्चत्वारिश्शच॥——[८]

अग्नीध् आ दंधात्यग्निम्ंखानेवर्तून्त्रींणाति समिधमा दंधात्युत्तंरासामाहंतीनां प्रतिष्ठित्या अथो समिद्वंत्येव जुंहोति परिधीन्थ्सम्मांष्टिं पुनात्येवैनांन्थ्सकृथ्संकृथ्सम्मांष्टिं परांङिव् ह्यंतर्हिं यज्ञश्चतुः सम्पंद्यते चतुंष्पादः पृशवंः पृश्ननेवावं रुन्द्धे ब्रह्मन्त्र स्थांस्याम् इत्याहात्र वा पृतर्हिं युज्ञः श्रितः॥४९॥

यत्रं ब्रह्मा यत्रैव यज्ञः श्रितस्ततं पृवैनमा रंभते यद्धस्तेन प्रमीवेद्वेपनः स्याद्यच्छीणां शींर्षिक्तिमान्थस्याद्यतूष्णीमासीतासंम्प्रत्तो यज्ञः स्यात्प्र तिष्ठेत्येव ब्रूयाद्वाचि वै यज्ञः श्रितो यत्रैव यज्ञः श्रितस्ततं एवैन् सम्प्र यंच्छति देवं सवितरेतत्ते प्र॥५०॥

आहेत्यांह् प्रसूँत्ये बृह्स्पतिंर्ब्रह्मेत्यांह् स हि ब्रह्मिष्टः स यज्ञम्पांहि स यज्ञपंतिम्पाहि स माम्पाहीत्यांह यज्ञाय यजंमानायात्मने तेभ्यं पुवाशिषमा शास्तेऽनांत्यां आश्राव्यांह देवान् यजेतिं ब्रह्मवादिनों वदन्तीष्टा देवता अर्थं कत्म पृते देवा इति छन्दार्सीतिं ब्रूयाद्गायत्रीं त्रिष्टुभम्॥५१॥

जर्गतीमित्यथो खल्बांहुर्ब्राह्मणा वै छन्दा १ सीति तानेव तद्यंजित देवानां वा इष्टा देवता आसन्नथाग्निर्नोदंज्वलृत्तं देवा आहंतीभिरनूयाजेष्वन्वंविन्दन् यदंनूयाजान् यजंत्यग्निमेव तथ्सिमन्द्र पृतदुर्वे नामांसुर आंसीथ्स पृतर्हि युज्ञस्याशिषंमवृङ्क यद्ग्र्यादेतत्॥५२॥

उ द्यावापृथिवी भद्रमंभूदित्येतदुंमेवासुरं यज्ञस्याशिषं गमयेदिदं द्यांवापृथिवी भद्रमंभूदित्येव ब्रूंयाद्यजंमानमेव यज्ञस्याशिषंम्गमयत्यार्थ्मं सूक्तवाकमुत नंमोवाकमित्यांहेदमंराथ्समेति वावैतदाहोपंश्रितो दिवः पृथिव्योरित्यांह द्यावांपृथिव्योर्हि यज्ञ उपंश्रित ओमंन्वती तेऽस्मिन् यज्ञे यंजमान् द्यावांपृथिवी॥५३॥

स्तामित्यांहाशिषंमेवैतामा शाँस्ते यद्भूयाथ्सूंपावसाना चं स्वध्यवसाना चेतिं प्रमायुंको यजंमानः स्याद्यदा हि प्रमीयतेऽथेमामुपावस्यतिं सूपचरणा चं स्वधिचरणा चेत्येव ब्रूंयाद्वरीयसीमेवास्मै गर्व्यूतिमा शाँस्ते न प्रमायुंको भवति तयोराविद्यग्निरिद हिवरंजुष्तेत्यांह या अयाँक्ष्म॥५४॥

देवतास्ता अंरीरधामेति वावैतदांह् यन्न निर्दिशेत्प्रतिवेशं यज्ञस्याशीर्गच्छेदा शाँस्ते-ऽयं यजमानोऽसावित्याह निर्दिश्यैवैन स्यवर्गं लोकं गमयत्यायुरा शाँस्ते सुप्रजास्त्वमा शाँस्त इत्यांहाशिषंमेवैतामा शाँस्ते सजातवनस्यामा शाँस्त इत्यांह प्राणा वै संजाताः प्राणानेव॥५॥

नान्तरेति तद्ग्निर्देवो देवेभ्यो वनंते वयमुग्नेर्मानुषा इत्यांहाग्निर्देवेभ्यो वनुते वयं मंनुष्येभ्य इति वावैतदांहेह गतिर्वामस्येदं च नमो देवेभ्य इत्यांह याश्चेव देवता यजिति याश्च न ताभ्यं एवोभयीभ्यो नमंस्करोत्यात्मनोऽनांत्यै॥५६॥

श्रितस्ते प्र त्रिष्टुर्भमेतद्मावापृथिवी या अयाँक्ष्म प्राणानेव पद्गत्वारि॰शच॥———[९]

देवा वै यज्ञस्यं स्वगाकृतीर्ं नाविन्दन्ते श्रं युम्बोर्हस्पृत्यमंब्रुविन्निमं नो यज्ञ स्वगा कुर्विति सौंऽब्रवीद्वरं वृणै यदेवाब्राह्मणोक्तोऽश्रंहधानो यजाते सा में यज्ञस्याशीरसदिति तस्माद्यदब्राह्मणोक्तोऽश्रंहधानो यजते श्रं युमेव तस्यं बार्हस्पृत्यं यज्ञस्याशीर्गच्छत्येतन्ममेत्यंब्रवीत्किम्में प्रजायाः॥५७॥

इति योऽपगुरातै श्तेनं यातयाद्यो निहनंध्सहस्रेण यातयाद्यो लोहितं क्रव्द्यावेतः प्रस्कद्यं पार्सून्थ्संगृह्णातावेतः संवध्सरान्यिंतृलोकं न प्र जानादिति तस्माद्भाह्मणाय नापं गुरेत न नि हंन्यात्र लोहितं कुर्यादेतावेता हैनंसा भवति तच्छुं योरा वृंणीमह् इत्यांह युज्ञमेव तथ्स्वृगा केरोति तत्॥५८॥

शुं योरा वृंणीमह् इत्यांह शुं युमेव बांर्हस्पृत्यम्भांगुधेयेंन् समेर्धयित गातुं यज्ञायं गातुं यज्ञपंतय इत्यांहाशिषंमेवैतामा शाँस्ते सोमं यजित रेतं एव तद्दंधाति त्वष्टांरं यजित रेतं एव हितं त्वष्टां रूपाणि वि कंरोति देवानाम्पर्भीर्यजिति मिथुन्त्वायाग्निं गृहपंतिं यजित प्रतिष्ठित्यै जामि वा एतद्यज्ञस्यं क्रियते॥५९॥

यदाज्येन प्रयाजा इज्यन्त आज्येन पत्नीसंयाजा ऋचंमृनूच्यं पत्नीसंयाजानांमृचा यंज्ञत्यजांमित्वायाथों मिथुनृत्वायं पङ्किप्रांयणो वै यज्ञः पङ्क्षांदयनः पश्चं प्रयाजा इंज्यन्ते चुत्वारंः पत्नीसंयाजाः संमिष्टयुजुः पश्चमम्पङ्किमेवानं प्र यन्ति पङ्किमनूद्यंन्ति॥६०॥

प्रजायाः करोति तिर्क्रियते त्रयंस्त्रि शच॥———[१०]

युक्ष्वा हि देवहूर्तमा् अश्वारं अग्ने र्थीरिव। नि होतां पूर्व्यः संदः। उत नो देव देवार अच्छां वोचो विदुष्टरः। श्रद्धिश्वा वार्यां कृषि। त्वर ह् यद्यंविष्ठ्य सहंसः सूनवाहुत। ऋतावां युज्ञियो भुवंः। अयमृग्निः संहुस्निणो वार्जस्य श्वितन्स्पतिः। मूर्धा क्वी रंयीणाम्। तं नेमिमृभवों यथा नमस्व सहूंतिभिः। नेदीयो युज्ञम्॥६१॥

अङ्गिरः। तस्मैं नूनम्भिद्यंवे बाचा विरूप नित्यंया। वृष्णें चोदस्व सुष्टुतिम्। कर्मुं ष्विदस्य सेनंयाग्नेरपांकचक्षसः। पृणिं गोषुं स्तरामहे। मा नों देवानां विशेः प्रस्नातीरिवोस्ताः। कृशं न हांसुरिप्नंयाः। मा नेः समस्य दूढ्येः परिद्वेषसो अश्हृतिः। ऊर्मिर्न नावमा वंधीत्। नमस्ते अग्न ओजंसे गृणन्तिं देव कृष्टयेः। अमैंः॥६२॥

अमित्रमर्दय। कुविथ्सु नो गविष्ट्येऽग्नें संवेषिषो र्यिम्। उरुंकृदुरु णंस्कृिध। मा नो अस्मिन्मंहाधने परा वर्ग्भार्भृद्यंथा। संवर्ग्र् सर र्यिश्चय। अन्यम्समिद्ध्या इयमभ्रे सिषंक्तु दुच्छुना वर्णा नो अमंवच्छवं। यस्याजुंषन्नमस्विनः शमीमदुंर्मखस्य वा। तं घेदग्निवृंधावंति। परंस्या अधि॥६३॥

संवतोऽवंरार अभ्या तंर। यत्राहमस्मि तार अंव। विद्या हि ते पुरा व्यमग्ने पितुर्यथावंसः। अधां ते सुम्नमीमहे। य उग्र इंव शर्यहा तिग्मर्श्वङ्गो न वरसंगः। अग्ने पुरों रुरोजिंथ। सर्खायः सं वंः सम्यश्चमिष्ड् स्तोमं चाग्नयें। वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नन्ने सहंस्वते। सरसमिद्युंवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ। इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भंर। प्रजापते स वेंद्र सोमांपूषणेमौ देवौ॥६४॥

यज्ञममैरिधं वृषन्नेकान्नवि ५शतिश्चं॥---

[88]

उ्शन्तंस्त्वा हवामह उ्शन्तः सिमंधीमिह। उ्शन्नुंशृत आ वंहु पितॄन् हिविषे अत्तंव। त्वर सोम् प्रचिंकितो मनीषा त्वर रिजिष्टमनुं नेषि पन्थांम्। तव प्रणीती पितरों न इन्दो देवेषु रत्नंमभजन्त धीराः। त्वया हि नः पितरः सोम् पूर्वे कर्माणि चुकुः पंवमान् धीराः। वन्वन्नवांतः परिधीर रपोंणुं वीरेभिरश्वैर्मधवां भव॥६५॥

नः। त्वर सोम पितृभिः संविदानोऽनु द्यावापृथिवी आ तंतन्थ। तस्मै त इन्दो हुविषां विधेम वय स्याम पतंयो रयोणाम्। अग्निष्वात्ताः पितर् एह गंच्छत् सदंःसदः सदत सुप्रणीतयः। अत्ता हुवीरिष् प्रयंतानि ब्रहिष्यथां र्यिर सर्ववीरं दधातन। बर्हिषदः पितर ऊत्यंवांगिमा वों हव्या चंकृमा जुषध्वम्। त आ गतावंसा शन्तंमेनाथास्मभ्यम्॥६६॥

शं योरंप्पो दंधात। आहं पितृन्थ्सुंविदत्रार्थ अविथ्सि नपांतश्च विक्रमणं च विष्णौः। ब्र्हिषदो ये स्वधयां सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहार्गमिष्ठाः। उपहूताः पितरो बर्हिष्येषु निधिषुं प्रियेषुं। त आगमन्तु त इह श्रुंवन्त्वधिं ब्रुवन्तु ते अंवन्त्वस्मान्। उदीरतामवर् उत्परांस उन्मध्यमाः पितरेः सोम्यासंः। असुम्॥६७॥

य ईयुरंवृका ऋंत्ज्ञास्ते नींऽवन्तु पितरो हवेषु। इदिम्पितृभ्यो नमी अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपंरास ईयुः। ये पार्थिवे रजस्या निषंत्ता ये वां नून संवृजनांसु विक्षु। अधा यथां नः पितरः परांसः प्रत्नासों अग्न ऋतमांशुषाणाः। शुचीदंयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामां भिन्दन्तों अरुणीरपं व्रत्न्। यदंग्ने॥६८॥

कृव्यवाहुन् पितॄन् यक्ष्यृंतावृधंः। प्र चं हुव्यानिं वक्ष्यसि देवेभ्यंश्च पितृभ्य आ। त्वमंग्न ईडितो जातवेदोऽवांं हुव्यानिं सुर्भीणिं कृत्वा। प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्निद्धिः त्वं देव प्रयंता हुवी १ षिं। मातंत्री कृव्यैर्यमो अङ्गिरोभि्र्बृह्स्पित्र्ऋकंभिर्वावृधानः। या ॥ श्वे देवा वांवृधुर्ये चं देवान्थ्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मंदन्ति।॥ ६९॥

ड्मं यंम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः। आ त्वा मन्नाः कविश्वस्ता वंहन्त्वेना रांजन् ह्विषां मादयस्व। अङ्गिरोभिरा गंहि यज्ञियेभिर्यमं वैरूपैरिह मांदयस्व। विवंसवन्तर हुवे यः पिता तेऽस्मिन् युज्ञे बुर्हिष्या निषद्यं। अङ्गिरसो नः पितरो नवंग्वा अर्थवाणो भृगंवः सोम्यासंः। तेषां वयर सुमृतौ यज्ञियांनामपि भुद्रे सौमनुसे

स्यांम॥७०॥

[स्मिधों याज्यां तस्मान्नाभागः हि तमन्वित्यांह प्रजा वा आहेत्यांह युक्ष्वा हि संप्ततिः॥70॥ समिधंः सौमनसे स्यांम॥]

भुवास्मभ्यमसुं यदंग्ने मदन्ति सौमन्स एकंश्व॥———[१२]

प्रजापंतिरकामयतैष ते यज्ञं वै प्रजापंतेर्जायंमानाः प्राजापत्या यो वा अयंथादेवतिमृष्टर्गो निग्राभ्याः स्थ यो वै देवां जुष्टोऽग्निनां रियमेकांदश॥—————————[१३]

॥काण्डम् ३॥

॥प्रथमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां तृतीयकाण्डे प्रथमः प्रश्नः॥

प्रजापंतिरकामयत प्रजाः सृंजे्येति स तपोंऽतप्यत् स स्पानंसृजत् सोंऽकामयत प्रजाः सृंजे्येति स द्वितीयंमतप्यत् स वयार्शस्यसृजत् सोंऽकामयत प्रजाः सृंजे्येति स तृतीयंमतप्यत् स एतं दीक्षितवादमंपश्यत्तमंवद्त्ततो वै स प्रजा अंसृजत् यत्तपंस्तृस्वा दीक्षितवादं वदंति प्रजा एव तद्यजंमानः॥१॥

सृज्ते यद्वै दींक्षितोंऽमेध्यम्पश्यत्यपाँस्माद्दीक्षा क्रांमित नीलंमस्य हरो व्येंत्यबंद्धम्मनों दिरिद्रं चक्षुः सूर्यो ज्योतिषा्ड् श्रेष्ठो दीक्षे मा मां हासीिरित्यांहु नास्माद्दीक्षापं कामित् नास्य नीलं न हरो व्येति यद्वै दींक्षितमंभिवर्षित दिव्या आपोऽशाँन्ता ओजो बलं दीक्षाम्॥२॥

तपोंऽस्य निर्प्रन्दतीर्बर्लं धृत्तौजों धत्त् बर्लं धत्त् मा में दीक्षां मा तपो निर्विधिष्टेत्यांहैतदेव सर्वमात्मन्धेत्ते नास्यौजो बठुं न दीक्षां न तपो निर्प्रन्त्यग्निर्वे दीक्षितस्य देवता सौंऽस्मादेतर्हि तिर इंव यर्हि याति तमींश्वर रक्षार्रसि हन्तौः॥३॥

भ्द्राद्भि श्रेयः प्रेहि बृह्स्पतिः पुरण्ता ते अस्त्वित्यांह् ब्रह्म वै देवानाम्बृह्स्पित्स्तमेवान्वारंभते स एन् सम्पारयत्येदमंगन्म देवयजंनं पृथिव्या इत्यांह् देवयजंन् हें होष पृथिव्या आगच्छंति यो यजंते विश्वे देवा यदजंषन्त पूर्व इत्यांह् विश्वे होतदेवा जोषयंन्ते यद्ग्रांह्मणा ऋंख्सामाभ्यां यजंषा सन्तरंन्त इत्यांहर्ख्सामाभ्यां यजंषा सन्तरंन्त इत्यांहर्ख्सामाभ्याः होष यजंषा सन्तरंति यो यजंते रायस्पोषेण सिमषा मंदेमेत्यांहाशिषंमेवैतामा शांस्ते॥४॥

यर्जमानो दीक्षार हन्तौर्ब्राह्मणाश्चतुर्विरशतिश्च॥-------[१]

एष ते गायत्रो भाग इति मे सोमाय ब्रूतादेष तेँतरिष्टुंभो जागंतो भाग इति मे सोमाय ब्रूताच्छन्दोमानार् साम्रांज्यं गुच्छेति मे सोमाय ब्रूताद्यो वै सोम्रर् राजान्र् साम्रांज्यं लोकं गंमयित्वा कीणाति गच्छंति स्वानार् साम्रांज्यं छन्दार्रस् खलु वै सोमस्य राज्ञः साम्रांज्यो लोकः पुरस्ताथ्सोमस्य क्रयादेवम्भि मंत्रयेत साम्रांज्यमेव॥५॥ एनं लोकं गंमियत्वा कींणाति गच्छंति स्वाना साम्राज्यं यो वै तांनून प्रस्यं प्रतिष्ठां वेद प्रत्येव तिष्ठति ब्रह्मवादिनों वदन्ति न प्राश्नन्ति न जुंह्बत्यथ् के तानून प्रंति तिष्ठतीतिं प्रजापंतौ मन्सीतिं ब्र्यात्रिरवं जिघ्नेत्प्रजापंतौ त्वा मनसि जुहोमीत्येषा वै तांनून प्रस्यं प्रतिष्ठा य एवं वेद प्रत्येव तिष्ठति यः॥६॥

वा अध्वर्योः प्रतिष्ठां वेद् प्रत्येव तिष्ठति यतो मन्येतानंभिक्रम्य होष्यामीति तत्तिष्ठन्ना श्रांवयेदेषा वा अध्वर्योः प्रतिष्ठा य एवं वेद् प्रत्येव तिष्ठति यदिभिक्रम्यं जुहुयात्प्रतिष्ठायां इयात्तस्मांथ्समानत्र तिष्ठंता होत्व्यं प्रतिष्ठित्ये यो वा अध्वर्योः स्वं वेद् स्ववानेव भविति स्रुग्वा अस्य स्वं वायुव्यंमस्य॥७॥

स्वं चंम्सौंऽस्य स्वं यद्वांयव्यं वा चम्सं वाऽनंन्वारभ्याश्रावयेथ्स्वादियात्तस्मांदन्वारभ्याश्राव्य स्वादेव नैति यो वै सोम्मप्रंतिष्ठाप्य स्तोत्रमुंपाक्रोत्यप्रंतिष्ठितः सोमो भवत्यप्रंतिष्ठितः स्तोमोऽप्रंतिष्ठितान्युक्थान्यप्रंतिष्ठितो यजंमानोऽप्रंतिष्ठितोऽध्वर्युर्वायव्यं वै सोमंस्य प्रतिष्ठा चंम्सौंऽस्य प्रतिष्ठा सोमः स्तोमंस्य स्तोमं उक्थानां ग्रहं वा गृहीत्वा चंम्सं वोन्नीयं स्तोत्रमुपाकुंर्यात्प्रत्येव सोमई स्थापयंति प्रति स्तोम्म्प्रत्युक्थानि प्रति यजंमानस्तिष्ठंति प्रत्यंध्वर्यः॥८॥

एव तिष्ठति यो वायव्यमस्य ग्रह्ं वैकान्नविर्शातिश्चं॥————[२]

युज्ञं वा एतथ्सम्भंरित्व यथ्सोम्कयंण्यै पुदं यंज्ञमुख १ हंविधीन् यर्हिं हिविधीन् प्राचीं प्रवृतियेयुस्तर्हि तेनाक्ष्मुपां अयाद्यज्ञमुख एव युज्ञमन् सं तंनोति प्रार्श्वमप्रिम्प्र हंर्न्त्युत्पत्नीमा नंयन्त्यन्वना १ प्र वंतियन्त्यथ् वा अंस्यैष धिष्णियो हीयते सोऽन् ध्यायित स ईंश्वरो कृद्रो भूत्वा॥९॥

प्रजां प्रशून् यजंमानस्य शर्मियतोर्यर्हिं प्रशुमाप्रीत्मुदंश्चं नयंन्ति तर्हि तस्यं पशुश्रपंण हरेत्तेनैवैनंम्भागिनं करोति यजंमानो वा आंहवनीयो यजंमानं वा एति क्रिं कर्षन्ते यदांहवनीयां त्पशुश्रपंण हरेत्ति स वैव स्यान्निर्मन्थ्यं वा कुर्याद्यजंमानस्य सात्मत्वाय् यिदं प्रशोरंवदानं नश्येदाज्यंस्य प्रत्याख्यायमवं द्येथ्मैव ततः प्रायक्षित्तिर्ये पृशुं विमध्रीरन् यस्तान्कामयेतार्तिमार्च्छेयुरितिं कुविदङ्गेति नमोवृक्तिवत्यर्चाभ्रीप्रे जुहुयान्नमोवृक्तिमेवैषां वृङ्के

ताुजगार्तिमार्च्छन्ति॥१०॥

भूत्वा तत्रष्पड्वि र्शितिश्च॥______[३]

प्रजापंतेर्जायंमानाः प्रजा जाताश्च या इमाः। तस्मै प्रति प्र वेंदय चिकित्वार अनुं मन्यताम्। इमम्पशुम्पंशुपते ते अद्य बुधाम्यंग्ने सुकृतस्य मध्यै। अनुं मन्यस्व सुयजां यजाम् जुष्टं देवानांमिदमंस्तु हुव्यम्। प्रजानन्तः प्रतिं गृह्णन्ति पूर्वे प्राणमङ्गैभ्यः पर्याचरंन्तम्। सुवुर्गं याहि पृथिभिर्देवयानैरोषंधीषु प्रतिं तिष्ठा शरीरेः। येषामीशै॥११॥

पृशुपितः पशूनां चतुंष्पदामुत चं द्विपदाँम्। निष्क्रीतोऽयं यृज्ञियंम्भागमेतु रायस्पोषा यजंमानस्य सन्तु। ये बृध्यमांनमनुं बृध्यमांना अभ्येक्षंन्त् मनंसा चक्षुंषा च। अग्निस्ताः अग्रे प्र मुंमोक्तु देवः प्रजापंतिः प्रजयां संविदानः। य आर्ण्याः पृशवों विश्वरूपा विरूपाः सन्तों बहुधैकंरूपाः। वायुस्ताः अग्रे प्र मुंमोक्तु देवः प्रजापंतिः प्रजयां संविदानः। प्रमुश्रमांनाः॥१२॥

भुवनस्य रेतो गातुं धेत्त् यर्जमानाय देवाः। उपाकृतः शशमानं यदस्थांञ्चीवं देवानामप्येतु पार्थः। नानां प्राणो यर्जमानस्य पृशुनां युज्ञो देवेभिः सह देवयानः। जीवं देवानामप्येतु पार्थः सत्याः संन्तु यर्जमानस्य कामाः। यत्पृशुर्मायुमकृतोरों वा पृद्धिराहृते। अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वांन्मुश्चत्वः हंसः। शर्मितार उपेतंन युज्ञम्॥१३॥

देवेभिरिन्वितम्। पाशाँत्पशुम्प्र मुंश्चत बुन्धाद्यज्ञपंतिं परि। अदितिः पाश्चम्प्र मुंमोक्केतं नमः पृशुभ्यः पशुपतंये करोमि। अरातीयन्तमधरं कृणोमि यं द्विष्मस्तस्मिन्प्रतिं मुश्चामि पाशम्। त्वामु ते दंधिरे हव्यवाह र्थं शृतङ्कर्तारंमुत यृज्ञियं च। अग्रे सदेशः सतंनुर्रहि भूत्वाऽथं ह्व्या जांतवेदो जुषस्व। जातंवेदो वपयां गच्छ देवान्त्व हि होतां प्रथमो बुभूथं। घृतेन त्वं तुनुवों वर्धयस्व स्वाहांकृत हिवरंदन्तु देवाः। स्वाहां देवेभ्यों देवेभ्यः स्वाहां॥१४॥

र्इशें प्रमुश्रमांना युज्ञन्त्व १ षोडंश च॥------[४]

प्राजापुत्या वै प्रावस्तेषार् रुद्रोऽधिपित्यिदेताभ्यांमुपाक्रोति ताभ्यांमेवेनं प्रतिप्रोच्या लंभत आत्मनोऽनांब्रस्काय द्वाभ्यांमुपाकरोति द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्या उपाकृत्य पश्चं जुहोति पाङ्काः प्रावः पृश्ननेवावं रुन्द्वे मृत्यवे वा एष नीयते यत्पृशुस्तं यदंन्वारभेत प्रथमः प्रश्नः (काण्डम् ३)

प्रमायुंको यजंमानः स्यान्नानां प्राणो यजंमानस्य पृश्ननेत्यांह व्यावृत्त्ये॥१५॥

यत्पशुर्मायुमकृतेति जुहोति शान्त्यै शमितार उपेत्नेत्यांह यथायुजुरे्वैतद्वपायां वा आँह्रियमांणायामुग्नेर्मेधोऽपं कामित त्वामु ते दंधिरे हव्यवाह्मिति वपाम्भि जुंहोत्युग्नेरे्व मेधुमवं रुन्द्धेऽथों शृत्तवायं पुरस्तांथ्स्वाहाकृतयों वा अन्ये देवा उपरिष्टाथ्स्वाहाकृतयोऽन्ये स्वाहां देवेभ्यों देवेभ्यः स्वाहेत्यभितों वृपां जुंहोति तानेवोभयांन्प्रीणाति॥१६॥

व्यावृंत्त्या अभितों वृपां पश्चं च॥-----[५]

यो वा अयंथादेवतं युज्ञमुंपूचर्त्या देवताँभ्यो वृथ्यते पापीयान्भवित यो यंथादेवतं न देवताँभ्य आ वृथ्यते वसीयान्भवत्याभ्रेय्यर्चाभ्रींध्रम्भि मृंशेद्वैष्णव्या हंविर्धानंमाभ्रेय्या सुची वायव्यंया वायव्याँन्यैन्द्रिया सदी यथादेवतमेव युज्ञमुपं चरित न देवताँभ्य आ वृंथ्यते वसीयान्भवित युनिज्मं ते पृथिवीं ज्योतिषा सह युनिज्मं वायुम्नतरिक्षेण॥१७॥

ते सह युनजिम् वाचर् सह सूर्येण ते युनजिमं तिस्रो विपृचः सूर्यस्य ते। अग्निर्देवतां गायत्री छन्दं उपार्श्शोः पात्रमिस् सोमो देवतां त्रिष्ठप्छन्दों उन्तर्यामस्य पात्रमसीन्द्रो देवता जगती छन्दं इन्द्रवायुवोः पात्रमिस् बृह्स्पतिर्देवतां उनुष्ठुप्छन्दों मित्रावरुणयोः पात्रमस्यश्विनौ देवतां पृङ्किश्छन्दोऽश्विनोः पात्रमिस् सूर्यो देवतां बृह्ती॥१८॥

छन्दंः शुक्रस्य पात्रंमिस चन्द्रमां देवतां सतोबृहतीं छन्दों मन्थिनः पात्रंमिस विश्वें देवा देवतोण्णिहा छन्दं आग्रयणस्य पात्रंमसीन्द्रों देवतां ककुच्छन्दं उक्थानाम्पात्रंमिस पृथिवी देवतां विराद्वन्दौं ध्रुवस्य पात्रंमिस॥१९॥

अन्तरिक्षेण बृहती त्रयंस्त्रि शच॥_____

ड्रष्टर्गो वा अध्वर्युर्यजंमानस्येष्टर्गः खलु वै पूर्वोऽर्ष्टः क्षीयत आस्नयाँन्मा मन्नाँत्पाहि कस्याँश्चिद्भिशंस्त्या इति पुरा प्रांतरनुवाकान्नंहुयादात्मनं एव तदंध्वर्यः पुरस्ताच्छर्मं नह्यते-ऽनाँत्यें संवेशायं त्वोपवेशायं त्वा गायित्रयास्त्रिष्टुभो जगंत्या अभिभूँत्ये स्वाहा प्राणांपानौ मृत्योर्मा पातं प्राणांपानौ मा मां हासिष्टं देवतांसु वा एते प्रांणापानयौः॥२०॥

व्यायंच्छन्ते येषा्र् सोर्मः समृच्छते संवेशायं त्वोपवेशाय् त्वेत्यांह् छन्दार्सस् वै संवेश उपवेशश्छन्दोंभिरेवास्य छन्दार्सस वृङ्के प्रेतिवन्त्याज्यांनि भवन्त्यभिजित्ये म्रुरुत्वंतीः प्रतिपदो विजित्या उभे बृंहद्रथन्तरे भवत इयं वाव रथन्तरमुसौ बृहद्यभ्यामेवैनम्नन्तरैत्युद्य वाव रंथन्त्र श्वो बृहदंद्याश्वादेवैनंमुन्तरंति भूतम्॥२१॥

वाव रंथन्त्रम्भंविष्यद्बृहद्भूताचैवेनंम्भविष्यृतश्चान्तरंति परिमितं वाव रंथन्त्रमपंरिमितम्बृहत्परिमिताचैवेन्मपंरिमिताचान्तरंति विश्वामित्रजमद्ग्नी वसिष्ठेनास्पर्धेताष्ट्र स एतज्जमदंग्निविह्व्यंमपश्यतेन् वे स वसिष्ठस्येन्द्रियं वीर्यमवृङ्कः यद्विह्व्यर्थं शुस्यतं इन्द्रियमेव तद्वीर्यं यजंमानो भ्रातृंव्यस्य वृङ्के यस्य भूयार्थसो यज्ञकृतव इत्यांहुः स देवतां वृङ्कः इति यद्यंग्निष्टोमः सोमः प्रस्ताथ्स्यादुक्थ्यं कुर्वीत् यद्युक्थ्यः स्यादंतिरात्रं कुर्वीत यज्ञकर्तुभिरेवास्यं देवतां वृङ्कः वसीयान्भवति॥२२॥

प्राणापानयौर्भूतं वृंङ्केऽष्टावि ५ शतिश्च॥—

नि्रग्राभ्याः स्थ देवश्रुत् आयुंर्मे तर्पयत प्राणं में तर्पयतापानं में तर्पयत व्यानं में तर्पयत् व्यानं में तर्पयत् श्रोत्रं में तर्पयत् मनों में तर्पयत् वार्चं में तर्पयतात्मानं में तर्पयताङ्गांनि में तर्पयत प्रजां में तर्पयत पृश्चमें तर्पयत गृहान्में तर्पयत गृणान्में तर्पयत सर्वगंणं मा तर्पयत तर्पयंत मा॥२३॥

गुणा मे मा वि तृष्त्रोषंधयो वै सोमंस्य विशो विशः खलु वै राज्ञः प्रदांतोरीश्वरा ऐन्द्रः सोमोऽवींवृधं वो मनंसा सुजाता ऋतंप्रजाता भग इद्धंः स्याम। इन्द्रेण देवीर्वीरुधंः संविदाना अनुं मन्यन्ता सवंनाय सोम्मित्याहौषंधीभ्य एवैन् स्वायै विशः स्वायै देवतांयै निर्याच्याभि षुंणोति यो वै सोमंस्याभिष्यमांणस्य॥२४॥

प्रथमोऽ रेशः स्कन्दिति स ईश्वर इंन्द्रियं वीर्यं प्रजां प्रशून् यजंमानस्य निर्हंन्तोस्तम्भि मंत्रयेता मास्कान्थ्सह प्रजयां सह रायस्पोषेणेन्द्रियं में वीर्यं मा निर्वधीरित्याशिषंमेवैतामा शास्त इन्द्रियस्यं वीर्यंस्य प्रजायें पश्नामनिर्घाताय द्रफ्सश्चंस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः। तृतीयं योनिमनुं संचर्गन्तं द्रफ्सं जुंहोम्यनुं सप्त होत्राः॥२५॥

तुर्पयंत माऽभिषूयमांणस्य यश्च दशं च॥=

-[2]

यो वै देवान्देंवयश्सेनार्पयंति मनुष्यांन्मनुष्ययश्सेनं देवयश्स्येंव देवेषु भवंति मनुष्ययश्सो मंनुष्येषु यान्प्राचीनंमाग्रयणाद्ग्रहांन्गृह्णीयात्तानुंपा श्रु गृह्णीयाद्यानूर्ध्वा १ स्तानुंपब्दिमतों देवानेव तद्देवयश्सेनांपयित मनुष्यांन्मनुष्ययश्सेनं देवयश्स्येव देवेषु भवति मनुष्ययश्सो मंनुष्येष्वग्निः प्रांतःसवने पात्वस्मान् वैश्वान्तरो

मंहिना विश्वशंम्भूः। स नः पावको द्रविणं दधातु॥२६॥

आयुंष्मन्तः सहभंक्षाः स्याम। विश्वं देवा मुरुत् इन्द्रां अस्मान्स्मिन्द्वितीये सर्वने न जंह्यः। आयुंष्मन्तः प्रियमेषां वर्दन्तो वयं देवानार् सुमृतौ स्याम। इदं तृतीय् सर्वनं कवीनामृतेन् ये चंम्समैरंयन्त। ते सौधन्वनाः सुवंरानशानाः स्विष्टिं नो अभि वसीयो नयन्तु। आयतंनवतीर्वा अन्या आहुंतयो हूयन्तेंऽनायत्ना अन्या या आंघारवंतीस्ता आयतंनवतीर्याः॥२७॥

सौम्यास्ता अनायत्ना ऐन्द्रबायवमादायांघारमा घारयेदध्वरो युज्ञांऽयमंस्तु देवा ओषंधीभ्यः पृशवं नो जनाय विश्वंस्मै भूतायांध्वरोऽसि स पिन्वस्व घृत्वंद्देव सोमेति सौम्या पृव तदाहुंतीरायतंनवतीः करोत्यायतंनवान्भवति य पृवं वेदाथो द्यावांपृथिवी पृव घृतेन व्युनित्ति ते व्युत्ते उपजीवनीयें भवत उपजीवनीयों भवति॥२८॥

य एवं वेदैष ते रुद्र भागो यं नि्रयांचथा्स्तं जुंषस्व विदेगौंपत्यः रायस्पोषः सुवीर्यः संवथ्सरीणाः स्वस्तिम्। मनुः पुत्रेभ्यो दायं व्यंभज्ञथ्स नाभानेदिष्ठं ब्रह्मचर्यं वसंन्तं निरंभज्ञथ्स आगंच्छ्रथ्सौंऽब्रवीत्कृथा मा निरंभागिति न त्वा निरंभाक्षमित्यंब्रवीदिङ्गिरस इमे सत्तमांसते ते॥२९॥

सुवर्गं लोकं न प्र जानित् तेभ्यं इदम्ब्राह्मणम्ब्रूहि ते सुंवर्गं लोकं यन्तो य एषाम्पशवस्ताः स्तें दास्यन्तीति तदेंभ्योऽब्रवीत्ते सुंवर्गं लोकं यन्तो य एषाम्पशव आसन्तानंस्मा अददुस्तम्पशुभिश्चरंन्तं यज्ञवास्तौ रुद्र आगंच्छुथ्सौंऽब्रवीन्मम् वा इमे पृशव इत्यदुर्वै॥३०॥

मह्यंमिमानित्यंब्रवीन्न वे तस्य त ईशत् इत्यंब्रवीच्यः ज्ञवास्तौ हीयंते मम् वे तदिति तस्माँचज्ञवास्तु नाभ्यवेत्य स् सौंऽब्रवीच्चज्ञे मा भृजार्थ ते पृश्चाभि मईस्य इति तस्मा एतम्मन्थिनः सङ्ख्रावमंजुहोत्ततो वे तस्यं रुद्रः पृश्च्चाभ्यंमन्यत् यत्रैतमेवं विद्वान्मन्थिनः सङ्ख्रावं जुहोति न तत्रं रुद्रः पृश्चिम मन्यते॥३१॥

द्धात्वायतंनवतीर्या उपजीवनीयों भवति तेऽदुर्वे यत्रैतमेकांदश च॥————[९]

जुष्टों वाचो भूयास्ं जुष्टों वाचस्पतंये देविं वाक्। यद्वाचो मधुंमृत्तस्मिन्मा धाः स्वाहा सरंस्वत्ये। ऋचा स्तोम् समर्भय गायत्रेणं रथन्तरम्। बृहद्गांयत्रवंतिन। यस्तें द्रफ्सः स्कन्दंति यस्तें अर्श्शुर्बाहुच्युंतो धिषणयोरुपस्थात्। अध्वयीर्वा परि यस्तें पुवित्राथ्स्वाहांकृतमिन्द्रांयु तं जुंहोमि। यो द्रफ्सो अर्शुः पंतितः पृथिव्यां पंरिवापात्॥३२॥

पुरोडाशाँत्कर्म्भात्। धानासोमान्मन्थिनं इन्द्र शुक्राध्स्वाहांकृत्मिन्द्रांय् तं जुंहोमि। यस्तें द्रफ्सो मधुंमाः इन्द्रियावान्ध्स्वाहांकृतः पुनंरप्येतिं देवान्। दिवः पृंथिव्याः पर्यन्तरिक्षाध्स्वाहांकृत्मिन्द्रांय् तं जुंहोमि। अध्वर्युर्वा ऋत्विजां प्रथमो युंज्यते तेन् स्तोमों योक्तव्यं इत्यांहुर्वागंग्रेगा अग्रं एत्वृजुगा देवेभ्यो यशो मिय दर्धती प्राणान्पशुषुं प्रजाम्मियं॥३३॥

च यजंमाने चेत्यांह् वाचंमेव तद्यंज्ञमुखे युंनिक्त वास्तु वा एतद्यज्ञस्यं क्रियते यद्भ्रह्ण-गृहीत्वा बंहिष्पवमान स्पंन्ति परांश्चो हि यन्ति परांचीभिः स्तुवतें वैष्णव्यर्चा पुनरेत्योपं तिष्ठते यज्ञो वै विष्णुर्यज्ञमेवाकविष्णो त्वं नो अन्तमः शर्म यच्छ सहन्त्य। प्रते धारां मधुश्चत उथ्सं दुह्रते अक्षितमित्यांह् यदेवास्य शयांनस्योपशुष्यंति तदेवास्यैतेना प्यांययति॥३४॥

अग्निनां र्यिमंश्रवत्पोषंमेव दिवेदिवे। युशसंं वीरवंत्तमम्॥ गोमारं अग्नेऽविंमार अश्वी युज्ञो नृवथ्संखा सद्मिदंप्रमृष्यः। इडांबार एषो अंसुर प्रजावान्दीर्घो र्यिः पृथुबुधः स्मावान्॥ आ प्यांयस्व सं ते॥ इह त्वष्टांरमग्नियं विश्वरूपमुपं ह्वये। अस्माकंमस्तु केवंलः॥ तन्नंस्तुरीप्मधं पोषयितु देवं त्वष्टविं रंगुणः स्यंस्व। यतो वीरः॥३५॥

कुर्मण्यः सुदक्षौ युक्तग्रांवा जायंते देवकांमः। शिवस्त्वंष्टिर्हा गंहि विभुः पोषं उत त्मनां। युज्ञेयंज्ञे न उदेव। पिशङ्गेरूपः सुभरों वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकांमः। प्रजां त्वष्टा वि ष्यंतु नाभिमस्मे अथां देवानामप्येतु पार्थः। प्र णों देव्या नों दिवः। पीपिवारसप् सरंस्वतः स्तनं यो विश्वदंर्शतः। धुक्षीमिहं प्रजामिषम्॥३६॥

ये ते सरस्व ऊर्मयो मधुंमन्तो घृत्श्रुतंः। तेषां ते सुम्नमींमहे। यस्यं व्रतम्प्शबो यन्ति सर्वे यस्यं व्रतम्पुर्शतिष्ठंन्त आपः। यस्यं व्रते पुष्टिपतिनिविष्टस्तः सरंस्वन्तमवंसे हुवेम। दिव्यः सुंपूर्णं वयसम्बृहन्तंम्पां गर्भं वृष्भमोषधीनाम्। अभीपतो वृष्ट्या तर्पयंन्तं तः सरंस्वन्तमवंसे हुवेम। सिनीवािल पृथुंष्टुके या देवानामसि स्वसाः। जुषस्वं हृव्यम्॥३७॥

आहुंतं प्रजां देवि दिदिष्टि नः। या सुंपाणिः स्वंङ्गुरिः सुषूमां बहुसूवंरी। तस्यै

विश्पितिये ह्विः सिनीवाल्ये जुंहोतन। इन्ह्रंं वो विश्वतस्परीन्द्रं नरः। असितवर्णा हर्रयः सुपूर्णा मिहो वसाना दिवमुत्पंतन्ति। त आऽवंवृत्रन्थ्सदंनानि कृत्वादित्पृंथिवी घृतैर्व्युद्यते। हिरंण्यकेशो रजंसो विसारेऽहिर्धृनिवातं इव ध्रजीमान्। शुचिंभ्राजा उपसंः॥३८॥

नवेंदा यशंस्वतीरप्स्युवो न स्त्याः। आ तें सुपूर्णा अमिनन्त् एवैंः कृष्णो नीनाव वृष्मो यदीदम्। शिवाभिनं स्मयंमानाभिरागात्पतिन्ति मिहंः स्तनयंन्त्युआ। बाश्लेवं विद्युन्मिमाति वृथ्सं न माता सिंपक्ति। यदेंषां वृष्टिरसंर्जि। पर्वतिश्चिन्मिहं वृद्धो विभाय दिवश्चिथ्सानुं रेजत स्वने वंः। यत्क्रीडंथ मरुतः॥३९॥

ऋष्टिमन्त् आपं इव स्प्रियंश्चो धवध्वे। अभि क्रंन्द स्त्नय् गर्भुमा धां उद्न्वता परि दीया रथेन। दित्र सु कंर्ष विषितं न्यंश्वर स्मा भवन्तूद्वतां निपादाः। त्वं त्या चिदच्युताग्ने पृश्चर्न यवसे। धामां हु यत्ते अजर् वनां वृश्चन्ति शिक्वंसः। अग्ने भूरीणि तवं जातवेदो देवं स्वधावोऽमृतंस्य धामं। याश्चं॥४०॥

माया मायिनां विश्वमिन्व त्वे पूर्वीः संदुधः पृष्टबन्धो। दिवो नीं वृष्टिम्मंरुतो ररीध्वम्प्र पिन्वत् वृष्णो अश्वस्य धाराः। अर्वाङ्कतेनं स्तनयित्नतेह्यपो निष्धिन्नत्तसुरः पिता नः। पिन्वन्त्यपो मुरुतः सुदानवः पयो घृतविद्विदशैष्वाभुवः। अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिन्मुथ्सं दुहन्ति स्तनयंन्तमक्षितम्। उद्प्रुतो मरुतस्ता इयर्त् वृष्टिम्॥४१॥

ये विश्वें मुरुतों जुनन्तिं। क्रोशांति गर्दा कुन्येंव तुन्ना पेरुं तुञ्जाना पत्येंव जाया। घृतेन द्यावांपृथिवी मधुना समुक्षत पर्यस्वतीः कृणुताप ओषंधीः। ऊर्जं च तत्रं सुमृतिं च पिन्वथ यत्रां नरो मरुतः सिञ्चथा मधुं। उद् त्यिश्चित्रम्। और्व्भृगुवच्छुचिंमप्रवान्वदा हुंवे। अग्निश् संमुद्रवांससम्। आ स्वश् संवितुर्यथा भगंस्येव भुजिश हुंवे। अग्निश् संमुद्रवांससम्॥४२॥ समुद्रवांससम्॥४२॥

वीर इष ह्व्यमुषसो मरुतश्च वृष्टिं भगस्य द्वादंश च॥————[११]

यो वै पर्वमानानान्त्रीणि परिभूः स्फ्यः स्वस्तिर्भक्षेहिं महीनां पर्योऽसि देवं सवितरेतत्तें श्येनाय यह्नै होतोंपयामुगृहीतोऽसि वाक्षुसत्प्र सो अंग्रु एकांदश॥———[१२]

[यो वै स्फ्यः स्वस्तिः स्वधायै नमः प्र मुंश्च तिष्ठंतीव षट्वंत्वारिश्शत्॥46॥ यो वै पर्वमानानां वि क्रंमस्व॥]

॥द्वितीयः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां तृतीयकाण्डे द्वितीयः प्रश्नः॥

यो वै पर्वमानानामन्वारोहान् विद्वान् यज्तेऽनु पर्वमानाना रोहिति न पर्वमानेभ्यो-ऽविच्छिद्यते श्येनोऽसि गायुत्रछंन्दा अनु त्वा रंभे स्वस्ति मा सम्पारय सुपूर्णोऽसि त्रिष्ठुप्छंन्दा अनु त्वा रंभे स्वस्ति मा सम्पारय सर्घासि जर्गतीछन्दा अनु त्वा रंभे स्वस्ति मा सम्पार्येत्यांहैते॥१॥

वै पर्वमानानामन्वारोहास्तान् य एवं विद्वान् यज्ञतेऽनु पर्वमानाना रोहित् न पर्वमानेभ्योऽविच्छिद्यते यो वै पर्वमानस्य सन्तितिं वेद सर्वमायुरिति न पुरायुंषः प्र मीयते पशुमान्भविति विन्दते प्रजाम्पर्वमानस्य ग्रहां गृह्यन्तेऽथ् वा अस्यैतेऽगृहीता द्रोणकलृश आधवनीयः पूत्भृत्तान् यदगृहीत्वोपाकुर्यात्पर्वमानं वि॥२॥

छिन्द्यात्तं विच्छिद्यंमानमध्वर्योः प्राणोऽनु विच्छिद्येतोपयामगृहीतोऽसि प्रजापंतये त्वेतिं द्रोणकलुशम्भि मृंशेदिन्द्रांय त्वेत्यांधवनीयं विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य इतिं पूत्भृतम्पवंमानमेव तथ्सं तनोति सर्वमायुरिति न पुरायुंषः प्र मीयते पशुमान्भविति विन्दतें प्रजाम्॥३॥

पृते वि द्विचंत्वारि १ शच॥ ______[१]

त्रीणि वाव सर्वनान्यथं तृतीय् सर्वनमवं लुम्पन्त्यन् शु कुर्वन्तं उपा शु हृत्वोपा श्रेषुपात्रेऽ श्रेषुम्वास्य तं तृतीयसव्ने ऽपि सुज्याभि षृण्याद्यदाष्याययंति तेना श्रेषुमद्यदंभिषुणोति तेनं जीषि सर्वांण्येव तथ्सवंनान्य श्रुमन्ति शुक्रवंन्ति स्मावंद्वीर्याणि करोति द्वौ संमुद्रौ वितंतावजूर्यौ पूर्यावंतिते जुठरेव पादाः। तयोः पश्यंन्तो अति यन्त्यन्यमपंश्यन्तः॥४॥

सेतुनातिं यन्त्यन्यम्। द्वे द्रधंसी स्ततीं वस्त एकंः केशी विश्वा भुवंनानि विद्वान्। तिरोधायैत्यसितं वसानः शुक्रमा दत्ते अनुहायं जार्ये। देवा वै यद्यज्ञेऽकुंवत् तदसुरा अकुवंत् ते देवा एतम्मंहायज्ञमंपश्यन्तमंतन्वताऽग्निहोत्रं व्रतमंकुवंत् तस्माद्विवंतः स्याद्विर्ह्यंग्निहोत्रं ज्रुह्वंति पौर्णमासं यज्ञमंग्नीषोमीयम्॥५॥

पशुमंकुर्वत दार्श्यं यज्ञमाँग्नेयम्पशुमंकुर्वत वैश्वदेवम्प्रांतःसवनमंकुर्वत

वरुणप्रघासान्मार्ध्यंदिन् सर्वन साकमेधान्यितृयुज्ञं त्र्यम्बका इस्तृतीयसवृनमंकुर्वत् तमेषामस्रा यज्ञम्नवाजिगा स्सन्तं नान्ववायन्तैऽब्रुवन्नध्वर्तव्या वा इमे देवा अभूवन्निति तदेध्वरस्यौध्वरत्वन्ततो देवा अभवन्यरास्राय य एवं विद्वान्थ्सोमेन् यजेते भवत्यात्मना परौस्य भ्रातंत्र्यो भवति॥६॥

अपंश्यन्तोऽग्नीषोमीयंमात्मना परा त्रीणि च॥————[२]

पुरिभूरिग्नं परिभूितन्द्रं परिभूिविश्वां देवान्परिभूर्मा सह ब्रह्मवर्चसेन् स नंः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते श रांजन्नोषंधीभ्योऽच्छिन्नस्य ते रियपते सुवीर्यस्य रायस्पोषंस्य दिदतारंः स्याम। तस्यं मे रास्व तस्यं ते भक्षीय तस्यं त इदमुन्मृंजे। प्राणायं मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वापानायं व्यानायं वाचे॥७॥

दक्षकृतुभ्यां चक्षुंभ्यां मे वर्चोदौ वर्चसे पवेथा हु श्रोत्रांयात्मने ऽङ्गेभ्य आयुंषे वीर्याय विष्णोरिन्द्रंस्य विश्वेषां देवानां जुठरंमिस वर्चोदा मे वर्चसे पवस्व को ऽसि को नाम् कस्मै त्वा कार्य त्वा यं त्वा सोमेनातीं तृपं यं त्वा सोमेनामीं मद सुप्रजाः प्रजयां भूयास स्वीरो वीरेः सुवर्चा वर्चसा सुपोषः पोषैर्विश्वभ्यो मे रूपेभ्यो वर्चोदाः॥८॥

वर्चसे पवस्व तस्यं मे रास्व तस्यं ते भक्षीय तस्यं त इदमुन्मृंजे। बुभूंषन्नवेंक्षेतैष वै पात्रियः प्रजापंतिर्यज्ञः प्रजापंतिस्तमेव तंर्पयित स एनं तृप्तो भूत्याऽभि पंवते ब्रह्मवर्चसकामोऽवेंक्षेतैष वै पात्रियः प्रजापंतिर्यज्ञः प्रजापंतिस्तमेव तंर्पयित स एनं तृप्तो ब्रह्मवर्चसेनाभि पंवत आमयावी॥९॥

अवैक्षेत्रेष वै पात्रियः प्रजापंतिर्य्ज्ञः प्रजापंतिस्तमेव तंपयित् स एनं तृप्त आयुंषाभि पंवतेऽभिचर्न्नवैक्षेत्रेष वै पात्रियः प्रजापंतिर्य्ज्ञः प्रजापंतिस्तमेव तंपयित् स एनं तृप्तः प्राणापानाभ्यां वाचो दंक्षकृतुभ्यां चक्षुंभ्यां क्षुंभ्याः श्रोत्राभ्यामात्मनोऽङ्गेभ्य आयुंषोऽन्तरंति ताजकप्र धंन्वति॥१०॥

वाचे रूपेभ्यो वर्चोदा आमयावी पश्चंचत्वारि १ शच॥----[३]

स्प्र्यः स्वस्तिर्विघनः स्वस्तिः पर्शुर्वेदिः पर्शुर्नः स्वस्तिः। युज्ञियां यज्ञकृतः स्थ् ते मास्मिन् यज्ञ उपं ह्वयध्वमुपं मा द्यावापृथिवी ह्वयेतामुपांस्तावः कलशः सोमो अग्निरुपं देवा उपं यज्ञ उपं मा होत्रां उपहुवे ह्वयन्तान्नमोऽग्नयें मखन्ने मुखस्यं मा यशौं ऽर्यादित्यां हवनीयमुपं तिष्ठते यज्ञो वै मुखः॥११॥

युज्ञं वाव स तदंहुन्तस्मां पुव नंमुस्कृत्य सदः प्र संर्पत्यात्मनोऽनाँत्यैं नमों रुद्रायं मखुप्ने नमंस्कृत्या मा पाहीत्याग्नींध्रं तस्मां पुव नंमङस्कृत्य सदः प्र संर्पत्यात्मनोऽनाँत्यैं नम् इन्द्रांय मखुप्न इंन्द्रियं में वीर्यम्मा निर्वधीरितिं होत्रीयंमाशिषंमेवैतामा शाँस्त इन्द्रियस्यं वीर्यस्यानिर्घाताय या वै॥१२॥

देवताः सद्स्यार्तिमार्पयंन्ति यस्ता विद्वान्य्रसर्पति न सद्स्यार्तिमार्च्छति नमोऽग्नयं मख्घ्र इत्यांहैता वै देवताः सद्स्यार्तिमार्पयन्ति ता य एवं विद्वान्य्रसर्पति न सद्स्यार्तिमार्च्छति दृढे स्थंः शिथिरे समीची मारहंसस्पातर सूर्यो मा देवो दिव्यादरहंसस्पातु वायुरन्तरिक्षात्॥१३॥

अग्निः पृथिव्या यमः पितृभ्यः सरंस्वती मनुष्यैभ्यो देवीं द्वारौ मा मा सं तांप्तम् नमः सदंसे नमः सदंसस्पतंये नमः सखीनां पुरोगाणां चक्षुंषे नमो दिवे नमः पृथिव्या अहं दैधिष्व्योदतंस्तिष्ठान्यस्य सदंने सीद योंऽस्मत्पाकंतर् उन्निवत् उदुद्वतंश्च गेषम्पातम्मौ द्यावापृथिवी अद्याह्नः सदो वै प्रसर्पन्तम्॥१४॥

पितरोऽनु प्र संपंन्ति त एंनमीश्वरा हिश्सिंतोः सदः प्रसृप्यं दक्षिणार्धं परेंक्षेतागंन्त पितरः पितृमान् ं युष्माभिर्भूयासश् सुप्रजसो मयां यूयम्भूयास्तेति तेभ्यं एव नंम्स्कृत्य सदः प्र संपंत्यात्मनोऽनाँत्ये॥१५॥

मुखो वा अन्तरिक्षात्प्रसर्पन्तुत्रयंस्त्रि शच॥_____[४]

भक्षेहि मा विंश दीर्घायुत्वायं शन्तनुत्वायं रायस्पोषांय वर्चसे सुप्रजास्त्वायेहिं वसो पुरोवसो प्रियो में हृदौँऽस्यश्विनौँस्त्वा बाहुभ्याः सघ्यासम् नृचक्षंसं त्वा देव सोम सुचक्षा अवं ख्येषम् मृन्द्राभिभूतिः केतुर्यज्ञानां वाग्जुंषाणा सोमंस्य तृप्यतु मृन्द्रा स्वंवींच्यदितिरनांहतशीर्ष्णी वाग्जुंषाणा सोमंस्य तृप्यत्वेहिं विश्वचर्षणे॥१६॥

शुम्भूर्मयोभूः स्वस्ति मां हरिवर्ण् प्र चंर् ऋत्वे दक्षांय रायस्पोषांय सुवीरतांयै मा मां राज्ञिन्व बीभिषो मा मे हार्दि त्विषा वंधीः। वृषंणे शुष्मायायुंषे वर्चसे॥ वसुंमद्गणस्य सोम देव ते मित्विदेः प्रातःसवनस्यं गायुत्रछंन्दस् इन्द्रंपीतस्य नराश्रश्संपीतस्य पितृपीतस्य मधुंमत् उपहूतस्योपहूतो भक्षयामि रुद्रवंद्गणस्य सोम देव ते मित्विदो माध्यंदिनस्य सवनस्य त्रिष्ठुप्छंन्दस् इन्द्रंपीतस्य नराशश्र्मपीतस्य॥१७॥

पितृपीतस्य मधुमत् उपंहूतस्योपंहूतो भक्षयाम्यादित्यवंद्गणस्य सोम देव ते मित्विदंस्तृतीयंस्य सर्वनस्य जगंतीछन्दस् इन्द्रंपीतस्य नराश १ संपीतस्य पितृपीतस्य मधुमत् उपंहूतस्योपंहूतो भक्षयामि। आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम् वृष्णियम्। भवा वार्जस्य सङ्ग्रथे। हिन्वं मे गात्रां हिरवो गृणान्मे मा वि तीतृषः। शिवो मे सप्तुर्षीनुपं तिष्ठस्व मा मेऽवाङ्गाभिमिति॥१८॥

गाः। अपाम् सोमंम्मृतां अभॄमादंश्म्ं ज्योति्रविंदाम देवान्। किम्स्मान्कृंणवृदरांतिः किम् धूर्तिरंमृत् मर्त्यंस्य। यन्मं आत्मनों मिन्दाभूंदग्निस्तत्पुन्राहाँर्जातवेदा विचंर्षणिः। पुनंर्ग्निश्चक्षुंरदात्पुन्रिन्द्रो बृह्स्पतिः। पुनंर्मे अश्विना युवं चक्षुरा धंत्तमृक्ष्योः। इष्टयंजुषस्ते देव सोम स्तुतस्तोमस्य॥१९॥

शुस्तोक्थंस्य हरिवत इन्द्रंपीतस्य मधुंमत् उपंहूत्स्योपंहूतो भक्षयामि। आपूर्याः स्था मां पूरयत प्रजयां च धनेन च। एतत्ते तत् ये च त्वामन्वेतत्ते पितामह प्रपितामह् ये च त्वामन्वत्रं पितरो यथाभागम्मन्दध्वम् नमों वः पितरो रसाय नमों वः पितरः शुष्माय नमों वः पितरो जीवाय नमों वः पितरः॥२०॥

स्वधायै नमों वः पितरो मृन्यवे नमों वः पितरो घोराय पितरो नमों वो य एतिस्मिं ह्याँके स्थ युष्मा इस्तेऽनु यें ऽस्मि ह्याँके मां तेऽनु य एतिस्मि ह्याँके स्थ यूयं तेषां विसेष्ठा भूयास्त यें ऽस्मि ह्याँकें ऽहं तेषां विसेष्ठो भूयासम् प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वां जातानि परि ता बंभूव॥२१॥

यत्कांमास्ते जुहुमस्तन्नों अस्तु वय स्यांम् पतंयो रयीणाम्। देवकृंत्स्यैनंसो-ऽवयजंनमसि मनुष्यंकृत्स्यैनंसोऽवयजंनमसि पितृकृंत्स्यैनंसोऽवयजंनमस्यपस् धौतस्यं सोम देव ते नृभिः सुतस्येष्टयंजुषः स्तुतस्तोंमस्य शस्तोक्थंस्य यो भृक्षो अश्वसनियीं गोसनिस्तस्यं ते पितृभिर्भक्षं कृंतस्योपंहूत्स्योपंहूतो भक्षयामि॥२२॥

विश्वचर्षणे त्रिष्टुफ्छंन्दस् इन्द्रंपीतस्य नराशश्संपीतस्यातिं स्तुतस्तोमस्य जीवाय नमो वः पितरो बभूव चतुंश्चत्वारिश्शच॥————[५]

मृहीनाम्पयोऽिस् विश्वेषां देवानां तुनूर्ऋध्यासंमुद्य पृषतीनां ग्रह्म्पृषंतीनां ग्रहोऽिस् विष्णोर्ह्रदंयम्स्येकंमिष् विष्णुस्त्वानु वि चंक्रमे भूतिर्द्धा घृतेनं वर्धतां तस्यं मेष्टस्यं वीतस्य द्रविणमा गंम्याञ्च्योतिरिस वैश्वान्रं पृश्विये दुग्धम् यावंती द्यावापृथिवी महित्वा यार्वच सप्त सिन्धंवो वितस्थुः। तार्वन्तमिन्द्र ते॥२३॥

ग्रह १ सहोर्जा गृंह्याम्यस्तृंतम्। यत्कृंष्णशकुनः पृषदाज्यमंवमृशेच्छूद्रा अस्य प्रमायुंकाः स्युर्यच्छाऽवंमृशेचतुंष्पादोऽस्य पृशवंः प्रमायुंकाः स्युर्यथ्सकन्देद्यजंमानः प्रमायुंकः स्यात्पशवो वे पृषदाज्यम्पृशवो वा एतस्यं स्कन्दित् यस्यं पृषदाज्य स्कन्दिति यत्पृषदाज्यम्पुनंगृंह्याति पश्नेवास्मे पुनंगृंह्याति प्राणो वे पृषदाज्यं प्राणो वे॥२४॥

पुतस्यं स्कन्दित् यस्यं पृषद्गज्यः स्कन्दित् यत्पृषद्गज्यम्पुनंगृह्णातिं प्राणमेवासमे पुनंगृह्णाति हिरंण्यमवधायं गृह्णात्यमृतं वे हिरंण्यं प्राणः पृषद्गज्यम्मृतंमेवास्यं प्राणे देधाति श्तमानम्भवित श्तायुः पुरुषः श्तेन्द्रियं आयुंष्येवेन्द्रिये प्रतिं तिष्ठत्यश्वमवं प्रापयित प्राजाप्त्यो वा अश्वः प्राजाप्त्यः प्राणः स्वादेवास्मे योनैः प्राणं निर्मिमीते वि वा पृतस्यं यज्ञशिखंद्यते यस्यं पृषद्गज्यः स्कन्दिति वैष्णव्यर्चा पुनंगृह्णाति यज्ञो वे विष्णृंय्ज्ञेनैव यज्ञः सं तंनोति॥२५॥

ते पृषदाज्यं प्राणो वै योनैंः प्राणन्द्वावि १ शतिश्च॥————[६]

देवं सवितरेतत्ते प्राह् तत्प्र चं सुव प्र चं यज् बृह्स्पतिर्ब्रह्मायुष्मत्या ऋचो मा गांत तनूपाथ्साम्नः सत्या वं आशिषः सन्तु सत्या आकूंतय ऋतं चं सत्यं चं वदत स्तुत देवस्यं सवितः प्रंस्वे स्तुतस्यं स्तुतम्स्यूर्ज्म्मह्य इं स्तुतं दुंह्गमा मां स्तुतस्यं स्तुतं गंम्याच्छस्रस्यं शस्त्रम्॥२६॥

अस्यूर्ज्म्मह्य १ शुस्त्रं दुंहामा मां शुस्त्रस्यं शुस्त्रं गंम्यादिन्द्रियावंन्तो वनामहे धुक्षीमहिं प्रजामिषम्। सा में सत्याशीर्देवेषुं भूयात् ब्रह्मवर्चसं मा गंम्यात्। युज्ञो बंभूव स आ बंभूव स प्र जंज्ञे स वांवृधे। स देवानामधिपतिर्बभूव सो अस्मा १ अधिपतीन्करोतु वय १ स्यांम् पतंयो रयीणाम्। युज्ञो वा वै॥२७॥

यज्ञपंतिं दुहे यज्ञपंतिर्वा यज्ञं दुंहे स यः स्तृंतश्रस्रयोदींह्मविद्वान् यजेते तं यज्ञो दुंहे स इष्ट्वा पापीयान्भवित य एनयोदीहं विद्वान् यजेते स यज्ञं दुंहे स इष्ट्वा वसीयान्भवित स्तृतस्यं स्तृतम्स्यूर्ज्म्महाई स्तृतं दुंहामा मां स्तृतस्यं स्तृतं गंम्याच्छ्मस्यं श्रस्त्रमस्यूर्ज्म्महाई श्रस्तं दुंहामा मां श्रस्त्रस्यं श्रस्तं गंम्यादित्याहेष वै स्तृंतश्रस्त्रयोदींहुस्तं य एवं विद्वान् यजेते दुह एव यज्ञमिष्ट्वा वसीयान्भवित॥२८॥

शुस्रं वै शुस्रन्दुंहान्द्वावि ५शतिश्च॥-

श्येनाय पत्वंने स्वाहा वद्श्स्वयमंभिगूर्ताय नमों विष्टम्भाय धर्मणे स्वाहा वद्श्स्वयमंभिगूर्ताय नमें परिधयें जनप्रथंनाय स्वाहा वद्श्स्वयमंभिगूर्ताय नमं ऊर्जे होत्राणा स्वाहा वद्श्स्वयमंभिगूर्ताय नमः पर्यसे होत्राणा स्वाहा वद्श्स्वयमंभिगूर्ताय नमः प्रजापंतये मनेवे स्वाहा वद्श्स्वयमंभिगूर्ताय नमं ऋतमृतपाः सुवर्वाद्श्स्वाहा वद्श्स्वयमंभिगूर्ताय नमं स्वतमृतपाः सुवर्वाद्श्स्वाहा वद्श्स्वयमंभिगूर्ताय नमंस्तृम्पन्ता हे होत्रा मधौर्षृतस्य यज्ञपंतिमृषंय एनंसा॥२९॥

आहुः। प्रजा निर्भक्ता अनुतृप्यमाना मध्व्यौ स्तोकावप तौ रंराध। सं नृस्ताभ्यारं सृजतु विश्वकंमा घोरा ऋषंयो नमों अस्त्वेभ्यः। चक्षुंष एषाम्मनंसश्च संधौ बृह्स्पतंये मिह् षद्युमन्नमंः। नमों विश्वकंमणे स उं पात्वस्मानंनृन्यान्थ्सोम्पान्मन्यंमानः। प्राणस्य विद्वान्थ्संमरे न धीर एनंश्चकृवान्मिहं बद्ध एषाम्। तं विश्वकर्मन्न॥३०॥

प्र मुंश्चा स्वस्तये ये भृक्षयंन्तो न वसूँन्यानृहुः। यानुग्नयोऽन्वतंप्यन्त धिष्णिया इयं तेषांमवया दुरिष्ट्ये स्विष्टिं नुस्तां कृणोतु विश्वकंमां। नमः पितृभ्यो अभि ये नो अख्येन् यज्ञकृतो यज्ञकांमाः सुदेवा अंकामा वो दक्षिणां न नीनिम् मा नुस्तस्मादेनंसः पापयिष्ट। यावन्तो वै संदुस्याँस्ते सर्वे दक्षिण्याँस्तेभ्यो यो दक्षिणां न॥३१॥

न्येदैभ्यों वृथ्येत् यद्वैश्वकर्मणानिं जुहोतिं सद्स्यांनेव तत्प्रींणात्यस्मे देवासो वर्पृषे चिकिथ्सत् यमाशिरा दम्पंती वाममंश्रुतः। पुमान्युत्रो जायते विन्दते वस्वथ् विश्वे अर्पा एंधते गृहः। आशीर्दाया दम्पंती वाममंश्रुतामिरिष्टो रायः सचताः समोकसा। य आसिच्थ्सन्दुंग्धं कुम्भ्या सहेष्टेन यामृत्रमंतिं जहातु सः। सिप्प्रीवी॥३२॥

पीवंर्यस्य जाया पीवांनः पुत्रा अर्कुशासो अस्य। सहजांनिर्यः सुंमखुस्यमांन् इन्द्रांयाशिर सं सह कुम्भ्यादाँत्। आशीर्म् ऊर्जमुत सुंप्रजास्त्विमषं दधातु द्रविण् स् सर्वर्चसम्। सुंजयन्क्षेत्राणि सहंसाहिमंन्द्र कृण्वानो अन्या अर्थरान्थ्सपत्नान्। भूतमंसि भूते मां धा मुखंमसि मुखंम्भूयासम् द्यावांपृथिवीभ्यां त्वा परि गृह्णामि विश्वं त्वा देवा वैश्वानराः॥३३॥

प्र च्यांवयन्तु दिवि देवां हर्ष्हान्तरिक्षे वयार्षिस पृथिव्याम्पार्थिवान्ध्रुवं ध्रुवेणं ह्विषाव् सोमं नयामिस। यथां नः सर्विमिञ्जगंदयक्ष्मर सुमना असंत्। यथां न इन्द्र इद्विशः केवंलीः सर्वाः समनसः करंत्। यथां नः सर्वा इद्दिशोऽस्माकं केवंलीरसन्न्॥३४॥

एनंसा विश्वकर्मन् यो दक्षिणां न संपिर्ग्रीवी वैश्वानुराश्चंत्वारिर्श्यचं॥————[८]

यद्वे होताँध्वर्युमंभ्याह्वयंते वज्रंमेनम्भि प्र वंतयत्युक्थंशा इत्यांह प्रातःसवनम्प्रंतिगीर्य् त्रीण्येतान्यक्षराणि त्रिपदां गायत्री गायत्रम्प्रातःसवनं गायत्रियेव प्रातःसवने वज्रंमन्तर्थंत्त उक्थं वाचीत्यांह् माध्यंदिन् सवंनं प्रतिगीर्यं चत्वार्येतान्यक्षराणि चतुंष्पदा त्रिष्टुत्रेष्टुंभूम्माध्यंदिन् सवंनं त्रिष्टुभैव माध्यंदिने सवंने वज्रंमन्तर्थत्ते॥३५॥

उक्थं वाचीन्द्रायेत्यांह तृतीयसवनम्प्रंतिगीर्यं स्प्तैतान्यक्षराणि सप्तपंदा शक्कंरी शाक्करो वज्रो वज्रेणेव तृतीयसवने वज्रमन्तर्धत्ते ब्रह्मवादिनो वदन्ति स त्वा अध्वर्युः स्याद्यो यंथासवनम्प्रतिग्रे छन्दा स्सि सम्पादयेत्ते जंः प्रातःसवन आत्मन्दर्धीतेन्द्रियम्माध्यंदिने सर्वने पृश्र् स्तृतीयसवन इत्युक्थंशा इत्याह प्रातःसवनम्प्रंतिगीर्यं त्रीण्येतान्यक्षराणि॥३६॥

त्रिपदां गायत्री गांयत्रम्प्रांतःसब्नम्प्रांतःसब्न एव प्रंतिग्रे छन्दारंसि सम्पांदयत्यथो तेजो वै गांयत्री तेजंः प्रातःसब्नं तेजं एव प्रांतःसब्न आत्मन्धंत्त उक्थं वाचीत्यांह् माध्यंदिन् सवंनं प्रतिगीर्यं चत्वार्येतान्यक्षरांणि चतुंष्पदा त्रिष्ठुन्नेष्ठुंभूम्माध्यंदिन् सवंनम्माध्यंदिन एव सवंने प्रतिग्रे छन्दारंसि सम्पांदयत्यथों इन्द्रियं वै त्रिष्ठुगिन्द्रियम्माध्यंदिन् सवंनम्॥३७॥

इन्द्रियमेव मार्ध्यंदिने सर्वन आत्मन्धंत उक्थं वाचीन्द्रायेत्यांह तृतीयसवनम्प्रंतिगीर्यं स्प्तैतान्यक्षराणि सप्तपंदा शक्वंरी शाक्वराः पृशवो जागंतं तृतीयसवनं तृंतीयसवन एव प्रंतिगुरे छन्दारंसि सम्पादयत्यथों पृशवो वै जगंती पृशवंस्तृतीयसवनं पृश्नेव तृंतीयसवन आत्मन्धंते यहै होतांष्व्युंमभ्याह्वयंत आव्यंमस्मिन्दधाति तद्यन्न॥३८॥

अपहर्नीत पुरास्यं संवथ्सराद्गृह आ वैवीर्ञ्छो १ सा मोर्च इवेति प्रत्याह्नंयते तेनैव तदपं हते यथा वा आयंताम्प्रतिक्षेत एवमंध्वर्युः प्रंतिग्रम्प्रतीक्षते यदंभिप्रतिगृणीयाद्यथायंतया समृच्छते ताहगेव तद्यदंर्ध्चां छुप्येत यथा धावंद्र्यो हीयंते ताहगेव तत्प्रबाहुग्वा ऋत्विजां मुद्रीथा उद्रीथ एवोद्गां तृणाम्॥३९॥

ऋचः प्रणव उंक्थश्र्सिनां प्रतिग्रोऽध्वर्यूणाम् य एवं विद्वान्प्रतिगृणात्यंन्नाद एव

भंवृत्यास्यं प्रजायां वाजी जायत इयम्बे होतासावंध्वर्युर्यदासीनः शश्संत्यस्या एव तद्धोता नैत्यास्तं इव हीयमथों इमामेव तेन यजमानो दुहे यत्तिष्ठन्प्रतिगृणात्यमुष्यां एव तदंध्वर्युर्नैति॥४०॥

तिष्ठंतीव ह्यंसावथों अमूमेव तेन् यजंमानो दुहे यदासीनः शश्संति तस्मांदितःप्रंदानं देवा उपं जीवन्ति यत्तिष्ठंन्प्रतिगृणाति तस्मांदमुतंःप्रदानम्मनुष्यां उपं जीवन्ति यत्प्राङासीनः शश्संति प्रत्यिङ्गष्ठंन्प्रतिगृणाति तस्मांत्प्राचीन् रेतों धीयते प्रतीचीः प्रजा जांयन्ते यद्वै होतांष्वर्युमंभ्याह्वयंते वर्ज्रमेनम्भि प्र वंत्यति पराङा वंत्ते वर्ज्रमेव तन्नि करोति॥४१॥

सर्वने वर्ज्रमन्तर्धत्ते त्रीण्येतान्यक्षरांणीन्द्रियम्माध्यंन्दिन् सर्वनन्नोद्गांतृणामध्वर्युर्नेतिं वर्तयत्यष्टी चं॥

उपयामगृंहीतोऽसि वाक्षसदंसि वाक्पाभ्यां त्वा ऋतुपाभ्यांमस्य यज्ञस्यं ध्रुवस्याध्यंक्षाभ्यां गृह्णाम्युपयामगृंहीतोऽस्यृत्सदंसि चक्षुष्पाभ्यां त्वा ऋतुपाभ्यांमस्य यज्ञस्यं ध्रुवस्याध्यंक्षाभ्यां गृह्णाम्युपयामगृंहीतोऽसि श्रुत्सदंसि श्रोत्रपाभ्यां त्वा ऋतुपाभ्यांमस्य यज्ञस्यं ध्रुवस्याध्यंक्षाभ्यां गृह्णामि देवेभ्यंस्त्वा विश्वदेवेभ्यस्त्वा विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो विष्णंवुरुक्षमेष ते सोम्स्त १ रक्षस्व॥४२॥

तं ते दुश्वक्षा मार्व ख्यूत् मिय् वसुः पुरोवसुंर्वाक्या वाचं मे पाहि मिय् वसुंर्विदद्वंसुश्चक्षुष्पाश्चक्षुंर्मे पाहि मिय् वसुः संयद्वंसुः श्रोत्रपाः श्रोत्रं मे पाहि भूरंसि श्रेष्ठां रश्मीनाम्प्राणपाः प्राणं में पाहि धूरंसि श्रेष्ठां रश्मीनामपानपा अपानं में पाहि यो नं इन्द्रवायू मित्रावरुणाविधनाविभदासंति भ्रातृंच्य उत्पिपीते शुभस्पती इदमहं तमर्थरम्पादयामि यथैन्द्राहमुंत्तमश्चेतयानि॥४३॥

रुक्षस्व भ्रातृंव्यस्रयोदश च॥-----[१०]

प्र सो अंग्रे तबोतिभिः सुवीरांभिस्तरित् वार्जकर्मभिः। यस्य त्वर सुख्यमाविध। प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्रये भरता बृहत्। विपां ज्योतीर्षष् बिभ्रंते न वेधसें। अग्रे त्री ते वार्जिना त्री षुधस्थां तिस्रस्तें जिह्वा ऋंतजात पूर्वीः। तिस्र उं ते तनुवों देववांतास्ताभिनः पाहि गिरो अप्रयुच्छत्र्। सं वां कर्मणा सिम्षा॥४४॥

हिनोमीन्द्रांविष्णू अपंसस्पारे अस्य। जुषेथां युज्ञं द्रविणं च धत्तमरिष्टैर्नः पृथिभिः

पारयंन्ता। उभा जिंग्यथुर्न पर्रा जयेथे न पर्रा जिग्ये कत्रश्चनैनौः। इन्द्रश्च विष्णो यदपंस्पृधेथां त्रेधा सहस्रुं वि तदैरयेथाम्। त्रीण्यायू ५ षि तवं जातवेदस्तिस्र आजानीरूषसंस्ते अग्ने। ताभिर्देवानामवीं यक्षि विद्वानथं॥४५॥

भृष् यर्जमानाय शं योः। अग्निक्षीणि त्रिधातून्या क्षेति विदर्थां कृविः। स त्रीरंरेकाद्शार इह। यक्षंच पिप्रयंच नो विप्रो दूतः परिष्कृतः। नभंन्तामन्यके संमे। इन्द्रांविष्णू दरहिताः शम्बंरस्य नव पुरो नवृतिं चं श्रिथष्टम्। शृतं वृचिनः सहस्रं च साकर हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान्। उत माता महिषमन्वंवेनद्मी त्वां जहित पुत्र देवाः। अथाँब्रवीद्वृत्रमिन्द्रों हिनुष्यन्थसखें विष्णो वित्रं वि क्रमस्व॥४६॥

ड्षाऽथं त्वा त्रयोदश च॥———[११]
अग्नें तेजस्विन्वायुर्वसंवस्त्वैतद्वा अपां वायुरंसि प्राणो नामं देवा वै यद्यज्ञेन न
प्रजापंतिर्देवासुरानायुर्वा एतं युवांन् सूर्यो देव ड्दं वामेकांदश॥————[१२]

॥ तृतीयः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां तृतीयकाण्डे तृतीयः प्रश्नः॥

अग्नें तेजस्विन्तेज्स्वी त्वं देवेषुं भूयास्तेजंस्वन्तम्मामायुंष्मन्तं वर्चस्वन्तम्मनुष्येषु कुरु दीक्षायें च त्वा तपंसश्च तेजंसे जुहोमि तेजोविदंसि तेजों मा मा हांसीन्माऽहं तेजों हासिषुं मा मां तेजों हासीदिन्द्रौजस्विन्नोज्स्वी त्वं देवेषुं भूया ओजंस्वन्तम्मामायुंष्मन्तं वर्चस्वन्तम्मनुष्येषु कुरु ब्रह्मणश्च त्वा क्षत्रस्यं च॥१॥

ओजंसे जुहोम्योजोविद्स्योजों मा मा हांसीन्माहमोजों हासिष्ं मा मामोजों हासीथ्सूर्यं भाजस्विन्भाज्स्वी त्वं देवेषुं भूया भाजंस्वन्तम्मामायुंष्मन्तं वर्चंस्वन्तम्मनुष्येषु कुरु वायोश्चं त्वाऽपां च भाजंसे जुहोमि सुवविदिसि सुवंमां मा हांसीन्माहर सुवंरहासिषं मा मार सुवंरहासीन्मियं मेधाम्मियं प्रजाम्मय्यग्निस्तेजों दधातु मियं मेधाम्मियं प्रजाम्मयोन्द्रं इन्द्रियं दंधातु मियं मेधाम्मियं प्रजाम्मिय् सूर्यो भाजों दधातु॥२॥

क्षत्रस्यं च मिय त्रयोवि १ शतिश्व॥------[१]

वायुर्हिंकर्ताऽग्निः प्रस्तोता प्रजापंतिः साम् बृह्स्पतिंरुद्गाता विश्वे देवा उपगातारों मुरुतः प्रतिहर्तार् इन्द्रों निधनं ते देवाः प्राण्भृतः प्राणम्मयि दधत्वेतद्वे सर्वमध्वर्युरुपाकुर्वन्नुंद्गातृभ्यं उपाकरोति ते देवाः प्राण्भृतः प्राणम्मयि दधत्वित्यांहैतदेव सर्वमात्मन्थंत् इडां देवहूर्मनुंर्यज्ञनीर्बृह्स्पतिंरुक्थाम्दानि शश्सिषद्विश्वे देवाः॥३॥

सूक्तवाचः पृथिवि मात्मां मां हिश्सीमधुं मनिष्ये मधुं जनिष्ये मधुं वक्ष्यामि मधुं विदण्यामि मधुंमतीं देवेभ्यो वाचंमुद्यासश् शुश्रूषेण्यांम्मनुष्येभ्यस्तम्मां देवा अंवन्तु शोभायें पितरोऽनुं मदन्तु॥४॥

शुरसिषद्विश्वे देवा अष्टाविर्शातिश्च॥---

---[a]

वसंवस्त्वा प्र वृंहन्तु गायुत्रेण छन्दंसाऽग्नेः प्रियम्पाथ उपेहि रुद्रास्त्वा प्र वृंहन्तु त्रैष्टुंभेन् छन्दंसन्द्रंस्य प्रियम्पाथ उपेहादित्यास्त्वा प्र वृंहन्तु जागंतेन् छन्दंसा विश्वेषां देवानां प्रियम्पाथ उपेहि मान्दांसु ते शुक्र शुक्रमा धूनोमि भन्दनांसु कोतंनासु नूतंनासु रेशींषु मेषींषु वाशींषु विश्वभृथ्सु माध्वींषु ककुहासु शक्वंरोषु॥५॥

शुकासुं ते शुक्र शुक्रमा धूंनोमि शुक्रं ते शुक्रेणं गृह्णाम्यह्रों रूपेण सूर्यस्य रिश्मिभिः। आऽस्मिन्नुग्रा अंचुच्यवृर्दिवो धारां असश्चत। कुकुहर रूपं वृष्मस्यं रोचते बृहथ्सोमः सोमंस्य पुरोगाः शुक्रः शुक्रस्यं पुरोगाः। यत्ते सोमादाँभ्यं नाम जागृंवि तस्मै ते सोम् सोमाय स्वाहोशिक्तं देव सोम गायुत्रेण छन्दंसाऽग्नेः॥६॥

प्रियम्पाथो अपीहि वृशी त्वं देव सोम् त्रैष्टुंभेन् छन्द्सेन्द्रंस्य प्रियम्पाथो अपीह्यस्मध्संखा त्वं देव सोम् जागंतेन् छन्दंसा विश्वेषां देवानां प्रियम्पाथो अपीह्या नंः प्राण एत् परावत् आन्तरिक्षाद्दिवस्परिं। आयुंः पृथिव्या अध्यमृतंमिस प्राणायं त्वा। इन्द्राग्नी मे वर्चः कृणुतां वर्चः सोमो बृह्स्पतिः। वर्चो मे विश्वे देवा वर्चो मे धत्तमिश्वना। द्धन्वे वा यदीमनु वोच्द्रह्माणि वेरु तत्। परि विश्वानि काव्यां नेमिश्चक्रमिवाभवत्॥७॥

शक्तरीष्वुग्नेर्बृह्स्पतिः पश्चवि १ शतिश्च॥

[8]

एतद्वा अपां नांमधेयं गुह्यं यदांधावा मान्दांसु ते शुक्र शुक्रमा धूंनोमीत्यांहापामेव नांमधेयेंन गुह्येंन दिवो वृष्टिमवं रुन्द्धे शुक्रं तें शुक्रेणं गृह्णामीत्यांहैतद्वा अहों रूपं यद्रात्रिः सूर्यंस्य रुश्मयो वृष्ट्यां ईश्तेऽहं एव रूपेण सूर्यस्य रुश्मिभिंर्दिवो वृष्टिं

धा ऋतस्यं त्वा व्योमन ऋतस्यं॥११॥

च्यावयृत्याऽस्मिन्नुग्राः॥८॥

अचुच्यवुरित्यांह यथायुजुरेवेतत्कंकुह र रूपं वृष्भस्यं रोचते बृहदित्यांहैतद्वा अस्य ककुह र रूपं यद्दृष्टीं रूपेणेव वृष्टिमवं रुन्द्धे यत्तं सोमादाँ नम् जागृवीत्यांहैष ह् वै ह्विषां ह्विर्यंजित् योऽदाँ त्यं गृहीत्वा सोमांय जुहोत् परा वा एतस्यायुं प्राण एंति॥९॥

योऽ रेशुं गृह्णात्या नंः प्राण एंतु परावत् इत्याहायुरेव प्राणमात्मन्धेत्तेऽमृतंमिस प्राणाय् त्वेति हिरंण्यम्भि व्यनित्यमृतं वे हिरंण्यमायुंः प्राणोऽमृतंनैवायुंरात्मन्धंते शतमानम्भवित शतायुः पुरुषः श्तेन्द्रिय आयुंष्येवेन्द्रिये प्रति तिष्ठत्यप उपं स्पृशिति भेषुजं वा आपों भेषुजमेव कुंरुते॥१०॥

उुग्रा एत्यापुस्रीणि च॥______

वायुरंसि प्राणो नामं सिवतुराधिपत्येऽपानं में दाश्चक्षुंरिस् श्रोत्रं नामं धातुराधिपत्य आयुर्मे दा रूपमंसि वर्णो नाम् बृह्स्पतेराधिपत्ये प्रजां में दा ऋतमंसि सत्यं नामेन्द्रस्याधिपत्ये क्षत्रं में दा भूतमंसि भव्यं नामं पितृणामाधिपत्येऽपामोषंधीनां गर्भं

त्वा विभूमन ऋतस्यं त्वा विधर्मण ऋतस्यं त्वा स्त्यायुर्तस्यं त्वा ज्योतिषे प्रजापंतिर्विराजंमपश्यत्तयां भूतं च भव्यं चासृजत् तामृषिभ्यस्तिरांऽदधात्तां ज्मदंग्रिस्तपंसा-ऽपश्यत्तया वे स पृश्लीन्कामांनसृजत् तत्पृंश्लीनां पृश्लित्वम् यत्पृश्लंयो गृह्यन्ते पृश्लीनेव तैः कामान् यजंमानोऽवं रुन्द्धे वायुरंसि प्राणः॥१२॥

नामेत्यांह प्राणापानावेवावं रुन्द्धे चक्षुंरिस् श्रोत्रं नामेत्याहायुरेवावं रुन्द्धे रूपमंसि वर्णो नामेत्यांह प्रजामेवावं रुन्द्ध ऋतमंसि सत्यं नामेत्यांह क्षत्रमेवावं रुन्द्धे भूतमंसि भव्यं नामेत्यांह पृशवो वा अपामोषंधीनां गर्भः पृशूनेव॥१३॥

अवं रुन्द्ध एताबृद्धै पुरुषम्परित्स्तदेवावं रुन्द्ध ऋतस्यं त्वा व्योमन् इत्याहियं वा ऋतस्य व्योमेमामेवाभि जंयत्यृतस्यं त्वा विभूमन् इत्याहान्तरिक्षं वा ऋतस्य विभूमान्तरिक्षमेवाभि जंयत्यृतस्यं त्वा विधर्मण् इत्याह् द्यौर्वा ऋतस्य विधर्म् दिवंमेवाभि जंयत्यृतस्यं॥१४॥ त्वा स्त्यायेत्यांह् दिशो वा ऋतस्यं स्त्यं दिशं एवाभि जंयत्यृतस्यं त्वा ज्योतिष् इत्यांह सुवर्गो वे लोक ऋतस्य ज्योतिः सुवर्गमेव लोकम्भि जंयत्येतावंन्तो वे देवलोकास्तानेवाभि जंयति दश् सम्पंद्यन्ते दशांक्षरा विराडन्नं विराडिवर्गे विराडिवर्गे तिष्ठति॥१५॥

व्योमन ऋतस्यं प्राणः पृश्नेव विधेर्म् दिवंमेवाभि जंयत्यृतस्य षद्गंत्वारि शच॥——[५]

देवा वै यद्युज्ञेन नावार्रन्थत् तत्परैरवांरुन्थत् तत्परांणां पर्त्वम् यत्परें गृह्यन्ते यदेव यज्ञेन नावर्रुन्द्धे तस्यावरुद्धे यम्प्रथमं गृह्णातीममेव तेनं लोकम्भि जंयित् यं द्वितीयंम्नतरिक्षं तेन् यं तृतीयंम्मुमेव तेनं लोकम्भि जंयित यदेते गृह्यन्तं एषां लोकानाम्भिजित्यै॥१६॥

उत्तरेष्वहंःस्वमुतोऽर्वाश्चों गृह्यन्तेऽभिजित्यैवेमाल्लाँकान्युनिर्मं लोकम्प्रत्यवंरोहन्ति यत्पूर्वेष्वहंःस्वमुतोऽर्वाश्चों गृह्यन्ते तस्मादितः पराश्च इमे लोका यदुत्तरेष्वहंःस्वमुतोऽर्वाश्चों गृह्यन्ते तस्मादमुतोऽर्वां चं इमे लोकास्तस्मादयातयाम्नो लोकान्मनुष्यां उपं जीवन्ति ब्रह्मविनो वदन्ति कस्माध्मत्यादुन्ध ओषंधयः सम्भवन्त्योषंधयः॥१७॥

मृनुष्यांणामन्नं प्रजापंतिं प्रजा अनु प्र जांयन्त् इति परानन्वितिं ब्रूयाद्यद्गृह्णात्युद्धस्त्वौषंधीभ्यो गृह्णामीति तस्माद्द्य ओषंधयः सम्भवन्ति यद्गृह्णात्योषंधीभ्यस्त्वा प्रजाभ्यो गृह्णामीति तस्मादोषंधयो मनुष्यांणामन्नम् यद्गृह्णातिं प्रजाभ्यस्त्वा प्रजापंतये गृह्णामीति तस्मातप्रजापंतिं प्रजा अनु प्र जांयन्ते॥१८॥

अभिजिंत्या ओषंधयोऽष्टाचंत्वारि १ शच॥———[६]

प्रजापंतिर्देवासुरानंसृजत् तदनुं युज्ञोऽसृज्यत युज्ञं छन्दारंसि ते विष्वंश्चो व्यंक्राम्नन्थ्सो-ऽसुंराननुं युज्ञोऽपाकामद्यज्ञं छन्दारंसि ते देवा अमन्यन्तामी वा इदमंभूवन् यद्वयश् स्म इति ते प्रजापंतिमुपांधावन्थ्साँऽब्रवीत्प्रजापंतिश्छन्दंसां वीर्यमादाय तद्वः प्र दास्यामीति स छन्दंसां वीर्यम्॥१९॥

आदाय तर्देभ्यः प्रायंच्छ्तत्वनु छन्दार्श्स्यपाँकाम्ञ्छन्दार्श्सि यज्ञस्तती देवा अभवन्यरासुरा य एवं छन्दंसां वीर्यं वेदा श्रांवयास्तु श्रौषडाज् ये यजांमहे वषद्वारो भवंत्यात्मना पराँऽस्य भ्रातृंव्यो भवति ब्रह्मवादिनो वदन्ति कस्मै कर्मध्वर्युरा श्रांवयतीति छन्दंसां वीर्यायेतिं ब्रूयादेतद्वै॥२०॥

छन्दंसां वीर्यमा श्रांवयास्तु श्रोष्डाज् ये यजामहे वषद्कारो य एवं वेद सवीर्येरेव छन्दोंभिरचिति यत्किं चार्चित् यदिन्द्रों वृत्रमहिन्नमेध्यं तद्यद्यतींन्पावपदमेध्यं तदथ कस्मादैन्द्रो यज्ञ आ सङ्स्थांतोरित्यांहुरिन्द्रंस्य वा एषा यज्ञियां तनूर्यद्यज्ञस्तामेव तद्यंजन्ति य एवं वेदोपैनं यज्ञो नंमति॥२१॥

स छन्दंसां वीर्यं वा एव तदृष्टौ चं॥______[७]

आयुर्वा अंग्ने ह्विषों जुषाणो घृतप्रंतीको घृतयोंनिरेधि। घृतम्पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेवं पुत्रम्भि रक्षतादिमम्। आ वृंश्च्यते वा एतद्यजंमानोऽग्निभ्यां यदेनयोः शृतंकृत्याथान्यत्रावभृथम्वेत्यांयुर्वा अंग्ने ह्विषों जुषाण इत्यंवभृथमंवैष्यञ्जंह्रयादाहुत्यैवेनौं शमयति नार्तिमार्च्छति यजंमानो यत्कुसीदम्॥२२॥

अप्रतित्तम्मिय् येनं यमस्यं बृिलना चरामि। इहैव सिन्न्रिरवंदये तदेतत्तदंग्ने अनृणो भंवामि। विश्वंलोप विश्वदावस्यं त्वासञ्ज्ञंहोम्यग्धादेकोऽहुतादेकः समस्नादेकः। ते नः कृण्वन्तु भेषुज्ञ सदः सहो वरेण्यम्। अयं नो नभंसा पुरः स्र्इस्फानी अभि रक्षित्। गृहाणामसंमत्ये बहवों नो गृहा असन्न। स त्वं नः॥२३॥

न्भसस्पत् ऊर्जं नो धेहि भुद्रयाँ। पुनेनीं नृष्टमा कृषि पुनेनीं रियमा कृषि। देवं सङ्स्फान सहस्रपोषस्येशिषे स नो रास्वाज्यांनिः रायस्पोषः सुवीर्यः संवथ्सरीणाः स्वस्तिम्। अग्निर्वाव यम इयं यमी कुसीदं वा एतद्यमस्य यजंमान् आ देते यदोषंधीभिर्वेदिः स्तृणाति यदनुंपौष्य प्रयायाद्वीवबुद्धमेनम्॥२४॥

अमुष्मिंश्लोंके नेनीयेर्न यत्कुसींद्मप्रंतीत्तम्मयीत्युपौषतीहैव सन् युमं कुसींदं निरवदायांनुणः सुंवर्गं लोकमेंति यदिं मिश्रमिव चरेंदञ्जलिना सक्तून्प्रदाव्ये जुहुयादेष वा अग्निर्वैश्वान्रो यत्प्रंदाव्यः स एवैनई स्वदयत्यहां विधान्यांमेकाष्ट्रकायांमपूपं चतुंःशरावम्पुक्का प्रातरेतेन कक्षमुपौषेद्यदि॥२५॥

दहंति पुण्यसमम्भवित् यदि न दहंति पापसममितेनं ह स्म वा ऋषयः पुरा विज्ञानेन दीर्घस्त्रमुपं यन्ति यो वा उपद्रष्टारंमुपश्रोतारंमनुख्यातारं विद्वान् यजेते सम्मुष्मिं छौं क इंष्टापूर्तेनं गच्छतेऽग्निर्वा उपद्रष्टा वायुरुंपश्रोताऽऽदित्योंऽनुख्याता तान् य एवं विद्वान् यजंते समुमुष्मिं ह्याँक इंष्टापूर्तेनं गच्छतेऽयं नो नर्भसा पुरः॥२६॥

इत्यांहाऽग्निर्वे नभंसा पुरौंऽग्निमेव तदांहैतन्में गोपायेति स त्वं नो नभसस्पत् इत्यांह वायुर्वे नभंसस्पतिंवा्युमेव तदांहैतन्में गोपायेति देवं सङ्स्फानेत्यांहासौ वा आंदित्यो देवः सङ्स्फानं आदित्यमेव तदांहैतन्में गोपायेति॥२७॥

कुसींद्नत्वन्नं एनमोषेद्यदिं पुर आंदित्यमेव तदांहैतन्में गोपायेतिं॥———[८]

पुतं युवांनुं पिरं वो ददामि तेन् क्रीडंन्तीश्चरत प्रियेणं। मा नंः शाप्त जुनुषां सुभागा रायस्पोषंण सिमेषा मंदेम। नमों मिहुम्न उत चक्षुंषे ते मरुतास्पित्स्तद्हं गृंणािम। अनुं मन्यस्व सुयजां यजाम् जुष्टं देवानांिमदमंस्तु ह्व्यम्। देवानांमेष उपनाह आंसीदपां गर्भ ओषंधीषु न्यंक्तः। सोमंस्य द्रफ्समंवृणीत पूषा॥२८॥

बृहन्नद्विरभवत्तदेषाम्। पिता वृथ्सानाम्पतिरिघ्यानामथो पिता मंहतां गर्गराणाम्। वृथ्सो ज्रायुं प्रतिधुक्पीयूषं आमिक्षा मस्तुं घृतमस्य रेतः। त्वां गावोऽवृणत राज्याय त्वाश् हंवन्त मुरुतः स्वर्काः। वर्ष्मन्श्वत्रस्यं कुकुभिं शिश्रियाणस्ततो न उग्रो वि भंजा वसूनि। व्यृंद्धेन वा एष पृश्चनां यजते यस्यैतानि न क्रियन्तं एष हु त्वे समृद्धेन यजते यस्यैतानि क्रियन्ते॥२९॥

पूषा क्रियन्तं पृषौँऽष्टौ चं॥———[९

सूर्यो देवो दिविषद्धो धाता क्ष्रत्रायं वायुः प्रजाभ्यः। बृह्स्पतिंस्त्वा प्रजापंतये ज्योतिंष्मतीं जुहोत्। यस्याँस्ते हरितो गर्भोऽथो योनिर्हरण्ययीं। अङ्गान्यह्नंता यस्ये तां देवैः समंजीगमम्। आ वर्तन वर्तय नि निवर्तन वर्तयेन्द्रं नर्दबुद। भूम्याश्चतंस्रः प्रदिशुस्ताभिरा वर्तया पुनंः। वि ते भिनद्भि तक्रीं वि योनिं वि गंवीन्यौ। वि॥३०॥

मातरं च पुत्रं च वि गर्भं च जरायुं च। बहिस्ते अस्तु बालितिं। उरुद्रफ्सो विश्वरूप् इन्दुः पर्वमानो धीरं आनञ्ज गर्भम्। एकंपदी द्विपदीं त्रिपदी चतुंष्पदी पश्चंपदी षद्वंदी सप्तपंद्यष्टापंदी भुवनानुं प्रथता् इ स्वाहाँ। मृही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञम्मिंमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः॥३१॥

गृवी-यौं वि चतुंश्चत्वारि १ शच॥ -----[१०]

ड्दं वांमास्यें ह्विः प्रियमिंन्द्राबृहस्पती। उक्थम्मदेश्च शस्यते। अयं वां परिं विच्यते सोमं इन्द्राबृहस्पती। चारुर्मदाय पीतयें। अस्मे इंन्द्राबृहस्पती रृयिं धंत्तर शतुग्विनम्ं। अश्वावन्तर सहस्रिणम्ं। बृहस्पतिर्नः परिं पातु पृश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः। इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सर्खिभ्यो वरिवः कृणोतु। वि ते विष्वग्वातंज्ञूतासो अग्रे भामांसः॥३२॥

शुचे शुचंयश्चरन्ति। तुविम्रक्षासों दिव्या नवंग्वा वनां वनन्ति धृष्ता रुजन्तः। त्वामंश्चे मानुंषीरीडते विशों होत्रविदं विविचि रत्नधातमम्। गुहा सन्तरं सुभग विश्वदंशंतं तुविष्मणसर् सुयजं घृत्श्रियम्। धाता दंदातु नो र्यिमीशांनो जगंतस्पतिः। स नः पूर्णेनं वावनत्। धाता प्रजायां उत राय ईशे धातेदं विश्वम्भुवंनं जजान। धाता पुत्रं यजमानाय दाता॥३३॥

तस्मां उ ह्व्यं घृतविद्विधेम। धाता दंदातु नो र्यिम्प्राचीं जीवातुमिक्षिताम्। व्यं देवस्यं धीमिह सुमृति स्त्यराधसः। धाता दंदातु दाशुषे वसूनि प्रजाकांमाय मीदुषे दुरोणे। तस्मैं देवा अमृताः सं व्यंयन्तां विश्वं देवासो अदितिः सजोषौः। अनुं नोऽद्यानुंमितिर्य्ज्ञं देवेषुं मन्यताम्। अग्निश्चं हव्यवाहनो भवंतां दाशुषे मर्यः। अन्विदंनुमते त्वम्॥३४॥

मन्यांसै शं चं नः कृषि। ऋत्वे दक्षांय नो हिनु प्र ण आयूर्शिष तारिषः। अनुं मन्यतामनुमन्यंमाना प्रजावंन्तर रियमक्षीयमाणम्। तस्ये वयर हेर्डसि मापि भूम सा नों देवी सुहवा शर्म यच्छत्। यस्यांमिदम्प्रदिशि यद्विरोचतेऽनुंमितिं प्रतिं भूषन्त्यायवंः। यस्यां उपस्थं उवंन्तरिक्षर् सा नों देवी सुहवा शर्म यच्छत्॥३५॥

राकाम्ह १ सुह्वा १ सुष्टुती हुंवे शृणोतुं नः सुभगा बोधंतु त्मनां। सीव्यत्वपंः सूच्याऽच्छिंद्यमानया ददांतु वीर १ शतदांयमुक्थ्यम्। यास्ते राके सुमृतयः सूपेशंसो याभिर्ददांसि दाशुषे वसूंनि। ताभिर्नो अद्य सुमनां उपागंहि सहस्रपोष १ सुभगे ररांणा। सिनीवालि या सुंपाणिः। कुहूम्ह १ सुभगां विद्यनापंसम्स्मिन् युज्ञे सुहवां जोहवीमि। सा नो ददातु श्रवंणम्पितृणां तस्यांस्ते देवि ह्विषां विधेम। कुहूर्द्वानांम्मृतंस्य पत्नी हव्यां नो अस्य ह्विषंश्चिकेतु। सं दाशुषे किरतु भूरि वाम १ रायस्पोषं चिकितुषे

दधातु॥३६॥

भामांसो दाता त्वम्न्तरिक्षर् सा नों देवी सुहवा शर्म यच्छतु श्रवणं चतुर्वि शतिश्च॥[११]

वि वा एतस्या वांयो इमे वै चित्तश्चाग्निर्भूतानां देवा वा अभ्यातानानृंताषाड्राष्ट्रकांमाय देविंका वास्तोष्पते त्वमंग्ने बृहदेकांदश॥—[१२] वि वा एतस्येत्यांह मृत्युर्गन्धवींऽवं रुन्धे मध्यतस्त्वमंग्ने बृहथ्यद्वंत्वारि १शत्॥४६॥ वि वा एतस्यं प्रियासंः॥

॥चतुर्थः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां तृतीयकाण्डे चतुर्थः प्रश्नः॥

वि वा एतस्यं युज्ञ ऋष्यते यस्यं हुविरंतिरिच्यंते सूर्यो देवो दिविषद्ध इत्यांहु बृहुस्पतिना चैवास्यं प्रजापंतिना च युज्ञस्य व्यृद्धमपि वपति रक्षारंसि वा एतत्पृशुर संचन्ते यदेंकदेवत्यं आलंब्यो भूयान्भवंति यस्यांस्ते हरिंतो गर्भ इत्यांह देवृत्रैवैनां गमयित रक्षंसामपंहत्या आ वंर्तन वर्त्ययेत्यांह॥१॥

ब्रह्मणेवेनमा वंर्तयति वि ते भिनद्मि तक्रीमित्यांह यथायजुरेवेतदुंरुद्रफ्सो विश्वरूप् इन्दुरित्यांह प्रजा वे पुशव इन्दुंः प्रजयैवेनम्पुश्भिः समर्धयति दिवं वे यज्ञस्य व्यृद्धं गच्छति पृथिवीमतिरिक्तन्तद्यन्न शुमयेदार्तिमार्च्छेद्यजमानो मुही द्यौः पृथिवी च न इति॥२॥

आहु द्यावापृथिवीभ्यांमेव युज्ञस्य व्यृंद्धं चातिंरिक्तं च शमयित नार्तिमार्च्छति यजंमानो भस्मंनाभि समूहित स्वगाकृत्या अथों अनयोवी एष गर्भोऽनयोरेवैनं दधाित यदंवदेदित तद्रेंचयेद्यन्नावद्येत्पशोरालंब्यस्य नावं द्येत् पुरस्तान्नाभ्यां अन्यदंवदेदुपरिष्टादुन्यत्पुरस्ताद्धे नाभ्यै॥३॥

प्राण उपरिष्टादपानो यावानिव पृशुस्तस्यावं द्यति विष्णंवे शिपिविष्टायं जुहोति यद्वै यज्ञस्यातिरिच्यंते यः पृशोर्भूमा या पृष्टिस्तद्विष्णुः शिपिविष्टोऽतिरिक्त पृवातिरिक्तं दधात्यतिरिक्तस्य शान्त्यां अष्टाप्रूङ्किरंण्यं दक्षिणाऽष्टापंदी ह्येषात्मा नंवमः पृशोरास्यां अन्तरकोश उष्णीषेणाविष्टितम्भवत्येवमिव हि पृशुरुल्बंमिव चर्मेव मार्समिवास्थींव यावानिव पुशुस्तमास्वावं रुन्द्धे यस्यैषा युज्ञे प्रायंश्चित्तिः क्रियतं इङ्घा वसीयान्भवति॥४॥

वुर्तुयेत्याह न इति वै नाभ्या उल्बंमिवैकंवि श्यतिश्व॥______

[8]

आ वांयो भूष शुचिपा उपं नः सहस्रं ते नियुतों विश्ववार। उपों ते अन्थों मद्यंमयामि यस्यं देव दिधेषे पूँवेंपेयम्। आकूँत्ये त्वा कामांय त्वा सम्धें त्वा कििक्कटा ते मनंः प्रजापंतये स्वाहां कििक्कटा ते प्राणं वायवे स्वाहां कििक्कटा ते चक्षुः सूर्याय स्वाहां कििक्कटा ते श्रोत्रं द्यावांपृथिवीभ्याः स्वाहां कििक्कटा ते वाच् सरंस्वत्ये स्वाहां॥५॥

त्वं तुरीयां वृशिनीं वृशिसिं स्कृद्यत्वा मनसा गर्भ आशंयत्। वृशा त्वं वृशिनीं गच्छ देवान्थ्सत्याः संन्तु यजंमानस्य कामाः। अजासिं रियष्ठा पृथिव्या सीदोध्वान्तिरिक्षमुपं तिष्ठस्व दिवि ते बृहद्भाः। तन्तुं तुन्वन्नजंसो भानुमन्विंहि ज्योतिष्मतः पृथो रक्ष िय्या कृतान्। अनुल्बणं वयत् जोगुंवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्। मनंसो ह्विरिस प्रजापंतेर्वर्णो गात्रांणां ते गात्रभाजो भूयास्म॥६॥

सरंस्वत्यै स्वाहा मनुस्नयोंदश च॥-

rc1

ड्मे वै सहास्तान्ते वायुर्व्यवात्ते गर्भमदधातान्तः सोमः प्राजंनयद्ग्रिरंग्रसत् स एतं प्रजापंतिराग्नेयमृष्टाकंपालमपश्यत्तं निरंवपृत्तेनैवैनांमुग्नेरिध् निरंकीणात्तस्मादप्यंन्यदेवृत्यांमालभंमान् आग्नेयमृष्टाकंपालम्पुरस्तान्निवंपदुग्नेरेवैनामधि निष्क्रीया लंभते यत्॥७॥

वायुर्व्यवात्तस्माँद्वायव्यां यदिमे गर्भमदंधातां तस्माँद्वावापृथिव्यां यथ्सोमः प्राजनयदग्निरग्रंसत् तस्मांदग्नीषोमीया यदनयौर्वियत्योर्वागवंदत्तस्माँथ्सारस्वती यत्प्रजापंतिरग्नेरधि निरक्रीणात्तस्माँत्प्राजापत्या सा वा एषा संवदेवत्यां यदजा वृशा वांयव्यांमा लंभेत भूतिंकामो वायुर्वे क्षेपिष्ठा देवतां वायुमेव स्वेनं॥८॥

भागुधेयेनोपं धावित् स एवैन्म्भूतिं गमयित द्यावापृथिव्यांमा लंभेत कृषमाणः प्रतिष्ठाकांमो दिव एवास्मैं पूर्जन्यो वर्षित् व्यंस्यामोषंधयो रोहन्ति समर्धुकमस्य सस्यम्भवत्यग्रीषोमीयामा लंभेत् यः कामयेतान्नंवानन्नादः स्यामित्यग्निनैवान्नमवं रुन्द्धे सोमैनान्नाद्यमन्नंवानेवान्नादो भवित सारस्वतीमा लंभेत् यः॥९॥

ईश्वरो वाचो वर्दितोः सन्वाचं न वदेद्वाग्वै सरम्वती सरम्वतीमेव स्वेनं भागधेयेनोपं

धावित् सैवास्मिन्वाचं दधाित प्राजापृत्यामा लंभेत् यः कामयेतानंभिजितम्भि जंयेयुमितिं प्रजापितुः सर्वा देवतां देवतांभिरेवानंभिजितम्भि जंयित वायव्यंयोपाकंरोति वायोरेवेनांमवरुध्या लंभत् आकूँत्यै त्वा कामांय त्वा॥१०॥

इत्यांह यथायुजुरेवैतित्विक्किटाकारं जुहोति किक्किटाकारेण वै ग्राम्याः पृशवों रमन्ते प्रार्ण्याः पंतन्ति यत्विक्किटाकारं जुहोति ग्राम्याणां पश्नां धृत्ये पर्यग्रौ क्रियमाणे जुहोति जीवंन्तीमेवैनारं सुवर्गं लोकङ्गंमयित त्वं तुरीयां वृशिनीं वृशासीत्यांह देवृत्रैवैनां गमयित सत्याः सन्तु यजमानस्य कामा इत्यांहैष वै कामः॥११॥

यजंमानस्य यदनाँतं उद्दचं गच्छंति तस्मादेवमांहाजासिं रियष्ठेत्यांहैष्वेवैनां लोकेषु प्रति ष्ठापयति दिवि तें बृहद्भा इत्यांह सुवर्ग एवास्मैं लोके ज्योतिर्दधाति तन्तुं तन्वन्नजंसो भानुमन्विहीत्यांहेमानेवास्मै लोकां ज्योतिष्मतः करोत्यनुल्बणं वयत् जोगुंवामप् इति॥१२॥

आह् यदेव युज्ञ उल्बर्णं ऋियते तस्यैवैषा शान्तिर्मर्नुर्भव जनया दैव्यं जन्मित्यांह मान्व्यो वै प्रजास्ता एवाद्याः कुरुते मनंसो हविर्सीत्यांह स्वगाकृत्यै गात्रांणां ते गात्रभाजों भूयास्मेत्यांहाशिषंमेवैतामा शांस्ते तस्यै वा एतस्या एकंमेवादेवयजनं यदालंब्यायामुअः॥१३॥

भवंति यदालेब्यायामुभः स्याद्फ्सु वाँ प्रवेशयेथ्सर्वां वा प्राक्षीयाद्यद्फ्सु प्रवेशयेद्यज्ञवेश्चसं कुंर्याथ्सर्वामेव प्राक्षीयादिन्द्रियमेवात्मन्धत्ते सा वा एषा त्रयाणामेवावंरुद्धा संवथ्सर्सदं सहस्रयाजिनों गृहमेधिनुस्त एवैतयां यजेरुन्तेषांमेवैषाप्ता॥14॥

यथ्स्वेनं सारस्वृतीमा लेभेत् यः कामाय त्वा कामोऽप् इत्युभ्रो द्विचंत्वारि॰शच॥—[३]

चित्तं च चित्तिश्चाकूंतं चाकूंतिश्च विज्ञांतं च विज्ञानं च मनश्च शक्वंरिश्च दर्शंश्च पूर्णमांसश्च बृहचं रथन्तरं चं प्रजापंतिर्जयानिन्द्रांय वृष्णे प्रायंच्छदुग्रः पृंतृनाज्येषु तस्मै विशः समनमन्त सर्वाः स उग्रः स हि हव्यो बुभूवं देवासुराः संयंत्ता आसुन्थ्स इन्द्रः प्रजापंतिमुपांधावृत्तस्मां एताञ्चयान्प्रायंच्छ्तानंजुहोत्ततो वै देवा असुरानजयन् य-दर्जयन्तज्ञयानां जयत्वः स्पर्धमानेनैते होत्व्यां जयंत्येव तां पृतनाम्॥१५॥

अग्निर्भूतानामधिपतिः स मांवत्विन्द्रौं ज्येष्ठानौं युमः पृथिव्या वायुर्न्तरिक्षस्य सूर्यो

दिवश्चन्द्रमा नक्षेत्राणाम्बृह्स्पतिब्र्ह्मणो मित्रः सत्यानां वर्रुणोऽपार संमुद्रः स्रोत्यानामन्नर् साम्राज्यानामधिपति तन्मांवतु सोम् ओषंधीनार सिवता प्रस्वानार रुद्रः पश्चनां त्वष्टां रूपाणां विष्णुः पर्वतानाम्मरुतो गृणानामधिपतयस्ते मांवन्तु पितंरः पितामहाः परेऽवरे ततास्ततामहा इह मांवत। अस्मिन्ब्रह्मन्नस्मिन्क्षत्रैंऽस्यामाशिष्यस्याम्पुरोधायामस्मिन्कर्मन्नस्या देवहृत्याम्॥१६॥

अबुरे सप्तदंश च॥_____[५]

देवा वै यद्यज्ञेऽकुंर्वत् तदसुंरा अकुर्वत् ते देवा एतानंभ्यातानानंपश्यन्तान्भ्यातंन्वत् यद्देवानां कर्मासीदार्ध्यत् तद्यदसुंराणां न तदार्ध्यत् येन् कर्मणेर्थ्सेत्तत्रं होत्व्यां ऋभोत्येव तेन् कर्मणा यद्विश्वं देवाः समभंर्न्तस्मादभ्याताना वैश्वदेवा यत्प्रजापंतिर्जयान्प्रायंच्छत्तस्माज्ञयाः प्राजापुत्याः॥१७॥

यद्राष्ट्रभृद्धी राष्ट्रमादंदत् तद्राष्ट्रभृतारं राष्ट्रभृत्त्वन्ते देवा अभ्यातानैरसुंरान्भ्यातंन्वत् जयैरजयत्राष्ट्रभृद्धी राष्ट्रमादंदत् यद्देवा अभ्यातानैरसुंरान्भ्यातंन्वत् तदंभ्यातानानामभ्यातान्तवं यज्ञयैरजंयन्तज्ञयानां जयत्वं यद्राष्ट्रभृद्धी राष्ट्रमादंदत् तद्राष्ट्रभृतारं राष्ट्रभृत्त्वन्ततो देवा अभवन्यरासुंरा यो भ्रातृंव्यवान्थ्स्याथ्स एताञ्चंहुयादभ्यातानैरेव भ्रातृंव्यान्भ्यातंनुते जयैंर्जयित राष्ट्रभृद्धी राष्ट्रमा दंत्ते भवत्यात्मना परास्य भ्रातृंव्यो भवति॥१८॥

प्राजापत्याः सौंऽष्टादंश च॥———[६]

ऋताषाङ्गतथामाऽग्निर्गन्थवस्तस्यौषंथयोऽपस्रस् ऊर्जो नाम् स इदं ब्रह्मं क्षत्रम्यांतु ता इदं ब्रह्मं क्षत्रम्यांन्तु तस्मै स्वाहा ताभ्यः स्वाहां स॰िहतो विश्वसामा सूर्यो गन्धवस्तस्य मरीचयोऽपस्रसं आयुर्वः सुषुम्नः सूर्यरिष्मश्चन्द्रमां गन्धवस्तस्य नक्षत्राण्यपस्रसो बेकुरयो भुज्यः सुंपूर्णो युज्ञो गन्धवस्तस्य दक्षिणा अपस्रसः स्तवाः प्रजापंतिर्विश्वकर्मा मनः॥१९॥

गृन्धूर्वस्तस्यंख्स्ामान्यंप्स्रस्यो वह्नंय इषिरो विश्वव्यंचा वातो गन्धूर्वस्तस्यापौँऽप्स्रस्सो मुदा भुवनस्य पते यस्यं त उपिरं गृहा इह चं। स नो रास्वाज्यांनि र रायस्पोष रं सुवीर्य रं संवथ्स्रीणा र्ं स्वस्तिम्। पुर्मेष्ठाधिपतिर्मृत्युर्गन्ध्वस्तस्य विश्वंमपस्रसो भुवंः सुक्षितिः सुभूतिर्भद्रकृथ्सुवंवान्युर्जन्यो गन्ध्वस्तस्यं विद्युतौँऽप्स्रसो रुचो दूरेहेतिरमृह्यः॥२०॥

मृत्युर्गन्धर्वस्तस्यं प्रजा अंफ्सरसों भी्रुवश्चारुंः कृपणकाशी कामों गन्धर्वस्तस्याधयौं-ऽफ्सरसंः शोचयंन्तीर्नाम् स इदं ब्रह्मं क्षत्रम्पांतु ता इदं ब्रह्मं क्षत्रम्पांन्तु तस्मै स्वाहा ताभ्यः स्वाहा स नो भुवनस्य पते यस्यं त उपिरं गृहा इह चं। उरु ब्रह्मंणेऽस्मै क्षत्राय महि शर्मं यच्छ॥२१॥

मनोऽमृडयष्यद्वंत्वारि श्राच॥

[り]

राष्ट्रकांमाय होत्व्यां राष्ट्रं वै राष्ट्रभृतों राष्ट्रेणै्वास्मैं राष्ट्रमवं रुन्द्धे राष्ट्रमेव भंवत्यात्मनें होत्व्यां राष्ट्रं वै राष्ट्रभृतों राष्ट्रं प्रजा राष्ट्रम्पशवों राष्ट्रं यच्छ्रेष्ठो भवंति राष्ट्रेणैव राष्ट्रमवं रुन्द्धे वसिष्ठः समानानां भवित ग्रामंकामाय होत्व्यां राष्ट्रं वै राष्ट्रभृतों राष्ट्रं संजाता राष्ट्रेणैवास्मैं राष्ट्रं संजातानवं रुन्द्धे ग्रामी॥२२॥

एव भंवत्यिधेदेवंने जुहोत्यिधेदेवंन एवास्मैं सजातानवं रुन्द्धे त एंनुमवंरुद्धा उपं तिष्ठन्ते रथमुख ओर्जस्कामस्य होत्व्यां ओजो वै राष्ट्रभृत ओजो रथ ओर्जसैवास्मा ओजोऽवं रुन्द्ध ओज्स्व्येव भंवित यो राष्ट्रादपंभृतः स्यात्तस्मैं होत्व्यां यावंन्तोऽस्य रथाः स्युस्तान्ब्र्याद्युङ्ग्वितिं राष्ट्रमेवास्मै युनिक्ति॥२३॥

आहुंतयो वा एतस्याक्रृंप्ता यस्यं राष्ट्रं न कल्पंते स्वर्थस्य दक्षिणं चक्रम्प्रवृह्यं नाडीम्भि जुंहुयादाहुंतीरेवास्यं कल्पयित ता अस्य कल्पंमाना राष्ट्रमनुं कल्पते सङ्ग्रामे संयत्ते होत्व्यां राष्ट्रं वै राष्ट्रभृतों राष्ट्रे खलु वा एते व्यायंच्छन्ते ये संग्राम॰ संयन्ति यस्य पूर्वस्य जुह्वंति स एव भविति जयंति तं संग्रामं मान्धुक इध्मः॥२४॥

भ्वत्यङ्गारा एव प्रतिवेष्टमाना अमित्राणामस्य सेनां प्रति वेष्टयन्ति य उन्माद्येत्तस्मैं होत्व्यां गन्धर्वाफ्सरसो वा एतमुन्मांदयन्ति य उन्माद्यंत्येते खलु वै गंन्धर्वाफ्स्रसो यद्राष्ट्रभृतस्तस्मै स्वाहा ताभ्यः स्वाहेतिं जुहोति तेनैवैनांञ्छमयति नैयंग्रोध् औदुंम्बर् आश्वंत्थः प्राक्ष इती्ध्मो भंवत्येते वै गंन्धर्वाफ्सरसां गृहाः स्व एवैनान्॥२५॥

आ्यतंने शमयत्यभिचरंता प्रतिलोम होत्व्याः प्राणानेवास्यं प्रतीचः प्रतिं यौति तं ततो येन केनं च स्तृणुते स्वकृत इरिंणे जुहोति प्रद्रे वैतद्वा अस्यै निर्ऋतिगृहीतं निर्ऋतिगृहीत एवैनं निर्ऋत्या ग्राहयित यद्वाचः क्रूरन्तेन वर्षद्वरोति वाच एवैनं क्रूरेण प्र वृश्चिति ताजगार्तिमार्च्छति यस्यं कामयेतान्नाद्यम्॥२६॥ आ देवीयेति तस्यं सुभायांमुत्तानो निपद्य भुवंनस्य पत् इति तृणांनि सं गृंह्णीयात्प्रजापंतिर्वे भुवंनस्य पतिः प्रजापंतिनैवास्यान्नाद्यमा देत्त इदमहम्मुष्यांमुष्यायणस्यान्नाद्यर्श् हरामीत्यांहान्नाद्यंमेवास्यं हरति षङ्किर्हरति षङ्गा ऋतवः प्रजापंतिनैवास्यान्नाद्यंमादायुर्तवौंऽस्मा अनु प्र यंच्छन्ति॥२७॥

यो ज्येष्ठबंन्युरपंभूतः स्यात्तः स्थलेऽव्साय्यं ब्रह्मौद्नं चतुःशरावम्पुक्का तस्मै होत्व्यां वर्ष्म् वै राष्ट्रभृतो वर्ष्म् स्थलं वर्ष्मणैवेनं वर्ष्मं समानानां गमयित् चतुःशरावो भविति दिक्ष्वेव प्रति तिष्ठति क्षीरे भवित् रुचमेवास्मिन्दधात्युद्धरित शृत्तत्वायं सूर्पिष्वांन्भविति मेध्यत्वायं चत्वारं आर्षेयाः प्राश्नंन्ति दिशामेव ज्योतिषि जुहोति॥२८॥

ग्रामी युंनक्तीध्मः स्व एवैनांनुन्नाद्यं यच्छुन्त्येकान्नपंश्चाशचं॥_____[८]

देविंका निर्विपेत्प्रजाकांमुश्छन्दार्स्सि वै देविंकाुश्छन्दार्स्सीव खलु वै प्रजाश्छन्दोभिरेवास्मै प्रजाः प्र जंनयित प्रथमं धातारं करोति मिथुनी एव तेनं करोत्यन्वेवास्मा अनुमितिर्मन्यते राते राका प्र सिनीवाली जंनयित प्रजास्वेव प्रजांतासु कुह्वां वाचं दधात्येता एव निर्विपेत्पशुकांमुश्छन्दार्स्सि वै देविंकाुश्छन्दार्स्सि॥२९॥

ड्व खलु वै प्शव्श्छन्दोंभिरेवास्मैं पुश्न्प्र जनयित प्रथमं धातारं करोति प्रैव तेनं वापयत्यन्वेवास्मा अनुमितिर्मन्यते राते राका प्र सिनीवाली जनयित पुश्नेव प्रजातान्कुह्वा प्रतिं ष्ठापयत्येता एव निर्वेपेद्वामंकामृश्छन्दार्रसि वै देविंकाृश्छन्दार्रसीव खलु वै ग्रामश्छन्दोंभिरेवास्मै ग्रामम्॥३०॥

अवं रुन्द्वे मध्यतो धातारं करोति मध्यत एवैन् ग्रामंस्य दधात्येता एव निर्वपृष्ट्योगांमयावी छन्दारंसि वै देविकाश्छन्दारंसि खलु वा एतम्भि मंन्यन्ते यस्य ज्योगामयंति छन्दोंभिरेवैनंमगृदं करोति मध्यतो धातारं करोति मध्यतो वा एतस्याक्रृप्तं यस्य ज्योगामयंति मध्यत एवास्य तेनं कल्पयत्येता एव निः॥३१॥

वृपेद्यं युज्ञो नोपुनमेुच्छन्दार्रसि वै देविकाश्छन्दार्रसि खलु वा एतं नोपं नमन्ति यं युज्ञो नोपुनमंति प्रथमं धातारं करोति मुखत एवास्मै छन्दार्रसि दधात्युपैनं युज्ञो नंमत्येता एव निर्वपेदीजानश्छन्दार्रसि वै देविका यातयामानीव खलु वा एतस्य छन्दार्रसि य ईजान उंत्तमं धातारं करोति॥३२॥

उपिरेष्टादेवास्मै छन्दार्स्ययांतयामान्यवं रुन्द् उपैनुमुत्तरो यज्ञो नंमत्येता एव निर्विपेद्यम्मेधा नोपनमेच्छन्दार्रस् वै देविकाश्छन्दार्रस् खलु वा एतं नोपं नमन्ति यम्मेधा नोपनमंति प्रथमं धातारं करोति मुख्त एवास्मै छन्दार्रसि दधात्युपैनम्मेधा नंमत्येता एव निर्विपत्॥३३॥

रुक्कांमुश्छन्दार्शस् वै देविकाश्छन्दार्शसीव् खलु वै रुक्छन्दोंभिरेवास्मिन्नुचं दधाति क्षीरे भंवन्ति रुचंमेवास्मिन्दधित मध्यतो धातारं करोति मध्यत एवैनर्श रुचो दंधाति गायत्री वा अनुंमतिस्त्रिष्टुग्राका जगंती सिनीवाल्यंनुष्टुप्कुहूर्धाता वंषद्वारः पूर्वपक्षो राकापंरपक्षः कुहूरंमावास्यां सिनीवाली पौर्णमास्यनुंमतिश्चन्द्रमा धाताऽष्टौ॥३४॥

वसंबोऽष्टाक्षंरा गायुत्र्येकांदश रुद्रा एकांदशाक्षरा त्रिष्टुब्द्वादंशादित्या द्वादंशाक्षरा जगंती प्रजापंतिरनुष्टुब्याता वंषद्वार एतद्वे देविंकाः सर्वाणि च छन्दारंसि सर्वांश्च देवतां वषद्वारस्ता यथ्सह सर्वा निर्वपंदीश्वरा एंनम्प्रदहो द्वे प्रंथमे निरुप्यं धातुस्तृतीयं निर्वपंत्तथों एवोत्तरे निर्वपंत्तथेंनं न प्र दंहन्त्यथो यस्मै कामांय निरुप्यन्ते तमेवाभिरुपांप्रोति॥३५॥

पृशुकांमुश्छन्दार्रसि वै देविकाश्छन्दार्रसि ग्रामंङ्कल्पयत्येता एव निरुत्तमन्धातारं करोति मेधा नंमत्येता एव निर्विपेद्धौ दहन्ति नवं च॥९॥ देविकाः प्रजाकामो मिथुनी पशुकाम॥[२]

वास्तौष्पते प्रतिं जानीह्यस्मान्थ्स्वांवेशो अनमीवो भंवा नः। यत्त्वेमंहे प्रति तन्नों जुषस्व शं नं एि द्विपदे शं चतुंष्पदे। वास्तौष्पते शुग्मयां सुर्सदां ते सक्षीमिहें रुण्वयां गातुमत्यां। आवः क्षेमं उत योगे वर्रं नो यूयम्पांत स्वस्तिभिः सदां नः। यथ्सायम्प्रांतरग्निहोत्रं जुहोत्यांहुतीष्टका एव ता उपं धत्ते॥३६॥

रुद्रः खलु वै वाँस्तोष्पृतिर्यदहुंत्वा वास्तोष्पृतीयंम्प्रयायाद्रुद्र एंनम्भूत्वाग्निरंनूत्थायं हन्याद्वास्तोष्पृतीयं जुहोति भागुधेयेंनैवैन र् शमयति नार्तिमार्च्छति यजंमानो यद्युक्ते जुंहुयाद्यथा प्रयांते वास्तावाहुंतिं जुहोतिं ताहगेव तद्यदयुंक्ते जुहुयाद्यथा क्षेम् आहुंतिं जुहोतिं ताहगेव तदहुंतमस्य वास्तोष्पतीयई स्यात्॥३८॥

दक्षिणो युक्तो भवंति स्व्योऽयुक्तोऽर्थं वास्तोष्प्तीर्यं जुहोत्युभयंमेवाक्रपंरिवर्गमेवैन १ शमयति यदेक्वया जुहुयाद्दंविहोमं कुंर्यात्पुरोनुवाक्यांमनूच्यं याज्यंया जुहोति सदेवत्वाय् यद्भुत आंद्ध्याद्रुद्धं गृहान्न्वारोहयेद्यदंवक्षाणा्न्यसम्प्रक्षाप्य प्रयायाद्यथां यज्ञवेश्वसं वादहंनं वा तादृगेव तद्यं ते योनिर्ऋत्विय इत्यरण्योः सुमारोहयति॥३९॥

पुष वा अग्नेर्योनिः स्व पुवैनं योनौं समारोहयत्यथो खल्वांहुर्यद्रण्यौः समार्रूढो नश्येदुर्दस्याग्निः सीदेत्पुनराधेयः स्यादिति या ते अग्ने यज्ञियां तुनूस्तयेह्या रोहेत्यात्मन्थ्समारोहयते यजमानो वा अग्नेर्योनिः स्वायमिवैनं योन्यार् समारोहयते॥४०॥

धृत्तेऽर्वाचीन ई स्याथ्समारोहयित पश्चंचत्वारि शच॥-----[१०]

त्वमंग्ने बृहद्वयो दर्धांसि देव दाशुषें। क्विर्गृहपंतिर्युवां॥ हृव्यवाड्ग्निर्जरंः पिता नों विभुर्विभावां सुदर्शोको अस्मे। सुगार्हपत्याः समिषों दिदीह्यस्मद्रियख्सिम्मंमीहि श्रवारंसि। त्वं चं सोम नो वशों जीवातुं न मंरामहे। प्रियस्तोंत्रो वनस्पतिः। ब्रह्मा देवानां पद्वीः कंवीनामृषिर्विप्रांणाम्महिषो मृगाणांम्। श्येनो गृंध्राणा्ड् स्विधितुर्वनांना्ड् सोमंः॥४१॥

पुवित्रमत्येति रेभन्नं। आ विश्वदेवुष् सत्पंतिर सूक्तैर्द्या वृंणीमहे। सृत्यसंवर्ष् सिवृतारम्॥ आ सृत्येन रजंसा वर्तमानो निवेशयंत्रमृतम्मर्त्यं च। हिर्ण्ययेन सिवृता रथेना देवो याति भुवंना विपश्यन्नं। यथां नो अदितिः कर्त्यश्चे नृभ्यो यथा गर्वे। यथां तोकायं रुद्रियम्। मा नंस्तोके तन्ये मा न आयुंषि मा नो गोषु मा॥४२॥

नो अश्वेषु रीरिषः। बीरान्मा नो रुद्र भामितो वंधीर्ह्विष्मन्तो नर्मसा विधेम ते। उद्ग्रुतो न वयो रक्षमाणा वावंदतो अभ्रियस्येव घोषाः। गिरिभ्रजो नोर्मयो मदंन्तो बृह्स्पतिम्भ्यंका अनावन्न। हुर्सैरिव सर्खिभिर्वावंदद्भिरश्मन्मयानि नहंना व्यस्यन्नं। बृह्स्पतिरिभे कनिकद्गा उत प्रास्तौदुर्च विद्वा अगायत्। एन्द्रं सान्सि र्यिम्॥४३॥

स्जित्वांन सदासहम्। वर्षिष्ठमूतये भर। प्र संसाहिषे पुरुहूत् शत्रू अर्थष्ठंस्ते शुष्मं इह रातिरंस्तु। इन्द्रा भेर दक्षिणेना वसूनि पतिः सिन्धूंनामसि रेवतींनाम्। त्व सुतस्यं पीतयें सद्यो वृद्धो अंजायथाः। इन्द्र ज्यैष्ठ्यांय सुक्रतो। भुवस्त्विमन्द्र ब्रह्मणा महान्भुवो विश्वेषु सर्वनेषु युज्ञियंः। भुवो नृङ्ख्यौत्रो विश्वेस्मिन्भरे ज्येष्ठश्च मर्त्रः॥४४॥

विश्वचर्षणे। मित्रस्यं चर्षणीधृतः श्रवों देवस्यं सानुसिम्। सृत्यं चित्रश्रंवस्तमम्। मित्रो जनानं यातयित प्रजानिस्त्रो दांधार पृथिवीमुत द्याम्। मित्रः कृष्टीरिनिमिषाभि चष्टे सृत्यायं हुव्यं घृतवंद्विधेम। प्र स मित्रु मर्तो अस्तु प्रयंस्वान् यस्तं आदित्य शिक्षंति वृतेनं। न हंन्यते न जीयते त्वोतो नैनुमश्हों अश्वोत्यन्तितो न दूरात्। यत्॥४५॥

चिद्धि ते विशों यथा प्र देव वरुण व्रतम्। मिनीमसि द्यविद्यवि। यत्किं चेदं वरुण् दैव्ये जर्नेऽभिद्रोहम्मंनुष्यांश्वरांमसि। अचिती यत्तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनंसो देव रीरिषः। कित्वासो यद्विरिपुर्न दीवि यद्वां घा स्त्यमुत यन्न विद्या। सर्वा ता विष्यं शिथिरेवं देवाथां ते स्याम वरुण प्रियासंः॥४६॥

सोमो गोषु मा र्यिं मन्रो यच्छिंथिरा सप्त चं॥----[११]

पूर्णर्षयोऽग्निना ये देवाः सूर्यो मा सन्त्वां नह्यामि वषद्भारः स खंदिर उपयामगृंहीतोऽसि यां वै त्वे ऋतुम्प्र देवमेकांदश॥[१२] पूर्णा संहजान्तवाँग्ने प्राणेरेव षद्गिर्श्शत्॥36॥ पूर्णा सन्ति देवाः॥

॥पञ्चमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां तृतीयकाण्डे पञ्चमः प्रश्नः॥

पूर्णा पृश्चादुत पूर्णा पुरस्तादुन्मध्यतः पौर्णमासी जिंगाय। तस्याँ देवा अधि संवसन्त उत्तमे नाकं इह मादयन्ताम्। यत्ते देवा अदेधुर्भागधेयममांवास्ये संवसन्तो महित्वा। सा नो यज्ञम्पिपृहि विश्ववारे र्यिं नो धेहि सुभगे सुवीरम्। निवेशनी संगर्मनी वसूनां विश्वां रूपाणि वसून्यावेशयन्ती। सहस्रुपोष सुभगा रर्गणा सा न आ गुन्वर्चसा॥१॥

संविदाना। अग्नीषोमो प्रथमो वीर्येण वसूँत्रुद्रानांदित्यानिह जिन्वतम्। माध्यश् हि पौर्णमासं जुषेथां ब्रह्मणा वृद्धौ सुंकृतेनं सातावथास्मभ्यश्यहवीराश्यादे नियंच्छतम्। आदित्याश्चाङ्गिरसश्चाग्नीनादंधत् ते दंर्शपूर्णमासौ प्रैफ्सन्तेषामङ्गिरसां निरुप्तश् ह्विरासीदथांदित्या पृतौ होमावपश्यन्तावंज्ञुहवुस्ततो वै ते दंर्शपूर्णमासौ॥२॥ पूर्व आलंभन्त दर्शपूर्णमासावालभंमान एतौ होमौ पुरस्ताँ श्रुहुयाथ्साक्षादेव दंर्शपूर्णमासावा लंभते ब्रह्मवादिनों वदन्ति स त्वै दंर्शपूर्णमासावालंभेत य एंनयोरनुलोमं चं प्रतिलोमं चं विद्यादित्यंमावास्यांया ऊर्ध्वं तदंनुलोमम्पौर्णमास्यै प्रतीचीनं तत्प्रंतिलोमं यत्पौर्णमासीम्पूर्वामालभंत प्रतिलोममंनावा लंभेतामुमंपक्षीयंमाणमन्वपं॥३॥

क्षीयेत सार्स्वतौ होमौं पुरस्तां ब्रुह्यादमावास्यां वै सरंस्वत्यनुलोममेवेनावा लंभतेऽमुमाप्यायंमानमन्वा प्यांयत आग्नावेष्ण्वमेकांदशकपालम्पुरस्तान्निवंपेथ्सरंस्वत्ये च्रुरू सरंस्वते द्वादंशकपालुं यदांग्नेयो भवंत्यग्निवें यंज्ञमुखं यंज्ञमुखमेवर्ष्ट्रिम्पुरस्तां द्वते यद्वैष्ण्वो भवंति यज्ञो वै विष्णुर्यज्ञमेवारभ्य प्र तंनुते सरंस्वत्ये च्रुर्भविति सरंस्वते द्वादंशकपालोऽमावास्यां वै सरंस्वती पूर्णमांसः सरंस्वान्तावेव साक्षादा रंभत ऋश्नोत्यांभ्यान्द्वादंशकपालः सरंस्वते भवित मिथुनत्वाय प्रजात्ये मिथुनौ गावौ दक्षिणा समृद्धौ॥४॥

वर्चसा वै ते दंर्शपूर्णमासावपं तनुते सरंस्वत्यै पश्चविरशतिश्च॥———[१]

ऋषयो वा इन्द्रंन्प्रत्यक्षं नापंश्यन्तं वसिष्ठः प्रत्यक्षंन्पश्यथ्सौंऽब्रवीद्वाह्मणं ते वक्ष्यामि यथा त्वत्पुरोहिताः प्रजाः प्रजनिष्यन्तेऽथ मेतरिभ्य ऋषिभ्यो मा प्र वीच इति तस्मा एतान्थ्स्तोमंभागानब्रवीत्ततो वसिष्ठपुरोहिताः प्रजाः प्राजायन्त तस्माद्वासिष्ठो ब्रह्मा कार्यः प्रेव जायते रश्मिरंसि क्षयाय त्वा क्षयं जिन्वेति॥५॥

आहु देवा वै क्षयों देवेभ्यं एव यज्ञम्प्राहु प्रेतिंरिस् धर्माय त्वा धर्मं जिन्वेत्यांह मनुष्यां वै धर्मो मनुष्येभ्य एव यज्ञम्प्राहान्विंतिरिस दिवे त्वा दिवें जिन्वेत्यांहैभ्य एव लोकेभ्यों यज्ञम्प्राहं विष्टुम्भोंऽिस वृष्ट्यैं त्वा वृष्टिं जिन्वेत्यांहु वृष्टिमेवावं॥६॥

रुन्द्धे प्रवास्यंनुवासीत्यांह मिथुनृत्वायोशिगंसि वसुंभ्यस्त्वा वसूँश्चिन्वेत्यांहाष्टौ वसंव एकांदश रुद्रा द्वादंशादित्या एतावंन्तो वै देवास्तेभ्यं एव यज्ञम्प्राहौजोऽसि पितृभ्यंस्त्वा पितृश्चिन्वेत्यांह देवानेव पितृननु सं तंनोति तन्तुंरिस प्रजाभ्यंस्त्वा प्रजा जिन्व॥७॥

इत्यांह पितृनेव प्रजा अनु सं तंनोति पृतनाषाडंसि पृशुभ्यंस्त्वा पृशूञ्चिन्वेत्यांह प्रजा एव पृशूननु सं तंनोति रेवदुस्योषंधीभ्यस्त्वौषंधीर्जिन्वेत्याहौषंधीष्वेव पृशून्प्रति ष्ठापयत्यभिजिदंसि युक्तग्रावेन्द्रांय त्वेन्द्रं जिन्वेत्यांहाभिजिंत्या अधिपतिरसि प्राणायं त्वा प्राणम्॥८॥

जिन्वेत्यांह प्रजास्वेव प्राणान्दंधाति त्रिवृदंसि प्रवृद्सीत्यांह मिथुन्त्वायं स॰रोहोंऽसि नीरोहोंऽसीत्यांह् प्रजांत्यै वसुकोंऽसि वेषंश्रिरसि वस्यंष्टिर्सीत्यांह् प्रतिष्ठित्यै॥९॥

जिन्वेत्यवं प्रजा जिन्व प्राणित्रिष्शाचं॥______[२]

अग्निनां देवेन् पृतंना जयामि गायत्रेण् छन्दंसा त्रिवृता स्तोमेंन रथन्तरेण् साम्नां वषद्कारेण् वज्रेण पूर्वजान्त्रातृंव्यानधंरान्यादयाम्यवैनान्बाधे प्रत्येनान्नुदेऽस्मिन्क्षयेऽस्मिन्भूमिलोके यौंऽस्मान्द्वेष्ट्रि यं चं वयं द्विष्मो विष्णोः क्रमेणात्येनान्क्रामामीन्द्रेण देवेन् पृतंना जयामि त्रेष्ट्रंभेन छन्दंसा पश्चदशेन स्तोमेन बृहता साम्नां वषद्वारेण वज्रेण॥१०॥

स्हजान् विश्वेभिर्देवेभिः पृतंना जयाम् जागंतेन् छन्दंसा सप्तद्शेन् स्तोमेन वामदेव्येन् साम्नां वषद्क्षरेण् वर्ज्ञेणापर्जानिन्द्रेण स्युजो वय सांस्ह्यामं पृतन्यतः। घ्रन्तो वृत्राण्यपृति। यत्ते अग्ने तेज्ञस्तेनाहं तेज्ञस्वी भूयासं यत्ते अग्ने वर्चस्तेनाहं वंचस्वी भूयासं यत्ते अग्ने हर्स्तेनाहर हर्स्वी भूयासम्॥११॥

बृह्ता साम्नां वषद्भारेण वज्रेण षद्वंत्वारि शच॥———[३]

ये देवा यंज्ञहनों यज्ञमुषंः पृथिव्यामध्यासंते। अग्निर्मा तेभ्यों रक्षतु गच्छेंम सुकृतों वयम्। आगंन्म मित्रावरुणा वरेण्या रात्रींणाम्भागो युवयोयों अस्ति। नार्क गृह्णानाः सुंकृतस्यं लोके तृतीयें पृष्ठे अधि रोचने दिवः। ये देवा यंज्ञहनों यज्ञमुषोऽन्तरिक्षेऽध्यासंते। वायुर्मा तेभ्यों रक्षतु गच्छेंम सुकृतों वयम्। यास्ते रात्रीः सवितः॥१२॥

देवयानीरन्त्रा द्यावांपृथिवी वियन्तिं। गृहैश्च सर्वैः प्रजया न्वग्ने सुवो रुहांणास्तरता रजार्रसि। ये देवा यंज्ञहनों यज्ञमुषों दिव्यध्यासंते। सूर्यों मा तेभ्यों रक्षतु गच्छेंम सुकृतों व्यम्। येनेन्द्रांय समर्भरः पयार्रस्युत्तमेनं ह्विषां जातवेदः। तेनांग्ने त्वमुत वंधयेमर संजाताना् श्रेष्ठम् आ धेंह्येनम्। यज्ञहनो वे देवा यंज्ञमुषंः॥१३॥

सन्ति त पृषु लोकेष्वांसत आददांना विमश्चाना यो ददांति यो यजंते तस्यं। ये देवा यंज्ञहनंः पृथिव्यामध्यासंते ये अन्तरिक्षे ये दिवीत्यांहेमानेव लोकाङ्स्तीर्त्वा सर्गृहः सपेशुः सुव्रंगं लोकमेत्यप् वै सोमेनेजानाद्देवतांश्च यज्ञश्चं क्रामन्त्याग्नेयं पश्चंकपालमुदवसानीयं निर्वपेदिग्निः सर्वा देवताः॥१४॥ पाङ्को युज्ञो देवताँश्चैव युज्ञं चार्व रुन्द्धे गायुत्रो वा अग्निर्गायुत्रछेन्दास्तं छन्दंसा व्यर्धयिति यत्पश्चंकपालं कुरोत्यृष्टाकंपालः कार्योऽष्टाक्षंरा गायुत्री गायुत्रौंऽग्निर्गायुत्रछंन्दाः स्वेनैवेनुं छन्दंसा समर्धयिति पुङ्क्यौं याज्यानुवाक्ये भवतः पाङ्को युज्ञस्तेनैव युज्ञात्रैति॥१५॥

स्वितर्देवा यंज्ञमुषः सर्वा देवतास्त्रिचंत्वारि १शच॥————[४]

सूर्यों मा देवो देवेभ्यः पातु वायुर्न्तरिक्षाद्यजंमानोऽग्निर्मा पातु चक्षुंषः। सक्ष् शूष् सिवंतर्विश्वंचर्षण एतेभिः सोम् नामंभिर्विधेम ते तेभिः सोम् नामंभिर्विधेम ते। अहम्प्रस्तादहम्वस्तादहं ज्योतिषा वि तमो ववार। यदन्तरिक्षं तद् मे पिताभूंदहर सूर्यमुभ्यतो ददर्शाहम्भूंयासमृत्तमः संमानानाम्॥१६॥

आ संमुद्रादाऽन्तरिक्षात्प्रजापंतिरुद्धिं च्यांवयातीन्द्रः प्र स्नौतु मुरुतो वर्षयुन्तून्नंम्भय पृथिवीम्भिन्द्वीदं दिव्यं नर्भः। उद्गो दिव्यस्यं नो देहीशांनो वि सृंजा दितम्। पृशवो वा एते यदांदित्य एष रुद्रो यद्ग्निरोषंधीः प्रास्याग्नावांदित्यं जुंहोति रुद्रादेव पृशून्नर्त्दधात्यथो ओषंधीष्वेव पृशून्॥१७॥

प्रतिं ष्ठापयित क्विर्य्ज्ञस्य वि तंनोति पन्थां नार्कस्य पृष्ठे अधि रोचने दिवः। येनं ह्व्यं वहंसि यासिं दूत इतः प्रचेता अमुतः सनीयान्। यास्ते विश्वाः समिधः सन्त्यंग्ने याः पृंथिव्याम्बर्हिषि सूर्ये याः। तास्ते गच्छन्त्वाहंतिं घृतस्यं देवायते यजंमानाय शर्मः। आशासानः सुवीर्यः रायस्पोष्ड् स्विश्वयम्। बृह्स्पितना राया स्वगाकृतो मह्यं यजंमानाय तिष्ठ॥१८॥

स्मानानामोषंधीष्वेव पुशून्मह्यं यर्जमानायैकेश्च॥————[५]

सं त्वां नह्यामि पर्यसा घृतेन सं त्वां नह्याम्यप ओषंधीभिः। सं त्वां नह्यामि प्रजयाहम् सा दींक्षिता संनवो वार्जमस्मे। प्रैतु ब्रह्मणस्पत्नी वेदिं वर्णेन सीदतु। अथाहमेनुकामिनी स्वे लोके विशा इह। सुप्रजसंस्त्वा वयर सुपत्नीरुपं सेदिम। अग्नें सपत्नदम्भेनमदंब्यासो अदांभ्यम्। इमं वि ष्यांमि वरुणस्य पाशम्॥१९॥

यमबंध्रीत सिवता सुकेर्तः। धातुश्च योनौ सुकृतस्यं लोके स्योनं में सह पत्यां करोमि। प्रेह्युदेह्युतस्यं वामीरन्वग्निस्तेऽग्रं नयत्विदितिर्मध्यं ददता र रुद्रावंसृष्टासि युवा नाम् मा मा हिरसीर्वसुभ्यो रुद्रेभ्यं आदित्येभ्यो विश्वभ्यो वो देवेभ्यः पुत्रेर्जनीर्गृह्णामि यज्ञार्यं वः पन्नेजनीः सादयामि विश्वंस्य ते विश्वांवतो वृष्णियावतः॥२०॥

तवाँग्ने वामीरन् सन्दिश् विश्वा रेतार्रसि धिषीयार्ग देवान् युज्ञो नि देवीर्देवेभ्यो युज्ञमंशिषन्नस्मिन्थ्स्नेन्वति यजमान आशिषः स्वाहांकृताः समुद्रेष्ठा गन्धवेमा तिष्ठताऽन्। वातस्य पत्मन्निड ईडिताः॥२१॥

वृषद्भारो वै गांयत्रिये शिरौंऽच्छिन्तस्यै रसः परांपत्थ्स पृंथिवीम्प्राविंश्वथ्स खंदिरौं-ऽभवृद्यस्यं खादिरः स्रुवो भवंति छन्दंसामेव रसेनावं द्यति सरंसा अस्याहुंतयो भवन्ति तृतीयंस्यामितो दिवि सोमं आसीत्तं गांयत्र्याहंर्त्तस्यं पूर्णमंच्छिद्यत् तत्पूर्णोऽभवृत्तत्पूर्णस्यं पर्णृत्वं यस्यं पर्णुमयी जुहः॥२२॥

भवंति सौम्या अस्याहुंतयो भवन्ति जुषन्तैंऽस्य देवा आहुंतीर्देवा वै ब्रह्मंन्नवदन्त् तत्पूर्ण उपांशृणोथ्सुश्रवा वै नाम् यस्यं पर्णमयीं जुहूर्भवंति न पाप श्लोक शेषाति ब्रह्म वै पूर्णो विष्मुरुतोऽन्नं विष्मारुतोंऽश्वत्थो यस्यं पर्णमयीं जुहूर्भवृत्याश्वंत्थ्युप्भृद्वह्मंणैवान्नमवं रुन्द्धेऽथो ब्रह्मं॥२३॥

पुव विश्यध्यूहिति राष्ट्रं वै पूर्णो विडेश्वत्थो यत्पंर्णमयी जुहूर्भवृत्याश्वंत्थ्युप्भृद्वाष्ट्रमेव विश्यध्यूहित प्रजापंतिर्वा अंजुहोथ्सा यत्राहुंतिः प्रत्यतिष्ठत्ततो विकेङ्कत् उदंतिष्ठत्ततः प्रजा अंसृजत् यस्य वैकेङ्कती ध्रुवा भवंति प्रत्येवास्याहुंतयस्तिष्ट्रन्त्यथो प्रैव जायत एतद्वै स्रुचा रूपं यस्यैव र रूपाः स्रुचो भवंन्ति सर्वांण्येवैन र रूपाणि पशूनामुपं तिष्ठन्ते नास्यापंरूपमात्मञ्जायते॥ २४॥

जुहूरथो ब्रह्मं स्रुचा॰ सप्तदंश च॥-----[७]

उपयामगृंहीतोऽसि प्रजापंतये त्वा ज्योतिष्मते ज्योतिष्मन्तं गृह्णाम् दक्षांय दक्षवृधे गतं देवेभ्यौंऽग्निजिह्वेभ्यंस्त्वर्तायुभ्य इन्द्रंज्येष्ठेभ्यो वर्रुणराजभ्यो वार्तापिभ्यः पूर्जन्यौत्मभ्यो दिवे त्वान्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वापैन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यांसतो जह्यप् यो नौं-ऽरातीयित् तं जहि प्राणायं त्वापानायं त्वा व्यानायं त्वा सते त्वासंते त्वाद्मस्त्वौषधीभ्यो विश्वैभ्यस्त्वा भूतेभ्यो यतः प्रजा अक्खिद्रा अर्जायन्त तस्मैं त्वा प्रजापंतये विभूदाव्रे ज्योतिंष्मते ज्योतिंष्मन्तं जुहोमि॥२५॥

ओषंधीभ्यश्चतुंर्दश च॥-----[८]

यां वा अध्वर्युश्च यजमानश्च देवतांमन्तिर्तस्तस्या आ वृंश्चेते प्राजापृत्यं देधिग्रहं गृंह्णीयात्प्रजापंतिः सर्वा देवतां देवतांभ्य एव नि ह्रुंवाते ज्येष्ठो वा एष ग्रहांणां यस्यैष गृह्यते ज्येष्ठमेव गंच्छिति सर्वांसां वा एतद्देवतांनाः रूपं यदेष ग्रहो यस्यैष गृह्यते सर्वांण्येवैनः रूपाणि पश्नामुपं तिष्ठन्त उपयामगृंहीतः॥२६॥

असि प्रजापंतये त्वा ज्योतिष्मते ज्योतिष्मन्तं गृह्णामीत्यांह् ज्योतिरेवैन र समानानां करोत्यग्निजिह्नेभ्यंस्त्वर्तायुभ्य इत्यांहैतावंतीर्वे देवतास्ताभ्यं पृवेन र सर्वाभ्यो गृह्णात्यपेंन्द्र द्विषतो मन् इत्यांह् भ्रातृंव्यापनुत्त्ये प्राणायं त्वापानाय त्वेत्यांह प्राणानेव यजंमाने दधाति तस्मैं त्वा प्रजापंतये विभूदाव्वे ज्योतिष्मते ज्योतिष्मन्तं जुहोमि॥२७॥

इत्यांह प्रजापितः सर्वा देवताः सर्वाभ्य एवैनं देवताभ्यो जुहोत्याज्यग्रहं गृह्णीयात्तेजंस्कामस्य तेजो वा आज्यंन्तेज्ञस्त्येव भविति सोमग्रहं गृह्णीयाद्वह्मवर्च्सकांमस्य ब्रह्मवर्च्स वै सोमों ब्रह्मवर्च्स्येव भविति दिधग्रहं गृह्णीयात्पशुकांमस्योग्वै दध्यूर्क्पशवं कुर्जीवास्मा ऊर्जं पृश्नवं रुन्द्वे॥२८॥

उपयामगृहीतो जुहोमि त्रिचंत्वारि शच॥———[९]

त्वे ऋतुमिपं वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः। स्वादोः स्वादीयः स्वादुनां सृजा समतं ऊ षु मधु मधुनाभि योधि। उपयामगृहीतोऽसि प्रजापंतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिः प्रजापंतये त्वा। प्राणग्रहान्गृह्णात्येतावद्वा अस्ति यावंदेते ग्रहाः स्तोमाश्छन्दा स्सि पृष्ठानि दिशो यावंदेवास्ति तत्॥२९॥

अवं रुन्द्धे ज्येष्ठा वा पृतान्त्राँह्मणाः पुरा विद्वामंकृन्तस्मात्तेषा् सर्वा दिशोऽभिजिता अभूवन् यस्येते गृह्मन्ते ज्येष्ठमंमेव गंच्छत्यभि दिशों जयित पश्चं गृह्मन्ते पश्च दिशः सर्वास्वेव दिक्ष्वृंध्रुवन्ति नवंनव गृह्मन्ते नव वै पुरुषे प्राणाः प्राणानेव यजमानेषु दधित प्रायणीये चोदयनीये च गृह्मन्ते प्राणा वै प्राणप्रहाः॥३०॥

प्राणैरेव प्रयन्ति प्राणैरुद्यंन्ति दश्मेऽहंन्गृह्यन्ते प्राणा वै प्राणग्रहाः प्राणेभ्यः खलु वा

एतत्प्रजा यन्ति यद्वामदेव्यं योनेश्चयवंते दश्मेऽहंन्वामदेव्यं योनेश्चयवते यद्दंश्मेऽहंन्गृह्यन्ते प्राणेभ्यं एव तत्प्रजा न यन्ति॥३१॥

तत्प्रांणग्रहाः सप्तत्रि ५शच॥-

[66]

प्र देवं देव्या धिया भरंता जातवेदसम्। ह्व्या नी वक्षदानुषक्। अयमुष्य प्र देवयुर्होतां यज्ञायं नीयते। रथो न योर्भीवृंतो घृणीवाश्चेतित त्मनां। अयमुग्निरुं रुष्यत्यमृतांदिव जन्मंनः। सहंसश्चिथ्सहीयां देवो जीवातंवे कृतः। इडांयास्त्वा पदे वयं नाभां पृथिव्या अधि। जातंवेदो नि धीमृह्यग्ने हव्याय वोढंवे।॥३२॥

अग्रे विश्वेभिः स्वनीक देवैरूर्णावन्तम्प्रथमः सींद् योनिम्ं। कुलायिनं घृतवंन्तर सिवृत्रे यज्ञं नंय यजंमानाय साधु। सीदं होतः स्व उं लोके चिंकित्वान्थ्सादयां यज्ञर सुंकृतस्य योनौं। देवावीर्देवान् ह्विषां यजास्यग्नें बृहद्यजंमाने वयों धाः। नि होतां होतृषदंने विदानस्त्वेषो दींदिवार अंसदथ्सुदक्षः। अदंब्यव्रतप्रमित्विंसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिंजिह्वो अग्निः। त्वं दूतस्त्वम्॥३३॥

उ नः पुरस्पास्त्वं वस्य आ वृषभ प्रणेता। अग्ने तोकस्यं नृस्तनें तुनूनामप्रयुच्छुन्दीद्यंद्वोधि गोपाः। अभि त्वां देव सवितरीशानां वार्याणाम्। सदावन्भागमीमहे। मही द्यौः पृथिवी चं न इमं युज्ञम्मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः। त्वामंग्ने पुष्कंरादध्यर्थवां निरमन्थत। मूर्जो विश्वंस्य वाघतः। तम्॥३४॥

त्वा दृध्यङ्कृषिः पुत्र ईंधे अथंविणः। वृत्रहणं पुरन्द्रम्। तम् त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तंमम्। धनंज्य रणेरणे। उत ब्रुंवन्तु जन्तव उद्ग्निर्वृत्रहाजंनि। धनंज्यो रणेरणे। आ यर हस्ते न खादिन्र शिशं जातं न बिश्रंति। विशामग्नि स्वंध्वरम्। प्र देवं देववीतये भरंता वसुवित्तंमम्। आ स्वे योनौ नि षीदत्। आ॥३५॥

जातं जातवेदिस प्रियः शिंशीतातिंथिम्। स्योन आ गृहपंतिम्। अग्निनाऽग्निः सिमंध्यते क्विर्गृहपंतियुंवां। हृव्यवाङ्गुह्वांस्यः। त्वः ह्यंग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्थ्सता। सखा सख्यां सिम्ध्यसें। तम्मंजयन्त सुकतुं पुरोयावांनमाजिषुं। स्वेषु क्षयेषु वाजिनम्ं। यक्तेनं यक्तमंयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यांसन्न्। ते हु नाकंम्महिमानंः सचन्ते यत्र

पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥३६॥

वोढंवे दूतस्त्वन्तम्ं सीद्त्वा यत्रं चृत्वारिं च॥------[११]

युआन इमामंगृभ्णं देवस्य सन्ते वि पाजंसा वसंवस्त्वा समाँस्त्वोर्ध्वा अस्याकूंतिं यदंग्रे यान्यग्ने यं यज्ञमेकांदश॥11॥ युआनो वर्मं च स्थ आदित्यास्त्वा भारंती स्वार अहर पद्गंत्वारिरशत्॥46॥ युआनो वाजेंवाजे॥॥———[१२]

॥काण्डम् ४॥

॥प्रथमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाण्डे प्रथमः प्रश्नः॥

युआ्जानः प्रथमम्मनंस्तृत्वायं सिवृता थियः। अग्निं ज्योतिर्निचाय्यं पृथिव्या अध्याभेरत्। युक्ताय मनंसा देवान्थ्सुवर्यतो धिया दिवम्। बृह्ज्योतिः करिष्यतः सिवृता प्र सुंवित् तान्। युक्तेन मनंसा वयं देवस्यं सिवृतः स्व। सुवृगेयाय शक्त्यै। युअते मनं उत युंअते थियो विप्रा विप्रस्य बृह्तो विपृश्चितः। वि होत्रां दधे वयुन्।विदेक इत्॥१॥

मही देवस्यं सिवृतुः पिरेष्टुतिः। युजे वां ब्रह्मं पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोकां यन्ति पृथ्येव सूराः। शृण्वन्ति विश्वे अमृतंस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः। यस्यं प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देवा देवस्यं मिहुमानमर्चतः। यः पार्थिवानि विम्मे स एतंशो रजार्रसि देवः संविता महित्वना। देवं सवितः प्र सुंव यज्ञम्प्र सुंव॥२॥

युज्ञपंतिम्भगाय दिव्यो गंन्ध्रविः। केत्पूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचंम् स्वंदाति नः। इमं नो देव सवितर्य्ज्ञं प्र सुव देवायुवर्ष सिख्विवदर्ष सत्राजितं धन्जितर्ष सुवर्जितम्। ऋचा स्तोम् समर्धय गायत्रेणं रथन्तरम्। बृहद्गायत्रवर्तिन। देवस्यं त्वा सिवतुः प्रस्वे ऽश्विनौर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्गायत्रेण छन्दसाऽऽदंदेऽङ्गिर्स्वदिश्लेरिस् नारिः॥३॥

असि पृथिव्याः स्थर्भादग्निम्पुंरीष्यंमङ्गिर्स्वदा भंर् त्रैष्टुंभेन त्वा छन्द्साऽऽदंदे-ऽङ्गिर्स्वद्वभ्रिंरसि नारिंरसि त्वयां वय स्थर्भ आग्नि शंकेम् खिनतुं पुरीष्यं जागंतेन त्वा छन्द्साऽऽदंदेऽङ्गिर्स्वद्धस्तं आधायं सिवृता बिभ्रदभ्रि हिर्ण्ययाम्। तया ज्योतिरजम्मिदग्निं खात्वी न आ भुरानुष्टुभेन त्वा छन्दसाऽऽदंदेऽङ्गिर्स्वत्॥

इद्युज्ञं प्र सुव् नारिरानुष्टुभेन त्वा छन्दंसा त्रीणि च॥————[१]

ड्मामंगृभ्णत्रश्नामृतस्य पूर्व आयुंषि विदर्थेषु कृव्या। तयां देवाः सुतमा बंभूवुर्ऋतस्य सामंन्थ्सरमारपंन्ती। प्रतूर्तं वाजिन्ना द्रंव वरिष्ठामनुं संवतम्। दिवि ते जन्मं पर्ममृन्तरिक्षे नाभिः पृथिव्यामिध योनिः। युआथार् रासंभं युवमस्मिन् यामें वृषण्वस्। अग्निम्भरंन्तमस्मयुम्। योगेयोगे त्वस्तरं वाजेवाजे हवामहे। सर्खाय

इन्द्रंमूतयैं। प्रुतूर्वन्नं॥५॥

एह्मंवृक्तामृत्रशंस्ती रुद्रस्य गाणंपत्यान्मयोभूरेहिं। उर्वन्तरिक्षमन्विहि स्वस्तिगंन्यूतिरभंयानि कृण्वत्र। पूष्णा स्युजां सह। पृथिव्याः स्धस्थांद्ग्निम्पुंरीष्यंमङ्गिर्स्वदच्छैंह् ऽग्निम्पुंरीष्यंमङ्गिर्स्वद्वंरिष्यामोऽग्निम्पुंरीष्यंमङ्गिर्स्वद्वंरामः। अन्वग्निरुषसामग्रंमख्यदन्वहांनि प्रथमो जातवेदाः। अनु सूर्यस्य॥६॥

पुरुत्रा चं र्श्मीननु द्यावांपृथिवी आ तंतान। आगत्यं वाज्यध्वंनः सर्वा मृधो वि धूंनुते। अग्निर स्थस्थे महुति चक्षुंषा नि चिंकीषते। आक्रम्यं वाजिन्पृथिवीमग्निमिंच्छ रुचा त्वम्। भूम्यां वृत्वायं नो ब्रूहि यतः खनांम् तं वयम्। द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी स्थस्थमात्मान्तरिक्षर समुद्रस्ते योनिः। विख्याय चक्षुंषा त्वम्भि तिष्ठ॥७॥

पृतन्यतः। उत्क्रांम महते सौभंगायास्मादास्थानाँद्विषणोदा वांजिन्न्। वय स्यांम सुमृतौ पृथिव्या अग्निं खंनिष्यन्तं उपस्थें अस्याः। उदंक्रमीद्रिविणोदा वाज्यवीकः स लोक स्सुकृतं पृथिव्याः। ततः खनेम सुप्रतींकमृग्नि सुवो रुहांणा अधि नाकं उत्तमे। अपो देवीरुपं सृज् मध्रंमतीरयक्ष्मायं प्रजाभ्यः। तासा स्थानादु ज्ञिंहतामोषंधयः सुपिप्पलाः। जिर्णोमी॥८॥

अग्निम्मनंसा घृतेनं प्रतिक्ष्यन्तम्भुवंनानि विश्वां। पृथुं तिर्श्वा वयंसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नर्थं रम्सं विदानम्। आ त्वां जिधर्मि वचंसा घृतेनांरक्षसा मनंसा तञ्जंषस्व। मर्यश्रीः स्पृह्यद्वंणीं अग्निर्नाभिमृशें तनुवा जर्ह्हंषाणः। पिर् वाजंपितः क्विर्ग्निर्ह्व्या न्यंक्रमीत्। दध्द्रत्नांनि दाशुर्षे। पिरं त्वाऽग्ने पुरं व्यं विप्ररं सहस्य धीमिह। धृषद्वंणं दिवेदिवे भेतारंम्भङ्कुरावंतः। त्वमंग्ने द्युभिस्त्वमांशुश्वक्षणिस्त्वमृद्धस्त्वमश्मंनस्पिरं। त्वं वनैभ्यस्त्वमोषंधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः॥९॥

प्रतूर्व-थ्सूर्यस्य तिष्ठ जिघंर्मि भेतारं विरश्वतिश्चं॥———[२]

देवस्यं त्वा सिवृतुः प्रंसवैंऽिश्वनौंबा्हुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां पृथिव्याः स्थस्थे-ऽग्निम्पुंरीष्यंमिङ्गर्स्वत्खंनामि। ज्योतिष्मन्तं त्वाग्ने सुप्रतीक्मजंग्नेण भानुना दीद्यांनम्। श्विवं प्रजाभ्योऽहिर्श्सन्तं पृथिव्याः स्थस्थेऽग्निं पुंरीष्यंमिङ्गर्स्वत्खंनामि। अपां पृष्ठमंसि सप्रथां उर्विग्निम्भेरिष्यदपंराविषष्ठम्। वर्धमानम्मह आ च पुष्कंरं दिवो मात्रंया वरिणा प्रंथस्व। शर्म च स्थः॥१०॥

वर्म च स्थो अच्छिंद्रे बहुले उभे। व्यचंस्वती सं वंसाथाम्भूर्तमृग्निम्पुंरीष्यम्। सं वंसाथा स्वविंदां समीची उरंसा त्मनां। अग्निम्न्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजंस्रमित्। पुरीष्यों उसि विश्वभंराः। अर्थवां त्वा प्रथमो निरंमन्थदग्ने। त्वामंग्ने पुष्कंरादध्यर्थर्वा निरंमन्थत। मूर्ग्नो विश्वस्य वाघतः। तमुं त्वा दध्यङ्काषिः पुत्र ई्षे॥११॥

अर्थर्वणः। वृत्रहणं पुरन्द्रम्। तमुं त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तंमम्। धृनंज्यर रणेरणे। सीदं होतः स्व उं लोके चिंकित्वान्थ्सादयां यज्ञर सुंकृतस्य योनौं। देवावीर्देवान् ह्विषां यजास्यग्ने बृहद्यजंमाने वयों धाः। नि होतां होतृषदंने विदानस्त्वेषो दींदिवार अंसदथ्सुदक्षः। अदंब्यव्रतप्रमित्वंसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिंजिह्वो अग्निः। सर सीदस्व महार असि शोचंस्व॥१२॥

देववीतंमः। वि धूममंग्ने अरुषिम्मियेध्य सृज प्रंशस्त दर्शतम्। जिनेष्वा हि जेन्यो अग्रे अहार्र हितो हितेष्वंरुषो वनेषु। दमेदमे सप्त रत्ना दर्धानोऽग्निरहोता नि षंसादा यजीयान्॥१३॥

स्थु ई्रेधे शोचंस्व सप्तवि रशतिश्च॥=

—[3]

सं ते वायुर्मात्रिश्वां दधातूत्तानायै हृदेयं यद्विलिष्टम्। देवानां यश्चरंति प्राणर्थेन् तस्मैं च देवि वर्षडस्तु तुभ्यम्। सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वर्रूथमासंदः सुवंः। वासो अग्ने विश्वरूप् सं व्ययस्व विभावसो। उदं तिष्ठ स्वध्वरावां नो देव्या कृपा। दृशे चं भासा बृह्ता सृशुक्कनिराग्ने याहि सुशस्तिभिः।॥१४॥

ऊर्ध्व ऊ षु णं ऊतये तिष्ठां देवो न संविता। ऊर्ध्वो वाजंस्य सिनंता यदिक्षिभिवाधिद्विविह्वयांमहे। स जातो गर्भो असि रोदंस्योरग्ने चारुर्विभृंत ओषंधीषु। चित्रः शिशुः पिर तमार्रस्यक्तः प्र मातृभ्यो अधि किनेक्रदद्गाः। स्थिरो भंव वीड्वंङ्ग आशुर्भव वाज्यंवन्त्र। पृथुर्भव सुषद्स्त्वमृग्नेः पुरीष्वाहनः। शिवो भंव॥१५॥

प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमंङ्गिरः। मा द्यावापृथिवी अभि शूंशुचो मान्तरिक्षं मा वनस्पतीन्। प्रैतुं वाजी कनिऋदुन्नानंदद्रासंभः पत्वां। भरंत्रुग्निम्पुंरीष्यं मा पाद्यायुंषः पुरा। रासंभो वां कनिऋदथ्सुयुंक्तो वृषणा रथें। स वांमुग्निम्पुंरीष्यंमाशुर्दूतो वंहादितः। वृषाग्निं वृंषणम्भरंत्रुपां गर्भर् समुद्रियम्। अग्नु आ यांहि॥१६॥

वीतयं ऋतर सृत्यम्। ओषंधयः प्रतिं गृह्णीताग्निमेतर शिवमायन्तंमुभ्यत्रं युष्मान्। व्यस्यन्विश्वा अमंतीररातीर्निषीदंत्रो अपं दुर्मृतिर हंनत्। ओषंधयः प्रतिं मोदध्वमेनम्पुष्पांवतीः सुपिप्पुलाः। अयं वो गर्भ ऋत्वियः प्रुवर सुधस्थुमासंदत्॥१७॥

सुश्-ि शिवो भंव याहि षद्गिरंशच॥——[४]

वि पाजंसा पृथुना शोशुंचानो बाधंस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः। सुशर्मणो बृह्तः शर्मणि स्यामुग्नेर्ह स् सुहवंस्य प्रणीतौ। आपो हि ष्ठा मंयोभुवस्ता नं ऊर्जे दंधातन। महे रणांय चक्षसे। यो वंः शिवतंमो रसस्तस्यं भाजयतेह नंः। उशतीरिंव मातरंः। तस्मा अर्र गमाम वो यस्य क्षयांय जिन्वंथ। आपो जुनयंथा च नः। मित्रः॥१८॥

स्रमुज्यं पृथिवीम्भूमिं च ज्योतिषा सह। सुजांतं जातवेदसमृष्ठिं वैश्वान्रं विभुम्। अयुक्ष्मायं त्वा सर् सृंजामि प्रजाभ्यः। विश्वे त्वा देवा वैश्वान्राः सर् सृंजन्त्वानृष्ठभेन् छन्दंसाङ्गिर्स्वत्। रुद्राः सम्भृत्यं पृथिवीम्बृहञ्च्योतिः समीधिरे। तेषां भानुरजंस्र इच्छुको देवेषुं रोचते। सरसृष्टां वसुंभी रुद्रैधीरैंः कर्मृण्यांम्मृदम्। हस्तांभ्याम्मृद्वीं कृत्वा सिनीवाली करोतु॥१९॥

ताम्। सिनीवाली सुंकपूर्वा सुंकुरीरा स्वौप्शा। सा तुभ्यंमदिते मह् ओखां दंधातु हस्तंयोः। उखां कंरोतु शक्त्यां बाहुभ्यामदितिर्धिया। माता पुत्रं यथोपस्थे साग्निम्बिंभर्तु गर्भु आ। मुखस्य शिरोऽसि यज्ञस्यं पुदे स्थंः। वसंवस्त्वा कृण्वन्तु गायत्रेण् छन्दंसाङ्गिरस्वत्पृथिव्यंसि रुद्रास्त्वां कृण्वन्तु त्रैष्टुंभेन छन्दंसाङ्गिरस्वदन्तरिक्षमसि॥२०॥

आदित्यास्त्वां कृण्वन्तु जागंतेन् छन्दंसाङ्गिर्स्वद्वौरंसि विश्वें त्वा देवा वैंश्वान्राः कृण्वन्त्वानुंष्टभेन् छन्दंसाङ्गिर्स्विद्दशोंऽसि ध्रुवासिं धारया मियं प्रजार रायस्पोषं गौपत्यर सुवीर्यर् सजातान् यजमानायादित्यै रास्नास्यदितिस्ते बिलं गृह्णातु पाङ्केन् छन्दंसाङ्गिर्स्वत्। कृत्वाय सा महीमुखाम्मृन्मयीं योनिम्ग्नयें। ताम्पुत्रेभ्यः सम्प्रायंच्छ्ददितिः श्रुपयानिति॥२१॥

मित्रः कंरोत्वन्तरिक्षमिस प्र चत्वारि च॥______[५]

वसंवस्त्वा धूपयन्तु गायुत्रेण् छन्दंसाङ्गिर्स्वद्रुद्रास्त्वां धूपयन्तु त्रैष्टुंभेन् छन्दंसाङ्गिर्स्वदांदित्यास्त्वां धूपयन्तु जागंतेन् छन्दंसाङ्गिर्स्वद्विश्वें त्वा देवा वैश्वान्रा प्रथमः प्रश्नः (काण्डम् ४)

धूंपयन्त्वानुंष्ठभेन् छन्दंसाङ्गिर्स्वदिन्द्रंस्त्वा धूपयत्वङ्गिर्स्वद्विष्णुंस्त्वा धूपयत्वङ्गिर्स्वद्वरुंणस्त्वा धूपयत्वङ्गिर्स्वददितिस्त्वा देवी विश्वदेवयावती पृथिव्याः स्धस्थैंऽङ्गिर्स्वत्खंनत्ववट देवानां त्वा पत्नीः॥२२॥

देवीर्विश्वरेंव्यावतीः पृथिव्याः स्घस्थैंऽङ्गिर्स्वद्घंतूखे धिषणांस्त्वा देवीर्विश्वरेंव्यावतीः पृथिव्याः स्घस्थैंऽङ्गिर्स्वद्भीन्धंतामुखे ग्रास्त्वां देवीर्विश्वरेंव्यावतीः पृथिव्याः स्घस्थैंऽङ्गिर्स्वच्छ्रंपयन्तूखे वर्क्तत्रयो जनयस्त्वा देवीर्विश्वरेंव्यावतीः पृथिव्याः स्घस्थैंऽङ्गिर्स्वत्पंचन्तूखे। मित्रैतामुखाम्पंचैषा मा भेदि। एतां ते परि ददाम्यभित्त्यै। अभीमाम्॥२३॥

महिना दिवंग्मित्रो बंभूव सप्रथाः। उत श्रवंसा पृथिवीम्। मित्रस्यं चर्षणी्धृतः श्रवो देवस्यं सान्सिम्। द्युम्नं चित्रश्रंवस्तमम्। देवस्त्वां सिवृतोद्वंपतु सुपाणिः स्वंङ्कृरिः। सुबाहुरुत शक्त्याः। अपंद्यमाना पृथिव्याशा दिश् आ पृंण। उत्तिष्ठ बृह्ती भंबोर्ध्वा तिष्ठ ध्रुवा त्वम्। वसंवस्त्वाच्छृंन्दन्तु गायत्रेण् छन्दंसाङ्गिर्स्वद्वद्वास्त्वा च्छृंन्दन्तु त्रैष्ट्रभेन् छन्दंसाङ्गिर्स्वद्विश्वं त्वा देवा वैश्वान्ररा आच्छृंन्दन्तानुष्टुभेन छन्दंसाङ्गिर्स्वत्वानुष्टुभेन छन्दंसाङ्गिर्स्वत्। २४॥

पर्नीरिमार रुद्रास्त्वाच्छूं-दुन्त्वेकान्नविर्श्रातिश्चं॥______[६]

समाँस्त्वाग्न ऋतवों वर्धयन्तु संवथ्सरा ऋषयो यानि सृत्या। सं दिव्येनं दीदिहि रोचनेन् विश्वा आ भांहि प्रदिशः पृथिव्याः। सं चेध्यस्वाँग्ने प्र चं बोधयैनमुचं तिष्ठ महृते सौभंगाय। मा चं रिषदुपस्ता ते अग्ने ब्रह्माणंस्ते युशसः सन्तु मान्ये। त्वामंग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अंग्ने॥२५॥

संवर्णे भवा नः। सप्बहा नी अभिमातिजिच् स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन्न्। इहैवाग्ने अधि धारया रियें मा त्वा नि क्रेन्यूर्विचतों निकारिणः। क्षत्रमंग्ने सुयममस्तु तुभ्यंमुपस्ता वंर्धतां ते अनिष्टतः। क्षत्रणांग्ने स्वायुः स॰ रंभस्व मित्रेणांग्ने मित्र्धेये यतस्व। सुजातानांग्मध्यम्स्था एपि राज्ञांमग्ने विह्व्यों दीदिहीह्। अति॥२६॥

निहो अति स्निधोऽत्यचितिमत्यरांतिमग्ने। विश्वा ह्यंग्ने दुरिता सहस्वाथास्मभ्य र सहवीरा रियं दौं। अनाुधृष्यो जातवेदा अनिष्टतो विराडंग्ने क्षत्रभृद्दीदिहीह। विश्वा आशाः प्रमुश्रन्मानुंषीर्भियः शिवाभिर्द्य परिं पाहि नो वृधे। बृहंस्पते सवितर्बोधयैन्र सःशिंतं चिथ्सन्त्राः सः शिंशाधि। वर्धयैनम्महते सौभंगाय॥२७॥

विश्वं एन्मन् मदन्तु देवाः। अमुत्रभूयादध् यद्यमस्य बृहंस्पते अभिशंस्तेरम्ंश्चः। प्रत्यौहताम्श्विनां मृत्युमंस्माद्देवानांमग्ने भिषजा शचींभिः। उद्वयं तमंस्सपिर् पश्यन्तो ज्योतिरुत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगंन्म ज्योतिरुत्तरम्॥२८॥

ड्मे शिवो अग्नेऽति सौभंगाय चतुंस्त्रि॰शच॥————[७

ऊर्ध्वा अस्य समिधों भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोची रष्यग्नेः। द्युमत्तंमा सुप्रतीकस्य सूनोः। तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः। पथ आनंक्ति मध्वां घृतेनं। मध्वां यज्ञं नक्षसे प्रीणानो नराशरसों अग्ने। सुकृद्देवः संविता विश्ववारः। अच्छायमैति शवंसा घृतेनेंडानो विह्निर्मसा। अग्निः सुचों अध्वरेषुं प्रयथ्सुं। स यक्षदस्य महिमानमुग्नेः सः॥२९॥

ई मुन्द्रासुं प्रयसंः। वसुश्चेतिष्ठो वसुधातंमश्च। द्वारों देवीरन्वंस्य विश्वें व्रता दंदन्ते अग्नेः। उरुव्यचंसो धाम्ना पत्यंमानाः। ते अस्य योषंणे दिव्ये न योनांवुषासानक्तां। इमं युज्ञमंवतामध्वरं नंः। दैव्यां होतारावूर्ध्वमंध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वाम्भि गृंणीतम्। कृणुतं नः स्विष्टिम्। तिस्रो देवीर्ब्हिरेद संदन्त्विडा सरंस्वती॥३०॥

भारंती। मही गृंणाना। तन्नंस्तुरीप्मद्भंतं पुरुक्षु त्वष्टां सुवीरम्ं। रायस्पोष्ं वि ष्यंतु नाभिमस्मे। वनस्पतेऽवं सृजा रराणस्तमनां देवेषुं। अग्निर्हव्य शिमता सूंदयाति। अग्ने स्वाहां कृणिह जातवेद इन्द्रांय ह्व्यम्। विश्वं देवा ह्विरिदं जुंषन्ताम्। हि्र्ण्युगर्भः समंवर्तताग्रं भूतस्यं जातः पतिरेकं आसीत्। स दांधार पृथिवीं द्याम्॥३१॥

उतेमां कस्मैं देवायं हुविषां विधेम। यः प्राणतो निमिष्तो महित्वैक इद्राजा जगतो बुभूवं। य ईशें अस्य द्विपदश्चतुंष्यदः कस्मैं देवायं हुविषां विधेम। य आंत्मदा बंलुदा यस्य विश्वं उपासंते प्रशिष्ं यस्यं देवाः। यस्यं छायामृतं यस्यं मृत्युः कस्मैं देवायं हुविषां विधेम। यस्येमे हिमवंन्तो महित्वा यस्यं समुद्र रसयां सह॥३२॥

आहुः। यस्येमाः प्रदिशो यस्यं बाहू कस्मैं देवायं हुविषां विधेम। यं ऋन्दंसी अवंसा तस्तभाने अभ्येक्षेताम्मनंसा रेजंमाने। यत्राधि सूर उदिंती व्येति कस्मैं देवायं हुविषां विधेम। येन द्यौरुग्रा पृंथिवी चं दृढे येन सुवंः स्तिभृतं येन नाकंः। यो अन्तिरिक्षे रजंसो विमानः कस्मैं देवायं हुविषां विधेम। आपों हु यन्मंहुतीर्विश्वम्॥३३॥ आयुन्दक्षं दर्धाना जुनयंन्तीरुग्निम्। ततों देवानां निरंवर्तृतासुरेकः कस्मैं देवायं हिवषां प्रथमः प्रश्नः (काण्डम् ४)

विधेम। यश्चिदापों महिना पूर्यपंश्यद्दक्षं दर्धाना जनयंन्तीरुग्निम्। यो देवेष्विधं देव एक् आसीत्कस्मैं देवायं हविषां विधेम॥३४॥

अग्नेः स सरंस्वती द्यार सह विश्वअर्तुस्त्रिHरशश्च॥———[८]

आकूंतिमग्निम्प्रयुज् इं स्वाह्य मनों मेधामग्निम्प्रयुज् इं स्वाहां चित्तं विज्ञांतम्ग्निम्प्रयुज् इं स्वाहां वाचो विधृंतिमृग्निम्प्रयुज् इं स्वाहां प्रजापंतये मनेवे स्वाह्यग्नये वैश्वान्राय स्वाह्य विश्वे देवस्यं नेतुर्मतों वृणीत सुख्यं विश्वे राय इंषुध्यिस द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाह्य मा सु भित्था मा सु रिषो द इंहंस्व वीडयंस्व सु। अम्बं धृष्णु वीरयंस्व॥३५॥

अग्निश्चेदं केरिष्यथः। द॰हंस्व देवि पृथिवि स्वस्तयं आसुरी माया स्वधयां कृतासिं। जुष्टं देवानांमिदमंस्तु ह्व्यमरिष्टा त्वमुदिहि यज्ञे अस्मिन्न्। मित्रैतामुखां तंपैषा मा भेदि। एतान्ते परिं ददाम्यभित्त्ये। द्वंत्रः स्पिरांसुतिः प्रबो होता वरेण्यः। सहंसस्पुत्रो अद्भंतः। परंस्या अधिं संवतोऽवंरा॰ अभ्या॥३६॥

त्र। यत्राहमस्मि ता अव। प्रमस्याः परावतो रोहिदंश्व इहा गंहि। पुरीष्यः पुरुप्रियोऽग्रे त्वं तरा मृधंः। सीद त्वं मातुरस्या उपस्थे विश्वान्यग्रे वयुनांनि विद्वान्। मैनांमर्चिषा मा तपंसाभि शूंशुचोऽन्तरंस्या श्रुक्तज्योतिर्वि भांहि। अन्तरंग्रे रुचा त्वमुखायै सदंने स्व। तस्यास्त्व हरंसा तपुञ्जातंवेदः शिवो भव। शिवो भूत्वा मह्यमग्रेऽथों सीद शिवस्त्वम्। शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वां योनिंमिहासंदः॥३७॥

यदंग्ने यानि कानि चा ते दारूणि द्ध्मिसं। तदंस्तु तुभ्यमिद्धृतं तञ्जंषस्व यिविष्ठा। यदत्त्युंपुजिह्विंका यद्धम्रो अंतिसर्पंति। सर्वं तदंस्तु ते घृतं तञ्जंषस्व यिविष्ठा। रात्रिंश्रात्रिमप्रंयावम्भर्न्तोऽश्वांयेव तिष्ठंते घासमस्मै। रायस्पोषंण सिम्षा मद्न्तोऽग्ने मा ते प्रतिवेशा रिषाम। नाभा॥३८॥

पृथिव्याः संमिधानमग्निः रायस्पोषांय बृह्ते हंवामहे। इर्म्मदम्बृहद्वंक्थं यजंत्रं जेतारमृग्निं पृतनासु सासहिम्। याः सेनां अभीत्वंरीराव्याधिनीरुगंणा उत। ये स्तेना ये च तस्कंरास्ताः स्तें अग्नेऽपिं दधाम्यास्यैं। दः ष्ट्राम्याम्मृलिम्नू अम्भ्येस्तस्कंराः उत। हनूँभ्याः स्तेनान्भंगवस्ताः स्त्वं खांद सुखांदितान्। ये जनेषु मृलिम्नंवः स्तेनास्स्तस्कंरा प्रथमः प्रश्नः (काण्डम् ४)

वर्नै। ये॥३९॥

कक्षेष्वघायवस्ता इस्ते दथामि जम्भयोः। यो अस्मभ्यंमरातीयाद्यश्चं नो द्वेषेते जनः। निन्दाद्यो अस्मान् दिफ्साँच् सर्वं तम्मस्मसा कुंरु। सर्शितं मे ब्रह्म सर्शितं वीर्यं बलम्। सर्शितं क्षत्रं जिष्णु यस्याहमस्मिं पुरोहितः। उदेषाम्बाह् अतिरुमुद्वर्च उद् बलम्। क्षिणोमि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि॥४०॥

स्वार अहम्। दृशानो रुका उर्व्या व्यंद्यौदुर्मर्षमायुः श्रिये रुंचानः। अग्निर्मृतौं अभवृद्वयौभिर्यदेनं द्यौरजंनयथ्मुरेताः। विश्वां रूपाणि प्रति मुश्रते कृविः प्रासांवीद्भद्रं द्विपदे चतुंष्पदे। वि नाकंमख्यथ्सविता वरेण्योऽनं प्रयाणंमुषसो वि रांजित। नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकरं समीची। द्यावा क्षामा रुकाः॥४१॥

अन्तर्वि भांति देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाः। सुपूर्णोऽसि गुरुत्मांत्रिवृत्ते शिरों गायत्रं चक्षुः स्तोमं आत्मा सामं ते तुनूर्वामदेव्यम्बृंहद्रथन्तरे पृक्षौ यंज्ञायज्ञियम्पुच्छुं छन्दार्स्यङ्गानि धिष्णियाः शुफा यजूर्रेषि नामं। सुपूर्णोऽसि गुरुत्मान्दिवं गच्छु सुवंः पत॥४२॥

नाभा वने येनं यामि क्षामां रुक्तौंऽष्टात्रिर्श्या -----[१०]

अग्रे यं यज्ञमंध्वरं विश्वतंः परिभूरिसं। स इद्देवेषुं गच्छति। सोम् यास्तें मयोभुवं ऊतयः सन्तिं दाशुषें। ताभिनीऽविता भव। अग्निर्मूर्धा भुवंः। त्वं नंः सोम् या ते धामनि। तथ्संवितुर्वरेंण्यम्भर्गो देवस्यं धीमिह। धियो यो नंः प्रचोदयात। अचित्ती यचंकृमा दैव्ये जनें दीनैर्दक्षेः प्रभूती पूरुष्तवता।॥४३॥

देवेषुं च सवित्मानुंषेषु च त्वं नो अत्रं सुवतादनांगसः। चोद्यित्री सूनृतांनां चेतंन्ती सुमतीनाम्। यज्ञं देधे सरंस्वती। पावीरवी कन्यां चित्रायुः सरंस्वती वीरपंत्री धियं धात्। ग्राभिरच्छिंद्र शर्ण स्जोषां दुराधर्षं गृणते शर्म य स्तत्। पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रंक्षत्वर्वतः। पूषा वाज समितातु नः। शुक्रं ते अन्यदांज्तं ते अन्यत्॥४४॥

विषुंरूपे अहंनी द्यौरिवासि। विश्वा हि माया अवंसि स्वधावो भुद्रा ते पूषित्रह रातिरंस्तु। तेऽवर्धन्त स्वतंवसो महित्वना नार्कं तुस्थुरुरु चंक्रिरे सदंः। विष्णुर्यद्धावद्वृषंणम्मद्च्युतं वयो न सींद्न्निधं बुर्हिषं प्रिये। प्र चित्रमुर्कं गृंणते तुराय मारुताय स्वतंवसे भरध्वम्। ये सहार्रस् सहंसा सहंन्ते॥४५॥

द्वितीयः प्रश्नः (काण्डम् ४)

रेजंते अग्ने पृथिवी मुखेभ्यंः। विश्वं देवा विश्वं देवाः। द्यावां नः पृथिवी इम॰ सिप्रमुद्य दिविस्पृशम्। यज्ञं देवेषुं यच्छताम्। प्र पूर्वजे पितरा नव्यंसीभिर्गीर्भिः कृणुध्वष्ट् सदेने ऋतस्यं। आ नों द्यावापृथिवी दैव्यंन जनेन यातुम्मिहं वां वर्रूथम्। अग्निश् स्तोमेन बोधय सिमिधानो अमर्त्यम्। हृव्या देवेषुं नो दधत्। स हंव्यवाडमंत्र्यं उशिग्दूतश्चनोहितः। अग्निर्धिया समृण्वति। शं नों भवन्तु वाजेवाजे॥४६॥

पूरुपुत्वतां यज्ञतन्ते अन्यथ्सहंन्ते चनोहितोऽष्टौ चं॥————[११] विष्णोः क्रमोऽसि दिवस्पर्यन्नपुतेऽपेत् सिमंतुं या जाता मा नो हि॰सीद्भुवा-ऽस्यादित्यङ्गर्भमिन्द्रांग्नी रोचनैकांदश॥————[१२]

विष्णोरस्मिन् ह्व्येतिं त्वाऽहं धीतिभि्रहोत्रां अष्टाचंत्वारिश्शत्॥४८॥ विष्णोः ऋमोऽिस् स त्वन्नों अग्ने॥

॥ द्वितीयः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाण्डे द्वितीयः प्रश्नः॥

विष्णोः क्रमोंऽस्यभिमातिहा गांयुत्रं छन्द् आ रोंह पृथिवीमनु वि क्रंमस्व निर्भक्तः स यं द्विष्मो विष्णोः क्रमोंऽस्यभिशस्तिहा त्रैष्टुंमं छन्द् आ रोहान्तरिक्षमनु वि क्रंमस्व निर्भक्तः स यं द्विष्मो विष्णोः क्रमोंऽ स्यरातीयतो हन्ता जागंतं छन्द् आ रोंह् दिवमनु वि क्रंमस्व निर्भक्तः स यं द्विष्मो विष्णोः॥१॥

क्रमोंऽसि शत्रूयतो हुन्तानुष्टुभ्ं छन्द आ रोह् दिशोऽनु वि क्रंमस्व निर्भक्तः स यं द्विष्मः। अर्क्नन्दद्ग्निः स्तुनयंत्रिव द्योः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समुञ्जत्र। सुद्यो ज्ञांना वि हीमिद्धो अख्यदा रोदंसी भानुना भात्यन्तः। अग्नैंऽभ्यावर्तित्रभि न आ वर्तस्वायुषा वर्चसा सुन्या मेधया प्रजया धनेन। अग्नै॥२॥

अङ्गिरः शृतं ते सन्त्वावृतः सहस्रं त उपावृतः। तासाम्पोषंस्य पोषेण पुनर्नो नृष्टमा कृषि पुनर्नो रियमा कृषि। पुनंरूजां नि वंतस्व पुनंरग्न इषायुषा। पुनर्नः पाहि विश्वतः। सह रय्या नि वंतस्वाग्ने पिन्वस्व धारया। विश्वफ्लिया विश्वतस्परिं। उद्तुंत्तमं वंरुण् पाशंमुस्मदवांधुमम्॥३॥

वि मंध्यमः श्रंथाय। अथां व्यमांदित्य व्रते तवानांगसो अदिंतये स्याम। आ त्वांहार्षम्-तरंभूर्ध्वस्तिष्ठाविंचाचितः। विशंस्त्वा सर्वा वाञ्छन्त्वस्मित्राष्ट्रमधि श्रय। अग्ने बृहत्रुषसांमूर्ध्वो अंस्थान्निर्जिग्मवान्तमंसो ज्योतिषागात्। अग्निर्भानुना रुशंता स्वङ्ग आ जातो विश्वा सद्यान्यप्राः। सीद त्वं मातुरुस्याः॥४॥

उपस्थे विश्वाँन्यग्ने वयुनांनि विद्वान्। मैनांम्रचिषा मा तपंसाभि शूंशुचोऽन्तरंस्या श्रुकज्योतिर्वि भांहि। अन्तरंग्ने रुचा त्वमुखाये सदेने स्वे। तस्यास्त्व हरंसा तपुआतंवेदः शिवो भंव। शिवो भूत्वा मह्यमुग्नेऽथों सीद शिवस्त्वम्। शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिंमिहासंदः। हुर्सः शुंचिषद्वसुंरन्तरिक्ष्मद्धोतां वेदिषदितिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वंर्सदंत्सद्योमसद्जा गोजा ऋत्जा अद्विजा ऋतम्बृहत्॥५॥

दिवमनु वि ऋंमस्व निर्भक्तः स यं द्विष्मो विष्णोर्धनेनाग्नेऽधममुस्याः शुंचिषथ्योर्डश च॥[१]

दिवस्परिं प्रथमं जंज्ञे अग्निर्स्मिह्नितीयं परिं जातवेदाः। तृतीयंमुफ्सु नृमणा अजंस्रुमिन्धांन एनं जरते स्वाधीः। विद्या तें अग्ने त्रेधा त्र्याणि विद्या ते सद्य विभृतं पुरुत्रा। विद्या ते नामं पर्मं गृहा यद्विद्या तमुथ्सं यतं आज्गन्थं। सुमुद्रे त्वा नृमणां अफ्स्वंन्तर्नृचक्षां ईधे दिवो अंग्न ऊधर्त्र। तृतीयें त्वा॥६॥

रजंसि तस्थिवारसंमृतस्य योनौं मिह्षा अहिन्बन्न्। अर्न्नन्द्विग्नः स्तुनयंन्निव् द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समुञ्जन्न, सद्यो जंज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदंसी भानुनां भात्यन्तः। उशिक्पांवको अर्तिः सुंमेधा मर्तेष्वग्निर्मृतो निधायि। इयंर्ति धूममंरुषम्भरिभृदुच्छुकेणं शोचिषा द्यामिनक्षत्। विश्वंस्य कृतुर्भुवंनस्य गर्भु आ॥७॥

रोर्दसी अपृणाङ्गायंमानः। वीडुं चिदद्रिमभिनत्परायञ्जना यदग्निमयंजन्त पश्चं। श्रीणामुंदारो धुरुणो रयीणाम्मनीषाणाम्प्रापेणः सोमंगोपाः। वसौः सूनुः सहंसो अपस् राजा वि भात्यग्रं उषसांमिधानः। यस्ते अद्य कृणवंद्भद्रशोचेऽपूपं देव घृतवंन्तमग्ने। प्र तं नय प्रतरां वस्यो अच्छाभि द्युम्नं देवभक्तं यविष्ठ। आ॥८॥

तम्भंज सौश्रवसेष्वंग्न उक्थउंक्थ आ भंज शस्यमांने। प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भंवात्युज्ञातेनं भिनददुज्जनिंत्वैः। त्वामंग्ने यजंमाना अनु द्यून् विश्वा वसूंनि दिधरे वार्याणि। त्वयां सह द्रविंणमिच्छमांना व्रजं गोमंन्तमुशिजो वि वंद्रः। दृशानो रुका उर्व्या व्यंद्यौदुर्मर्षमायुंः श्रिये रुंचानः। अग्निर्मृतों अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजंनयथ्सुरेताः॥९॥

तृतीयें त्वा गर्भ आ यंविष्ठा यच्चत्वारिं च॥————[२]

अन्नप्तेऽन्नंस्य नो देह्यनमीवस्यं शुष्मिणंः। प्रप्नंदातारं तारिष् ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुंष्पदे। उदुं त्वा विश्वं देवा अग्ने भरंन्तु चित्तिंभिः। स नों भव शिवतंमः सुप्रतींको विभावंसुः। प्रेदंग्ने ज्योतिंष्मान् याहि शिविभिर्विभिस्त्वम्। बृहद्भिर्मानुभिर्भास्नमा हिर्स्सीस्तुनुवां प्रजाः। सुमिधाग्निं दुंवस्यत घृतैर्बोधयुतातिंथिम्। आ॥१०॥

अस्मिन् ह्व्या जुंहोतन। प्रप्रायम्प्रिर्भर्तस्यं शृण्वे वि यथ्सूर्यो न रोचंते बृहद्भाः। अभि यः पूरुम् पृतंनासु तस्थौ दीदाय दैव्यो अतिथिः शिवो नंः। आपो देवीः प्रितिं गृह्णीत् भस्मैतथ्स्योने कृणुध्व सुर्भावं लोके। तस्मै नमन्तां जनयः सुपर्शीमितिवं पुत्रम्बिंभृता स्वेनम्। अपस्वंग्ने सिप्ष्टवं॥११॥

सौषंधीरन् रुध्यसे। गर्भे सञ्जायसे पुनः। गर्भो अस्योषंधीनां गर्भो वनस्पतीनाम्। गर्भो विश्वंस्य भूतस्याग्ने गर्भो अपामंसि। प्रसद्य भर्मना योनिमृपश्चं पृथिवीमंग्ने। स्रमुज्यं मातृभिस्त्वं ज्योतिष्मान्युन्रासंदः। पुनंश्वसद्य सदनम्पश्चं पृथिवीमंग्ने। शेषें मातुर्यथोपस्थेऽन्तरस्यार शिवतंमः। पुनंरूर्जा॥१२॥

नि वंर्तस्व पुनंरग्न इषायुंषा। पुनंनः पाहि विश्वतः। सह र्य्या नि वंर्तस्वाग्ने पिन्वंस्व धारया। विश्वपिस्त्रंया विश्वत्स्पिरं। पुनंस्त्वादित्या रुद्रा वसंवः सिनंन्धताम्पुनंर्ब्रह्माणों वसुनीथ युज्ञैः। घृतेन त्वं तनुवों वर्धयस्व सत्याः संन्तु यजंमानस्य कामाः। बोधां नो अस्य वर्चसो यविष्ठ मर्श्हेष्ठस्य प्रभृंतस्य स्वधावः। पीयंति त्वो अनुं त्वो गृणाति वन्दारुंस्ते तनुवं वन्दे अग्ने। स बोधि सूरिर्म्घवां वसुदावा वसुंपितः। युयोध्यंस्मद्वेषारंसि॥१३॥

आ तबोर्जाऽनु षोडंश च॥———[३]

अपेत वीत वि चं सर्पतातो येऽत्र स्थ पुंराणा ये च नूर्तनाः। अदांदिदं युमीं-ऽवसानं पृथिव्या अक्रेन्निमम् पितरी लोकमंस्मै। अग्नेर्भस्मौस्यग्नेः पुरीषमसि संज्ञानंमसि कामधरंणम्मिये ते कामधरंणम्भूयात्। सं या वंः प्रियास्तुनुवः सिम्प्रिया हृंदयानि वः। आत्मा वो अस्तु॥१४॥ सिम्प्रियाः सिम्प्रियास्तुनुवो मर्म। अय सो अग्निर्यस्मिन्थ्सोम्मिन्द्रः सुतं दुधे जुठरे वावशानः। सहस्रियं वाजमत्यं न सिप्ति सस्वान्थ्सन्थ्स्तूयसे जातवेदः। अग्ने दिवो अर्णमच्छां जिगास्यच्छां देवार ऊंचिषे धिष्णिया ये। याः प्रस्तांद्रोचने सूर्यस्य याश्चावस्तांदुपतिष्ठन्त आपंः। अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषंधीषु॥१५॥

अप्रसु वां यजत्र। येनान्तरिक्षमुर्वात्तन्थं त्वेषः स भानुरंर्ण्वो नृचक्षाः। पुरीष्यांसो अग्नयः प्रावणिभिः स्जोषंसः। जुषन्तारं हृव्यमाहृंतमनमीवा इषो मृहीः। इडांमग्ने पुरुदरसरं स्निं गोः शंश्वत्तमर हवंमानाय साध। स्यान्नः सुनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमृतिर्भूत्वस्मे। अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोंचथाः। तं जानत्र॥१६॥

अ्ग्र आ रोहाथां नो वर्धया र्यिम्। चिदंसि तयां देवतंयाङ्गर्स्बद्धुवा सींद परिचिदंसि तयां देवतंयाऽ ङ्गिर्स्बद्धुवा सींद लोकं पृण छिद्रं पृणाथों सीद शिवा त्वम्। इन्द्राग्नी त्वा बृह्स्पतिंर्स्मिन् योनांवसीषदत्र्। ता अंस्य सूदंदोहसः सोमई श्रीणन्ति पृश्नयः। जन्मं देवानां विशंख्रिष्वा रोचने दिवः॥१७॥

अ्स्त्वोषंधीषु जानन्नृष्टाचंत्वारि १शच॥ _______[४

समित्र् सं कंत्येथा्र् सिम्प्रियौ रोचिष्णू सुमन्स्यमानौ। इष्मूर्जम्भि स्वसानौ सं वाम्मनार्रसि सं व्रता समुं चित्तान्याकरम्। अग्ने पुरीष्याधिपा भवा त्वं नंः। इष्मूर्ज् यजमानाय धेहि। पुरीष्यंस्त्वमंग्ने रियमान्युष्टिमार् असि। शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वां योनिमिहासंदः। भवतं नुः समनसौ समोकसौ॥१८॥

अरेपसौँ। मा युज्ञ हि रिसिष्टं मा युज्ञपंतिं जातवेदसौ शिवौ भंवतम् द्य नंः। मातेवं पुत्रं पृथिवी पुरीष्यंमग्निः स्वे योनांवभारुखा। तां विश्वैद्वैर्ऋतुभिः संविदानः प्रजापंतिर्विश्वकर्मा वि मुंश्चतु। यदस्य पारे रजंसः शुक्रं ज्योति्रजांयत। तन्नंः पर्षदिति द्विषोऽन्ने वैश्वानर् स्वाहां। नमः सु तें निर्ऋते विश्वरूपे॥१९॥

अयस्मयं वि चृंता बन्धमृतम्। यमेन् त्वं यम्यां संविदानोत्तमं नाक्मिधं रोहयेमम्। यत्तं देवी निर्ऋतिरा बबन्ध दामं ग्रीवास्वविचत्र्यम्। इदं ते तिद्व ष्याम्यायंषो न मध्यादथां जीवः पितुमंद्धि प्रमुंक्तः। यस्यांस्ते अस्याः क्रूर आसञ्जूहोम्येषाम्बन्धानांमवसर्जनाय। भूमिरितिं त्वा जनां विदुर्निर्ऋतिः॥२०॥

द्वितीयः प्रश्नः (काण्डम् ४)

इति त्वाहं परि वेद विश्वतः। असुन्वन्तमयंजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यां तस्कंर्स्यान्वेषि। अन्यमस्मिदिच्छु सा तं इत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यंमस्तु। देवीमृहं निर्ऋतिं वन्दंमानः पितेवं पुत्रं दंसये वचीभिः। विश्वंस्य या जायंमानस्य वेद शिरंःशिरः प्रतिं सूरी विचेषे। निवेशंनः संगर्मनो वसूनां विश्वां रूपाभि चेष्टे॥२१॥

शर्चीभिः। देव इंव सिवता स्त्यधर्मेन्द्रो न तंस्थौ सम्रे पंथीनाम्। सं वंर्त्रा दंधातन् निराहावान्कृणोतन। सिञ्चामंहा अवटमुद्रिणं वयं विश्वाहादंस्तमिक्षितम्। निष्कृताहावमवट॰ सुंवर्त्तर॰ सुंषेचनम्। उद्गिण॰ सिञ्चे अक्षितम्। सीरां युञ्जन्ति कवयों युगा वि तन्वते पृथंक्। धीरां देवेषुं सुम्रया। युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौं वपतेह॥२२॥

बीजम्। गिरा चं श्रृष्टिः सभरा असंन्नो नेदीय इथ्सृण्यां पृक्तमायंत्। लाङ्गंलुम्पवीरवश् सुशेवश्ं सुमृतिथ्संरु। उदित्कृंषित् गामविम्प्रफुर्व्यं च पीवंरीम्। प्रस्थावंद्रथ्वाहंनम्। शुनं नः फाला वि तुंदन्तु भूमिश्ं शुनं कीनाशां अभि यन्तु वाहान्। शुनम्पर्जन्यो मधुना पर्योभिः शुनांसीरा शुनम्स्मासुं धत्तम्। कामं कामदुघे धुक्ष्व मित्राय वर्रुणाय च। इन्द्रांयाग्रये पूष्ण ओषधीभ्यः प्रजाभ्यः। घृतेन् सीता मधुना समक्ता विश्वदेवेरनुंमता मुरुद्धिः। ऊर्जस्वती पर्यसा पिन्वंमानास्मान्थ्सीते पर्यसाभ्यावंवृथ्स्व॥२३॥

समोकसौ विश्वरूपे विदुर्निर्ऋतिर्भि चष्ट इह मित्राय द्वावि शालिश्वा -----[५]

या जाता ओषंधयो देवेभ्यंस्त्रियुगम्पुरा। मन्दांमि बुभ्रूणांमह र शृतं धामांनि सृप्त चं। शृतं वो अम्ब धामांनि सृहस्त्रंमृत वो रुहं। अथां शतऋत्वो यूयिमृमं में अगृदं कृत। पुष्पांवतीः प्रसूवंतीः फुलिनीरफुला उत। अश्वां इव सृजित्वंरीर्वीरुधंः पारियुष्णवंः। ओषंधीरितिं मातरस्तद्वों देवीरुपं ब्रुवे। रपार्रसि विघ्नतीरित रपंः॥२४॥

चातर्यमानाः। अश्वत्थे वो निषदंनम्पूर्णे वो वस्तिः कृता। गोभाज् इत्किलांसथ् यथ्सनवंथु पूरुंषम्। यदहं वाजयंत्रिमा ओषंधी्रहस्तं आद्धे। आत्मा यक्ष्मंस्य नश्यति पुरा जीवृगभो यथा। यदोषंधयः संगच्छंन्ते राजांनः समिताविव। विप्रः स उंच्यते भिषग्रंक्षोहामीव्चातंनः। निष्कृंतिर्नामं वो माताथां यूयः स्थ सङ्कृंतीः। सुराः पंतुत्रिणीः॥२५॥

स्थन् यदामयंति निष्कृंत। अन्या वो अन्यामंवत्वन्यान्यस्या उपांवत। ताः सर्वा ओषंधयः संविदाना इदम्मे प्रावंता वर्चः। उच्छुष्मा ओषंधीनां गावो गोष्ठादिवेरते। धनर् सनिष्यन्तीनामात्मानं तवं पूरुष। अति विश्वाः परिष्ठाः स्तेन इंव व्रजमंक्रमुः। ओषंधयः प्राचुंच्यवुर्यत् किं चं तनुवा र रपः। याः॥२६॥

त् आतस्थुरात्मानं या आंविविशः पर्रःपरुः। तास्ते यक्ष्मं वि बांधन्तामुग्रो मध्यमुशीरिव। साकं येक्ष्म् प्र पंत श्येनेनं किकिदीविनां। साकं वातंस्य प्राज्यां साकं नंश्य निहाकंया। अश्वावती सोमवतीमूर्जयंन्तीमुदों जसम्। आ विध्या सर्वा ओषधीर्स्मा अंरिष्टतांतये। याः फुलिनीयां अफुला अपुष्पा याश्चं पुष्पिणीः। बृह्स्पतिप्रसूतास्ता नों मुश्चन्त्व १ हंसः। याः॥ २०॥

ओषंधयः सोमंराज्ञीः प्रविष्टाः पृथिवीमन्। तासां त्वमंस्युत्तमा प्र णों जीवातंवे सुव। अवपतंन्तीरवदन्दिव ओषंधयः परि। यं जीवमृश्रवामहै न स रिष्याति पूर्रुषः। याश्चेदमुंपशृण्वन्ति याश्चं दूरं परांगताः। इह संगत्य ताः सर्वा अस्मै सं दंत्त भेषजम्। मा वो रिषत्खनिता यस्मै चाहं खर्नामि वः। द्विपचतुंष्यदस्माकृष्ट् सर्वम्स्त्वनांतुरम्। ओषंधयः सं वंदन्ते सोमेन सह राज्ञां। यस्मै कुरोति ब्राह्मणस्तर राजन्यारयामसि॥२८॥

रपंः पतित्रिणीर्या अरहंसो याः खनांमि वोऽष्टादंश च॥————[६]

मा नों हिश्सीज्ञनिता यः पृथिव्या यो वा दिवर्श सत्यर्धर्मा जाजानं। यश्चापश्चन्द्रा बृंहतीर्ज्जान् कस्मैं देवायं हिवषां विधेम। अभ्यावंतिस्व पृथिवि यज्ञेन पर्यसा सह। वपां ते अग्निरिष्ति।ऽवं सर्पत्। अग्ने यत्ते शुक्रं यचन्द्रं यत्पूतं यद्यज्ञियम्। तद्देवेभ्यों भरामिस। इष्मूर्जमहिम्त आ॥२९॥

द्द ऋतस्य धाम्नी अमृतंस्य योनैंः। आ नो गोषुं विश्वत्वौषंधीषु जहांिमि सेदिमिनिराममीवाम्। अग्ने तव श्रवो वयो मिहं भ्राजन्त्यर्चयो विभावसो। बृहंद्भानो शर्वसा वाजंमुक्थ्यं दर्धांसि दाशुषं कवे। इर्ज्यन्नेग्ने प्रथयस्व जन्तुभिर्स्मे रायो अमर्त्य। स दंर्श्तस्य वपुंषो वि राजसि पृणिक्षं सान्सि र्यिम्। ऊर्जो नपाञ्चातंवेदः सुश्चस्तिभिर्मन्दंस्व॥३०॥

धीतिभिर्हितः। त्वे इषः सं देधुर्भूरिरेतसिश्चित्रोतंयो वामजांताः। पावकवंर्चाः शुक्रवंर्चाः अनूनवर्चा उदियर्षि भानुनां। पुत्रः पितरां विचर्त्रुपांवस्युभे पृंणिक्षे रोदंसी। ऋतावानम्मिह्षं विश्वचंर्षणिम्ग्निर सुम्नायं दिधरे पुरो जनाः। श्रुत्कंर्णर सप्रथंस्तं त्वा गिरा दैव्यम्मानुषा युगा। निष्कृतारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयंन्त्र राधंसे महे। रातिम्भुगूंणामुशिजं कृविकंतुं

द्वितीयः प्रश्नः (काण्डम् ४)

पृणिक्षे सानुसिम्॥३१॥

र्यिम्। चितंः स्थ परिचितं ऊर्ध्वचितंः श्रयध्वं तयां देवतंयाङ्गिर्स्वद् ध्रुवाः सींदत। आ प्यांयस्व समेतु ते विश्वतंः सोम् वृष्णियम्। भवा वाजंस्य सङ्ग्थे। सं ते पयार्रस्य सम् यन्तु वाजाः सं वृष्णियान्यभिमातिषाहंः। आप्यायंमानो अमृतांय सोम दिवि श्रवार्रस्युत्तमानि धिष्व॥३२॥

आ मन्दंस्व सान्सिमेकान्नचंत्वारि र्श्वां॥______[७]

अभ्यंस्थाद्विश्वाः पृतंना अरांतीस्तद्ग्निरांह तद् सोमं आह। बृह्स्पतिः सिवता तन्मं आह पुषा मांधाथ्सुकृतस्यं लोके। यदक्रेन्दः प्रथमं जायंमान उद्यन्थ्संमुद्रादुत वा पुरीषात्। श्येनस्यं पक्षा हरिणस्यं बाहू उपंस्तुतं जिनम् तत्ते अर्वत्र्। अपां पृष्ठमंसि योनिर्ग्नेः संमुद्रम्भितः पिन्वंमानम्। वर्धमानम्महः॥३३॥

आ च पुष्कंरं दिवो मात्रंया वृरिणा प्रंथस्व। ब्रह्मं जज्ञानम्प्रंथमम्पुरस्ताद्वि सीमृतः सुरुचों वेन आंवः। स बुध्नियां उपमा अंस्य विष्ठाः सृतश्च योनिमसंतश्च विवंः। हिरुण्यगुर्भः समंवर्तताग्नें भृतस्यं जातः पितरकं आसीत्। स दांधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्में देवायं हिवर्षा विधेम। द्रुपसर्श्वस्कन्द पृथिवीमनुं॥३४॥

द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः। तृतीयं योनिमनुं संचर्रन्तं द्रफ्सं जुंहोम्यनुं सप्त होत्राः। नमों अस्तु सूर्पेभ्यो ये के चं पृथिवीमनुं। ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सूर्पेभ्यो नमः। येऽदो रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रुश्मिषुं। येषामुफ्सु सदः कृतं तेभ्यः सूर्पेभ्यो नमः। या इषवो यातुधानानां ये वा वनस्पती रूर्नुं। ये वांवटेषु शेरते तेभ्यः सूर्पेभ्यो नमः॥३५॥

महोऽन् यातुधानांनामेकांदश च॥————[८]

ध्रुवासिं ध्रुणास्तृंता विश्वकंर्मणा सुकृंता। मा त्वां समुद्र उद्वंधीन्मा सुंपुर्णोऽव्यंथमाना पृथिवीं दर्ह। प्रजापंतिस्त्वा सादयतु पृथिव्याः पृष्ठे व्यचंस्वतीम्प्रथंस्वतीम्प्रथंऽिस पृथिव्यंसि भूर्रसि भूमिंरुस्यदितिरिस विश्वधाया विश्वंस्य भुवंनस्य धुत्री पृथिवीं यंच्छ पृथिवीं दर्ह पृथिवीं मा हिर्स्मिर्विश्वंस्मै प्राणायांपानायं व्यानायोदानायं प्रतिष्ठायै॥३६॥

चरित्रांयाग्निस्त्वाभि पातु मृह्या स्वस्त्या छुर्दिषा शन्तंमेन तयां देवतंयाङ्गिर्स्वद्भुवा

द्वितीयः प्रश्नः (काण्डम् ४)

सींद। काण्डाँत्काण्डात् प्ररोहंन्ती पर्रुषःपरुषः परिं। एवा नो दूर्वे प्र तंनु सहस्रेण श्तेनं च। या श्तेनं प्रतनोषिं सहस्रेण विरोहंसि। तस्याँस्ते देवीष्टके विधेमं ह्विषां वयम्। अषांढासि सहंमाना सहस्वारांतीः सहंस्वारातीयतः सहंस्व पृतंनाः सहंस्व पृतन्यतः। सहस्रंवीर्या॥३७॥

असि सा मां जिन्व। मधु वातां ऋतायते मधुं क्षरन्ति सिन्धंवः। माध्वींर्नः स्निन्त्वोषंधीः। मधु नक्तंमुतोषसि मधुंमृत्पार्थिव् रजःं। मधु द्यौरंस्तु नः पिता। मधुंमात्रो वन्स्पित्मधुंमार अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः। मृही द्यौः पृथिवी चं न इमं यज्ञिमिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमिभः। तिद्वष्णोः पर्मम्॥३८॥

पुद सदां पश्यन्ति सूर्यः। दिवीव चक्षुरातंतम्। ध्रुवासिं पृथिवि सहंस्व पृतन्यतः। स्यूता देवेभिंर्मृतेनागाः। यास्तें अग्रे सूर्ये रुचं उद्यतो दिवंमात्न्वन्तिं रिश्मिभिः। ताभिः सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि। या वो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचंः। इन्द्रांग्री ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त बृहस्पते। विराट्॥३९॥

ज्योतिरधारयथ्समाङ्ग्रोतिरधारयथ्स्वराङ्क्योतिरधारयत्। अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वांसो देव साधवंः। अरं वहंन्त्याशवंः। युक्ष्वा हि देवहूतंमार् अश्वारं अग्ने र्थीरिव। नि होतां पूर्व्यः संदः। द्रफ्सश्चंस्कन्द पृथिवीमन् द्यामिमं च योनिमन् यश्च पूर्वः। तृतीयं योनिमन्ं संचरंन्तं द्रफ्सं जुंहोम्यन्ं सप्त॥४०॥

होत्राः। अभूदिदं विश्वंस्य भुवंनस्य वाजिनम्ग्नेवैश्वान्रस्यं च। अग्निज्योतिषा ज्योतिष्मान्नुको वर्चसा वर्चस्वान्। ऋचे त्वां रुचे त्वा सिमथ्म्नंवन्ति स्रितो न धेनाः। अन्तरहृदा मनसा पूयमानाः। घृतस्य धारां अभि चांकशीमि। हिर्ण्ययो वेतसो मध्यं आसाम्। तस्मिन्थ्सुपूर्णो मंधुकृत्कुंलायी भजन्नास्ते मधुं देवताभ्यः। तस्यांसते हरयः सप्त तीरैं स्वधां दुहांना अमृतंस्य धाराम्॥४१॥

प्रतिष्ठायै सहस्रवीर्या पर्मं विरादथ्सप्त तीरे चत्वारि च॥————[९]

आदित्यं गर्भम्पयंसा सम्अन्थ्सहस्रंस्य प्रतिमां विश्वरूपम्। परिं वृिङ्क् हरंसा माभि मृक्षः शतायुंषं कृणुहि चीयमानः। इमं मा हि॰सीर्द्विपादंम्पशूना॰ सहस्राक्ष् मेध् आ चीयमानः। मयुमारण्यमन् ते दिशामि तेनं चिन्वानस्तनुवो नि षींद। वातस्य प्राजिं वर्रणस्य नाभिमर्श्वं जज्ञानः संरि्रस्य मध्यैं। शिशुं न्दीनाः हरि्मद्रिंबुद्धमग्गे मा हिर्रसीः॥४२॥

पुरमे व्योमन्न्। इमं मा हि र्सीरेक्शफम्पशूनां केनिकृदं वाजिन् वाजिनेषु। गौरमार्ण्यमन् ते दिशामि तेनं चिन्वानस्तन्वो नि षीद। अजस्त्रिमिन्द्र्मरुषम्भुर्ण्युम्प्निमीडे पूर्विचेत्तौ नमोभिः। स पर्वभिर्ऋतुशः कल्पमानो गां मा हि रसीरदितिं विराजम्। इमर समुद्रर शतधारमुथ्सं व्यच्यमानम्भुवनस्य मध्यै। घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा॥४३॥

हि्रसीः प्रमे व्योमत्र। ग्वयमांरण्यमन् ते दिशामि तेनं चिन्वानस्तनुवो नि षींद। वर्कत्रें त्वष्टुर्वरुणस्य नाभिमविं जज्ञानार रजंसः परंस्मात्। मृहीर सांहुस्रीमसुंरस्य मायामग्ने मा हिर्रसीः परमे व्योमत्र। हुमामूणी्युं वरुणस्य मायां त्वचंम्पशूनां द्विपदां चतुंष्पदाम्। त्वष्टुंः प्रजानां प्रथमं जुनित्रमभ्ने मा हिर्रसीः पर्मे व्योमत्र्। उष्ट्रमार्ण्यमन्॥४४॥

ते दिशामि तेनं चिन्वानस्तनुवो नि षींद। यो अग्निरग्नेस्तप्सोऽधि जातः शोचौत्पृथिव्या उत वां दिवस्परि। येनं प्रजा विश्वकंर्मा व्यानुद्गमंग्ने हेडः परि ते वृणक्तः। अजा ह्यंग्नेरजंनिष्ट् गर्भाथ्सा वा अंपश्यज्ञनितार्मग्रै। तया रोहंमायन्नुप् मेध्यांसस्तयां देवा देवतामग्रं आयत्र। शुरुभमांरुण्यमनुं ते दिशामि तेनं चिन्वानस्तनुवो नि षींद॥४५॥

अग्रे मा हि रसीरग्रे मोष्ट्रमार्ण्यमन् शर्भं नवं च॥------[१०]

इन्द्रौंग्नी रोचना दिवः पिर् वार्जेषु भूषथः। तद्वाँ चेति प्र वीर्यम्। श्रथंद्वृत्रमुत संनोति वाजिमन्त्रा यो अग्नी सहंरी सपूर्यात्। इर्ज्यन्तां वसव्यंस्य भूरेः सहंस्तमा सहंसा वाज्यन्तां। प्र चंर्षिणभ्यंः पृतना हवेषु प्र पृंथिव्या रिरिचाथे दिवश्चं। प्र सिन्धुंभ्यः प्र गि्रिभ्यों महित्वा प्रेन्द्रौंग्नी विश्वा भुवनात्यन्या। मरुतो यस्य हि॥४६॥

क्षये पाथा दिवो विमहसः। स सुंगोपातमो जनः। युज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम्। मर्रुतः शृणुता हवम्। श्रियसे कम्भानुभिः सम्मिमिक्षिरे ते रिश्मिभिस्त ऋकंभिः सुखादयः। ते वाशीमन्त ड्रष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मार्रुतस्य धाम्नः। अवं ते हेड् उदुंत्तमम्। कयां निश्चित्र आ भुवदूती सुदावृंधः सखाः। कया शचिष्ठया वृता।॥४७॥

को अद्य युंङ्के धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हणायून्। आसन्निषून् हृथ्स्वसो मयोभून् य एषाम् भृत्यामृणधथ्स जीवात्। अग्ने नया देवाना् शं नो भवन्तु वाजेवाजे। अपस्वंग्ने सिध्षष्टव सौषंधीरन् रुध्यसे। गर्भे सञ्जायसे पुनः। वृषां सोम द्युमार असि वृषां देव वृषंव्रतः। वृषा धर्माणि दिधषे। इमं में वरुण तत्त्वां यामि त्वं नों अग्ने सत्वं नों अग्ने सत्वं नों अग्ने॥४८॥

हि वृता म् एकांदश च॥———[११]

अपां त्वेमंत्रयं पुरो भुवः प्राचीं ध्रुविक्षिति्रस्यिविरिन्द्राँग्री मा छन्दं आशुिस्त्विवृद्ग्नेर्भागौं-ऽस्येकेयेयमेव सा याग्ने जातानृग्निर्वृत्राणि त्रयोदश॥=[१२] अपां त्वेन्द्राँग्नी इयमेव देवताता षिद्गिर्श्रात्॥36॥ अपां त्वेमंन् हिविषा वर्धनेन॥

॥ तृतीयः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाण्डे तृतीयः प्रश्नः॥

अपां त्वेमंन्थ्सादयाम्यपां त्वोद्मंन्थ्सादयाम्यपां त्वा भस्मंन्थ्सादयाम्यपां त्वा ज्योतिषि सादयाम्यपां त्वायंने सादयाम्यण्वं सदेने सीद समुद्रे सदेने सीद सिल्लेले सदेने सीदापां क्षयें सीदापां सिर्धेष सीदापां त्वा सदेने सादयाम्यपां त्वां सुधस्थें सादयाम्यपां त्वा पुरीषे सादयाम्यपां त्वा पार्थिस सादयामि गायत्री छन्दिस्रिष्टप्रकन्दो जर्गती छन्दीऽनुष्टप्रकन्देः पुङ्किश्रकन्देः॥१॥

अयम्पुरो भुवस्तस्यं प्राणो भौवायनो वंसन्तः प्राणायनो गांयत्री वांसन्ती गांयत्रियै गांयत्रं गांयत्रादंपा १ शुरुपा १ शोस्त्रिवृत्रिवृतो रथन्तर १ रथन्तराद्वसिष्ठ ऋषिः प्रजापंतिगृहीतया त्वया प्राणं गृंह्णाम प्रजाभ्योऽयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य मनो वश्वकर्मणं ग्रीष्मो मांन्सस्त्रिष्ठुग्ग्रैष्मी त्रिष्ठुभं ऐडमै्डादंन्तर्यामाँ ५ त्रयामात् पंश्वद्शः पंश्वद्शाद्वृहद्वृंहृतो भ्रद्धांज् ऋषिः प्रजापंतिगृहीतया त्वया मनः॥ २॥

गृह्णामि प्रजाभ्योऽयम्पश्चाद्विश्वव्यंचास्तस्य चक्षुंर्वैश्वव्यचसं वर्षाणि चाक्षुषाणि जगंती वार्षी जगंत्या ऋक्षंममृक्षंमाच्छुकः शुक्राथ्संप्तदशः संप्तदशाद्वेरूपं वैरूपाद्विश्वामित्र ऋषिः प्रजापंतिगृहीतया त्वया चक्षुंर्गृह्णामि प्रजाभ्यं इदमुंत्तराथ्सुवस्तस्य श्रोत्रर्थं सौवर श्रच्छ्रौत्र्यंनुष्टुप्छांरुघंनुष्टुभंः स्वारः स्वारान्मन्थी मुन्थिनं एकविर्शा एकविर्शाद्वैराजं वैराजाञ्चमदंग्निर्ऋषिः प्रजापंतिगृहीतया॥३॥

श्रोत्रं गृह्णामि प्रजाभ्यं इयमुपरिं मृतिस्तस्यै वाङ्गाती हेंमुन्तो वाँच्यायुनः पुङ्किर्हैमुन्ती पुङ्क्यो निधनंवन्निधनंवत आग्रयुण आंग्रयुणात्रिंणवत्रयस्त्रिष्शौ त्रिणवत्रयस्त्रि र्शाभ्या ५ शाक्तररैवृते शांकररैवृताभ्यां विश्वकुर्मर्षिः प्रजापंतिगृहीतया त्वया वार्चं गृह्णामि प्रजाभ्यः॥४॥

त्वया मनों जुमदेग्निरऋषिः प्रजापंतिगृहीतया त्रिष्शचं॥-----[२]

प्राचीं दिशां वंसन्त ऋतूनामृग्निर्देवता ब्रह्म द्रविणं त्रिवृथ्स्तोम्ः स उं पश्चदशवंतिनुस्त्र्यविवयंः कृतमयानां पुरोवातो वातः सानंग ऋषिदक्षिणा दिशां ग्रीष्म ऋंतूनामिन्द्रों देवता क्षत्रं द्रविणं पश्चदशः स्तोमः स उं सप्तदशवंतीनिर्दित्यवाङ्वयस्रोतायानां दक्षिणाद्वातो वार्तः सनातन् ऋषिः प्रतीची दिशां वर्षा ऋतूनां विश्वे देवा देवता विट्॥५॥

द्रविंण र सप्तद्शः स्तोमः स उवेकवि रशवंतिनिम्निवथ्सो वयो द्वापरोऽयांनाम्पश्चाद्वातो वातोंऽहभून ऋषिरुदींची दिशा श्ररदंतूनाम्मित्रावरुंणौ देवता पुष्टं द्रविणमेकवि श्राः स्तोमः स उं त्रिणुववर्तनिस्तुर्युवाङ्वयं आस्कन्दो-ऽ यानामुत्तराद्वातो वार्तः प्रत्न ऋषिरूर्ध्वा दिशा । हेंमन्तशिशिरावृंतूनाम्बृहस्पतिंर्देवता वर्चो द्रविणं त्रिणवः स्तोमः स उं त्रयस्त्रि १ शर्वतिनिः पष्ठवाद्वयोऽभिभूरयानां विष्वग्वातो वार्तः सुपर्ण ऋषिः पितरः पितामहाः परेऽवंरे ते नः पान्तु ते नोंऽवन्त्वस्मिन्ब्रह्मंत्रस्मिनक्षत्रेंऽस्यामाशिष्यस्याम्पुरोधायांमस्मिन्कर्मन्नस्यां देवहृँत्याम्॥६॥

विद्वष्ठवाङ्वयोऽष्टावि ५ शतिश्च॥____

ध्रुविक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासिं ध्रुवं योनिमा सींद साध्या। उख्यंस्य केतुम्प्रंथमम्पुरस्तांद्श्विनांष्व्यू सांदयतामिह त्वां। स्वे दक्षे दक्षंपितेह सींद देवत्रा पृथिवी बृहती रराणा। स्वासस्था तुनुवा सं विशस्व पितेवैधि सूनव आ मुशेवाश्विनाँध्वर्यू सादयतामिह त्वाँ। कुलायिनी वसुमती वयोधा रुपिं नी वर्ध बहुल ५ सुवीरम्ं।॥७॥

अपामितिं दुर्मितिम्बाधंमाना रायस्पोषें युज्ञपंतिमाभजंन्ती सुवंधेहि यजंमानाय पोषंमिश्वनौध्वर्यू सादयतामिह त्वाँ। अग्नेः पुरीषमिस देवयानी तां त्वा विश्वे अभि

गृंणन्तु देवाः। स्तोमंपृष्ठा घृतवंती्ह सींद प्रजावंदस्मे द्रविणा यंजस्वािश्वनाैध्वर्यू सांदयतामिह त्वाँ। दिवो मूर्धासि पृथिव्या नाभिविष्टम्भंनी दिशामधिपत्नी भुवंनानाम्।॥८॥

सुवीरं भुवंनानामुर्व्या सप्तदंश च॥_____

त्र्यविर्वयंश्विष्टुप्छन्दों दित्यवाङ्वयों विराद्धन्दः पश्चांविर्वयों गायत्री छन्दंश्विव्थ्सो वयं उण्णिहा छन्दंस्तुर्यवाङ्वयोंऽनुष्टुप्छन्दंः पष्टवाद्वयों बृह्ती छन्दं उक्षा वयंः स्तोबृहती छन्दं ऋष्मो वयंः कुकुच्छन्दों धेनुर्वयो जगंती छन्दोंऽनुङ्वान् वयंः पङ्किश्छन्दों ब्स्तो वयों विवलं छन्दों वृष्णिर्वयों विशालं छन्दः पुरुषों वयंस्तन्द्रं छन्दौं व्याघ्रो वयोऽनांधृष्टं छन्दंः सिन्द्हों वयंश्छदिश्छन्दों विष्टम्भो वयोऽधिपतिश्छन्दः क्षत्रं वयो मयंदं छन्दों विश्वकंर्मा वयोः परमेष्ठी छन्दो मूर्धा वयंः प्रजापंतिश्छन्दः॥१०॥

पुर्रुषो वयष्यिङ्गिर्शतिश्च॥_____

—Г., 1

इन्द्रांग्री अव्यंथमानामिष्टंकां द॰हतं युवम्। पृष्ठेन द्यावांपृथिवी अन्तरिक्षं च् वि बांधताम्॥ विश्वकंमां त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचंस्वतीम्प्रथंस्वतीम्भास्वंती॰ सूरिमतीमा या द्याम्भास्या पृंथिवोमोर्वन्तरिक्षम्नतिरक्षं यच्छान्तरिक्षं द॰हान्तरिक्षं मा हि॰सीर्विश्वंस्मै प्राणायांपानायं व्यानायोदानायं प्रतिष्ठाये चरित्रांय वायुस्त्वाभि पांतु मृह्या स्वस्त्या छुर्दिषा॥११॥

शन्तंमेन तयां देवतंयाङ्गिरस्वद्भुवा सींद। राज्ञ्यंसि प्राची दिग्वराडंसि दक्षिणा दिख्सम्राडंसि प्रतीची दिख्स्वराड्स्युदींची दिगिधंपल्यिस बृह्ती दिगायुंमें पाहि प्राणं में पाह्मपानं में पाहि व्यानं में पाहि चक्षुंमें पाहि श्रोत्रं मे पाहि मनों मे जिन्व वाचें मे पिन्वात्मानं मे पाहि ज्योतिंमें यच्छ॥१२॥

छर्दिषां पिन्व षट्टं॥____

मा छन्दंः प्रमा छन्दंः प्रतिमा छन्दौंऽस्रीविश्छन्दंः पङ्किश्छन्दं उष्णिह्य छन्दों बृह्ती छन्दोंऽनुष्टुप्छन्दों विराहुन्दों गायत्री छन्दोस्रिष्टुप्छन्दो जर्गती छन्दंः पृथिवी छन्दोऽन्तिरिक्षं छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षंत्राणि छन्दो मनुश्छन्दो वाक्छन्दंः कृषिश्छन्दो हिरंण्यं छन्दो गौश्छन्दोऽजा छन्दोऽश्वश्छन्दं। अग्निर्देवता॥१३॥

वातों देवता सूर्यों देवतां चन्द्रमां देवता वसंवो देवतां रुद्रा देवतांदित्या देवता विश्वें देवा देवतां मुरुतों देवता बृह्स्पतिंदेवतेन्द्रों देवता वर्रुणो देवतां मूर्धासि राङ्गुवासि धुरुणां युच्चंसि यमित्रीषे त्वोर्जे त्वां कृष्यै त्वा क्षेमांय त्वा यन्त्री राङ्गुवासि धर्रणी धर्त्रांसि धरित्र्यायुषे त्वा वर्चसे त्वौजंसे त्वा बलांय त्वा॥१४॥

देवताऽऽर्युषे त्वा षद्वं॥———[७]

आशुस्त्रिवृद्धान्तः पंश्चद्शो व्योम सप्तद्शः प्रतूर्तिरष्टाद्शस्तपो नवद्शोऽभिवृर्तः संविर्शो धरुणं एकविर्शो वर्चौ द्वाविर्शः सम्भरंणस्त्रयोविर्शो योनिश्चतुर्विर्शो गर्भौः पश्चविर्श ओजंस्त्रिण्वः ऋतुरेकित्रिर्शः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिर्शो ब्रध्नस्यं विष्टपं चतुस्त्रिर्शो नाकंः षिद्वरशो विवर्तौऽष्टाचत्वारिरशो धर्तश्चंतुष्टोमः॥१५॥

आृशुः सप्तित्रिर्श्शत्॥————[८]

अग्नेर्भागोऽसि दीक्षाया आधिपत्यं ब्रह्मं स्पृतं त्रिवृथ्स्तोम् इन्द्रंस्य भागोऽसि विष्णोराधिपत्यं क्षत्र स्पृतम्पंश्रदशः स्तोमो नृचक्षंसाम्भागोऽसि धातुराधिपत्यं जनित्र स्पृतः संप्तदशः स्तोमो मित्रस्यं भागोऽसि वर्रणस्याधिपत्यं दिवो वृष्टिर्वाताः स्पृता एंकिविश्शः स्तोमोऽदित्यै भागोऽसि पूष्ण आधिपत्यमोजः स्पृतं त्रिणवः स्तोमो वसूनाम्भागो-ऽसि॥१६॥

रुद्राणामाधिपत्यं चतुंष्पाथस्पृतं चतुर्विर्शः स्तोमं आदित्यानां भागोऽसि म्रुतामाधिपत्यं गर्भाः स्पृताः पश्चिव्रशः स्तोमो देवस्यं सिव्तुर्भागोऽसि बृह्स्पतेराधिपत्यः सुमीचीर्दिशः स्पृताश्चेतुष्टोमः स्तोमो यावानाम्भागोऽस्ययावानामाधिपत्यं प्रजाः स्पृताश्चेतुश्चत्वारिर्शः स्तोमं ऋभूणाम्भागोऽसि विश्वेषां देवानामाधिपत्यम्भूतं निशान्तः स्पृतं त्रेयस्त्रिर्शः स्तोमः॥१७॥

वसूनां भागोऽसि षद्वंत्वारिश्शच॥———[९]

एकंयास्तुवत प्रजा अंधीयन्त प्रजापंतिरिधंपितरासीत्तिसृभिंरस्तुवत् ब्रह्मांसृज्यत् ब्रह्मणस्पितरिधंपितरासीत् पश्चिभंरस्तुवतं भृतान्यंसृज्यन्तं भृतानाम्पितरिधंपितरासीथ्सप्तिभंरस्तुवतं सप्तर्षयोऽसृज्यन्त धातािधंपितरासीत्रविभंरस्तुवतं पितरोऽसृज्यन्तािदितिरिधंपत्र्यासीदेकाद्शिभंर ऽसृज्यन्तार्त्वोऽधिंपितरासीत् त्रयोद्शिभंरस्तुवत् मासां असृज्यन्तं संवथ्सरोऽधिंपितिः॥१८॥

आसीत्पश्चद्रशभिरस्तुवत क्षुत्रमंसृज्यतेन्द्रोऽधिपितरासीथ्सप्तद्शभिरस्तुवत पृशवीं-ऽसृज्यन्त बृह्स्पित्रिधिपितरासीन्नवद्शभिरस्तुवत शूद्रार्यावंसृज्येतामहोरात्रे अधिपत्नी आस्तामेकंवि॰शत्यास्तुवतैकंशफाः पृशवींऽसृज्यन्त वरुणोऽधिपितरासीन्नश्योवि॰शत्यास्तुवत क्षुद्राः पृशवोंऽसृज्यन्त पृषाधिपितरासीत्पश्चवि॰शत्यास्तुवतार्ण्याः पृशवोंऽसृज्यन्त वायुरिधपितिरासीथ्सुप्तवि॰शत्यास्तुवत् द्यावापृथिवी वि॥१९॥

ऐतां वसंवो रुद्रा आंदित्या अनु व्यायन्तेषामाधिपत्यमासीन्नवंवि शत्यास्तुवत् वन्स्पतंयोऽसृज्यन्त् सोमोऽधिपतिरासीदेकंत्रि श्वतास्तुवत प्रजा अंसृज्यन्त् यावानां चाधिपत्यमासीन्नयंश्वि श्वतास्तुवत भूतान्यंशाम्यन्प्रजापंतिः परमेष्ठाधिपतिरासीत्॥२०॥

सं वृथ्सरोऽधिपतिर्वि पश्चेत्रि<शच॥_____

-[80]

ड्यमेव सा या प्रंथमा व्यौच्छंदन्तर्स्यां चंरित प्रविष्टा। वृधूर्जजान नवगञ्जनित्री त्रयं एनाम्मिह्मिनः सचन्ते॥ छन्दंस्वती उषसा पेपिशाने समानं योनिमन् संचरंन्ती। सूर्यपत्नी वि चंरतः प्रजानती केतुं कृण्वाने अजरे भूरिरेतसा॥ ऋतस्य पन्थामन् तिस्र आगुम्नयों घुर्मासो अनु ज्योतिषागुः। प्रजामेका रक्षत्यूर्जुमेका॥२१॥

व्रतमेकां रक्षति देवयूनाम्॥ चृतुष्ट्येमो अंभवद्या तुरीयां यज्ञस्यं पृक्षावृषयो भवंन्ती। गायत्रीं त्रिष्टुमं जगंतीमनुष्टुभंम्बृहद्कं युंआनाः सुवराभंरत्रिदम्॥ पृश्चभिर्धाता वि दंधाविदं यत्तासा्ड् स्वसॄंरजनयृत्पश्चंपश्च। तासांमु यन्ति प्रयवेण पश्च नानां रूपाणि ऋतंवो वसानाः॥ त्रिष्ट्रशथ्स्वसांर् उपं यन्ति निष्कृत संमानं केतुम्प्रतिमुश्चमानाः॥॥२२॥

ऋतू इस्तंन्वते क्वयंः प्रजान्तीर्मध्येछन्दसः परि यन्ति भास्वंतीः। ज्योतिष्मती प्रतिं मुञ्जते नभो रात्रीं देवी सूर्यस्य ब्रतानिं। वि पंश्यन्ति पृशवो जायंमाना नानांरूपा मातुर्स्या उपस्थैं। एकाष्ट्रका तपंसा तप्यंमाना ज्जान् गर्भम्मिहुमान्मिन्द्रम्। तेन् दस्यून्व्यंसहन्त देवा हुन्तासुराणामभव्च्छचींभिः। अनानुजामनुजाम्मामंकर्त सत्यं वदन्त्यन्विच्छ एतत्। भूयासम्॥२३॥

अस्य सुमृतौ यथां यूयमृन्या वों अन्यामित मा प्र युंक्त। अभून्ममं सुमृतौ विश्ववेदा आष्टं प्रतिष्ठामिवेदिद्धि गाधम्। भूयासंमस्य सुमृतौ यथां यूयमृन्या वों अन्यामित मा प्र युंक्त। पश्च व्युष्टीरनु पश्च दोहा गां पश्चनाम्नीमृतवोऽनु पश्च। पश्च दिशः पश्चदशेन् क्कप्ताः संमानमूर्भीरिभे लोकमेकम्॥२४॥

ऋतस्य गर्भः प्रथमा व्यूषुष्यपामेकां मिह्मानंग्विभित्तं। सूर्यस्यैका चरित निष्कृतेषुं धर्मस्यैकां सिव्तैकां नि यंच्छति। या प्रथमा व्यौच्छ्रथ्सा धेनुरंभवद्यमे। सा नः पर्यस्वती धुक्ष्वोत्तरामुत्तराष्ट्र समाम्। शुक्रर्षभा नभंसा ज्योतिषागाँद्विश्वरूपा शब्लीर्ग्निकेतुः। समानमर्थक्षं स्वपस्यमाना बिभ्रंती ज्रामंजर उष् आगाः। ऋतूनाम्पत्नीं प्रथमेयमागादहाँ नेत्री जंनित्री प्रजानाम्। एकां सती बंहुधोषो व्यंच्छ्रस्यजीणां त्वं जंरयसि सर्वमन्यत्॥२५॥

ऊर्जुमेका प्रतिमुश्रमांना भूयासमेकं पत्येकान्नवि १ शतिश्वं॥———[११]

अभ्रें जातान्त्र णुंदा नः सपत्नान्त्रत्यजांताञ्चातवेदो नुदस्व। अस्मे दींदिहि सुमना अहंडन्तवं स्यार् शर्मित्रवर्रूक्ष उद्भित्। सहंसा जातान्त्र णुंदा नः सपत्नान्त्रत्यजांताञ्चातवेदो नुदस्व। अधि नो ब्रूहि सुमन्स्यमांनो वयक्ष स्याम् प्र णुंदा नः सपत्नान्। चतुश्चत्वारिर्शः स्तोमो वर्चो द्रविण पेष्ठिकाः स्तोम् ओजो द्रविण पृथिव्याः पुरीषमसि॥२६॥

अफ्सो नामं। एव्ष्छन्दो वरिव्ष्छन्दः शुम्भूष्छन्दः परिभूष्छन्दं आच्छच्छन्दो मन्ष्छन्दो व्यच्ष्रछन्दः सिन्धुष्छन्दः समुद्रं छन्दः सिन्छिन्छं छन्दः संयच्छन्दो वियच्छन्दो बृहच्छन्दो रथन्तुरं छन्दो निकायश्छन्दो विव्ध्ष्रछन्दो गिर्ष्छन्दो अजुश्छन्दः सृष्टुप्छन्दोऽनुष्टुप्छन्दः कुकुच्छन्देस्त्रिकुकुच्छन्देः काव्यं छन्दौऽङ्कुपं छन्दः॥२७॥

प्रदर्पङ्किश्छन्दोऽक्षरंपङ्किश्छन्दो विष्टारपंङ्किश्छन्देः क्षुरो भृज्वाञ्छन्देः प्रच्छच्छन्देः प्रक्षिश्छन्द एवश्छन्दो विर्शेवश्छन्दो वयश्छन्दो वयस्कृच्छन्दो विशालं छन्दो विष्पंर्धाश्छन्देश्छिदिश्छन्दो दूरोहुणं छन्देस्तुन्द्रं छन्दोऽङ्काङ्कं छन्देः॥२८॥

अग्निर्वृत्राणिं जङ्कनद्रविणस्युर्विपन्ययाँ। सिर्मिद्धः शुक्र आहुंतः॥ त्व॰ सोमासि सत्पंतिस्त्व॰ राजोत वृंत्रहा। त्वं भद्रो अंसि कर्तुः॥ भद्रा तें अग्ने स्वनीक सन्दग्घोरस्य स्तो विषुणस्य चार्रः। न यत्ते शोचिस्तमंसा वरंन्त न ध्वस्मानंस्तुनुवि रेप आ धुः॥ भुद्रं ते अग्ने सहसिन्ननीकमुपाक आ रोचते सूर्यस्य।॥२९॥

रुशंदृशे दंदशे नक्त्या चिदरूँक्षितं दृश आ रूपे अन्नम्। सैनानींकेन सुविदन्नों अस्मे यष्टां देवार आयंजिष्ठः स्वस्ति। अदंब्यो गोपा उत नंः पर्स्पा अग्नें द्युमदुत रेविहेंदीहि। स्वस्ति नों दिवो अग्ने पृथिव्या विश्वायुंधेहि युज्जथांय देव। यथ्सीमहिं दिविजात् प्रशंस्तुं तद्स्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्। यथां होतुर्मनुंषः॥३०॥

देवतांता युज्ञेभिः सूनो सहस्मे यजांसि। एवानो अद्य संमुना संमानानुशन्नंग्र उश्तो यक्षि देवान्॥ अग्निमींडे पुरोहिंतं युज्ञस्यं देवमृत्विजम्। होतांर र रब्धातंमम्॥ वृषां सोम द्युमार असि वृषां देव वृषंव्रतः। वृषा धर्माणि दिधषे॥ सान्तंपना इदर ह्विर्मरुत्स्तज्ञंजुष्टन। युष्माकोती रिशादसः॥ यो नो मर्तो वसवो दुर्हणायुस्तिरः स्त्यानिं मरुतः॥३१॥

जिघारंसात्। द्रुहः पाशुं प्रति स मुंचीष्ट् तिपेष्ठेन् तपंसा हन्तना तम्। संव्थस्तरीणां मुरुतः स्वकां उंश्क्षयाः सर्गणा मानुंषेषु। तैंउस्मत्पाशान्त्र मुंश्चन्त्वरहंसः सान्तप्ना मंदिरा मादियृष्णवंः। पिप्रीहि देवार उंश्वतो यंविष्ठ विद्वार ऋतूरर्ऋतुपते यजेह। ये देव्यां ऋत्विज्रस्तेभिरग्ने त्वर होतृंणाम्स्यायंजिष्ठः। अग्ने यदद्य विशो अध्वरस्य होतः पावंक॥३२॥

शोचे वेष्व हे यज्वाँ। ऋता यंजासि मिहना वि यद्भ्रह्व्या वंह यविष्ठ या ते अद्या अग्निनां रियमंश्रवृत्योषंमेव दिवेदिवे। यशसंं वीरवंत्तमम्॥ गृयस्फानों अमीवृहा वंसुवित्युंष्टिवर्धनः। सुमित्रः सोम नो भव। गृहंमेधास आ गंत मरुतो मापं भूतन। प्रमुश्चन्तों नो अर्हंसः। पूर्वीभिर्हि दंदाशिम श्राद्धिंमंरुतो व्यम्। महोंभिः॥३३॥

च्र्षणीनाम्। प्र बुप्नियां ईरते वो महार्रसि प्र णामांनि प्रयज्यवस्तिरध्वम्। सहस्मियं दम्यम्भागमेतं गृहमेधीयम्मरुतो जुषध्वम्। उप यमेतिं युवृतिः सुदक्षं दोषा वस्तोर्ंह्विष्मंती घृताचीं। उप स्वैनंम्रमंतिर्वसूयुः। इमो अंग्ने वीततमानि ह्व्याजंस्रो विक्षे देवतांतिमच्छं। प्रतिं न ईर सुर्भीणिं वियन्तु। क्रीडं वः शर्धो मारुतमनुर्वाणरं रथेशुभम्।॥३४॥

कण्वां अभि प्र गांयत। अत्यांसो न ये मुरुतः स्वश्चों यक्षुदृशो न शुभयंन्त मर्याः। ते हंम्येष्टाः शिशंवो न शुभा वृथ्सासो न प्रंक्तीडिनः पयोधाः। प्रैषामज्मेषु विथुरेवं रेजते भूमियांमेषु यद्धं युअते शुभे। ते क्रीडयो धुनयो भ्राजंदृष्टयः स्वयं महित्वं पंनयन्त धूतंयः। उपह्नुरेषु यदचिध्वं यृथिं वयं इव मरुतः केनं॥३५॥

चित्पथा। श्रोतंन्ति कोशा उपं वो रथेष्वा घृतमुंक्षता मध्रवर्णमर्चते। अग्निमंग्निष्ट् हवींमिभः सदां हवन्त विश्पितिम्। ह्व्यवाहं पुरुप्रियम्। त॰ हि शश्चन्त ईडंते स्रुचा देवं घृतश्चतां। अग्नि॰ ह्व्याय वोढंवे। इन्द्रांग्नी रोचना दिवः श्रथंद्वृत्रमिन्द्रं वो विश्वतस्परीन्द्रं नरो विश्वंकर्मन् ह्विषां वावृधानो विश्वंकर्मन् ह्विषा वर्धनेन॥३६॥

सूर्यस्य मर्नुषो मरुतः पावंक महोभी रथेशुभं केन् षद्वंत्वारि शच्च॥———[१३] रिश्मरंसि राज्ञ्यंस्ययं पुरो हरिकेशोऽग्निर्मूर्धेन्द्राग्निभ्यां बृह्स्पतिं भूयस्कृदंस्यग्निनां विश्वाषाद्वृजापंति मर्नन्सा कृत्तिका मध्रश्च समिद्दिशान्द्वादंश॥——[१४] रिश्मरंसि प्रति धेनुमंसि स्तनिय बुसनिरस्यादित्याना स्सित्रि श्रेष्ठात्॥37॥ रिश्मरंसि को अद्य युंद्वे॥

॥चतुर्थः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाण्डे चतुर्थः प्रश्नः॥

र्श्मिरंसि क्षयांय त्वा क्षयं जिन्व प्रेतिंरसि धर्माय त्वा धर्मं जिन्वान्विंतिरसि दिवे त्वा दिवं जिन्व संधिरंस्यन्तिरंक्षाय त्वान्तिरंक्षं जिन्व प्रतिधिरंसि पृथिव्यै त्वां पृथिवीं जिन्व विष्टम्भोऽसि वृष्ट्यै त्वा वृष्टिं जिन्व प्रवास्यह्वे त्वाहंर्जिन्वानुवासि रात्रियै त्वा रात्रिं जिन्वोशिगंसि॥१॥

वसुंभ्यस्त्वा वसूँश्चिन्व प्रकेतोंऽसि रुद्रेभ्यंस्त्वा रुद्राश्चिन्व सुदीतिरंस्यादित्येभ्यंस्त्वा ऽऽदित्याश्चिन्वौजोंऽसि पितृभ्यंस्त्वा पितृश्चिन्व तन्तुंरिस प्रजाभ्यंस्त्वा प्रजा जिन्व पृतनाषाडंिस पृशुभ्यंस्त्वा पृशूञ्चिन्व रेवद्स्योषंधीभ्यस्त्वौषंधीर्जिन्वाभिजिदंिस युक्तग्रावेन्द्रांय त्वेन्द्रं जिन्वाधिपतिरिस प्राणायं॥२॥

त्वा प्राणं जिन्व यन्तास्यंपानायं त्वापानं जिन्व स्र्सर्पोऽसि चक्षंषे त्वा चक्षंजिन्व वयोधा असि श्रोत्राय त्वा श्रोत्रं जिन्व त्रिवृदंसि प्रवृदंसि संवृदंसि विवृदंसि सररोहोंऽसि नीरोहोंऽसि प्ररोहोंऽस्यनुरोहोंऽसि वसुकोंऽसि वेषंश्रिरसि वस्यंष्टिरसि॥३॥

उ्शिर्गसि प्राणाय त्रिचंत्वारिर्शच॥______[१

राज्यंसि प्राची दिग्वसंवस्ते देवा अधिपतयोऽग्निर्हेतीनाम्प्रंतिधर्ता त्रिवृत्त्वा स्तोमंः पृथिव्याः श्रंयत्वाज्यंमुक्थमव्यंथयथ्स्तभातु रथन्तुरः साम् प्रतिष्ठित्ये विराडंसि दक्षिणा दिग्रुद्रास्ते देवा अधिपतय् इन्द्रों हेतीनाम्प्रंतिधर्ता पंश्चद्रशस्त्वा स्तोमंः पृथिव्याः श्रंयतु प्रउंगमुक्थमव्यंथयथ्स्तभातु बृहथ्साम् प्रतिष्ठित्ये सुम्राडंसि प्रतीची दिक्॥४॥

आदित्यास्ते देवा अधिपतयः सोमों हेतीनाम्प्रंतिधृता संप्तद्रशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याः श्रंयत् मरुत्वतीयंमुक्थमव्यंथयथ्स्तभ्रात् वैरूपः साम् प्रतिष्ठित्ये स्वराष्ट्रस्युदींची दिग्विश्वं ते देवा अधिपतयो वर्रुणो हेतीनाम्प्रंतिधृर्तेकंविःशास्त्वा स्तोमः पृथिव्याः श्रंयत् निष्कंवत्यमुक्थमव्यंथयथ्स्तभ्रात् वैराजः साम् प्रतिष्ठित्या अधिपत्यसि बृह्ती दिङ्गरुत्तंस्ते देवा अधिपतयः॥५॥

बृह्स्पतिंर्हेतीनाम्प्रंतिधृतां त्रिणवत्रयिश्विष्शौ त्वा स्तोमौ पृथिव्याः श्रंयतां वैश्वदेवाग्निमारुते उक्थे अव्यंथयन्ती स्तभ्रीताः शाक्कररैवृते सामनी प्रतिष्ठित्या अन्तरिंक्षायर्षयस्त्वा प्रथम्जा देवेषुं दिवो मात्रया विर्णा प्रथन्तु विधृतां चायमिष्रंपितिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकंस्य पृष्ठे सुंवर्गे लोके यर्जमानं च सादयन्तु॥६॥

प्रतीची दिङ्गुरुतंस्ते देवा अधिपतयश्चत्वारिष्शचं॥_____[२]

अयम्पुरो हरिकेशः सूर्यरिश्मस्तस्यं रथगृथ्सश्च रथौंजाश्च सेनानिग्रामृण्यौ पुञ्जिकस्थला चं कृतस्थला चौफ्सरसौ यातुधानां हेती रक्षार्थसि प्रहेतिर्यं देक्षिणा विश्वकंर्मा तस्यं रथस्वनश्च रथेंचित्रश्च सेनानिग्रामृण्यौ मेनका चं सहजुन्या चौफ्सरसौ दङ्खवंः पृशवों हेतिः पौरुषेयो वधः प्रहेतिर्यम्पश्चाद्विश्वव्यंचास्तस्य रथप्रोत्श्चासंमरथश्च सेनानिग्रामृण्यौ प्रम्लोचन्ती च॥७॥

अनुम्लोचेन्ती चापस्रसौं सूर्पा हेतिर्व्याघाः प्रहेतिर्यमुंत्त्राथ्स्यद्वंसुस्तस्यं सेन्जिचं सुषेणंश्च सेनानिग्राम्ण्यौं विश्वाचीं च घृताचीं चापस्रसावापों हेतिर्वातः प्रहेतिर्यमुपर्यवाग्वंसुस्तस्य तार्क्ष्यश्चारिष्ठनेमिश्च सेनानिग्राम्ण्यांबुर्वशीं च पूर्वचित्तिश्चापस्रसौ विद्युद्धेतिरंवस्फूर्ज्नप्रहेंतिस्तेभ्यो नम्स्ते नों मृडयन्तु ते यम्॥८॥

द्विष्मो यश्चं नो द्वेष्टि तं वो जम्भं दधाम्यायोस्त्वा सदंने सादयाम्यवंतश्छायायां नमः समुद्राय नमः समुद्रस्य चक्षंसे परमेष्ठी त्वां सादयतु दिवः पृष्ठे व्यचंस्वतीम्प्रथंस्वतीं विभूमंतीम्प्रभूमंतीं पिर्भूमंतीं दिवं यच्छु दिवं द १ ह दिवं मा हि रंसीविश्वंस्मै प्राणायापानायं व्यानायोदानायं प्रतिष्ठाये चरित्रांय सूर्यस्त्वाभि पांतु महा स्वस्त्या छुर्दिषा शन्तंमेन तयां देवतंयाङ्गिर्स्बद्ध्वा सींद। प्रोथदश्चो न यवंसे अविष्यन् यदा महः संवरंणाद्धस्थांत्। आदंस्य वातो अनुं वाति शोचिरधं स्म ते व्रजनं कृष्णमंस्ति॥९॥

प्रम्लोचंन्ती च य स्वस्त्याष्टावि शितिश्च॥

___[2]

अग्निर्मूर्धा दिवः कुकुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपार रेतार्रसि जिन्वति॥ त्वामंग्ने पुष्कंरादध्यथंर्वा निरंमन्थत। मूर्ग्नो विश्वंस्य वाघतः॥ अयम्ग्निः संहुम्भिणो वाजंस्य श्तिन्स्पतिः। मूर्धा कुवी रंयीणाम्॥ भुवी यज्ञस्य रजंसश्च नेता यत्रो नियुद्भिः सर्चसे शिवाभिः। दिवि मूर्धाने दिधेषे सुवर्षां जिह्वामंग्ने चकृषे हव्यवाहम्॥ अबौध्यग्निः स्मिधा जनांनाम्॥१०॥

प्रति धेनुमिवायतीमुषासम्। यह्वा इंव् प्र व्यामुज्जिहांनाः प्र भानवः सिस्रते नाक्मच्छं। अवोचाम क्वये मेध्याय वचो वन्दारु वृष्भाय वृष्णे। गविष्ठिरो नमंसा स्तोमंमुग्नौ दिवीवं रुक्ममुर्व्यश्चमश्रेत्। जनंस्य गोपा अंजनिष्ट् जागृंविर्ग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे। घृतप्रतीको बृह्ता दिविस्पृशां द्युमद्वि भांति भरतेभ्यः शुचिः। त्वामंग्ने अङ्गिरसः॥११॥

गुहां हितमन्वंविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने। स जांयसे मृथ्यमांनः सहों मृहत्त्वामांहुः सहंसस्पुत्रमंङ्गिरः। युज्ञस्यं केतुम्प्रंथमम्पुरोहितमृग्निं नरिश्लिषधस्थे सिर्मन्धते। इन्द्रेण देवैः स्रथ्र स ब्र्हिष् सीदिन्नि होतां युज्ञथांय सुक्रतुः। त्वं चित्रश्रवस्तम् हवंन्ते विक्षु जन्तवः। शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्नें हृव्याय् वोढंवे। सर्खायः सं वंः सुम्यश्रुमिषम्॥१२॥

स्तोमं चाुग्रयें। वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो निष्ठे सहंस्वते। सरस्मिद्युंवसे वृष्त्रग्रे विश्वान्यर्य आ। इडस्पदे सिमेध्यसे स नो वसून्या भेर। एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे। प्रियं चेतिष्ठमर्तिः स्वध्यरं विश्वस्य दूतम्मृतम्। स योजते अरुषो विश्वभोजसा स दुंद्रवृथ्स्वाहुतः। सुब्रह्मां युज्ञः सुशर्मी॥१३॥ वसूनां देव राधो जनानाम्। उदंस्य शोचिरंस्थादाजुह्वानस्य मीदुषंः। उद्धूमासो अरुषासो दिविस्पृशः समृग्निर्मिन्थते नरंः। अग्ने वार्जस्य गोमंत ईशानः सहसो यहो। अस्मे धेहि जातवेदो मिहु श्रवंः। स इंधानो वसुंष्क्वविर्ग्निरीडेन्यों गिरा। रेवद्स्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि। क्षुपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोंकृतोषसंः। स तिंग्मजम्भ॥१४॥

रक्षसों दह प्रतिं। आ तें अग्न इधीमिह चुमन्तंं देवाजरम्ँ। यद्ध स्या ते पनींयसी समिद्दीदर्यति द्यवीष र्रं स्तोतृभ्य आ भर। आ तें अग्न ऋचा हृिवः शुक्रस्यं ज्योतिषस्पते। सुश्चन्द्र दस्म विश्पेते हव्यंवाद्गुभ्य हृयत् इष स्तोतृभ्य आ भर। उमे सुश्चन्द्र सिर्पेषो दर्वी श्रीणीष आसिनं। उतो न उत्पूंपूर्याः॥१५॥

उक्थेषुं शवसस्पत् इष इंस्तोतृभ्य आ भंर। अग्ने तम्द्याश्वं न स्तोमैः कतुं न भृद्र १ हिंदिस्पृशम्ं। ऋध्यामां त ओहैंः। अधा हांग्ने कतौंर्भृद्रस्य दक्षंस्य साधोः। रथीर्ऋतस्यं बृह्तो बुभूथं। आभिष्टं अद्य गीर्भिर्गृणन्तोऽग्ने दाशेम। प्र ते दिवो न स्तंनयन्ति शुष्माः। एभिर्नो अर्कभवां नो अर्वाङ्॥१६॥

सुवर्न ज्योतिः। अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः। अग्नि॰ होतांरम्मन्ये दास्वन्तं वसौः सूनु॰ सहंसो जातवेदसम्। विप्रं न जातवेदसम्। य ऊर्ध्वयाँ स्वध्वरो देवो देवाच्यां कृपा। घृतस्य विभ्रांष्टिमनुं शुक्रशोचिष आजुह्वांनस्य सूर्पिषः। अग्ने त्वन्नो अन्तंमः। उत त्राता शिवो भव वरूथ्यः। तं त्वां शोचिष्ठ दीदिवः। सुम्नायं नूनमीमहे सर्खिभ्यः। वसुंरग्निर्वसृंश्रवाः। अच्छां निक्ष द्युमत्तंमो रुपिं दाः॥१७॥

जनांनामङ्गिरस् इषर् सुशर्मी तिग्मजम्भ पुपूर्या अर्वाङ्घसुंश्रवाः पञ्चं च॥———[४]

इन्द्राग्निभ्यां त्वा स्युजां युजा युंनज्म्याघाराभ्यां तेजंसा वर्चसोक्थेभिः स्तोमेंभिश्छन्दोंभी रय्ये पोषांय सजातानांम्मध्यमस्थेयांय मयां त्वा स्युजां युजा युंनज्म्यम्बा दुला नित्तिबर्भ्रयंन्ती मेघयंन्ती व्र्षयंन्ती चुपुणीका नामांसि प्रजापंतिना त्वा विश्वाभिर्धीभिरुपं दथामि पृथिर्व्युदपुरमन्नेन विष्टा मंनुष्यांस्ते गोप्तारोऽग्निर्वियंत्तोऽस्यां तामहम्प्र पंद्ये सा॥१८॥

मे शर्म च वर्म चास्त्वधिद्यौर्न्तिरक्षं ब्रह्मणा विष्टा मुरुतंस्ते गोप्तारो वायुर्वियंत्तोऽस्यां तामहम्प्र पद्ये सा मे शर्म च वर्म चास्तु द्यौरपंराजितामृतेन विष्टादित्यास्ते गोप्तारः सूर्यो वियंत्तोऽस्यां तामहम्प्र पंद्ये सा मे शर्म च वर्म चास्तु॥१९॥

साऽष्टाचेत्वारि १शच॥_____[५]

बृह्स्पतिंस्त्वा सादयतु पृथिव्याः पृष्ठे ज्योतिष्मतीं विश्वंस्मै प्राणायांपानाय विश्वं ज्योतिंपच्छाग्निस्तेऽधिपतिर्विश्वकंमां त्वा सादयत्वन्तिरक्षस्य पृष्ठे ज्योतिंष्मतीं विश्वंस्मै प्राणायांपानाय विश्वं ज्योतिंपच्छ वायुस्तेऽधिपतिः प्रजापितस्त्वा सादयतु दिवः पृष्ठे ज्योतिष्मतीं विश्वंस्मै प्राणायांपानाय विश्वं ज्योतिंपच्छ परमेष्ठी तेऽधिपतिः पुरोवात्सिनिरस्यभ्रसिनंरसि विद्युथ्सिनैः॥२०॥

असि स्तुन्यिबुसनिरसि वृष्टिसनिरस्यग्नेर्यान्यंसि देवानांमग्नेयान्यंसि वायोर्यान्यंसि देवानां वायोयान्यंस्यन्तिरक्षिस्य यान्यंसि देवानांमन्तिरक्षयान्यंस्यन्तिरक्षिमस्यन्तिरक्षाय त्वा सिल्लिलायं त्वा सर्णीकाय त्वा सतींकाय त्वा केतांय त्वा प्रचेतसे त्वा विवंस्वते त्वा दिवस्त्वा ज्योतिष आदित्येभ्यंस्त्वचे त्वां रुचे त्वां द्युते त्वां भासे त्वा ज्योतिषे त्वा यशोदां त्वा यशंसि तेजोदां त्वा तेजंसि पयोदां त्वा पर्यसि वर्चोदां त्वा वर्चसि द्रविणोदां त्वा द्रविणे सादयामि तेनर्षिणा तेन ब्रह्मणा तयां देवतंयाङ्गिरस्वद्भवा सीद॥२१॥

विद्युथ्सिनेर्द्युत्वैकान्नत्रिर्शार्च॥------[६]

भूयस्कृदंसि विश्वस्कृदंसि प्राच्यंस्यूर्ध्वास्यंन्तिरिक्षसदंस्यन्तिरिक्षे सीदाफ्सुषदंसि श्येन्सदंसि गृध्रसदंसि सुपर्णसदंसि नाकुसदंसि पृथिव्यास्त्वा द्रविणे सादयाम्यन्तिरिक्षस्य त्वा द्रविणे सादयामि दिवस्त्वा द्रविणे सादयामि दिवशं त्वा द्रविणे सादयामि द्रविणोदां त्वा द्रविणे सादयामि प्राणं में पाह्यपानं में पाहि व्यानम्मे॥२२॥

पाह्मार्युर्मे पाहि विश्वार्युर्मे पाहि सर्वार्युर्मे पाह्मग्ने यत्ते पर्श् हन्नाम् तावेहि सर्रिभावहै पार्श्वजन्येष्वप्येष्ट्यग्ने यावा अर्यावा एवा ऊमाः सब्दः सर्गरः सुमेकंः॥२३॥

व्यानम्मे द्वात्रिर्श्शच॥————[७]

अग्निनां विश्वाषादथ्सूर्येण स्वराद्भत्वा शचीपतिर्ऋष्भेण त्वष्टां युज्ञेनं मुघवान्दक्षिणया सुवर्गो मृन्युनां वृत्रहा सौहाँचेंन तन्धा अन्नेन गर्यः पृथिव्यासंनोदृग्भिरंन्नादो वंषद्भारेणुर्द्धः साम्नां तनूपा विराजा ज्योतिष्मान् ब्रह्मणा सोमुपा गोभिर्युज्ञं दांधार क्षुत्रेणं मनुष्यानश्वेन च रथेन च वृज्यृंतुभिंः प्रभुः संवथ्सरेणं परिभूस्तपुसानांधृष्टः सूर्यः सन्तुनूभिः॥२४॥

अृग्निनैकाृत्रपंश्चा्शत्॥———[८]

प्रजापंतिर्मन्सान्धोऽच्छेंतो धाता दीक्षाया सिवता भृत्यां पूषा सीम्ऋयंण्यां वर्रुण् उपंनुद्धोऽसुंरः ऋीयमाणो मित्रः ऋीतः शिंपिविष्ट आसांदितो नरन्धिषः प्रोह्ममाणो-ऽधिपित्रागंतः प्रजापंतिः प्रणीयमांनोऽग्निराग्नींध्रे बृह्स्पित्राग्नींध्रात्प्रणीयमांन इन्द्रों हिवधीने-ऽदितिरासांदितो विष्णुंरुपाविह्यमाणोऽथवींपौत्तो यमोऽभिषुंतोऽपूत्पा आंध्र्यमांनो वायः प्यमांनो मित्रः क्षीर्श्रीर्म्न्थी संक्तुश्रीवैश्वदेव उन्नीतो रुद्र आहुंतो वायुरावृंत्तो नृचक्षाः प्रतिख्यातो भक्ष आगंतः पितृणां नाराश्र्रसोऽसुरात्तः सिन्धुंरवभृथमंवप्रयन्थ्संमुद्रोऽवंगतः सिल्छः प्रष्नुंतः सुवंरुद्दर्चं गतः॥२५॥

रुद्र एकंवि॰शतिश्च॥_

कृत्तिंका नक्षेत्रमृग्निर्देवताग्ने रुचेः स्थ प्रजापंतेर्धातुः सोमंस्युर्चे त्वां रुचे त्वां द्युते त्वां भासे त्वा ज्योतिषे त्वा रोहिणी नक्षेत्रं प्रजापंतिर्देवतां मृगशीर्षं नक्षेत्र सोमों देवतार्द्रा नक्षेत्र रुद्रो देवता पुनर्वसू नक्षेत्रमदितिर्देवतां तिष्यों नक्षेत्रम्बृह्स्पतिर्देवतांश्लेषा नक्षेत्र सूर्पा देवतां मुघा नक्षेत्रम्पृतरों देवता फल्गुंनी नक्षेत्रम्॥२६॥

अर्थमा देवता फल्गुंनी नक्षंत्रम्भगों देवता हस्तो नक्षंत्र सिवता देवतां चित्रा नक्षंत्रमिन्द्रों देवतां स्वाती नक्षंत्रं वायुर्देवता विशाखे नक्षंत्रमिन्द्राग्नी देवतांऽनूराधा नक्षंत्रम्मित्रो देवतां रोहिणी नक्षंत्रमिन्द्रों देवतां विचृतौ नक्षंत्रम्पितरों देवतांषाढा नक्षंत्रमापों देवतांषाढा नक्षंत्रं विश्वे देवा देवतां श्रोणा नक्षंत्रुं विष्णुर्देवता श्रविष्ठा नक्षंत्रं वसंवः॥२७॥

देवतां शतभिषुङ्गक्षंत्रमिन्द्रों देवतां प्रोष्ठपदा नक्षंत्रमुज एकंपाद्देवतां प्रोष्ठपदा नक्षंत्रमहिंबुंध्रियों देवतां रेवती नक्षंत्रं पूषा देवतांश्वयुजौ नक्षंत्रमृश्विनौ देवतांपभरणीर्नक्षंत्रं यमो देवतां पूर्णा पृश्चाद्यत्ते देवा अदेधः॥२८॥

फल्गुंनी नक्षेत्रं वसंवस्त्रयंस्त्रि १ शच॥ 🕳

[80]

मधुंश्च माधंवश्च वासंन्तिकावृत् शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मांवृत् नभंश्च नभुस्यंश्च वार्षिकावृत् इषश्चोर्जश्च शारदावृत् सहंश्च सहस्यंश्च हैमंन्तिकावृत् तपंश्च तपुस्यंश्च शैशिरावृत् अग्नेरंन्तःश्चेषोऽसि कल्पंतां द्यावांपृथिवी कल्पंन्तामाप ओषंधीः कल्पंन्तामग्नयः पृथङ्गम् ज्येष्ठ्यांय सन्नंताः॥२९॥

यैंऽग्नयः समंनसोऽन्त्रा द्यावांपृथिवी शैंशिरावृत् अभि कल्पंमाना इन्द्रंमिव देवा अभि सं विंशन्तु स्ंयच् प्रचेताश्चाग्नेः सोमंस्य सूर्यस्योग्ना चं भीमा चं पितृणां यमस्येन्द्रंस्य ध्रुवा चं पृथिवी चं देवस्यं सिवृतुर्म्रुठतां वर्रुणस्य धर्त्री च धरित्री च मित्रावरुणयोर्मित्रस्यं धातुः प्राची च प्रतीची च वसूना रुद्राणाम्॥३०॥

आदित्यानान्ते तेऽधिंपतयस्तेभ्यो नमस्ते नों मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्चं नो द्वेष्टि तं वो जम्भें दधामि सहस्रंस्य प्रमा असि सहस्रंस्य प्रतिमा असि सहस्रंस्य विमा असि सहस्रंस्योन्मा असि साहस्रोऽसि सहस्राय त्वेमा में अग्न इष्टंका धेनवंः सन्त्वेकां च शृतं चं सहस्रं चायुतं च॥३१॥

नियुर्तं च प्रयुत्ं चार्बुदं च न्यंबुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तंश्च परार्धश्चेमा में अग्न इष्टंका धेनवंः सन्तु षृष्टिः सहस्रंमयुत्मक्षीयमाणा ऋत्स्थाः स्थंर्तावृधों घृतश्चतों मधुश्चृत् ऊर्जस्वतीः स्वधाविनीस्ता में अग्न इष्टंका धेनवंः सन्तु विराजो नामं कामृदुघां अमुत्रामुष्मिं ह्याँके॥३२॥

सर्वता रुद्राणांम्युतं च पश्चंचत्वारि शच॥————[११]

स्मिद्दिशामाशयां नः सुवर्विन्मधोरतो माधंवः पात्वस्मान्। अग्निर्देवो दुष्टरीतुरदाँभ्य इदं क्षत्र रक्षतु पात्वस्मान्। र्थंत्र सामंभिः पात्वस्मान्गांयत्री छन्दंसां विश्वरूपा। त्रिवृत्नों विष्ठया स्तोमो अह्रारं समुद्रो वातं इदमोजंः पिपर्तु। उग्रा दिशाम्भिभूतिर्वयोधाः शुचिः शुक्रे अहंन्योज्सीनां। इन्द्राधिपतिः पिपृतादतों नो महिं॥३३॥

क्षत्रं विश्वतो धारयेदम्। बृहथ्सामं क्षत्रभृद्धृद्धवृंिष्णियं त्रिष्टभौजः शुभितसुग्रवीरम्। इन्द्र स्तोमेन पश्चद्रशेन मध्यमिदं वार्तेन सगरेण रक्षा प्राची दिशा सहयशा यशस्वती विश्वे देवाः प्रावृषाह्य सुवर्वती। इदं क्षत्रं दुष्टरमस्त्वोजोऽनाधृष्टर सहस्रियर सहस्वत्। वैरूपे सामित्रिह तच्छकेम जगत्यैनं विक्ष्वा वेशयामः। विश्वे देवाः सप्तद्शेन॥३४॥

वर्च इदं क्ष्रत्र ९ संलिलवांतमुग्रम्। धूत्री दिशां क्षत्रिमदं दांधारोपस्थाशांनाम्मित्रवंदस्त्वोजः। मित्रांवरुणा श्ररदाह्रांं चिकित् अस्मै राष्ट्राय मिह् शर्म यच्छतम्। वैराजे सामन्नधिं मे मनीषानुष्टुभा सम्भृतं वीर्यर्थ सहंः। इदं क्षत्रिम्मित्रवंदार्द्रदांनु मित्रांवरुणा रक्षंतुमाधिपत्यैः। सम्राड्विशा सहसामी सहंस्वत्यृतुर्हेम्नतो विष्ठयां नः पिपर्तु। अवस्युवांताः॥३५॥

बृह्तीर्नु शक्वरीरिमं युज्ञमंवन्तु नो घृताचीः। सुवंवंती सुदुघां नः पर्यस्वती दिशां देव्यंवतु नो घृताचीं। त्वं गोपाः पुंरएतोत पृश्चाहृहंस्पते याम्यां युङ्कि वाचमं। ऊर्ध्वा दिशाः रिन्त्राशौषंधीनाः संवथ्सरेणं सिवृता नो अह्नांम्। रेवथ्सामातिंच्छन्दा उ छन्दोजांतशत्रुः स्योना नो अस्तु। स्तोमंत्रयस्त्रिःशे भुवनस्य पितृ विवंस्वद्वाते अभि नः॥३६॥

गृणाहि। घृतवंती सिवत्राधिपत्यैः पर्यस्वती रन्तिराशां नो अस्त्। ध्रुवा दिशां विष्णुपत्यघीरास्येशांना सहंसो या मनोतां। बृह्स्पतिर्मात्रिश्चोत वायुः संधुवाना वातां अभि नो गृणन्त्। विष्टुम्भो दिवो धुरुणंः पृथिव्या अस्येशांना जगंतो विष्णुपत्नी। विश्वव्यंचा इषयंन्ती सुभूतिः शिवा नो अस्त्वदितिरुपस्थे। वैश्वान्रो नं ऊत्या पृष्टो दिव्यनुं नोऽद्यानुंमित्रिन्वदंनुमते त्वङ्कयां नश्चित्र आ भुंवत्को अद्य युंङ्का ३७॥

महिं सप्तद्शेनांवस्युवांता अभि नोऽनुं नृश्चतुंर्दश च॥———[१२]

नमंस्ते रुद्र नमो हिरंण्यबाहवे नमः सहंमानाय नमं आव्याधिनींभ्यो नमों भुवाय नमों ज्येष्ठाय नमों दुन्दुभ्यांय नमः सोमांय नमं इरिण्यांय द्रापें सहस्राण्येकांदश॥=[१३] नमंस्ते रुद्र नमों भुवाय द्रापें सप्तविर्शितः॥27॥ नमंस्ते रुद्र तं वो जम्भे दधामि॥

॥पञ्चमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाण्डे पञ्चमः प्रश्नः॥

नमंस्ते रुद्र मृन्यवं उतो त् इषंवे नमंः। नमंस्ते अस्तु धन्वंने बाहुभ्यांमुत ते नमंः। या त् इषुंः शिवतंमा शिवम्बभूवं ते धनुंः। शिवा शंर्व्यां या तव तयां नो रुद्र मृडय। या ते रुद्र शिवा तुनूरघोरापांपकाशिनी। तयां नस्तुनुवा शन्तंमया गिरिंशन्ताभि चांकशीहि। यामिषुं गिरिशन्तु हस्ते॥१॥

बिभुर्घ्यस्तंवे। शिवां गिरित्रृ तां कुंरु मा हिर्श्सीः पुरुषं जगंत्। शिवेन् वर्चसा त्वा गिरिशाच्छां वदामसि। यथां नः सर्वमिञ्जगंदयक्ष्मश् सुमना असंत्। अध्यवीचदिधवृक्ता प्रंथमो दैव्यों भिषक्। अहीर्श्रश्च सर्वांश्चम्भयन्थ्सर्वांश्च यातुधान्यः। असौ यस्ताम्रो अंरुण उत बुभुः सुमुङ्गलंः। ये चेमा॰ रुद्रा अभितो दिक्षु॥२॥

श्रिताः संहस्रशोऽवैषा हेर्ड ईमहे। असौ योऽवसर्पति नीलंग्रीवो विलोहितः। उतैनं गोपा अंदश्त्रदंशन्नुदहार्यः। उतैनं विश्वां भूतानि स दृष्टो मृंडयाति नः। नमों अस्तु नीलंग्रीवाय सहस्राक्षायं मीदुषें। अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः। प्र मृंश्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्बियोर्ज्याम्। याश्चं ते हस्त इष्वः॥३॥

परा ता भंगवो वप। अवतत्य धनुस्त्व सहंस्राक्ष शतंषुधे। निशीर्यं श्रत्यानाम्मुखां शिवो नंः सुमनां भव। विज्यं धनुंः कपिर्दिनो विशंल्यो बाणंवा उत। अनेशत्रस्येषंव आभुरंस्य निष्क्षिं। या तें हेतिर्मीं ढुष्टम् हस्तें बुभूवं ते धनुंः। तयास्मान् विश्वतस्त्वमयक्ष्मया पिरं ब्युजा। नमंस्ते अस्त्वायुंधायानांतताय धृष्णवें। उभाभ्यामुत ते नमों बाहुभ्यां तव धन्वंने। पिरं ते धन्वंनो हेतिर्स्मान्वृंणक्त विश्वतः। अथो य इंषुिधस्तवारे अस्मित्र धेहि तम्॥४॥

हस्ते दिक्ष्विषेव उभाभ्यां द्वाविर्शितिश्च॥————[१]

नमो हिरंण्यबाहवे सेनान्यें दिशां च पत्ये नमो नमों वृक्षेभ्यो हरिंकेशेभ्यः पश्नाम्पत्ये नमो नमों बस्रुशायं विव्याधिनेऽन्नांनाम्पत्ये नमो नमों बस्रुशायं विव्याधिनेऽन्नांनाम्पत्ये नमो नमों हरिंकेशायोपवीतिनें पुष्टानाम्पत्ये नमो नमों भ्वस्यं हेत्ये जगंताम्पत्ये नमो नमों रुद्रायांतताविने क्षेत्रांणाम्पत्ये नमो नमेः सूतायाहंन्त्याय वनांनाम्पत्ये नमो नमेः॥५॥

रोहिंताय स्थपतंये वृक्षाणाम्पतंये नमो नमो मुन्निणे वाणिजाय कक्षाणाम्पतंये नमो नमो भुवन्तये वारिवस्कृतायौषंधीनाम्पतंये नमो नमं उच्चैर्घोषायाक्रन्दयंते पत्तीनाम्पतंये नमो नमः कृथ्स्नवीताय धावंते सत्वंनाम्पतंये नमः॥६॥

वनानाम्पतंये नमो नम् एकान्नत्रिष्टशर्च॥————[२]

नमः सहंमानाय निव्याधिनं आव्याधिनीनाम्पतंये नमो नमः ककुभायं निषक्षिणै स्तेनानाम्पतंये नमो नमो निषक्षिणं इषुधिमते तस्कराणाम्पतंये नमो नमो वश्चेते परिवर्श्वते स्तायूनाम्पतंये नमो नमो निचेरवे परिचरायारंण्यानाम्पतंये नमो नमः सृकाविभ्यो जिघारं सन्धो मुष्णुताम्पतंये नमो नमोऽसिमन्धो नक्तं चरन्धः प्रकृन्तानाम्पतंये नमो नमं उष्णीषिणे गिरिच्रायं कुलुश्चानाम्पतंये नमो नर्मः॥७॥

इषुंमद्र्यो धन्वाविभ्यंश्च वो नमो नमं आतन्वानेभ्यः प्रतिदर्धानेभ्यश्च वो नमो नमं आयच्छंद्र्यो विसृजद्र्यंश्च वो नमो नमो उस्यंद्र्यो विध्यंद्र्यश्च वो नमो नम् आसीनेभ्यः शयानेभ्यश्च वो नमो नमः स्वपद्यो जाग्रंद्र्यश्च वो नमो नमस्तिष्ठंद्र्यो धावंद्र्यश्च वो नमो नमः सुभाभ्यः सुभापंतिभ्यश्च वो नमो नमो अश्वभ्योऽश्वंपतिभ्यश्च वो नमः॥८॥

कुलुञ्चानाम्पतंये नमो नमोऽश्वंपतिभ्यस्त्रीणि च॥————[३]

नमं आव्याधिनींभ्यो विविध्यंन्तीभ्यश्च वो नमो नम् उगंणाभ्यस्तु रहृतीभ्यंश्च वो नमो नमो गृथ्सेभ्यों गृथ्सपंतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेंभ्यो व्रातंपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमो नमो महन्द्याः क्षु ह्वकेभ्यंश्च वो नमो नमो रथिभ्योऽरथेभ्यंश्च वो नमो नमो रथिभ्यः॥९॥

रथंपितभ्यश्च वो नमो नमः सेनाँभ्यः सेनानिभ्यंश्च वो नमो नमः श्चन्तर्भ्यः सङ्ग्रहीतृभ्यंश्च वो नमो नम्स्तक्षंभ्यो रथकारेभ्यंश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कमिर्रैभ्यश्च वो नमो नमः पुञ्जिष्टेभ्यो निषादेभ्यंश्च वो नमो नमं इषुकुद्धो धन्वकुद्धांश्च वो नमो नमो मृग्युभ्यः श्वनिभ्यंश्च वो नमो नमः श्वभ्यः श्वपंतिभ्यश्च वो नमः॥१०॥

रथैंभ्यः श्वपंतिभ्यश्च द्वे चं॥______[४]

नमों भुवायं च रुद्रायं चु नमः शुर्वायं च पशुपतंथे चु नमो नीलंग्रीवाय च शितिकण्ठांय चु नमः कपुर्दिने चु व्युप्तकेशाय चु नमः सहस्राक्षायं च शुत्रधंन्वने चु नमों गिरिशायं च शिपिविष्टायं चु नमों मीदुष्टंमाय चेषुंमते चु नमों हुस्वायं च वामुनायं चु नमों बृहुते चु वर्षीयसे चु नमों वृद्धायं च संवृध्वंने च॥११॥

नमो अग्नियाय च प्रथमायं च नमं आ्रावें चाजिरायं च नमः शीघ्रियाय च शीभ्याय च नमं ऊर्म्याय चावस्वन्याय च नमः स्रोतस्याय च द्वीप्याय च॥१२॥

सुं वृध्वेने च् पश्चेवि १ शतिश्च॥ 🚤 [५]

नमौँ ज्येष्ठायं च किन्छायं च नमः पूर्वजायं चापर्जायं च नमों मध्यमायं चापगुल्भायं च नमों जघन्याय च बुध्नियाय च नमः सोभ्याय च प्रतिसर्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय च नमं उर्वृयाय च खल्याय च नमः श्लोक्याय चावसान्याय च नमो वन्याय च कक्ष्याय च नमः श्रुवायं च प्रतिश्रुवायं च॥१३॥

नमं आशुर्षेणाय चाशुरंथाय च नमः शूराय चावभिन्दते च नमों वर्मिणे च वरूथिने च नमों बिल्मिने च कवचिने च नमेः श्रुतायं च श्रुतसेनायं च॥१४॥

प्रतिश्रवायं च पर्श्वविश्शतिश्च॥-----[

नमों दुन्दुभ्यांय चाहन्न्यांय च् नमों धृष्णवें च प्रमृशायं च् नमों दूतायं च् प्रिहेताय च नमों निष्किणें चेषुधिमतें च नमस्तीक्ष्णेषंवे चायुधिनें च नमेः स्वायुधायं च सुधन्वंने च नमः स्रुत्यांय च पथ्यांय च नमेः काट्यांय च नीप्यांय च नमः सूद्यांय च सर्स्यांय च नमों नाद्यायं च वैश्वन्तायं च॥१५॥

नमः कूप्याय चावट्याय च नमो वर्ष्याय चावर्ष्यायं च नमो मेध्याय च विद्युत्याय च नमं ईप्रियाय चातप्याय च नमो वात्याय च रेष्मियाय च नमों वास्तव्याय च वास्तुपायं च॥१६॥

वैश-तायं च त्रिर्शर्च॥———[७]

नमः सोमाय च रुद्रायं च नमंस्ताम्रायं चारुणायं च नमः शुंगायं च पशुपतंये च नमं उग्रायं च भीमायं च नमों अग्रेवधायं च दूरेवधायं च नमों हुन्ने च हनीयसे च नमों वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमंस्ताराय नमः शम्भवे च मयोभवे च नमः शङ्करायं च मयस्करायं च नमः शिवायं च शिवतंराय च॥१७॥

नम्स्तीर्थ्याय च् कूल्याय च् नमः पार्याय चावार्याय च् नमः प्रतरंणाय चोत्तरंणाय च् नमं आतार्याय चालाद्याय च् नमः शष्य्याय च् फेन्याय च् नमः सिक्त्याय च प्रवाह्याय च॥१८॥

शिवतंराय च त्रि १ शर्च ॥

नमं इरिण्यांय च प्रपृथ्यांय च नमंः किश्शिलायं च क्षयंणाय च नमंः कपूर्दिने च पुलुस्तयें च नमो गोष्ठांय च गृह्यांय च नमुस्तल्प्यांय च गेह्यांय च नमंः काट्यांय च गह्वरेष्ठायं च नमों हृद्य्यांय च निवेष्यांय च नमंः पाश्सव्यांय च रजस्यांय च नमः शुष्क्यांय च हरित्यांय च नमो लोप्यांय चोलुप्यांय च॥१९॥

नमं ऊर्व्याय च सूर्म्याय च नमंः पुण्याय च पर्णशृद्याय च नमोऽपगुरमाणाय

चाभिघ्नते च नमं आक्खिदते चं प्रक्खिदते च नमों वः किर्िकेभ्यों देवाना १ हृदयेभ्यो नमों विक्षीणकेभ्यो नमों विचिन्वत्केभ्यो नमं आनिर्हृतेभ्यो नमं आमीवृत्केभ्यः॥२०॥

उलुप्यांय च त्रयंस्त्रिश्शच॥———[९]

द्रापे अन्धंसस्पते दरिंद्रन्नीलंलोहित। एषां पुरुंषाणामेषाम्पंशूनां मा भेर्मारो मो एषां किं चनामंमत्। या तें रुद्र शिवा तुनः शिवा विश्वाहंभेषजी। शिवा रुद्रस्यं भेषजी तयां नो मृड जीवसें। इमा॰ रुद्रायं तुवसें कपिदिनें क्षयद्वीराय प्र भंरामहे मृतिम्। यथां नः शमसंद्विपदे चतुष्पदे विश्वम्पुष्टम्ग्रामें अस्मिन्॥२१॥

अनांतुरम्। मृडा नों रुद्रोत नो मयंस्कृधि क्षयद्वीराय नमंसा विधेम ते। यच्छं च योश्च मनुंरायजे पिता तदंश्याम् तवं रुद्र प्रणींतौ। मा नों महान्तंमुत मा नों अर्भकं मा न उक्षंन्तमुत मा नं उक्षितम्। मा नों वधीः पितर्म्मोत मातरंिम्प्रिया मा नंस्तनुवंः॥२२॥

रुद्र रीरिषः। मा नंस्तोके तनये मा न आयंषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। वीरान्मा नो रुद्र भामितो वंधीर्ह्विष्मंन्तो नमंसा विधेम ते। आरात्ते गोघ्न उत पूरुषघ्ने क्षयद्वीराय सुम्रमुस्मे ते अस्तु। रक्षां च नो अधि च देव ब्रूह्यधां च नः शर्मं यच्छ द्विबर्हाः। स्तुहि॥२३॥

श्रुतं गंर्त्सद् युवानम्मृगं न भीमम्पएह्ल्रुमुग्रम्। मृडा जंिर्त्रे रुंद्र स्तवानो अन्यं ते अस्मिन्न वंपन्तु सेनाः। परि णो रुद्रस्यं हेतिर्वृणक्तु परि त्वेषस्यं दुर्म्तिरंघायोः। अवं स्थिरा मृघवंद्र्यस्तनुष्व मीद्वंस्तोकाय तनयाय मृडय। मीद्वंष्टम् शिवंतम शिवो नः सुमनां भव। पुरमे वृक्ष आयुंधं निधाय कृत्तिं वसान आ चंरु पिनांकम्॥२४॥

बिश्रदा गंहि। विकिरिद् विलोहित् नमंस्ते अस्तु भगवः। यास्ते सहस्र^५ हेतयो-ऽन्यम्स्मन्नि वंपन्तु ताः। सहस्राणि सहस्रधा बांहुवोस्तवं हेतयः। तासामीशांनो भगवः पराचीना मुखां कृधि॥२५॥

अस्मिः स्तुनुवंः स्तुहि पिनांकुमेकान्नत्रिर्शाचं॥———[१०]

सहस्राणि सहस्रशो ये रुद्रा अधि भूम्याँम्। तेषा सहस्रयोजनेऽव धन्वांनि तन्मसि। अस्मिन्महृत्यंर्ण्वेंऽन्तरिक्षे भवा अधि। नीलंग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वा अधः क्षंमाचराः। नीलंग्रीवाः शितिकण्ठा दिवर्षं रुद्रा उपिश्रेताः। ये वृक्षेषुं सस्पिञ्जंरा नीलंग्रीवा विलोहिताः। ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपिर्दिनः। ये अन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबंतो जनान्। ये पुथाम्पंथिरक्षंय ऐलबृदा युव्युधंः। ये तीर्थानि॥२६॥

प्रचरंन्ति सृकावंन्तो निषक्षिणः। य एतावंन्तश्च भूयारंसश्च दिशों रुद्रा विंतस्थिरे। तेषारं सहस्रयोजनेऽव धन्वांनि तन्मसि। नमों रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येंऽन्तरिक्षे ये दिवि येषामत्रं वातों व्रषमिषंवस्तेभ्यो दश् प्राचीर्दशं दक्षिणा दशं प्रतीचीर्दशोदींचीर्दशोध्वांस्तेभ्यो नम्स्ते नों मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्चं नो द्वेष्टि तं वो जम्भें दधामि॥२७॥

तीर्थानि यश्च षद्वं॥——[११]

[अश्मन् य इमोदेनमाशुः प्राचीं जीमूर्तस्य यदर्त्रन्दो मा नी मित्रो ये वाजिनं नवं॥९॥ अश्मन्मनोयुजं प्राचीमनु शर्म यच्छतु तेषांमुभिगूर्तिः षद्वंत्वारि॰शत्। अश्मन् हुविष्मान्॥]

॥षष्ठमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाण्डे षष्ठमः प्रश्नः॥

अश्मन्नूर्जं पर्वते शिश्रियाणां वातें पूर्जन्ये वरुणस्य शुष्में। अद्भा ओषंधीभ्यो वनस्पितृभ्योऽिध सम्भृतां तां न इष्मूर्जं धत्त मरुतः स॰रराणाः। अश्म ईस्ते क्षुद्मं ते शुर्गृच्छतु यं द्विष्मः। समुद्रस्यं त्वाऽवाक्याग्ने पिरं व्ययामिस। पावको अस्मभ्य शिवो भव। हिमस्यं त्वा जुरायुणाग्ने पिरं व्ययामिस। पावको अस्मभ्य शिवो भव। उपं॥१॥

ज्मन्नुपं वेत्सेऽवंत्तरं नृदीष्वा। अग्नें पित्तमुपामंसि। मण्डूंिक् ताभिरा गंहि् सेमं नों युज्ञम्। पावकवर्ण १ शिवं कृषि। पावक आ चित्रयंन्त्या कृपा। क्षामंन्नुरूच उषसो न भानुना। तूर्वन्न यामन्नेतंशस्य नू रण आ यो घृणे। न तंतृषाणो अजरंः। अग्नें पावक रोचिषां मुन्द्रयां देव जिह्नयां। आ देवान्॥२॥

वृक्षि यिक्षं च। स नंः पावक दीदिवोऽग्नं देवा इहा वंह। उपं यज्ञ हिविश्चं नः। अपामिदं न्ययंन समुद्रस्यं निवेशंनम्। अन्यं ते अस्मत्तंपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्य शिवो भव। नर्मस्ते हरंसे शोचिषे नर्मस्ते अस्त्वर्चिषें। अन्यं ते अस्मत्तंपन्तु हेतयः

पावको अस्मभ्य १ शिवो भव। नृषदे वट्॥३॥

अप्रसुषदे वड्वंनसदे वड्वंरिह्षदे वद्रश्संवर्विदे वट्। ये देवा देवानां यज्ञियां यज्ञियांना र संवथ्सरीणमुपं भागमासंते। अहुतादों हृविषों यज्ञे अस्मिन्थ्स्वयं जुंहुध्वम्मधुंनो घृतस्यं। ये देवा देवेष्विधं देवत्वमायन् ये ब्रह्मणः पुरएतारों अस्य। येभ्यो नर्ते पर्वते धाम किं चन न ते दिवो न पृथिव्या अधि स्रुषुं। प्राणदाः॥४॥

अपान्दा व्यान्दाश्चंश्चुर्दा वंर्चोदा वंरिबोदाः। अन्यं ते अस्मत्तंपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यः शिवो भंव। अग्निस्तिग्मेनं शोचिषा यः सिद्धश्चं न्यंत्रिणम्ं। अग्निर्नो वः सते र्यिम्। सैनानींकेन सुविदत्रों अस्मे यष्टां देवाः आयंजिष्ठः स्वस्ति। अदंब्यो गोपा उत नः परस्पा अग्नै द्युमदुत रेविद्दिति॥५॥

उपं देवान् वद्गाणदाश्चतुंश्चत्वारि १शच॥

-[8]

य इमा विश्वा भुवंनानि जुह्बृदृषिर्होतां निष्सादां पिता नंः। स आशिषा द्रविणमिच्छमानः परमुच्छदो वर् आ विवेश। विश्वकंर्मा मनसा यिद्वहांया धाता विधाता परमोत सन्द्वक्। तेषामिष्टानि समिषा मंदन्ति यत्रं सप्तर्षीन्पर एकंमाहुः। यो नंः पिता जंनिता यो विधाता यो नंः सुतो अभ्या सञ्ज्ञानं।॥६॥

यो देवानां नाम्धा एकं एव तर संम्प्रश्वम्भुवंना यन्त्यन्या। त आयंजन्त द्रविण्र् समंस्मा ऋषयः पूर्वे जिर्तारो न भूना। असूर्ता सूर्ता रजंसो विमाने ये भूतानिं समकृंण्वित्रमानिं। न तं विदाय य इदं ज्जानान्यद्युष्माकृमन्तंरम्भवाति। नीह्रारेण् प्रावृंता जल्प्यां चासुतृपं उक्थुशासंश्चरन्ति। पुरो दिवा पुर एुना॥७॥

पृथिव्या परो देवेभिरस्ंरैर्गृहा यत्। कः स्विद्गर्भं प्रथमं देघ् आपो यत्रं देवाः समगंच्छन्त विश्वं। तिमद्गर्भम्प्रथमं देघ् आपो यत्रं देवाः समगंच्छन्त विश्वं। अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मित्रिदं विश्वम्भुवनमधि श्रितम्। विश्वकर्मा ह्यजंनिष्ट देव आदिद्गन्थवीं अभविद्वितीयः। तृतीयः पिता जंनितौषंधीनाम्॥८॥

अपां गर्भं व्यंदधात्पुरुत्रा। चक्षुंषः पिता मनंसा हि धीरों घृतमेंने अजनुत्रन्नंमाने। यदेदन्ता अदंद १ हन्त पूर्व आदिद्यावांपृथिवी अप्रथेताम्। विश्वतंश्वक्षुरुत विश्वतांमुखो विश्वतांहस्त उत विश्वतंस्पात्। सं बाहुभ्यां नमंति सम्पतंत्रैर्द्यावांपृथिवी जनयं देव एकंः। किः स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतुमिश्वित्कमांसीत्। यदी भूमिं जनयन्न्॥९॥

विश्वकंर्मा वि द्यामौर्णोन्मिह्ना विश्वचंक्षाः। कि स्विद्वनं क उ स वृक्ष आंसीद्यतो द्यावांपृथिवी निष्टतक्षुः। मनीषिणो मनंसा पृच्छतेदु तद्यद्ध्यतिष्टद्भुवंनानि धारयत्रं। या ते धामानि पर्माणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मत्रुतेमा। शिक्षा सर्खिभ्यो ह्विषिं स्वधावः स्वयं यंजस्व तुनुवं जुषाणः। वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतयै॥१०॥

मनोयुजं वाजें अद्या हुंवेम। स नो नेदिष्टा हवनानि जोषते विश्वशंम्भूरवंसे साधुकंर्मा। विश्वंकर्मन् हृविषां वावृधानः स्वयं यंजस्व तुनुवं जुषाणः। मुह्यंन्त्वन्ये अभितंः सपत्नां इहास्माकंम्मूघवां सूरिरंस्तु। विश्वंकर्मन् हृविषा वर्धनेन त्रातार्मिन्द्रंमकृणोरव्ध्यम्। तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीर्यमुग्नो विह्व्यों यथासंत्। सुमुद्रायं वयुनाय सिन्धूंनाम्पतंये नर्मः। नुदीना सर्वांसाम्प्रित्रे जुंहुता विश्वकंर्मणे विश्वाहामंत्र्यं हृविः॥११॥

ज्जानैनौषंधीनां भूमिं जनयंत्रूतये नमो नवं च॥————[२]

उदेनमुत्त्तरां न्याग्नें घृतेनाहुत। रायस्पोषेण स॰ सृंज प्रजयां च धनेन च। इन्द्रेमम्प्रंत्रां कृंधि सजातानांमसद्वृशी। समेनं वर्चसा सृज देवेभ्यों भाग्धा अंसत्। यस्यं कुर्मो ह्विर्गृहे तमंग्ने वर्धया त्वम्। तस्मै देवा अधि ब्रवन्नयं च ब्रह्मणस्पितिः। उद् त्वा विश्वे देवाः॥१२॥

अग्रे भरंन्तु चित्तिंभिः। स नों भव शिवतंमः सुप्रतींको विभावंसुः। पश्च दिशो दैवींर्यज्ञमंवन्तु देवीरपामितिं दुर्मितिम्बाधंमानाः। रायस्पोषे यज्ञपंतिमाभजंन्तीः। रायस्पोषे अधि यज्ञो अस्थाथ्सिमिद्धे अग्नाविधं मामहानः। उक्थपंत्र ईड्यो गृभीतस्तप्तं घर्मं परिगृह्यायजन्त। ऊर्जा यद्यज्ञमशंमन्त देवा दैव्याय धर्त्रे जोष्ट्रें। देवश्रीः श्रीमंणाः श्वतपंयाः॥१३॥

परिगृह्यं देवा यज्ञमायत्र्। सूर्यरिष्म्र्हिरिकेशः पुरस्तांध्सिविता ज्योति्रुद्याः अजंस्रम्। तस्यं पूषा प्रंस्वं याति देवः सम्पश्यन्विश्वा भुवंनानि गोपाः। देवा देवेभ्यो अध्वर्यन्तो अस्थुर्वितः शंमित्रे शंमिता यजध्यै। तुरीयो यज्ञो यत्रं हृव्यमेति ततः पावका आशिषो नो जुषन्ताम्। विमानं एष दिवो मध्यं आस्त आपप्रिवात्रोदंसी अन्तरिक्षम्। स विश्वाचीर्मि॥१४॥

चृष्टे घृताचीरन्त्रा पूर्वमपेरं च केतुम्। उक्षा संमुद्रो अंरुणः सुंपूर्णः पूर्वस्य योनिम्पितुरा विवेश। मध्ये दिवो निहितः पृश्चिरश्मा वि चंक्रमे रजंसः पात्यन्तौ। इन्द्रं विश्वां अवीवृधन्थ्समुद्रव्यंचसं गिरंः। र्थीतंम रथीनां वाजांना सत्पितिम्पितिम्। सुम्रहूर्य्ज्ञो देवा आ चं वक्षद्यक्षंद्रिप्रेदेवो देवा आ चं वक्षत्। वाजस्य मा प्रस्वेनौद्धाभेणोदंग्रभीत्। अथां सपत्ना इन्द्रों मे निग्राभेणाधंरा अकः। उद्भागं चं निग्राभं च ब्रह्मं देवा अंवीवृधन्न। अथां सपत्नांनिन्द्राग्नी में विष्चीनान्व्यंस्यताम्॥१५॥

देवाः शृतपंया अभि वार्जस्य षड्वि १ शतिश्च॥-------[

आ्शुः शिशांनो वृष्भो न युभ्मो घंनाघ्नः क्षोभंणश्चर्षणीनाम्। स्ङ्कर्न्दनोऽनिमिष एंकवीरः शतर सेनां अजयथ्साकिमिन्द्रः। संकर्न्दनेनानिमिषेणं जिष्णुनां युत्कारेणं दुश्चवनेनं धृष्णुनां। तिदन्द्रेण जयत् तथ्संहध्वं युधों नर् इषुंहस्तेन् वृष्णां। स इषुंहस्तैः स निष्क्विभिर्वशी सङ्स्रष्टा स युध् इन्द्रों गुणेनं। स्र्मृष्टुजिथ्सोम्पा बांहुशुर्ध्यूर्ध्वधंन्वा प्रतिहिताभिरस्तां। बृहंस्पते पिरं दीय॥१६॥

रथेन रक्षोहामित्रारं अपुबार्धमानः। प्रमुञ्जन्थ्सेनाः प्रमुणो युधा जयंत्रस्माकंमेध्यविता रथांनाम्। गोत्रभिदं गोविदं वर्ज्ञबाहुं जयंन्तमज्मं प्रमृणन्तमोजंसा। इमर संजाता अनुं वीरयध्वमिन्द्ररं सखायोऽनु सर रंभध्वम्। बलुविज्ञायः स्थविंरः प्रवीरः सहंस्वान् वाजी सहंमान उग्रः। अभिवीरो अभिसंत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित्। अभि गोत्राणि सहंसा गाहंमानोऽदायः॥१७॥

वीरः शतमंन्युरिन्द्रः। दुश्च्यवनः पृतनाषाडंयुध्यों उस्माक् स् सेनां अवतु प्र युथ्स्। इन्द्रं आसां नेता बृह्स्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः। देवसेनानांमभिभञ्जतीनां जयंन्तीनाम्मुरुतो यन्त्वग्रें। इन्द्रंस्य वृष्णो वर्रुणस्य राज्ञं आदित्यानां म्मुरुता शर्थं उग्रम्। महामनसाम्भुवनच्यवानां घोषों देवानां जयंतामुदंस्थात्। अस्माकृमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकुं या इषवस्ता जयन्तु।॥१८॥

अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मानुं देवा अवता हवेषु। उद्धर्षय मघवन्नायुंधान्युथ्मत्वनाम्माम्कानाम्महार्श्सि। उद्घृत्रहन्वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयंतामेतु घोषः। उप प्रेत जयंता नरः स्थिरा वंः सन्तु बाहवंः। इन्द्रों वः शर्म यच्छत्वनाधृष्या यथासंथ। अवसृष्टा परां पत् शरंब्ये ब्रह्मंसर्शिता। गच्छामित्रान्प्र॥१९॥ विश्व मैषां कं चनोच्छिषः। मर्माणि ते वर्मभिश्छादयामि सोमंस्त्वा राजामृतेनाभि वंस्ताम्। उरोर्वरीयो वरिवस्ते अस्तु जयंन्तं त्वामन् मदन्तु देवाः। यत्रं बाणाः सम्पर्तन्ति कुमारा विशिखा इंव। इन्द्रों नुस्तत्रं वृत्रहा विश्वाहा शर्म यच्छतु॥२०॥

दीया दायो जंयन्त्वमित्रान्प्र चंत्वारि ५ शर्च॥______

प्राचीमन् प्रदिशम्प्रेहिं विद्वान्ग्नेरंग्ने पुरो अंग्निर्भवेह। विश्वा आशा दीद्यांनो वि भाह्यूर्जं नो धेहि द्विपदे चतुंष्पदे। क्रमंध्वमृग्निना नाक्मुख्यूर् हस्तेषु बिभ्रंतः। दिवः पृष्ठर सुवंर्गत्वा मिश्रा देवेभिराद्धम्। पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमार्रुहम्नतिरक्षाद्विवमार्रुहम्। दिवो नाकस्य पृष्ठाथसुवर्ज्योतिरगाम्॥२१॥

अहम्। सुवर्यन्तो नापेंक्षन्त आ द्यार रोहन्ति रोदंसी। युज्ञं ये विश्वतोधार्ष् सुविद्वारसो वितेनिरे। अग्ने प्रेहिं प्रथमो देवयतां चक्षुंद्वानांमुत मर्त्यानाम्। इयंक्षमाणा भृगुंभिः सुजोषाः सुवयंन्तु यजमानाः स्वस्ति। नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकर्र समीची। द्यावा क्षामां रुक्यो अन्तर्विभाति देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाः। अग्ने सहस्राक्ष॥२२॥

शृत्मूर्ध्ञ्छतं ते प्राणाः सहस्रंमपानाः। त्व॰ सांहुस्रस्यं गुय ईशिषे तस्मै ते विधेम् वाजांय स्वाहां। सुपर्णोऽसि गुरुत्मांन्पृथिव्या॰ सींद पृष्ठे पृथिव्याः सींद भासान्तरिक्षमा पृण ज्योतिषा दिवमुत्तंभान् तेजंसा दिश उद्दृ॰ह। आजुह्वांनः सुप्रतीकः पुरस्तादग्ने स्वां योनिमा सींद साध्या। अस्मिन्थस्थस्थे अध्युत्तंरस्मिन्विश्वं देवाः॥२३॥

यजंमानश्च सीदत। प्रेद्धों अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजंस्रया सूर्म्यां यविष्ठ। त्वार शर्श्वन्त् उपं यन्ति वाजाः। विधेमं ते पर्मे जन्मंत्रग्ने विधेम् स्तोमैरवंरे स्धस्थे। यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तम्प्र त्वे ह्वीरिषं जुहुरे सिमद्धे। तार संवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहं वृंणे सुमृतिं विश्वजंन्याम्। यामस्य कण्वो अदुंहुत्प्रपीनार सहस्रंधाराम्॥२४॥

पर्यसा महीं गाम्। सप्त ते अग्ने स्मिधः सप्त जिह्वाः स्प्तर्षयः स्प्त धामं प्रियाणि। सप्त होत्राः सप्तधा त्वां यजन्ति सप्त योनीरा पृणस्वा घृतेनं। ईटङ्कांन्याटङ्केताटङ्के प्रतिटङ्के मितश्च सम्मितश्च सभेराः। शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्माःश्च सत्यश्चेर्तपाश्चात्यर्रहाः।॥२५॥

ऋतिजिचं सत्यिजिचं सेन्जिचं सुषेणश्चान्त्यंमित्रश्च दूरेअंमित्रश्च गुणः। ऋतश्चं स्त्यश्चं ध्रुवश्चं ध्रुक्णंश्च धृतां चं विधृतां चं विधारयः। ईदक्षांस एतादक्षांस ऊ पु णः सदक्षांसः प्रतिसदक्षास् एतन। मितासंश्च सम्मितासश्च न ऊतये सभरसो मरुतो युज्ञे अस्मिन्निन्द्रं दैवीविंशों मुरुतोऽनुंवर्त्मानो यजेमानं दैवींश्च विशो मान्पीश्चानुंवर्त्मानो भवन्तु॥२६॥

अगार सहस्राक्ष देवाः सहस्रंधारामत्यर्रहा अनुवर्त्मानः षोडंश च॥————[५]

जीमूर्तस्येव भवित प्रतींकं यहुर्मी याति समदांमुपस्थैं। अनांविद्धया तुनुवां जय् त्वर स त्वा वर्मणो मिहुमा पिपर्तु। धन्वंना गा धन्वंनाजिं जंयेम धन्वंना तीव्राः समदों जयेम। धनुः शत्रोंरपकामं कृणोति धन्वंना सर्वाः प्रदिशों जयेम। वृक्ष्यन्तीवेदा गंनीगन्ति कर्णम्प्रियर सर्वायं परिषस्वजाना। योषेव शिक्के वितृताधि धन्वन्नं॥२७॥

ज्या इयर समेने पारयंन्ती। ते आचरंन्ती समेनेव योषां मातेवं पुत्रम्बिभृतामुपस्थैं। अप शत्र न्विध्यतार संविदाने आर्ली इमे विष्फुरन्ती अमित्रान्। बह्धीनाम्पिता बहुरंस्य पुत्रश्चिश्चा कृंणोति समेनावगत्यं। इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनेद्धो जयति प्रसूतः। रथे तिष्ठन्नयति वाजिनेः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषार्थिः। अभीशूनाम्महिमानम्॥२८॥

प्नायत् मनः पश्चादन् यच्छन्ति रुष्मयः। तीव्रान्धोषाँन्कृण्वते वृषंपाण्योऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः। अवक्रामंन्तः प्रपंदैर्मित्राँन्श्चिणन्ति शत्रूर्रनंपव्ययन्तः। रुथवाहंन १ ह्विरंस्य नाम् यत्रायुंधं निहितमस्य वर्मः। तत्रा रथमुपं शुग्म १ संदेम विश्वाहां वय १ सुमन्स्यमानाः। स्वादुष्रसदः पितरो वयोधाः कृंच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः। चित्रसेना इषुंबला अमृधाः स्तोवीरा उरवौ व्रातसाहाः। ब्राह्मणासः॥ १९॥

पितंरः सोम्यांसः शिवे नो द्यावांपृथिवी अंनेहसाँ। पूषा नः पातु दुरितादंतावृधो रक्षा मार्किर्नो अघशर्रस ईशत। सुपूर्णं वस्ते मृगो अंस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धा पति प्रसूता। यत्रा नरः सं च वि च द्रवंन्ति तत्रास्मभ्यमिषंवः शर्म यरसन्न। ऋजीते परि वृिङ्क्ष नोऽश्मां भवतु नस्तुनः। सोमो अधि ब्रवीतु नोऽदितिः॥३०॥

शर्म यच्छतु। आ जंङ्घन्ति सान्वेषां जघना ५ उपं जिघ्नते। अश्वांजिन् प्रचेतसो-ऽश्वांन्थ्समर्थ्सु चोदय। अहिंरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्यायां हेतिं पंरिबार्धमानः। हुस्तुघ्नो विश्वां वयुनांनि विद्वान्युमान्युमार्श्सं परिं पातु विश्वतः। वनस्पते वीड्वंङ्गो हि भूया अस्मर्थ्संखा प्रतरंणः सुवीरः। गोभिः सन्नद्धो असि वीडयंस्वास्थाता ते जयतु जेत्वांनि। दिवः पृथिव्याः परिं॥३१॥

ओज् उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृत् सहं। अपामोज्मानं परि गोभिरावृत्मिन्द्रंस्य वज्रं ह्विषा रथं यज। इन्द्रंस्य वज्रां मुरुतामनीकिम्मित्रस्य गर्भी वरुणस्य नाभिः। सेमां नो ह्व्यदांतिं जुषाणो देवं रथ् प्रतिं ह्व्या गृंभाय। उपं श्वासय पृथिवीमृत द्याम्पुंरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत्। स दुन्दुभे सुजूरिन्द्रेण देवैर्द्रात्॥३२॥

दवींयो अपं सेध् शत्रून्ं। आ ऋंन्दय बलुमोजों न आ धा नि ष्टंनिहि दुरिता बाधंमानः। अपं प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुनार्ं इत इन्द्रंस्य मुष्टिरंसि वीडयंस्व। आमूरंज प्रत्यावंतियेमाः केंतुमहुंन्दुभिर्वावदीति। समश्वंपर्णाश्चरंन्ति नो नरोऽस्माकंमिन्द्र रुथिनों जयन्तु॥३३॥

धन्वंनमिह्मानं ब्राह्मंणासोऽदितिः पृथिव्याः परिं दूरादेकंचत्वारि १शच॥————[६]

यदक्रंन्दः प्रथमं जायंमान उद्यन्थ्संमुद्रादुत वा पुरीषात्। श्येनस्यं पृक्षा हंिरणस्यं बाहू उपस्तृत्यम्महिं जातं ते अर्वत्र। यमेनं दत्तं त्रित एनमायुन्गिन्द्रं एणम्प्रथमो अध्यंतिष्ठत्। गृन्धर्वो अस्य रश्नामंगृभ्णाथ्सूरादश्वं वसवो निरंतष्ट। असिं यमो अस्यांदित्यो अंर्वृत्रसिं त्रितो गृह्येन व्रतेनं। असि सोमेन समया विपृक्तः॥३४॥

आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धंनानि। त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धंनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः संमुद्रे। उतेवं मे वर्रुणश्छन्थस्यर्वन् यत्रां त आहुः पंर्मं जनित्रम्। इमा तें वाजिन्नवमार्जनानीमा शुफानार् सिन्तुर्निधानां। अत्रां ते भुद्रा रंशना अंपश्यमृतस्य या अंभिरक्षंन्ति गोपाः। आत्मानं ते मनसारादंजानामवो दिवा॥३५॥

प्तयंन्तम्पतंगम्। शिरों अपश्यम्पथिभिः सुगेभिरिरेणुभिर्जेहंमानम्पतृति। अत्रां ते रूपमृंत्तममंपश्यं जिगीषमाणिम्ष आ पदे गोः। यदा ते मर्तो अनु भोगमानुडादिद्वसिष्ठ ओषंधीरजीगः। अनुं त्वा रथो अनु मर्यो अर्वृत्तनु गावोऽनु भर्गः कृनीनाम्। अनु व्रातांसुस्तवं सुख्यमीयुरनुं देवा मंमिरे वीर्यम्॥३६॥

ते। हिरंण्यशृङ्गोऽयों अस्य पादा मनोंजवा अवंर इन्द्रं आसीत्। देवा इदंस्य हविरद्यंमायन् यो अर्वन्तम्प्रथमो अध्यतिष्ठत्। ईर्मान्तांसः सिलिंकमध्यमासः स॰ शूरंणासो दिव्यासो अत्याः। हुर्सा इंव श्रेणिशो यंतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः। तव् शरीरम्पतियण्ववंनतवं चित्तं वातं इव् ध्रजीमान्। तव् शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारंण्येषु जर्भुराणा चरन्ति। उपं॥३७॥

प्रागाच्छसंनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यांनः। अजः पुरो नीयते नाभिर्स्यानुं पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः। उप प्रागांत्पर्मं यथ्स्थस्थमर्वार् अच्छां पितर्रम्मातरं च। अद्या देवां जुष्टंतमो हि गुम्या अथा शांस्ते दाशुषे वार्याणि॥३८॥

विपृंक्तो दिवा वीर्यमुपैकान्नचंत्वारि र्शर्च॥

मा नों मित्रो वर्रुणो अर्यमायुरिन्द्रं ऋभुक्षा मुरुतः परि ख्यत्र। यद्वाजिनों देवजांतस्य सप्तैः प्रवृक्ष्यामों विद्ये वीर्याणि। यत्रिणिंजा रेक्णंसा प्रावृंतस्य रातिं गृंभीताम्मुंख्तो नयंन्ति। सुप्रांङ्जो मेम्यंद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पार्थः। एष च्छागः पुरो अश्वंन वाजिनां पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः। अभिप्रियं यत्पुरोडाशुमर्वता त्वष्टेत्॥३९॥

पुन् सौश्रवसायं जिन्वति। यद्धविष्यंमृतुशो देवयान् त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयंन्ति। अत्रां पूष्णः प्रथमो भाग एति युज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयंत्रजः। होतांष्व्यर्र्रावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शङ्स्ता सुविप्रः। तेनं युज्ञेनं स्वरं कृतेन् स्विष्टेन वृक्षणा आ पृण्ष्वम्। यूप्रवस्का उत ये यूपवाहाश्चषालुं ये अश्वयूपाय तक्षेति। ये चार्वते पर्चनः सम्भरंन्त्युतो॥४०॥

तेषांम्भिगूर्तिर्न इन्वतु। उप प्रागांथ्सुमन्में ऽधायि मन्मं देवानामाशा उपं वीतपृष्ठः। अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चंकृमा सुबन्धुम्। यद्वाजिनो दामं संदानमर्वतो या शीर्षण्यां रश्ना रञ्जंरस्य। यद्वां घास्य प्रभृतमास्ये तृण् सर्वा ता ते अपि देवेष्वंस्तु। यदश्वंस्य ऋविषंः॥४१॥

मिश्वकाश् यद्वा स्वरौ स्विधितौ रिप्तमिस्ति। यद्धस्तियोः शिमृतुर्यत्रखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु। यदूर्वध्यमुदरंस्याप्वाति य आमस्यं ऋविषौ गन्धो अस्ति। सुकृता तच्छंमितारः कृण्वन्तूत मेधर् शृतपार्क पचन्तु। यत्ते गात्रांदग्निनां पुच्यमानादिभि शूलं निहंतस्यावधावंति। मा तद्भूम्यामा श्रिष्-मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशज्ञो रातमंस्तु॥४२॥

इदुतो ऋविषंः श्रिषथ्सप्त चं॥---

सप्तमः प्रश्नः (काण्डम् ४)

ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्कं य ईमाहुः सुंर्भिर्निर्ह्रेति। ये चार्वतो मा स्मिभक्षामुपासंत उतो तेषांम्भिगूर्तिर्न इन्वतु। यत्रीक्षंणम्मा रस्पर्चन्या उखाया या पात्रांणि यूष्ण आसेचनानि। ऊष्मण्यांपिधानां चरूणामङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम्। निक्रमंणं निषदेनं विवर्तनं यच् पङ्कीशमर्वतः। यचं पपौ यचं घासिम्॥४३॥

ज्ञ्घास् सर्वा ता ते अपिं देवेष्वंस्तु। मा त्वाग्निर्ध्वनियद्भूमगंन्धिर्मोखा भ्राजंन्त्यभि विक्त जिन्नाः। इष्टं वीतम्भिगूर्तं वषंद्भृतं तं देवासः प्रतिं गृभ्णन्त्यश्वम्। यदश्वाय वासं उपस्तृणन्त्यंधीवासं या हिरंण्यान्यस्मै। संदानमर्वन्तम्पङ्घीशिम्प्रिया देवेष्वा यामयन्ति। यत्ते सादे महंसा शूकृंतस्य पार्ष्णिया वा कशया॥४४॥

वा तुतोदं। सुचेव ता हिवषों अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मंणा सूदयामि। चतुंस्त्रि शह्माजिनों देवबंन्धोर्वङ्कीरश्वंस्य स्विधितः समेति। अच्छिंद्रा गात्रां वयुनां कृणोत् परुष्परुर्या वि शंस्त। एक्स्त्वष्टुरश्वंस्या विश्स्ता द्वा यन्तारां भवतस्तथर्तुः। या ते गात्रांणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डांनाम्प्र जुंहोम्युग्नौ। मा त्वां तपत्॥४५॥

प्रिय आत्मापियन्तं मा स्विधितिस्तुनुव आ तिष्ठिपत्ते। मा ते गृधुरंविश्स्तातिहायं छिद्रा गात्रांण्यसिना मिथूं कः। न वा उं वेतिन्स्रियसे न रिष्यसि देवा इदेषि पृथिभिः सुगेभिः। हरीं ते युञ्जा पृषंती अभूतामुपांस्थाद्वाजी धुरि रासंभस्य। सुगर्व्यं नो वाजी स्विश्वयम्पुर्सः पुत्रार उत विश्वापुषरं र्यिम्। अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनतार हिवष्मान्॥४६॥

घासिं कशंया तपद्रयिं नवं च॥-

[9]

॥ सप्तमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाण्डे सप्तमः प्रश्नः॥

अग्नांविष्णू स्जोषंसेमा वंधन्तु वां गिरंः। द्युम्नैर्वाजेंभिरागंतम्। वाजेश्च मे प्रस्वश्चं मे प्रयंतिश्च मे प्रसिंतिश्च मे धीतिश्चं मे ऋतृंश्च मे स्वरंश्च मे श्लोकंश्च मे श्रावर्श्च मे श्रुतिश्च मे ज्योतिश्च मे सुवंश्च मे प्राणश्चं मेऽपानः॥१॥ च में व्यानश्च मेऽसुंश्व में चित्तं चं मु आधीतं च में वाक्रं में मनश्च में चक्षुंश्व में श्रोत्रं च में दक्षंश्व में बलं च मु ओजंश्व में सहंश्व मु आयुंश्व में जुरा चं म आत्मा चं में तुनूश्वं में शर्म च में वर्म च मेऽङ्गांनि च मेऽस्थानिं च में परूर्षि च में शरीराणि च मे॥२॥

अपानस्तन्र्श्चं मेऽष्टादंश च॥———[१

ज्यैष्ठमं च म् आधिपत्यं च मे मृन्युश्चं मे भामश्च मेऽमश्च मेऽमश्च मे जेमा चं मे मिहुमा चं मे विर्मा चं मे प्रिथमा चं मे वृष्मा चं मे द्राघुया चं मे वृद्धं चं मे वृद्धिश्च मे सत्यं चं मे श्रद्धा चं मे जगंच॥३॥

में धनं च में वशंश्च में त्विषिश्च में ऋीड़ा चं में मोदंश्च में जातं चं में जिन्ध्यमाणं च में सूक्तं चं में सुकृतं चं में वित्तं चं में वेद्यं च में भूतं चं में भिविष्यचं में सुगं चं में सुपर्थं च म ऋदं चं म ऋदिश्च में क्रुप्तं चं में क्रुप्तिश्च में मृतिश्चं में सुमृतिश्चं मे॥४॥

जग्चर्द्धिश्चतुंर्दश च॥-----[२]

शं चं में मयंश्व में प्रियं चं मेऽनुकामश्वं में कामंश्व में सौमनुसर्श्व में भूद्रं चं में श्रेयंश्व में वस्यंश्व में यशंश्व में भगंश्व में द्रविंणं च में युन्ता चं में धूर्ता चं में क्षेमंश्व में धृतिंश्व में विश्वं च॥५॥

में महंश्व में संविचं में ज्ञात्रं च में सूर्श्व में प्रसूर्श्व में सीरं च में लयर्श्व म ऋतं चं मेंऽमृतं च मेऽय्क्ष्मं च मेऽनामयच में जीवातुंश्व में दीर्घायुत्वं चं मेऽनिमृत्रं च मेऽभंयं च में सुगं चं में शयंनं च में सूषा चं में सुदिनं च मे॥६॥

विश्वं च शयंनमुष्टौ चं॥-----[३]

ऊर्क मे सूनृतां च मे पर्यक्ष मे रसंश्व मे घृतं चं मे मधुं च मे सन्धिश्व मे सपीतिश्व मे कृषिश्वं मे वृष्टिश्व मे जैत्रं च म औद्भिंदां च मे र्यिश्वं मे रायंश्व मे पुष्टं चं मे पुष्टिश्व मे विभु चं॥७॥

में प्रभु चं में बहु चं में भूयंश्व में पूर्णं चं में पूर्णतंरं च मेऽक्षिंतिश्व में कूयंवाश्व

मेऽन्नं च मेऽक्षुंच मे व्रीह्रयंश्व मे यवाश्व मे मार्षाश्व मे तिलाश्व मे मुद्राश्च मे खुल्वाश्व मे गोधूमाश्व मे मुसुराश्व मे प्रियङ्गवश्व मेऽणंवश्व मे श्यामाकाश्व मे नीवाराश्व मे॥८॥

विभु चं मृसुराश्चतुंर्दश च॥-----[४]

अश्मां च में मृत्तिंका च में गि्रयंश्च में पर्वताश्च में सिकंताश्च में वनस्पतियश्च में हिरंण्यं च मेऽयंश्च में सीसंं च में त्रपृंश्च में श्यामं च में लोहं च मेऽग्निर्श्च म् आपंश्च में वी्रुपंश्च मु ओषंधयश्च में कृष्टपुच्यं च॥९॥

मेऽकृष्ट्रपच्यं चं मे ग्राम्याश्चं मे पृशवं आर्ण्याश्चं युज्ञेनं कल्पन्तां वित्तं चं मे वित्तिश्च मे भूतं चं मे भूतिश्च मे वस्तुं च मे वस्तिश्चं मे कर्म च मे शक्तिश्च मेऽर्थश्च म् एमंश्च म् इतिश्च मे गितिश्च मे॥१०॥

कृष्ट्रप्च्यश्राष्टाचंत्वारि १शच॥-----[५

अग्निश्चं म् इन्द्रंश्च में सोमंश्च म् इन्द्रंश्च में सिवृता चं म् इन्द्रंश्च में सरंस्वती च म् इन्द्रंश्च में पूषा चं म् इन्द्रंश्च में बृह्स्पतिंश्च म् इन्द्रंश्च में मित्रश्चं म् इन्द्रंश्च में वरुणश्च म इन्द्रंश्च में त्वष्टां च॥११॥

म् इन्द्रंश्च मे धाता चं म् इन्द्रंश्च मे विष्णृंश्च म् इन्द्रंश्च मेऽश्विनौं च म् इन्द्रंश्च मे मुरुतंश्च म् इन्द्रंश्च मे विश्वे च मे देवा इन्द्रंश्च मे पृथिवी च म् इन्द्रंश्च मेऽन्तिरिक्षश्च म् इन्द्रंश्च मे दौश्चं म् इन्द्रंश्च मे दिशंश्च म् इन्द्रंश्च मे मूर्धा चं म् इन्द्रंश्च मे प्रजापंतिश्च म इन्द्रंश्च मे॥१२॥

त्वष्टां च द्यौश्चं म् एकंवि २ शतिश्च॥ -------[६]

अर्शुश्चं मे र्श्मिश्च मेऽदाँभ्यश्च मेऽधिंपतिश्च म उपार्शुश्चं मेऽन्तर्यामश्चं म ऐन्द्रवायवश्चं मे मैत्रावरुणश्चं म आश्विनश्चं मे प्रतिप्रस्थानंश्च मे शुक्तश्चं मे मुन्थी चं म आग्रयणश्चं मे वैश्वदेवश्चं मे ध्रुवश्चं मे वैश्वानुरश्चं म ऋतुग्रहाश्चं॥१३॥

मेऽतिग्राह्मांश्च म ऐन्द्राग्नश्चं मे वैश्वदेवश्चं मे मरुत्वतीयांश्च मे माहेन्द्रश्चं म आदित्यश्चं मे सावित्रश्चं मे सारस्वतश्चं मे पौष्णश्चं मे पालीवृतश्चं मे हारियोजनश्चं मे॥१४॥

 ड्ध्मश्चं मे ब्रहिश्चं में वेदिश्च में घिष्णियाश्च में स्रुचंश्च में चम्साश्चं में ग्रावाणश्च में स्वरंबश्च म उपर्वाश्चं मेंऽधिषवंणे च में द्रोणकलुशश्चं में वायव्यांनि च में पूत्भृचं म आधवनीयंश्च म् आग्नींग्नं च में हिव्धीनंं च में गृहाश्चं में सदेश्च में पुरोडाशांश्च में पचताश्चं मेंऽवभृथश्चं में स्वगाकारश्चं मे॥१५॥

गृहाश्च पोर्डश च॥______[८]

अग्निश्चं मे घुर्मश्चं मेऽर्कश्चं मे सूर्यश्च मे प्राणश्चं मेऽश्वमेधश्चं मे पृथिवी च मेऽदितिश्च मे दितिश्च मे दौश्चं मे शक्वंरीर्ङ्गुलंयो दिशंश्च मे युज्ञेनं कल्पन्तामृकं मे सामं च मे स्तोमश्च मे यर्ज्ञंश्च मे दीक्षा चं मे तपश्च म ऋतुश्चं मे व्रतं चं मेऽहोरात्रयौर्वृष्ट्या बृंहद्रथन्तरे चं मे यज्ञेनं कल्पेताम्॥१६॥

दीक्षाऽष्टादंश च॥-----[९]

गर्भांश्च मे वृथ्साश्चं में त्र्यविश्च मे त्र्यवी चं मे दित्यवाई मे दित्यौही चं में पञ्चांविश्च मे पञ्चावी चं मे त्रिवृथ्सश्चं मे त्रिवृथ्सा चं मे तुर्यवाई मे तुर्यौही चं मे पष्टवाचं मे पष्टौही चं म उक्षा चं मे वृशा चं म ऋष्भश्चं॥१७॥

में वेहचमेऽनुङ्वां चे मे धेनुश्चे म् आयुर्यज्ञेनं कल्पतां प्राणो युज्ञेनं कल्पतामपानो युज्ञेनं कल्पताळ्याँनो युज्ञेनं कल्पतां चक्षुंर्यज्ञेनं कल्पताः श्रोत्रं युज्ञेनं कल्पताम्मनों युज्ञेनं कल्पतां वाग्यज्ञेनं कल्पतामात्मा युज्ञेनं कल्पतां युज्ञो युज्ञेनं कल्पताम्॥१८॥

एको च मे तिस्रश्चं में पर्श्चं च में सप्त चं में नवं च में एकोदश च में त्रयोदश च में पर्श्वंदश च में सप्तदंश च में नवंदश च में एकेविश्शतिश्च में त्रयोविश्शतिश्च में पर्श्वविश्शतिश्च में सप्तिविश्शतिश्च में नवंविश्शतिश्च में एकेत्रिश्शच में त्रयंक्षिश्शच॥१९॥

में चतंस्रश्च में ऽष्टौ चं में द्वादंश च में षोडंश च में विरश्तिश्चं में चतुंर्विरशतिश्च में ऽष्टाविरशितश्च में द्वात्रिरशिच में पद्गिरशिच में चत्वारिरशिचं में चतुंश्चत्वारिरशच में ऽष्टाचेत्वारिरशच में वार्जश्च प्रसुवश्चांपिजश्च ऋतुंश्च सुवंश्च मूर्धा च व्यक्षियश्चान्त्यायुनश्चान्त्यंश्च भौवनश्च भुवनश्चाधिपतिश्च॥२०॥

त्रयंस्त्रि १ शच् व्यश्जिय एकांदश च॥———[११]

वाजों नः सप्त प्रदिश्श्चतंस्रो वा परावतः। वाजों नो विश्वेंद्वैर्धनंसाताविहावंतु। विश्वें अद्य मुरुतो विश्वें ऊती विश्वें भवन्त्वग्नयः सिमंद्धाः। विश्वें नो देवा अवसा गंमन्तु विश्वंमस्तु द्रविणं वाजों अस्मे। वाजंस्य प्रस्वं देवा रथैंर्याता हिर्ण्ययैः। अग्निरिन्द्रो बृहस्पतिर्मरुतः सोमंपीतये। वाजेंवाजेऽवत वाजिनो नो धनेंषु॥२१॥

विष्रा अमृता ऋत्ज्ञाः। अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यांत पृथिभिर्देवयानैः। वाजः पुरस्तांदुत मध्यतो नो वाजो देवा ऋतुभिः कल्पयाति। वाजंस्य हि प्रम्वो नन्नमीति विश्वा आशा वाजंपतिर्भवयम्। पयः पृथिव्याम्पय ओषंधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाम्। पर्यस्वतीः प्रदिशंः सन्तु मह्मम्ं। सम्मां सृजामि पर्यसा घृतेन सम्मां सृजाम्यपः॥२२॥

ओषंधीभिः। सौऽहं वाजरं सनेयमग्ने। नक्तोषासा समनसा विरूपे धापर्येते शिशुमेकरं समीची। द्यावा क्षामां रुक्तो अन्तर्वि भांति देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाः। समुद्रोऽसि नर्भस्वानार्द्रदानुः शम्भूर्मयोभूरिम मां वाहि स्वाहां मारुतोऽसि मुरुतां गणः शम्भूर्मयोभूरिम मां वाहि स्वाहां वाहि स्वाहां॥२३॥

धर्नैष्वपो दुवंस्वाञ्छुम्भूर्मयोभूर्भि मा द्वे चं॥-----[१२]

अग्निं युंनिज्म् शर्वसा घृतेनं दिव्यः सुंपूर्णं वयंसा बृहन्तम्। तेनं व्यं पंतेम ब्रध्नस्यं विष्टप् सुवो रुहांणा अधि नाकं उत्तमे। इमौ ते पक्षावजरौं पतित्रणो याभ्याः रक्षाः स्यप्हः स्यंग्ने। ताभ्यां पतेम सुकृतांमु लोकं यत्रर्षयः प्रथम्जा ये पुराणाः। चिदंसि समुद्रयोनिरिन्दुर्दक्षः श्येन ऋतावां। हिरंण्यपक्षः शकुनो भुरण्युर्महान्थ्स्थस्थे ध्रुवः॥२४॥

आ निषंत्तः। नमंस्ते अस्तु मा मां हि॰सीविश्वंस्य मूर्धन्निधं तिष्ठसि श्रितः। समुद्रे ते हृदंयम्न्तरायुर्द्यावापृथिवी भुवंनेष्विपिते। उद्गो दंत्तोद्धिम्भिन्त दिवः पर्जन्यादन्तिरक्षात्पृथिव्यास्ततों नो वृष्ट्यांवत। दिवो मूर्धासि पृथिव्या नाभिरूर्गुपामोषंधीनाम्। विश्वायुः शर्म सप्रथा नमस्प्रथे। येनर्षयस्तपंसा सन्नम्॥२५॥ आस्तेन्थांना अग्नि॰ सुवंराभरंन्तः। तस्मिन्नहं नि दंधे नाके अग्निमेतं यमाहुर्मनंवः स्तीर्णबंर्हिषम्। तम्पर्लीभिरन्ं गच्छेम देवाः पुत्रैर्आर्तृभिरुत वा हिरंण्यैः। नार्कं गृह्णानाः सुंकृतस्यं लोके तृतीर्यं पृष्ठे अधि रोचने दिवः। आ वाचो मध्यमरुहद्भुरण्युर्यमृग्निः सत्पंतिश्लेकितानः। पृष्ठे पृंथिव्या निहितो दविद्युतद्यस्पदं कृणुते॥२६॥

ये पृत्न्यवंः। अयम्भिर्वीरतंमो वयोधाः संहुस्नियों दीप्यतामप्रयुच्छत्र्। विभ्राजंमानः सिर्रस्य मध्य उप प्र यांत दिव्यानि धामं। सम्प्र च्यंवध्वमनु सम्प्र याताग्ने पथो देवयानौन्कृणुध्वम्। अस्मिन्थ्स्धस्थे अध्युत्तंरस्मिन्विश्वं देवा यजंमानश्च सीदत। येनां सहस्रं वहंसि येनांग्ने सर्ववेदसम्। तेनेमं युज्ञं नों वह देवयानो यः॥२७॥

उत्तमः। उद्बंध्यस्वाग्ने प्रतिं जागृह्येनिष्टापूर्ते स॰सृंजेथाम्यं चं। पुनः कृण्वः स्त्वां पितरं युवानम्न्वाता १सीत् त्विय् तन्तुंमेतम्। अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः। तं जानन्नंग्न आ रोहाथां नो वर्धया रियम्॥२८॥

ध्रुवः सत्रं कृंणुते यः सप्तत्रिर्श्शच॥-

[83]

ममाँग्ने वर्चो विह्वेष्वंस्तु व्यं त्वेन्धांनास्तुनुवंम्पुषेम। मह्यं नमन्ताम्प्रदिश्श्वतंस्रस्त्वयाध्यंक्षेण् पृतंना जयेम। ममं देवा विह्वे संन्तु सर्व इन्द्रांवन्तो मुरुतो विष्णुंरुग्निः। ममान्तरिक्षमुरु गोपमंस्तु मह्यं वातः पवतां कामें अस्मिन्न्। मियं देवा द्रविणमा यंजन्ताम्मय्याशीरंस्तु मियं देवहृंतिः। दैव्या होतारा वनिषन्त॥२९॥

पूर्वेऽरिष्टाः स्याम तुनुवां सुवीराः। मह्यं यजन्तु मम् यानिं हृव्याकूंतिः स्त्या मनंसो मे अस्तु। एनो मा नि गांं कत्मचनाहं विश्वें देवासो अधि वोचता मे। देवीः षडुर्वीरुरु णांः कृणोत् विश्वें देवास इह वीरयध्वम्। मा हाँस्महि प्रजया मा तुनूभिमां रंधाम द्विष्ते सोम राजत्र्। अग्निर्मन्युम्प्रंतिनुदन्पुरस्तांत्॥३०॥

अदंब्यो गोपाः परि पाहि न्स्त्वम्। प्रत्यश्चो यन्तु निगुतः पुन्स्तेऽमैषां चित्तम्प्रबुधा वि नेशत्। धाता धांतृणाम्भुवंनस्य यस्पतिंर्देव संवितारंमिभातिषाहम्। इमं यज्ञमिश्वनोभा बृह्स्पतिंर्देवाः पान्तु यज्ञमानं न्यर्थात्। उरुव्यचां नो महिषः शर्म यस्सदस्मिन् हवे पुरुहूतः पुरुक्षु। स नंः प्रजाये हर्यश्व मृड्येन्द्र मा॥३१॥

नो रीरिषो मा पर्रा दाः। ये नंः सपत्ना अप ते भंवन्त्विन्द्राग्निभ्यामवं बाधामहे तान्। वसंवो रुद्रा आंदित्या उंपरिस्पृशंम्मोग्नं चेत्तारमधिराजमंकत्र्। अर्वाश्चमिन्द्रंममुतो हवामहे यो गोजिद्धंनजिदंश्वजिद्यः। इमं नो यज्ञं विंहुवे जुंषस्वास्य कुंर्मो हरिवो मेदिने त्वा॥३२॥

वृनिष्न्त पुरस्तान्मा त्रिचंत्वारि १ शच॥———[१४]

अग्नेर्मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसो यम्पाश्चंजन्यम्ब्हवंः सिम्नन्थतें। विश्वंस्यां विशि प्रविविशिवाश्संमीमहे स नो मुश्चत्वश्हंसः। यस्येदं प्राणित्रिमिषद्यदेजति यस्यं जातं जनमानं च केवंलम्। स्तौम्युग्निं नांथितो जोहवीमि स नो मुश्चत्वश्हंसः। इन्द्रंस्य मन्ये प्रथमस्य प्रचेतसो वृत्रघ्नः स्तोमा उप मामुपागुः। यो दाशुषंः सुकृतो हव्मुप् गन्तां॥३३॥

स नों मुश्चत्व १ हंसः। यः संग्रामं नयंति सं वृशी युधे यः पुष्टानिं स १ सृजतिं त्रयाणि। स्तौमीन्द्रं नाथितो जोहवीमि स नों मुश्चत्व १ हंसः। मृन्वे वाँम्मित्रावरुणा तस्यं वित्त १ सत्यौजसा द १ हणा यं नुदेथैं। या राजांन १ स्रथं याथ उंग्रा ता नों मुश्चत्मागंसः। यो वा १ रथं ऋजुरंश्मिः सत्यर्थमां मिथुश्चरंन्तमुप्यातिं दूषयत्रं। स्तौमिं॥ ३ ४॥

मित्रावरुंणा नाथितो जोहवीमि तो नो मुश्चत्मागंसः। वायोः संवितुर्विदयांनि मन्महे यावाँत्मन्विद्वेभृतो यो च रक्षंतः। यो विश्वंस्य परिभू बंभूवतुस्तो नो मुश्चत्मागंसः। उप्रश्लेष्ठां न आशिषों देवयोधीर्में अस्थिरत्र। स्तौमिं वायु संवितारं नाथितो जोहवीमि तो नो मुश्चत्मागंसः। रथीतमौ रथीनामह ऊतये शुभुं गिमिष्ठौ सुयमैभिरश्वैः। ययौः॥३५॥

वां देवौ देवेष्विनिशित्मोज्नस्तौ नौ मुश्चत्मागंसः। यदयांतं वहृतु सूर्यायाँस्त्रिच्क्रेणं सुर्ध्सदमिच्छमानौ। स्तौमि देवावृश्विनौ नाथितो जोहवीमि तौ नौ मुश्चत्मागंसः। मुरुताँम्मन्वे अधि नो ब्रुवन्तु प्रेमां वाचं विश्वांमवन्तु विश्वां। आृशून् हुंवे सुयमांनॄतये ते नौ मुश्चन्त्वेनंसः। तिग्ममायुंधं वीडित सहंस्विद्विष्य शर्धः॥३६॥

पृतंनासु जिप्णु। स्तौमिं देवान्मुरुतों नाथितो जोंहवीिम् ते नों मुश्चन्त्वेनंसः। देवानाँम्मन्वे अधि नो ब्रुवन्तु प्रेमां वाचं विश्वांमवन्तु विश्वं। आ्शून् हुंवे सुयमांनूतये ते नों मुश्चन्त्वेनंसः। यदिदम्मांभिशोचंति पौरुषयेण दैव्यंन। स्तौमि विश्वां देवान्नांथितो जोंहवीिम् ते नों मुश्चन्त्वेनंसः। अनुं नोऽद्यानुंमित्रिरनुं॥३७॥

इदंनुमत् त्वं वैश्वान्रो नं ऊत्या पृष्टो दिवि। ये अप्रथेताममितेभिरोजोंभिर्ये प्रतिष्ठे

अभवतां वसूनाम्। स्तौमि द्यावांपृथिवी नांथितो जोहवीमि ते नों मुञ्चत्म रहंसः। उर्वी रोदसी वरिंवः कृणोतुं क्षेत्रंस्य पत्नी अधिं नो ब्रूयातम्। स्तौमि द्यावांपृथिवी नांथितो जोहवीमि ते नों मुञ्चत्म रहंसः। यत्तें वयं पुंरुषत्रा यविष्ठाविद्वा रसश्चकृमा कच्चन॥३८॥

आर्गः। कृधी स्वंस्मार अदिंतेरनांगा व्येनारेसि शिश्रथो विष्वंगग्ने। यथां ह् तद्वंसवो गौर्यं चित्पदि षिताममुंश्रता यजत्राः। एवा त्वम्स्मत्प्र मुंश्चा व्यर्हः प्रातांर्यग्ने प्रत्रां न् आयुंः॥३९॥

| गन्तां | दूषयुन्थ्स्तौ | मि ययो | ः शर्धोऽनुंमित्रिरनुं | चृन | चतुंस्रि ४शच॥ | [१५] |
|----------|---------------|--------------|-----------------------|-----|---------------|------|
| अग्निष्ट | । वामश्वो | द्विचंत्वार् | रे श्च॥ | | | [१६] |

॥काण्डम् ५॥

॥प्रथमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां पञ्चमकाण्डे प्रथमः प्रश्नः॥

सावित्राणिं जुहोति प्रसूँत्यै चतुर्गृहीतेनं जुहोति चतुंष्पादः पृशवः पृश्नेवावं रुन्द्वे चतंस्रो दिशों दिक्ष्वंव प्रतिं तिष्ठति छन्दार्शसे देवेभ्योऽपांकामृत्र वोऽभागानिं हृव्यं वंक्ष्याम् इति तेभ्यं पृतचंतुर्गृहीतमंधारयन् पुरोनुवाक्यांयै याज्यांयै देवतांयै वषद्वाराय् यचंतुर्गृहीतं जुहोति छन्दार्श्स्येव तत्प्रीणाति तान्यंस्य प्रीतानिं देवेभ्यों हृव्यं वंहन्ति यं कामयेत॥१॥

पापीयान्थस्यादित्येकैकं तस्यं जुहुयादाहुंतीभिरेवेन्मपं गृह्णाति पापीयान्भवित् यं कामयेत् वसीयान्थस्यादिति सर्वाणि तस्यांनुद्रत्यं जुहुयादाहुंत्येवेनंमभि क्रंमयित वसीयान्भवत्यथीं यज्ञस्यैवेषाभिक्रांन्तिरेति वा एष यंज्ञमुखादद्धाः यौंऽग्नेर्देवतायाः एत्यष्टावेतानि सावित्राणि भवन्त्यष्टाक्षरा गायत्री गायत्रः॥२॥

अग्निस्तेनैव यंज्ञमुखादद्धां अग्नेर्देवतांयै नैत्यृष्टौ सांवित्राणि भवन्त्याहुंतिर्नवृमी त्रिवृतंमेव यंज्ञमुखे वि यांतयित यदि कामयेत छन्दार्श्स यज्ञयश्सेनांपियेयमित्यृचंमन्तमां कुर्याच्छन्दार्श्स्येव यंज्ञयश्सेनांपियित यदि कामयेत यजंमानं यज्ञयश्सेनांपियेयमिति यजुंरन्तमं कुर्याद्यजंमानमेव यंज्ञयश्सेनांपियत्यृचा स्तोमुष्ट् समेर्ध्येति॥३॥

आहु समृंद्धौ चृतुर्भिरिश्रमा दंत्ते चृत्वारि छन्दांश्सि छन्दोंभिरेव देवस्यं त्वा सिवृतः प्रंसव इत्यांह प्रस्त्या अग्निर्देवेश्यो निलायत् स वेणुम्प्राविशय्स एतामृतिमनु समेचरद्यद्वेणौः सृषिरश् सृषिराश्रिभवति सयोनित्वाय् स यत्रयत्रावसत्तत्कृष्णमंभवत्कत्माषी भंवति रूपसंमृद्धा उभयतःक्ष्णूर्भवतीतश्चामृतंश्चार्कस्यावंश्रद्धौ व्याममात्री भंवत्येतावद्दौ पुरुषे वीर्यं वीर्यसम्मृताऽपंरिमिता भवत्यपंरिमित्तस्यावंश्रद्धौ यो वनस्पतीनाम्फलग्रिहः स एषां वीर्यावान्फलग्रहिवेणुंवेण्वी भंवति वीर्यस्यावंश्रद्धौ॥४॥

कामयेत गायुत्रों ऽर्ध्येति च सप्तविर्शतिश्व॥————[१]

व्यृंद्धं वा पृतद्यज्ञस्य यदंयजुष्केण क्रियतं इमामंगृभ्णत्रश्नामृतस्येत्यंश्वाभिधानीमा दंत्ते

यर्जुष्कृत्यै य्ज्ञस्य समृंद्धै प्रतूर्तं वाजिन्ना द्रवेत्यश्वंमभि दंधाति रूपमेवास्यैतन्मंहिमानं व्याचेष्टे युआथार् रासंभं युविमितिं गर्दभमसंत्येव गर्दभं प्रतिं ष्ठापयति तस्मादश्वांद्रर्दभो-ऽसंत्तरो योगेयोगे तुवस्तंर्मित्यांह॥५॥

योगेयोग पुवैनं युङ्के वाजेवाजे हवामह् इत्याहात्रुं वै वाजोऽत्रंमेवावं रुन्द्धे सर्खाय् इन्द्रंमूतय् इत्याहिन्द्रियमेवावं रुन्द्धेऽग्निर्देवेभ्यो निलायत् तं प्रजापित्रिरन्वंविन्दत्प्राजापृत्यो- ऽश्वोऽश्वेन सम्भर्त्यन्वित्त्यै पापवस्यसं वा एतिक्रियते यच्छ्रेयसा च पापीयसा च समानं कर्म कुर्वन्ति पापीयान्॥६॥

ह्यश्वांद्वर्दभोऽश्वम्पूर्वं नयन्ति पापवस्यसस्य व्यावृंत्त्ये तस्माच्छ्रेयारंसुम्पापीयान्यश्चादन्वेति बहुर्वे भवतो भ्रातृंव्यो भवतीव खलु वा एष योंऽग्निश्चिनुते वज्ज्यश्वः प्रतूर्वन्नेह्यंवकामन्नशंस्तीिरित्यांह् वज्रेणैव पाप्मानुम्भ्रातृंव्यमवं क्रामित रुद्रस्य गाणपत्यादित्यांह रौद्रा वै पुशवों रुद्रादेव॥७॥

पुश्तियांच्यात्मने कर्म कुरुते पूष्णा सयुजां सहेत्यांह पूषा वा अध्वंना । सन्नेता समंध्ये पुरीषायतनो वा एष यदग्निरङ्गिरसो वा एतमग्ने देवतांना । समंभरन्पृथिव्याः सधस्थांदग्निम्पुंरीष्यंमङ्गिरस्वदच्छेहीत्यांह सायंतनमेवैनं देवतांभिः सम्भरत्यग्निम्पुंरीष्यंमङ्गिर्स्वदच्छेम् इत्यांह येनं॥८॥

संगच्छंते वाजंमेवास्यं वृङ्के प्रजापंतये प्रतिप्रोच्याग्निः सम्भृत्य इत्यांहुरियं वै प्रजापंतिस्तस्यां एतच्छ्रोत्रं यद्वल्मीकोऽग्निम्पुंरीष्यमङ्गिर्स्वद्वरिष्याम् इति वल्मीकव्पामुपं तिष्ठते साक्षादेव प्रजापंतये प्रतिप्रोच्याग्निः सम्भरत्यग्निम्पुंरीष्यमङ्गिर्स्वद्वराम् इत्यांह् येनं संगच्छंते वाजंमेवास्यं वृङ्केऽन्वग्निरुषसामग्रम्॥९॥

अख्यदित्याहानुंख्यात्या आगत्यं वाज्यध्वंन आक्रम्यं वाजिन्मृथिवीमित्यांहेच्छत्येवैनम्पूर्वया विन्दत्युत्तंरया द्वाभ्यामा क्रंमयित प्रतिष्ठित्या अनुंरूपाभ्यान्तस्मादनुंरूपाः पृशवः प्र जायन्ते द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी स्थस्थमित्यांहेभ्यो वा एतं लोकेभ्यः प्रजापंतिः समैरयद्रूपमेवास्यैतन्महिमानं व्याचेष्टे वृज्जी वा एष यदश्वी दुद्भिर्न्यतीदद्भो भूयाक्षौमभिरुभ्यादंद्भो यं द्विष्यात्तमंथस्पदं ध्यायेद्वज्ञेणैवैन एष् स्तृणुते॥10॥

आह् पापीयात्रुद्रादेव येनाग्रं वृज्री वै सप्तदंश च॥🗕

प्रथमः प्रश्नः (काण्डम् ५)

उत्क्रामोदंक्रमीदिति द्वाभ्यामुत्क्रंमयित प्रतिष्ठित्या अनुंरूपाभ्यान्तस्मादनुंरूपाः पृशवः प्र जांयन्तेऽप उपं सृजति यत्र वा आपं उपगच्छंन्ति तदोषंधयः प्रतिं तिष्ठन्त्योषंधीः प्रतितिष्ठंन्तीः पृशवोऽनु प्रतिं तिष्ठन्ति पृश्न् यृज्ञो यृज्ञं यजंमानो यजंमानं प्रजास्तस्माद्प उपं सृजति प्रतिष्ठित्ये यदंध्वर्युरंन्ग्नावाहुंतिं जुहुयादुन्थौंऽध्वर्युः॥११॥

स्याद्रक्षा रेसि यज्ञ हेन्युर्हिरंण्यमुपास्यं जुहोत्यग्निवत्येव जुंहोति नान्यौंऽध्वर्युर्भवंति न यज्ञ रक्षा रेसि प्रन्ति जिघंम्यंग्निम्मनंसा घृतेनेत्यांहु मनंसा हि पुर्रुषो यज्ञमंभिगच्छंति प्रतिक्ष्यन्तम्भुवंनानि विश्वेत्यांहु सर्व्डु ह्येष प्रत्यङ्केति पृथुं तिर्श्चा वयंसा बृहन्तमित्याहाल्पो ह्येष जातो महान्॥१२॥

भवंति व्यचिष्ठमन्नर् रभुसं विदानिमत्याहान्नमेवास्मैं स्वदयित सर्वमस्मे स्वदते य एवं वेदा त्वां जिधिम् वर्चसा घृतेनेत्यांह तस्माद्यत्पुरुषो मनसाभिगच्छंति तद्वाचा वंदत्यरक्षसेत्यांह रक्षंसामपंहत्यै मर्यश्रीः स्पृह्यद्वंणीं अग्निरित्याहापंचितिमेवास्मिन्दधात्यपंचितिमान्भवित य एवं॥१३॥

वेद मनंसा त्वै तामाप्तृंमर्हित् यामंध्वर्युरंनुग्नावाहुंतिं जुहोति मनंस्वतीभ्यां जुहोत्याहुंत्यो्रराप्त्ये द्वाभ्यां प्रतिष्ठित्ये यज्ञमुखयंज्ञमुखं वै क्रियमाणे यज्ञश्र रक्षाश्रेसि जिघाश्सन्त्येतर्हि खलु वा एतद्यंज्ञमुखं यर्ह्येनदाहुंतिरश्जुते परि लिखित रक्षंसामपंहत्ये तिसृभिः परि लिखित त्रिवृद्वा अग्निर्यावानेवाग्निस्तरमाद्रक्षाश्रस्यपं हन्ति॥१४॥

गायत्रिया परि लिखित तेजो वै गांयत्री तेजंसैवैनं परि गृह्णाति त्रिष्टुभा परि लिखतीन्द्रियं वै त्रिष्टुगिन्द्रियेणैवैन्म् परि गृह्णात्यनुष्टुभा परि लिखत्यनुष्टुफ्सर्वाणि छन्दा रेसि परिभूः पर्यांस्यै मध्यतोऽनुष्टुभा वाग्वा अनुष्टुप्तस्मांन्मध्यतो वाचा वंदामो गायत्रिया प्रथमया परि लिखत्यथानुष्टुभाथं त्रिष्टुभा तेजो वै गांयत्री यज्ञोऽनुष्टुगिन्द्रियं त्रिष्टुप्तेजंसा चैवेन्द्रियेण चोभयतो यज्ञं परि गृह्णाति॥१५॥

अन्थौं ऽध्वर्युर्म्हान्भविति त्रिष्टुभा तेजो वै गांयत्री त्रयोदश च॥———[३]

देवस्यं त्वा सिवृतुः प्रंस्व इति खनित् प्रसूँत्या अथौ धूममेवैतेनं जनयित् ज्योतिष्मन्तं त्वाग्ने सुप्रतींकृमित्यांह् ज्योतिरेवैतेनं जनयित् सौंऽग्निर्जातः प्रजाः शुचार्पयुत्तं देवा अर्धुर्चेनांशमयञ्छिवं प्रजाभ्योऽहिर्ससन्तमित्यांह प्रजाभ्यं एवैनर्स शमयित् द्वाभ्यां खनित प्रतिष्ठित्या अपां पृष्ठम्सीति पुष्करपूर्णमा॥१६॥

हुर्त्यपां वा एतत्पृष्ठं यत्पुष्करपूर्णः रूपेणैवैन्दा हंरित पुष्करपूर्णेन् सम्भंरित योनिर्वा अग्नेः पुष्करपूर्णः सयोनिमेवाग्निः सम्भंरित कृष्णाजिनेन् सम्भंरित यज्ञो वै कृष्णाजिनेन् यज्ञेनैव यज्ञः सम्भंरित यद्ग्राम्याणां पश्नां चर्मणा सम्भरेद्ग्राम्यान्पश्र्ञ्ज्रुचार्पयेत्कृष्णाजिनेन् सम्भरत्यारुण्यानेव पृश्न्॥१७॥

शुचार्पयित् तस्माँथ्समावंत्पशूनां प्रजायंमानानामार्ण्याः पृशवः कनीया रसः शुचा ह्यंता लोमृतः सम्भेर्त्यतो ह्यंस्य मेध्यं कृष्णाजिनं चं पृष्करपृणं च सङ् स्तृंणातीयं वे कृष्णाजिनम्सौ पृष्करपृणंमाभ्यामेवेनंमुभ्यतः परि गृह्णात्यग्निर्देवेभ्यो निलायत् तमथुर्वान्वंपश्यदर्थवा त्वा प्रथुमो निरंमन्थदग्न इति॥१८॥

आह् य एवैनंमन्वपंश्यत्तेनैवैन् सम्भंरित् त्वामंग्ने पुष्कंरादधीत्यांह पुष्करपूर्णे ह्येन्मुपंश्रित्मविन्दत्तम्ं त्वा दुध्यङ्कृषि्रित्यांह दुध्यङ्का आंधर्वणस्तेजस्व्यांसी्त्तेजं एवास्मिन्दधाति तमुं त्वा पाथ्यो वृषेत्यांह पूर्वमेवोदितमुत्तरेणाभि गृंणाति॥१९॥

चृत्सृभिः सम्भंरित चृत्वारि छन्दां सि छन्दोंभिरेव गांयत्रीभिंब्रीह्मणस्यं गायत्रो हि ब्राँह्मणस्बिष्टुग्भी राजन्यंस्य त्रेष्ट्रभो हि रांजन्यों यं कामयेत् वसीयान्थ्स्यादित्युभयीभिस्तस्य सम्भरितेज्ञेश्चेवास्मां इन्द्रियं चं स्मीची दधात्यष्टाभिः सम्भरत्यष्टाक्षरा गायत्री गांयत्री-ऽग्निर्यावांनेवाग्निस्त सम्भरिति सीदं होत्रित्यांह देवतां पुवास्मै स॰ सांदयित नि होतेतिं मनुष्यान्थ्स॰ सीद्स्वेति वया सि जनिष्वा हि जन्यो अग्रे अहामित्यांह देवमनुष्यानेवास्मै स॰संन्नान्य जनयित॥२०॥

ऐव पुशूनितिं गृणाति होत्रितिं सप्तवि रंशतिश्च॥

-[8]

क्रूरिमंव वा अंस्या एतत्कंरोति यत्खनंत्यप उपं सृज्त्यापो वै शान्ताः शान्ताभिरेवास्यै शुचर्र शमयति सं ते वायुर्मातिरिश्वां दधात्वित्यांह प्राणो वै वायुः प्राणेनैवास्यैं प्राणर सं दंधाति सं ते वायुरित्यांहु तस्माँद्वायुप्रंच्युता दिवो वृष्टिरीर्ते तस्मै च देवि वषंडस्तु॥२१॥

तुभ्यमित्यांह् षड्वा ऋतवं ऋतुष्वेव वृष्टिं दधाति तस्माथ्सर्वानृतून् वंर्षित् यद्वंषद्भुर्याद्रक्षारंसि यज्ञर हेन्युर्वेडित्यांह प्रोक्षेमेव वषद्भरोति नास्यं यातयांमा वषद्भारो भवंति न यज्ञर रक्षारंसि प्रन्ति सुजांतो ज्योतिंषा सहत्यंनुष्टुभोपं नह्यत्यनुष्टुप्॥२२॥ सर्वाणि छन्दारंसि छन्दारंसि खलु वा अग्नेः प्रिया तृनूः प्रिययैवैनं तृनुवा परिं दधाति वेर्दुको वासों भवति य एवं वेदं वारुणो वा अग्निरुपंनद्ध उद्दं तिष्ठ स्वध्वरोध्वं कु पु णं कृतय इतिं सावित्रीभ्यामुत्तिष्ठति सवितृप्रंसूत एवास्योध्वां वंरुणमेनिमुथ्संजिति द्वाभ्यां प्रतिष्ठित्ये स जातो गर्भो असि॥२३॥

रोदंस्योरित्यांहेमे वै रोदंसी तयोरेष गर्भी यदग्निस्तस्मांदेवमाहाग्ने चारुर्विभृत ओषंधीष्टित्यांह यदा ह्येतं विभर्न्त्यथ् चारुंतरो भवंति प्र मातुभ्यो अधि कनिंऋदद्गा इत्याहौषंधयो वा अस्य मातर्स्ताभ्यं एवैन्म्प्र च्यांवयित स्थिरो भंव वीड्वंङ्ग इतिं गर्द्भ आ सांदयित॥२४॥

सं नंह्यत्येवैनंमेतयां स्थेम्ने गर्दभेन् सम्भंरित् तस्मांद्गर्दभः पंशूनाम्भारभारितंमो गर्दभेन् सम्भंरित् तस्मांद्गर्दभोऽप्यंनालेशेत्यन्यान्पशून्मेंद्यत्यत्रुड् ह्येनेनार्कर सम्भरंन्ति गर्दभेन् सम्भंरित् तस्मांद्गर्दभो द्विरेताः सन्किनिष्ठम्पशूनाम्प्र जांयतेऽग्निर्ह्यस्य योनिं निर्दहंति प्रजासु वा एष एतर्ह्यारूढः॥२५॥

स ईंश्वरः प्रजाः शुचा प्रदहंः शिवो भेव प्रजाभ्य इत्यांह प्रजाभ्यं एवैनर् शमयित् मानुंषीभ्यस्त्वमंिङ्गर् इत्यांह मानव्यों हि प्रजा मा द्यावांपृथिवी अभि शूंशचो मान्तरिंक्षं मा वनस्पतीनित्यांहैभ्य एवैनं लोकेभ्यः शमयित प्रेतुं वाजी किनेकद्दित्यांह वाजी ह्येष नानंदुद्रासंभः पत्वेति॥२६॥

आह् रासंभ् इति ह्येतमृष्योऽवंदन्भरंत्रिप्रिम्पुंरीष्यंमित्यांहाग्निः ह्येष भरंति मा पाद्यायुंषः पुरेत्याहायुंरेवास्मिन्दधाति तस्माँद्गर्दभः सर्वमायुंरेति तस्माँद्गर्दभे पुरायुंषः प्रमीते बिभ्यति वृषाग्निं वृषंणम्भर्त्रित्यांह वृषा ह्येष वृषाग्निर्पां गर्भम्॥२७॥

समुद्रियमित्यांहापाः ह्यंष गर्भो यद्ग्निरम् आ यांहि वीतय इति वा इमौ लोकौ व्यैतामम् आ यांहि वीतय इति यदाहानयौर्लोकयोवीत्यै प्रच्युतो वा एष आयतंनादगंतः प्रतिष्ठाः स एतर्ह्यंष्वर्युं च यजंमानं च ध्यायत्यृतः सत्यमित्यांहेयं वा ऋतम्सौ॥२८॥

स्त्यम्नयोरिवेनं प्रति ष्ठापयित् नार्तिमार्च्छत्यध्वर्युर्न यजमानो वर्रुणो वा एष यजमानम्भ्येति यद्ग्निरुपंनद्ध ओषंधयः प्रति गृह्णीताग्निमेतमित्यांह् शान्त्यै व्यस्यन्विश्वा अमंतीररातीरित्यांह् रक्षंसामपंहत्यै निषीदंत्रो अपं दुर्मति हंन्दित्याह् प्रतिष्ठित्या ओषंधयः प्रतिं मोदध्वम्॥२९॥

अस्त्वनुष्टुर्बसि सादयत्यारूंढुः पत्वेति गर्भम्सौ मोदध्वं द्विचंत्वारि शच॥————[५]

वारुणो वा अग्निरुपंनद्धो वि पाज्ञसेति वि स्रर्थसयित सिवतुप्रंसूत एवास्य विषूचीं वरुणमेनिं वि सृंजत्यप उपं सृज्त्यापो वै शान्ताः शान्ताभिरेवास्य शुचर् शमयित तिस्भिरुपं सृजति त्रिवृद्धा अग्निर्यावांनेवाग्निस्तस्य शुचरं शमयित मित्रः स्र्सृज्यं पृथिवीमित्यांह मित्रो वै शिवो देवानान्तेनैव॥३१॥

पुन् सर सृंजिति शान्त्यै यद्ग्राम्याणाम्पात्राणां कृपालैः सरसृजेद्ग्राम्याणि पात्राणि शुचार्पयेदर्मकपालैः सर सृंजत्येतानि वा अनुपजीवनीयानि तान्येव शुचार्पयिति शर्कराभिः सर सृंजिति धृत्या अथौं शृंत्वायांजलोमैः सर सृंजत्येषा वा अग्नेः प्रिया तुनूर्यद्जा प्रिययैवैनं तुनुवा सर सृंजत्यथो तेजंसा कृष्णाजिनस्य लोमंभिः सम्॥३२॥

सृज्ति युज्ञो वै कृष्णाजिनं युज्ञेनैव युज्ञ स् स र सृजिति रुद्राः सम्भृत्यं पृथिवीमित्यांहैता वा एतं देवता अग्रे समंभर्न्ताभिरेवेन् सम्भरित मुखस्य शिरोऽसीत्याह युज्ञो वै मुखस्तस्यैतच्छिरो यदुखा तस्मादेवमाह युज्ञस्यं पुदे स्थ इत्याह युज्ञस्य ह्येते॥३३॥

पदे अथो प्रतिष्ठित्यै प्रान्याभिर्यच्छत्यन्वन्यैर्मन्नयते मिथुनत्वाय त्र्युंद्धिं करोति त्रयं इमे लोका एषां लोकानामार्त्ये छन्दोंभिः करोति वीर्यं वै छन्दार्रस वीर्येणैवैनां करोति यर्जुषा बिलं करोति व्यावृंत्र्या इयंतीं करोति प्रजापितना यज्ञमुखेन सम्मितां द्विस्तृनां करोति द्यावापृथिव्योर्दोहांय चतुंः स्तनां करोति पशूनां दोहांयाष्टास्तनां करोति छन्देसां दोहांय नवाशिमभिचरंतः कुर्यात्रिवृतंमेव वज्रर्र सम्भृत्य भ्रातृंव्याय प्र हंरति स्तृत्यै कृत्वाय सा महीमुखामिति नि दंधाति देवतांस्वेवैनां प्रति ष्ठापयति॥३४॥

तेनैव लोर्माभुः समेते अभिचरंत एकंविश्शतिश्च॥————[७]

सप्तिर्भिर्पयति सप्त वै शीर्षणयाः प्राणाः शिरं एतद्यज्ञस्य यदुखा शीर्षन्नेव यज्ञस्यं प्राणान्दंधाति तस्माध्सप्त शीर्षन्त्राणा अश्वश्वेनं धूपयति प्राजापत्यो वा अश्वः सयोनित्वायादितिस्त्वेत्यांहेयं वा अदितिरदित्यैवादित्यां खनत्यस्या अर्क्नूरङ्काराय न हि स्वः स्व॰ हिनस्तिं देवानां त्वा पत्नीरित्यांह देवानांम्॥३५॥

वा एताम्पल्योऽग्रेंऽकुर्वन्ताभिरेवैनां दधाति धिषणास्त्वेत्यांह विद्या वै धिषणां विद्याभिरेवेनांमभीन्द्ये ग्रास्त्वेत्यांह् छन्दार्श्से वे ग्राश्छन्दोभिरेवेनां श्रपयित् वर्क्तत्रयस्त्वेत्यांह् होत्रा वे वर्क्तत्रयस्त्वेत्यांह् होत्रा वे वर्क्तत्रयो होत्रांभिरेवेनां पचित् जनयस्त्वेत्यांह देवानां वे पर्लीः॥३६॥

जनंयुस्ताभिरेवेनां पचित षुङ्गिः पंचित् षङ्गा ऋतवं ऋतुभिरेवेनां पचित् द्विः पचन्त्वित्यांह् तस्माद्विः संवथ्सरस्यं सस्यम्पंच्यते वारुण्युंखाभीद्धां मैत्रियोपैति शान्त्ये देवस्त्वां सिव्तोद्वंपत्वित्यांह सिव्तृप्रंसूत पृवेनां ब्रह्मणा देवतांभिरुद्वंपत्यपंद्यमाना पृथिव्याशा दिश आ पृण॥३७॥

इत्यांह् तस्मांद्ग्निः सर्वा दिशोऽनु वि भात्युत्तिष्ठ बृह्ती भेवोर्ध्वा तिष्ठ ध्रुवा त्विमत्यांह् प्रतिष्ठित्या असुर्यम्पात्रमनांच्छुण्णमा च्छूंणत्ति देवत्राकंरजक्षीरेणा च्छूंणत्ति पर्मं वा एतत्पयो यदंजक्षीरं पर्मेणैवेनाम्पयसा च्छूंणत्ति यज्ञंषा व्यावृंत्त्यै छन्दोंभिरा च्छूंणत्ति छन्दोंभिर्व छन्दोंभिर छन्दोंभिर्व छन्दोंभिर्व छ

आह देवानां वै पत्नीः पृणेषा षद्वं॥_____

-[/1

एकंविश्शत्या मार्षैः पुरुषशीर्षमच्छैत्यमेध्या वै मार्षा अमेध्यम्पुरुषशीर्षमंमेध्यैरेवास्यांमेध्यं निरवदाय मेध्यं कृत्वा हंर्त्येकंविश्शतिर्भवन्त्येकविश्शो वै पुरुषः पुरुषस्यास्यै व्यृद्धं वा एतत्प्राणैरंमेध्यं यत्पुरुषशीर्षश् संप्तधा वितृंण्णां वल्मीकवपां प्रति नि दंधाति सप्त वै शीर्षण्याः प्राणाः प्राणैरेवैन्थ्समंर्धयति मेध्यत्वाय यावन्तः॥३९॥

वै मृत्युबंन्थव्स्तेषां यम आधिपत्यं परीयाय यमगाधाभिः परि गायित यमादेवैनंद्वङ्के तिसृभिः परि गायित त्रयं इमे लोका एभ्य एवैनंश्लोकेभ्यों वृङ्के तस्माद्रायंते न देयङ्गाथा हि तद्वुङ्केंऽग्निभ्यः पृश्वना लेभते कामा वा अग्नयः कामानेवावं रुन्द्वे यत्पश्चालभेतानंवरुद्धा अस्य॥४०॥

पृशवः स्युर्यत्पर्यम्भिकृतानुथ्मुजेद्यंज्ञवेश्वसं कुंर्याद्यथ्स इंस्थापर्येद्यातयांमानि शीर्षाणि स्युर्यत्पशूनालभंते तेनैव पृशूनवं रुन्द्वे यत्पर्यम्भिकृतानुथ्मुजतिं शीष्णांमयांतयामत्वाय प्राजापृत्येन सङ् स्थापयित युज्ञो वै प्रजापितिर्युज्ञ एव युज्ञं प्रति ष्ठापयित प्रजापितः प्रजा अंसृजत् स रिरिचानोऽमन्यत् स एता आप्रीरंपश्यत्ताभिर्वे स मुंखतः॥४१॥

आत्मान्माप्रीणीत् यदेता आप्रियो भवन्ति यज्ञो वै प्रजापंतिर्यज्ञमेवैताभिर्मुख्त आ प्रीणात्यपंरिमितछन्दसो भवन्त्यपंरिमितः प्रजापंतिः प्रजापंतेरास्यां ऊनातिरिक्ता मिथुनाः प्रजात्यै लोम्शं वै नामैतच्छन्दंः प्रजापंतेः पृशवों लोम्शाः पृश्न्वेवावं रुन्द्वे सर्वाण् वा पृता रूपाणि सर्वाण रूपाण्यग्नौ चित्यै क्रियन्ते तस्मादेता अग्नेश्चित्यंस्य॥४२॥

भ्वन्त्येकंविश्शतिश् सामिधेनीरन्वांह् रुग्वा एंकविश्शो रुचंमेव गंच्छुत्यथौ प्रतिष्ठामेव प्रितिष्ठा ह्येंकविश्शक्षतुंर्विश्शतिमन्वांह् चतुंर्विश्शतिरर्धमासाः संवथ्सरः संवथ्सरौऽग्निवैश्वानरः साक्षादेव वैश्वानरमवं रुन्छे परांचीरन्वांह् परांङिव् हि सुंवर्गो लोकः समास्त्वाग्न ऋतवो वर्धयन्त्वित्यांह् समाभिरेवाग्नि वर्धयति॥४३॥

ऋतुभिः संवथ्सरं विश्वा आ भांहि प्रदिशः पृथिव्या इत्यांह् तस्मांदग्निः सर्वा दिशोऽनु वि भांति प्रत्यौहतामिश्वनां मृत्युमंस्मादित्यांह मृत्युमेवास्मादपं नुदत्युद्वयं तमंस्स्परीत्यांह पाप्मा वै तमः पाप्मानंमेवास्मादपं हृन्त्यगंन्म ज्योतिंरुत्तमित्यांहासौ वा आंदित्यो ज्योतिंरुत्तममांदित्यस्यैव सायुंज्यं गच्छति न संवथ्सरस्तिष्ठति नास्य श्रीस्तिष्ठति यस्यैताः क्रियन्ते ज्योतिंष्मतीमृत्तमामन्वांह् ज्योतिरेवास्मा उपरिष्टाद्दधाति सुवर्गस्यं लोकस्यानुंख्यात्यै॥४४॥

यावंन्तोऽस्य मुख्तश्चित्यंस्य वर्धयत्यादित्याँऽष्टावि १ शतिश्च॥______[९]

षृङ्गिदींक्षयित षङ्गा ऋतवं ऋतुभिरेवेनं दीक्षयित सप्तभिदीक्षयित स्प्त छन्दार्सस् छन्दांभिरेवेनं दीक्षयित विश्वे देवस्यं नेतुरित्यंनुष्टभौत्तमयां जुहोति वाग्वा अंनुष्टुप्तस्मात्प्राणानां वार्गुत्तमैकंस्माद्क्षरादनांप्तम्प्रथमम्पदम् तस्माद्यद्वाचोऽनांमुं तन्मंनुष्यां उपं जीवन्ति पूर्णयां जुहोति पूर्ण इंव हि प्रजापंतिः॥४५॥

प्रजापंतेरास्यै न्यूंनया जुहोति न्यूंनािद्ध प्रजापंतिः प्रजा असंजत प्रजाना् सृष्ट्यै यद्चिषिं प्रवृश्याद्भृतमवं रुन्धीत् यदङ्गारेषु भविष्यदङ्गारेषु प्र वृंणक्ति भविष्यदेवावं रुन्द्धे भविष्यद्धि भूयों भूताद्वाभ्याम्प्र वृंणक्ति द्विपाद्यजंमानः प्रतिष्ठित्यै ब्रह्मणा वा एषा यज्ञंषा सम्भृंता यदुखा सा यद्भिद्येतार्तिमार्च्छेंत्॥४६॥ यजंमानो हुन्येतांस्य युज्ञो मित्रैतामुखां तुपेत्यांहु ब्रह्म वै मित्रो ब्रह्मंत्रेवैनां प्रतिं ष्ठापयित नार्तिमार्च्छति यजंमानो नास्यं युज्ञो हंन्यते यदि भिद्येत तैरेव कृपाठैः स॰ सृंजे्थ्सैव ततः प्रायेश्वित्तियों गृतश्रीः स्यान्मंथित्वा तस्यावं दथ्याद्भूतो वा एष स स्वां॥४७॥

देवतामुपैति यो भूतिकामः स्याद्य उखायै सम्भवेथ्स एव तस्यं स्यादतो ह्येष सम्भवेत्येष वै स्वयम्भूर्नाम् भवंत्येव यं कामयेत् आतृंव्यमस्मै जनयेय्मित्यन्यत्स्तस्याहृत्यावं दध्याथ्साक्षादेवास्मै आतृंव्यं जनयत्यम्बरीषादन्नंकाम्स्यावं दध्यादम्बरीषे वा अन्नम्भियते सयोन्येवान्नम्॥४८॥

अवं रुन्द्वे मुञ्जानवं दधात्यूर्ग्वे मुञ्जा ऊर्जमेवास्मा अपि दधात्युग्निर्देवेभ्यो निलायत् स क्रुंमुकम्प्राविंशत् कुमुकमवं दधाति यदेवास्य तत्र न्यंक्तं तदेवावं रुन्द्व आज्येन सं यौत्येतद्वा अग्नेः प्रियं धाम यदाज्यंम् प्रियेणैवेनं धाम्ना समर्धयत्यथो तेजंसा॥४९॥

वैकंकतीमा दंधाति भा पुवावं रुन्छे शमीमयीमा दंधाति शान्त्यै सीद त्वं मातुरस्या उपस्थ इति तिसृभिंर्जातमुपं तिष्ठते त्रयं इमे लोका पृष्वेव लोकेष्वाविदं गच्छत्यथौं प्राणानेवात्मन्धंत्ते॥५०॥

प्रजापंतिर्ऋच्छेथ्स्वामेवात्रं तेजंसा चतुंस्त्रि १ शच॥ __________ [१०]

न हं स्मृ वै पुराग्निरपंरशुवृक्णं दहित् तदंस्मै प्रयोग पुवर्षिरस्वदयद्यदंग्ने यानि कानि चेतिं समिधमा दंधात्यपंरशुवृक्णमेवास्मैं स्वदयित सर्वमस्मै स्वदते य एवं वेदौदुंम्बरीमा दंधात्यूर्ग्वा उंदुम्बर् ऊर्जमेवास्मा अपि दधाति प्रजापंतिरग्निमंसृजत् तर सृष्टर रक्षारंसि॥५१॥

अजिघा १ सन्थ्य पृतद्रौक्षोघ्रमंपश्यत्तेन् वै स रक्षा १ स्यपाहत् यद्रौक्षोघ्रम्भवंत्युग्नेरेव तेनं जाताद्रक्षा १ स्यपं हृन्त्याश्वंत्थीमा दंधात्यश्वत्थो वै वनस्पतीना १ सपत्रसाहो विजित्यै वैकंङ्कतीमा दंधाति भा पृवावं रुन्द्वे शमीमयीमा दंधाति शान्त्यै सर्शितम्मे ब्रह्मोदेंषाम्बाह् अतिरुमित्युंत्तमे औदुंम्बरी॥५२॥

वाच्यति ब्रह्मणैव क्षत्र स स्थिति क्षत्रेण ब्रह्म तस्माँद्वाह्मणो राजन्यंवानत्यन्यम्ब्राँह्मणं तस्माँद्राजन्यौ ब्राह्मणवानत्यन्य राजन्यंम्मृत्युर्वा एष यद्ग्रिर्मृत् हिरंण्य र रुक्ममन्तरं

प्रतिं मुञ्चतेऽमृतंमेव मृत्योर्न्तर्धेत् एकंवि श्वातिनिर्बाधो भवत्येकंवि श्वातिर्वे देवलोका द्वादंश मासाः पञ्चर्तवस्त्रयं इमे लोका असावांदित्यः॥५३॥

पृक्विर्श पृतावन्तो वै देवलोकास्तेभ्यं पृव भ्रातृंव्यम्न्तरेति निर्बाधेर्वै देवा असुंरान्निर्बाधेऽकुर्वत् तन्निर्बाधानां निर्बाधत्वन्निर्बाधा भंवत् भ्रातृंव्यानेव निर्बाध कुरुते सावित्रिया प्रति मुश्चते प्रसूत्ये नक्तोषासेत्युत्तरयाहोरात्राभ्यांमेवैन्मुद्यंच्छते देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदा इत्याह प्राणा वै देवा द्रविणोदा अहोरात्राभ्यांमेवैनंमुद्यत्या ५४॥

प्राणेर्बाधारासीनः प्रति मुञ्चते तस्मादासीनाः प्रजाः प्र जांयन्ते कृष्णाजिनमुत्तंर्न्तेजो वै हिरंण्यं ब्रह्मं कृष्णाजिनन्तेजंसा चैवेनं ब्रह्मंणा चोभयतः परि गृह्णाति षडुंद्यामः शिक्यंम्भवति षड्वा ऋतवं ऋतुभिरेवेनमुद्यंच्छते यद्वादंशोद्यामः संवथ्सरेणैव मौअम्भंवृत्यूर्ग्वे मुञ्जां ऊर्जेवेन् समर्धयति सुपर्णोऽसि गुरुत्मानित्यवेक्षते रूपमेवास्यैतन्मंहिमानं व्याचंष्टे दिवं गच्छ सुवंः पतेत्यांह सुवर्गमेवेनं लोकं गंमयति॥५॥

रक्षार्स्यौद्रंम्बरी आदित्य उद्यत्य सञ्चतुंर्विरशतिश्च॥————[११]

सिमद्धो अञ्जन्कृदंरम्मतीनां घृतमंग्ने मधुंमृत्पिन्वंमानः। वाजी वहंन्वाजिनं जातवेदो देवानां विक्षे प्रियमा स्थस्थम्ं। घृतेनाञ्जन्थसम्पथो देवयानां प्रजानन्वाज्यप्येतु देवान्। अनुं त्वा सप्ते प्रदिशंः सचन्ताङ् स्वधामस्मै यजंमानाय धेहि। ईड्यश्चास्चि वन्द्यंश्च वाजिन्नाशुश्चासि मेध्यंश्च सप्ते। अग्निष्ट्वां॥५६॥

देवैर्वस्ंभिः स्जोषाः प्रीतं वहिं वहत् जातवेदाः। स्तीर्णम्बर्हः सुष्टरीमा जुषाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम्। देवेभिर्युक्तमदितिः स्जोषाः स्योनं कृण्वाना सुविते देधात्। एता उं वः सुभगां विश्वरूपा वि पक्षोभिः श्रयमाणा उदातैः। ऋष्वाः स्तीः कृवषः शुम्भमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा भवन्त्। अन्त्ररा मित्रावरुणा चर्रन्ती मुखं यज्ञानांमभि संविदाने। उषासां वाम्॥५७॥

सृहिर्ण्ये सृशिल्पे ऋतस्य योनांविह सांदयामि। प्रथमा वार्रं सर्थिनां सुवर्णा देवौ पश्यन्तौ भुवनानि विश्वां। अपिप्रयं चोदेना वाम्मिमाना होतारा ज्योतिः प्रदिशां दिशन्तां। आदित्यैर्नो भारती वष्टु युज्ञर सरंस्वती सह रुद्रेर्न आवीत्। इडोपंहूता वसुंभिः स्जोषां युज्ञं नो देवीर्मृतेषु धत्त। त्वष्टां वीरं देवकामं जजान त्वष्टुर्र्या जायत आशुरश्वः।॥५८॥ त्वष्टेदं विश्वम्भुवंनं जजान बहोः कुर्तारंमिह यक्षि होतः। अश्वों घृतेन् त्मन्या समंक्तु उपं देवा । ऋतुः पाथं एतु। वनस्पतिर्देवलोकम्प्रंजानन्नृग्निनां हुव्या स्वदितानिं वक्षत्। प्रजापंतेस्तपंसा वावृधानः सद्यो जातो दंधिषे यज्ञमंग्ने। स्वाहांकृतेन हुविषां पुरोगा याहि साध्या हिवरंदन्तु देवाः॥५९॥

अुग्निष्ट्वां वामश्वो द्विचंत्वारि १शच॥———[१२]

विष्णुंमुखा अन्नपते यावंती वि वै पुंरुषमात्रेणाग्ने तव श्रवो ब्रह्मं जज्ञानः स्वंयमातृण्णामेषां वै पृशुर्गायत्री कस्त्वा द्वादंश॥———[१३]विष्णुंमुखा अपंचितिमान् वि वा एतावग्ने तवं स्वयमातृण्णां विषूचीनांनि गायत्री चतुंष्पष्टिः॥64॥ विष्णुंमुखास्तुनुवें भुवत्॥

॥द्वितीयः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां पञ्चमकाण्डे द्वितीयः प्रश्नः॥

विष्णुंमुखा वै देवाश्छन्दोभिरिमाल्लाँकानंनपज्य्यम्भ्यंजयन् यिद्वंष्णुक्रमान्क्रमंते विष्णुरेव भूत्वा यजंमानृश्छन्दोभिरिमाल्लाँकानंनपज्य्यम्भि जंयित् विष्णोः क्रमौंऽस्यभिमातिहेत्यांह गायत्री वै पृथिवी त्रैष्ठुंभम्नत्तरिक्षम् जागंती द्यौरानुष्ठभीर्दिश्रश्छन्दोभिरेवेमाल्लाँकान् यंथापूर्वम्भि जंयित प्रजापंतिरिग्नमंसृजत् सौंऽस्माथ्सृष्टः॥१॥

पर्राष्ट्रेत्तमेतयान्वैदर्भन्द्दिति तया वे सौँऽग्नेः प्रियं धामावांरुन्द्व यदेतामुन्वाहाग्नेरेवैतयाँ प्रियं धामावं रुन्द्व ईश्वरो वा एष पराँङ्कृदयो यो विष्णुऋमान्क्रमंते चतुसृभिरा वर्तते चुत्वारि छन्दार्रसि छन्दार्रसि खलु वा अग्नेः प्रिया तुन्ः प्रियामेवास्यं तुनुवम्भि॥२॥

पूर्यावंतिते दक्षिणा पूर्यावंतिते स्वमेव वीर्यमनुं पूर्यावंतिते तस्माद्दक्षिणोऽर्घं आत्मनों वीर्यावत्तरोऽथों आदित्यस्यैवावृतमनुं पूर्यावंतिते शुनःशेपमाजींगर्तिं वरुणोऽगृह्णाथ्स एतां वांरुणीमंपश्यत्तया वे स आत्मानं वरुणपाशादंमुश्रुद्धरुणो वा एतं गृह्णाति य उखाम्प्रतिमुश्रत उद्तुत्तमं वरुण पाशंमस्मदित्यांहात्मानंमेवैतयां॥३॥

वुरुणपाशान्मुंश्चत्या त्वांहार्षिमित्याहा ह्येन् हरंति ध्रुवस्तिष्ठाविंचाचित्रिरित्यांह् प्रतिष्ठित्ये विशंस्त्वा सर्वा वाञ्छुन्त्वित्यांह विशैवेन् समर्धयत्यस्मित्राष्ट्रमिधं श्रयेत्यांह राष्ट्रमेवास्मिन्ध्रुवमंकर्यं कामयेत राष्ट्र स्यादिति तम्मनंसा ध्यायेद्राष्ट्रमेव भंवति॥४॥

अग्रें बृहन्नुषसांमूर्ध्वो अंस्थादित्याहाग्रंमेवैन र समानानां करोति निर्जिग्मिवान्तमंस् इत्यांह् तमं एवास्मादपं हिन्ति ज्योतिषागादित्यांह् ज्योतिरेवास्मिन्दधाति चतुस्भिः सादयित चत्वारि छन्दांर्रसि छन्दोभिरेवातिछन्दसोत्तमया वर्ष्म वा एषा छन्दंसां यदितिच्छन्दा वर्ष्मैवैन र समानानां करोति सद्वंती॥५॥

भ्वति सत्त्वमेवैनं गमयति वाथ्सप्रेणोपं तिष्ठत एतेन् वै वंथ्सप्रीर्भालन्दनौंऽग्नेः प्रियं धामावां रुन्द्वाग्नेरेवैतेनं प्रियं धामावं रुन्द्व एकाद्शम्भवत्येक्धेव यज्ञंमाने वीर्यं दधाति स्तोमेन् वै देवा अस्मिल्लाँक आधृ्वञ्छन्दोभिर्मुष्मिन्स्तोमंस्येव खलु वा एतद्रूपं यद्वांथ्सप्रम्यद्वांथ्सप्रेणोपतिष्ठंते॥६॥

ड्ममेव तेनं लोकम्भि जंयित यिद्वेष्णुक्रमान्क्रमंतेऽमुमेव तैर्लोकम्भि जंयित पूर्वेद्यः प्र क्रांमत्युत्तरेद्युरुपं तिष्ठते तस्माद्योगेऽन्यासां प्रजानाम्मनः क्षेमेऽन्यासान्तस्माद्यायावरः क्षेम्यस्येशे तस्माद्यायावरः क्षेम्यम्ध्यवंस्यति मुष्टी कंरोति वार्चं यच्छति यज्ञस्य धृत्यै॥७॥

मृष्टोडे् ८भ्येतयां भवति सद्वंत्युपतिष्ठंते द्विचंत्वारि १ शच॥_____

अन्नप्तेऽन्नस्य नो देहीत्यांहाभिर्वा अन्नपितः स एवास्मा अन्नम्प्र यंच्छत्यनमीवस्यं शुष्मिण् इत्यांहायक्ष्मस्येति वावैतदांह् प्र प्रंदातारं तारिष् ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुंष्पद् इत्यांहाशिषंमेवैतामा शाँस्त उदं त्वा विश्वे देवा इत्यांह प्राणा वै विश्वे देवाः॥८॥

प्राणैरेवैनमुद्यंच्छ्तेऽग्ने भरंन्तु चित्तिंभिरित्यांहु यस्मां एवैनं चित्तायोद्यच्छंते तेनैवैन् समर्थयित चत्सभिरा सांदयित चत्वारि छन्दा स्मि छन्दोभिरेवातिंच्छन्दसोत्तमया वर्ष्म् वा एषा छन्दंसां यदितंच्छन्दा वर्ष्मेवैन समानानां करोति सद्वंती भवित सत्त्वमेवैन गमयित प्रेदंग्ने ज्योतिंष्मान्॥९॥

याहीत्यांह् ज्योतिरेवास्मिन्दधाति तुनुवा वा एष हिनस्ति यर हिनस्ति मा हिर्श्सीस्तुनुवा प्रजा इत्यांह प्रजाभ्यं एवैनर् शमयित रक्षारंसि वा एतद्यज्ञर संचन्ते यदनं उथ्सर्जत्यक्रेन्द्दित्यन्वांह् रक्षंसामपंहत्या अनंसा वहुन्त्यपंचितिमेवास्मिन्दधाति तस्मादन्स्वी चं रुथी चातिथीनामपंचिततमौ॥१०॥

अपंचितिमान्भवति य एवं वेदं समिधाऽग्निं दुंवस्यतेतिं घृतानुषिक्तामवंसिते समिधमा

दंधाति यथातिंथय आगंताय सूर्पिष्वंदातिथ्यं क्रियते ताहगेव तद्गांयित्रया ब्राँह्मणस्यं गायत्रो हि ब्राँह्मणस्त्रिष्टुभां राज्नन्यंस्य त्रैष्टुंभो हि राजन्यौंऽफ्सु भस्म प्र वेशयत्यपसुयोंनिर्वा अग्निः स्वामेवैनं योनिं गमयति तिसुभिः प्र वेशयति त्रिवृद्धै॥११॥

अग्निर्यावांनेवाग्निस्तम्प्रंतिष्ठां गंमयित् परा वा एषों'ऽग्निं वंपति यों'ऽपस् भस्मं प्रवेशयंति ज्योतिंष्मतीभ्यामवं दधाति ज्योतिरेवास्मिन्दधाति द्वाभ्यां प्रतिष्ठित्ये परा वा एष प्रजां पृशून् वंपति यों'ऽपस् भस्मं प्रवेशयंति पुनंरूर्जा सह र्य्येति पुनंरुदैतिं प्रजामेव पृशून्तम्थंते पुनंस्त्वादित्याः॥१२॥

रुद्रा वसंवः सिनंन्धतामित्यांहैता वा एतं देवता अग्रे समैन्धत् ताभिरेवैन् सिनंन्द्रे बोधा स बोधीत्युपं तिष्ठते बोधयंत्येवैनन्तस्मांथ्सुस्वा प्रजाः प्र बुंध्यन्ते यथास्थानमुपं तिष्ठते तस्मांद्यथास्थानम्पुशवः पुनुरेत्योपं तिष्ठन्ते॥१३॥

वै विश्वें देवा ज्योतिंष्मानपंचिततमौ त्रिवृद्वा आंदित्या द्विचंत्वारि॰शच॥———[२]

यावंती वै पृथिवी तस्यै यम आधिपत्यं परीयाय यो वै यमं देवयर्जनम्स्या अनिर्याच्याग्निं चिनुते यमायैन् स चिनुतेऽपेतत्यध्यवंसाययति यममेव देवयर्जनम्स्ये निर्याच्यात्मनेऽग्निं चिनुत इष्वग्रेण् वा अस्या अनामृतिमेच्छन्तो नाविन्दन्ते देवा पृतद्यज्ञंत्रपश्यन्नपेतेति यदेतेनाध्यवसाययंति॥१४॥

अनामृत एवाग्निं चिनुत् उद्धन्ति यदेवास्यां अमेध्यं तदपं हन्त्युपोऽवौक्षिति शान्त्यै सिकंता नि वंपत्येतद्वा अग्नेर्वैश्वान्रस्यं रूप र रूपेणैव वैश्वान्रमवं रुन्द्व ऊषान्नि वंपति पृष्टि्वा एषा प्रजनेनं यदूषाः पृष्ट्यांमेव प्रजनेनेऽग्निं चिनुतेऽथौं संज्ञानं एव संज्ञान् इ ह्येतत्॥१५॥

पृश्नां यदूषा द्यावांपृथिवी सहास्तान्ते वियती अंब्रतामस्त्वेव नौं सह यज्ञियमिति यद्मुष्यां यज्ञियमासीत्तद्स्यामंदधात्त ऊषां अभवन् यद्स्या यज्ञियमासीत्तद्मुष्यांमदधात्तद्दश्चन्द्रमंसि कृष्णमूषांत्रिवपंत्रदो ध्यायेद्धावांपृथिव्योरेव यज्ञियेऽग्निं चिनुतेऽयर सो अग्निरितिं विश्वामित्रस्य॥१६॥

सूक्तम्भंवत्येतेन् वै विश्वामित्रोऽग्नेः प्रियं धामावारुन्द्याग्नेरेवैतेनं प्रियं धामावं रुन्द्रे छन्दोभिर्वे देवाः सुवर्गं लोकमायश्चतंस्रः प्राचीरुपं दधाति चत्वारि छन्दार्शसे छन्दोभिरेव तद्यजमानः सुवर्गं लोकमेति तेषार् सुवर्गं लोकं यतां दिशः समेन्नीयन्त् ते द्वे पुरस्तांध्समीची उपांदधत द्वे॥१७॥

पृश्चाथ्समीची ताभिर्वे ते दिशोंऽद्दश्ह्न् यह्ने पुरस्तांथ्समीची उपदर्धाति ह्ने पृश्चाथ्समीची दिशां विधृत्या अथी पृशवो वे छन्दार्श्स पश्चेवास्में समीची दधात्यष्टाबुपं दधात्यष्टाक्षरा गायत्री गायत्री जीवतीनेवाग्निस्तं चिनुतेऽष्टावुपं दधात्यष्टाक्षरा गायत्री गायत्री सुवर्गं लोकसश्चंसा वेद सुवर्गस्यं लोकस्यं॥१८॥

प्रज्ञाँत्यै त्रयोंदश लोकं पृणा उपं दधात्येकंवि शितः सम्पंद्यन्ते प्रतिष्ठा वा एंकि वि श्रातः प्रतिष्ठा गार्हंपत्य एकि वि श्रातः प्रतिष्ठा गार्हंपत्य एकि वि श्रातः प्रतिष्ठा गार्हंपत्यम्नु प्रति तिष्ठति प्रत्यप्रिं चिक्यानिस्तिष्ठति य एवं वेद पश्चचितीकं चिन्वीत प्रथमं चिन्वानः पाङ्कौ युज्ञः पाङ्कौः प्रश्चो यज्ञमेव प्रशूनवं रुन्द्धे त्रिचितीकं चिन्वीत द्वितीयं चिन्वानस्त्रयं इमे लोका एष्वेव लोके पुं॥१९॥

प्रति तिष्ठत्येकंचितीकं चिन्वीत तृतीयंं चिन्वान एंक्धा वे सुंवर्गो लोक एंक्वृतैव सुंवर्गं लोकमेति पुरीषेणाभ्यूंहित तस्मान्मा स्सेनास्थिं छुन्नन्न दुश्चर्मा भवति य एवं वेद पश्च चित्रंयो भवन्ति पुश्चभिः पुरीषैर्भ्यूंहित दश् सम्पंचन्ते दशाक्षरा विराहन्नं विराह्विराज्येवान्नाद्ये प्रति तिष्ठति॥२०॥

अद्ध्यवसाययंति ह्यंतिद्विश्वामित्रस्यादधत् द्वे लोकस्यं लोकेषुं सप्तचंत्वारिश्शच॥———[३]

वि वा एतौ द्विषाते यश्चं पुराग्निर्यश्चोखाया समितिमिति चतुस्भिः सं नि वंपति चत्वारि छन्दार्सम् छन्दार्सम् खलु वा अग्नेः प्रिया तुनः प्रिययैवैनौ तुनुवा सर्शांस्ति समितिमित्यांहु तस्माद्वह्मंणा क्षत्रर समेति यथ्संन्युप्यं विहरंति तस्माद्वह्मंणा क्षत्र च्येंत्युतुभिंः॥२१॥

वा पृतं दींक्षयन्ति स ऋतुभिरेव विमुच्यों मातेवं पुत्रं पृथिवी पुरीष्यंमित्यांहुर्तुभिरेवैनं दीक्षयित्वर्तुभिर्वि मुंश्रति वैश्वान्यां शिक्यंमा देते स्वदयंत्येवैनंत्रैर्ऋतीः कृष्णास्तिस्रस्तुषंपका भवन्ति निर्ऋत्ये वा पृतद्भाग्धेयं यत्तुषा निर्ऋत्ये रूपं कृष्ण र रूपेणेव निर्ऋतिं निरवंदयत इमां दिशं यन्त्येषा॥२२॥

वै निर्ऋंत्यै दिख्स्वायांमेव दिशि निर्ऋतिं निरवंदयते स्वकृत् इरिण उपं दधाति प्रदरे वैतद्वै निर्ऋंत्या आयतंन्ध् स्व पुवायतंने निर्ऋतिं निरवंदयते शिक्यंम्भ्युपं दधाति

नैर्ऋतो वै पार्शः साक्षादेवैनं निर्ऋतिपाशान्मुंश्चिति तिस्र उपं दधाति त्रेधाविहितो वै पुरुषो यावानेव पुरुषस्तस्मान्निर्ऋतिमवं यजते परांचीरुपं॥२३॥

द्धाति परांचीमेवास्मान्निर्ऋतिम्प्र णुंदतेऽप्रंतीक्षमा यंन्ति निर्ऋत्या अन्तर्हित्ये मार्जियत्वोपं तिष्ठन्ते मेध्यत्वाय गार्हंपत्यमुपं तिष्ठन्ते निर्ऋतिलोक एव चंरित्वा पूता देंवलोकमुपावर्तन्त एक्योपं तिष्ठन्त एक्येव यजंमाने वीर्यं दधित निवेशंनः संगमनो वसूनामित्यांह प्रजा वै पृशवो वसूं प्रजयैवैनम्पृशुभिः समर्धयन्ति॥२४॥

ऋतुभिरेषा परांचीरुपाष्टाचंत्वारि शश्च॥

ואזי

पुरुषमात्रेण वि मिमीते यज्ञेन वै पुरुषः सम्मितो यज्ञपुरुषैवैनं वि मिमीते यावान्पुरुष ऊर्ध्वबांहुस्तावान्भवत्येतावृद्धै पुरुषे वीर्यं वीर्येणैवैनं वि मिमीते पृक्षी भविति न ह्यंपृक्षः पितंतुमर्हत्यपृत्तिनां पृक्षौ द्राघीया स्मौ भवतस्तस्मात्पृक्षप्रवया स्मि वया सि व्याममात्रौ पृक्षौ च भवत्येतावद्धै पुरुषे वीर्यम्॥२५॥

वीर्यंसिम्मितो वेणुंना वि मिंमीत आग्नेयो वै वेणुंः सयोनित्वाय यजुंषा युनिक्त यजुंषा कृषिति व्यावृंत्ये पङ्गवेनं कृषिति पङ्घा ऋतवं ऋतुभिंरेवैनं कृषिति यद्घांदशग्वेनं संवथ्सरेणै्वेयं वा अग्नेरंतिदाहादंबिभेथ्सेतिद्द्वंगुणमंपश्यत्कृष्टं चार्कृष्टं च ततो वा इमां नात्यंदहद्यत्कृष्टं चार्कृष्टं च॥२६॥

भवंत्यस्या अनंतिदाहाय द्विगुणं त्वा अग्निमुद्यंन्तुमर्ह्तीत्यांहुर्यत्कृष्टं चाकृष्टं च् भवंत्यग्नेरुद्यंत्या पृतावंन्तो वै पृशवो द्विपादंश्च चतुष्पादश्च तान् यत्प्राचं उथ्सृजेद्रुद्रायापि दथ्याद्यद्वंक्षिणा पितृभ्यो नि धुंवेद्यत्प्रतीचो रक्षा रेसि हन्युरुदींच उथ्सृंजत्येषा वै देवमनुष्याणा रेशान्ता दिक्॥२७॥

तामेवैनानन्थ्सृंज्त्यथो खिल्वमां दिश्मुथ्सृंजत्यसौ वा आंदित्यः प्राणः प्राणमेवैनानन्थ्सृंजित दक्षिणा पूर्यावंर्तन्ते स्वमेव वीर्यमन् पूर्यावंर्तन्ते तस्माद्दक्षिणोऽर्घ आत्मनो वीर्यावत्तरोऽथो आदित्यस्यैवावृत्मन् पूर्यावंर्तन्ते तस्मात्पराश्चः पृशवो वि तिष्ठन्ते प्रत्यं च आ वंर्तन्ते तिस्रस्तिस्रः सीताः॥२८॥

कृषति त्रिवृतंमेव यंज्ञमुखे वि यांतयत्योषंधीर्वपति ब्रह्मणात्रमवं रुन्द्धेऽर्केऽर्कश्चीयते चतुर्द्शभिवपति सप्त ग्राम्या ओषंधयः सप्तार्ण्या उभयीषामवंरुद्धा अत्रंस्यात्रस्य वपुत्यन्नस्यान्नस्यावंरुद्धै कृष्टे वंपति कृष्टे ह्योषंधयः प्रतितिष्ठंन्त्यनुसीतं वंपति प्रजाँत्यै द्वादशसु सीतांसु वपति द्वादंश् मासाः संवथ्सरः संवथ्सरेणैवास्मा अन्नम्पचित यदंग्निचित्॥२९॥

अनंबरुद्धस्याश्जीयादवंरुद्धेन् व्यृंद्धोत् ये बनुस्पतींनाम्फलुग्रहंयुस्तानि्ध्मेऽिष् प्रोक्षेदनंबरुद्धस्यावंरुद्धौ दिग्भ्यो लोष्टान्थ्समंस्यति दिशामेव वीर्यमवरुध्यं दिशां वीर्यंऽिग्नें चिनुते यं द्विष्याद्यत्र स स्यात्तस्यैं दिशो लोष्टमा हंरेदिष्मूर्जमहिम्ति आ दंद इतीषमेवोर्जं तस्यै दिशोऽवं रुन्द्धे क्षोधुंको भवति यस्तस्यां दिशि भवंत्युत्तरवेदिमुपं वपत्युत्तरवेद्याः ह्यंग्निश्चीयतेऽथों पृशवो वा उत्तरवेदिः पृशूनेवावं रुन्द्धेऽथों यज्ञपुरुषोऽनंन्तरित्यै॥३०॥

च भुवृत्येतावृद्धे पुरुषे वीर्यं यत्कृष्टश्चाकृष्टं च दिख्सीतां अग्निचिदव पश्चवि शतिश्च॥ [५]

अग्रे तव श्रवो वय इति सिकंता नि वंपत्येतद्वा अग्नेर्वेश्वान्रस्यं सूक्त स्कृतेव वैश्वान्रमवं रुन्द्धे पङ्किर्नि वंपति पङ्घा ऋतवंः सं वथ्सरः संवथ्सरौऽग्निर्वेश्वान्रः साक्षादेव वैश्वान्रमवं रुन्द्धे समुद्रं वै नामैतच्छन्दः समुद्रमन् प्रजाः प्र जांयन्ते यदेतेन् सिकंता निवपिति प्रजानां प्रजननायेन्द्रंः॥३१॥

वृत्राय वज्रम्प्राहंरथ्स त्रेधा व्यंभव्थस्प्यस्तृतीयः रथस्तृतीयं यूपस्तृतीयं येंऽन्तःश्र्रा अशीर्यन्त ताः शर्करा अभवन्तच्छर्कराणाः शर्कर्त्वं वज्रो वै शर्कराः पशुर्ग्निर्यच्छर्कराभिर्ग्निं पंरिमिनोति वज्रेणेवास्मै पृश्र्न्यरि गृह्णाति तस्माद्वज्रेण पृशवः परिगृहीतास्तस्माथ्स्थेयानस्थेयसो नोपं हरते त्रिसप्ताभिः॥३२॥

पृशुकांमस्य परि मिनुयाथ्सप्त वै शीर्षण्याः प्राणाः प्राणाः पृशवः प्राणैरेवास्मैं पृश्नवं रुन्द्धे त्रिण्वाभिर्भातृंव्यवतिश्चवृतंमेव वज्ञर्रं सम्भृत्य भ्रातृंव्याय प्र हंरित स्तृत्या अपिरिमिताभिः परि मिनुयादपिरिमितस्यावंरुद्धौ यं कामयेतापृशः स्यादित्यपिरिमित्य तस्य शर्कराः सिकंता व्यृहेदपिरगृहीत पृवास्यं विषूचीन् रेरेतः परा सिश्चत्यपृशुरेव भवति॥३३॥

यं कामयेत पशुमान्थ्रस्यादितिं परिमित्य तस्य शर्कराः सिकंता व्यूंहेत्परिगृहीत एवास्मैं समीचीन् रेतः सिश्चति पशुमानेव भवति सौम्या व्यूंहति सोमो वै रेतोधा रेतं एव तद्दंधाति गायित्रया ब्राँह्मणस्यं गायत्रो हि ब्राँह्मणस्त्रिष्टुभां राजन्यंस्य त्रैष्टुंभो हि रांजन्यः शुं युम्बांर्हस्पृत्यम्भेधो नोपानम्थ्सौंऽग्निम्प्राविंशत्॥३४॥

सौंऽग्नेः कृष्णों रूपं कृत्वोदांयत् सोऽश्वम्प्राविंश्थ्सोऽश्वंस्यावान्तरश्पां-ऽभव्द्यदश्वंमाक्रमयंति य एव मेधोऽश्वम्प्राविंशृत्तमेवावं रुन्द्धे प्रजापंतिनाग्निश्चेंत्व्यं इत्याहुः प्राजापत्योऽश्वो यदश्वंमाक्रमयंति प्रजापंतिनैवाग्निं चिंनुते पुष्करपूर्णमुपं दधाति योनिर्वा अग्नेः पुष्करपूर्णः सयोनिमेवाग्निं चिंनुतेऽपां पृष्ठमुसीत्युपं दधात्यपां वा एतत्पृष्ठं यत्पुष्करपूर्णः रूपेणैवैनुदुपं दधाति॥३५॥

इन्द्रंः पृशुकांमस्य भवत्यविश्रथ्सयोंनिं विश्शृतिश्चं॥-----[६]

ब्रह्मं जज्ञानिमितिं क्कामुपं दथाति ब्रह्मंमुखा वै प्रजापंतिः प्रजा अंसृजत् ब्रह्मंमुखा एव तत्प्रजा यजंमानः सृजते ब्रह्मं जज्ञानिमत्यांहु तस्माँद्वाह्मणो मुख्यो मुख्यो भवति य एवं वेदं ब्रह्मवादिनो वदन्ति न पृंधिव्यां नान्तरिक्षे न दिव्यंग्निश्चेत्व्यं इति यत्पृंधिव्यां चिन्वीत पृंधिवी श्रुचापंयेन्नौषंधयो न वनस्पतंयः॥३६॥

प्र जांयेर्न् यद्न्तरिक्षे चिन्वीतान्तरिक्षः शुचार्पयेन्न वयाः सि प्र जांयेर्न् यद्दिवि चिन्वीत दिवः शुचार्पयेन्न पर्जन्यो वर्षेद्रुकामुपं दधात्यमृतं वे हिरंण्यम्मृतं एवाग्निं चिनुते प्रजांत्ये हिर्ण्मयं पुरुष्मुपं दधाति यजमानलोकस्य विधृत्ये यदिष्टंकाया आतृण्णमनूपद्ध्यात्पंशूनां च यजमानस्य च प्राणमपि दध्यादक्षिणृतः॥३७॥

प्राश्चमुपं दधाति दाधारं यजमानलोकन्न पंशूनां च यजंमानस्य च प्राणमपिं दधात्यथो खिल्वष्टंकाया आतृंण्णमनूपं दधाति प्राणानामुथ्सृष्टमे द्रफ्सश्चंस्कुन्देत्यभि मृंशति होत्रांस्वेवैनं प्रतिं ष्ठापयति स्रुचावुपं दधात्याज्यंस्य पूर्णां कांष्मिर्यमर्थां द्रप्तः पूर्णामौदुंम्बरीमियं वै कांष्मिर्यमय्यसावौदुंम्बरीमे एवोपं धत्ते॥३८॥

तूष्णीमुपं दधाति न हीमे यजुषासुमर्हिति दक्षिणां कार्ष्मर्यमयीमुत्तंरामौदुंम्बरीन्तस्मांदस्या असावृत्तराज्यंस्य पूर्णां काँष्मर्यमयीं वज्रो वा आज्यं वज्रंः कार्ष्मर्यो वज्रेणैव यज्ञस्यं दक्षिणतो रक्षार्स्स्यपं हन्ति द्रष्नः पूर्णामौदुंम्बरीम्प्शवो वै दध्यूर्गुदुम्बरंः पृशुष्वेवोर्जं दधाति पूर्णे उपं दधाति पूर्णे पुवैनम्॥३९॥

अमुष्मिंश्लोंक उपं तिष्ठेते विराज्यग्निश्चेंतव्यं इत्यांहुः स्नुग्वे विराद्यथ्सुचांवुप्दधांति विराज्येवाग्निं चिनुते यज्ञमुखयंज्ञमुखे वै क्रियमांणे युज्ञ रक्षार्रसि जिघारसन्ति यज्ञमुखर रुक्तो यद्रुकां व्याघारयंति यज्ञमुखादेव रक्षार्स्यपं हन्ति पश्चभिव्याघारयति पाङ्को युज्ञो यावांनेव यज्ञस्तस्माद्रक्षार्स्स्यपं हन्त्यक्ष्णया व्याघांरयति तस्मांदक्ष्णया पृशवोऽङ्गांनि प्र हंरन्ति प्रतिष्ठित्ये॥४०॥

वनस्पतंयो दक्षिणतो धंत्त एन्न्तस्मांदक्ष्णया पश्चं च॥————[७]

स्वयमातृण्णामुपं दधातीयं वै स्वयमातृण्णेमामेवोपं धत्तेऽश्वमुपं घ्रापयित प्राणमेवास्याँ दधात्यथौँ प्राजापत्यो वा अर्श्वः प्रजापितिनेवाग्निं चिनुते प्रथमेष्टंकोपधीयमाना पशूनां च्यर्जमानस्य च प्राणमिपं दधाति स्वयमातृण्णा भविति प्राणानामुथ्सृष्ट्या अथौं सुवर्गस्यं लोकस्यानुंख्यात्या अग्नावग्निश्चेतव्यं इत्याहरेष वै॥४१॥

अग्निर्वैश्वान्रो यद्वाँह्मणस्तस्में प्रथमामिष्टंकां यज्ञंष्कृताम्प्र यंच्छेत्ताम्ब्राँह्मणश्चोपं दध्यातामृग्नावेव तद्भिं चिन्त ईश्वरो वा एष आर्तिमार्तोयोऽविद्वानिष्टंकामृप्दधांति त्रीन् वराँन्दद्यात्रयो वै प्राणाः प्राणानाः स्पृत्ये द्वावेव देयो द्वौ हि प्राणावेकं एव देय एको हि प्राणः पृशुः॥४२॥

वा एष यद्ग्रिनं खलु वै पृशव् आयंवसे रमन्ते दूर्वेष्ट्रकामुपं दधाति पशूनां धृत्ये द्वाभ्यां प्रतिष्ठित्ये काण्डांत्काण्डात्प्ररोह्न्तीत्यांह् काण्डेनकाण्डेन् ह्यंषा प्रतितिष्ठंत्येवा नों दूर्वे प्र तंनु सहस्रेण शतेन् चेत्यांह साह्स्रः प्रजापंतिः प्रजापंतेरात्ये देवलुक्ष्मं वै त्र्यांलिखिता तामुत्तंरलक्ष्माणं देवा उपांदधताधंरलक्ष्माण्मसुंग् यम्॥४३॥

कामर्येत् वसीयान्थस्यादित्युत्तंररुक्ष्माण्ं तस्योपं दथ्याद्वसीयानेव भवित् यं कामर्येत् पापीयान्थस्यादित्यर्धररुक्ष्माण्ं तस्योपं दथ्यादसुरयोनिमेवेनमनु परां भावयित् पापीयान्भविति त्र्यालिखिता भवितीमे वै लोकास्र्यालिखितीभ्य एव लोकेभ्यो भ्रातृंव्यम्नतरेत्यिङ्गंरसः सुवृगं लोकं यतः पुरोडाशंः कूर्मो भूत्वानु प्रासंपत्॥४४॥

यत्कूर्ममुंपदर्धाति यथाँ क्षेत्रविदर्श्वसा नयंत्येवमेवैनं कूर्मः सुंवर्गं लोकमश्चसा नयति मेथो वा एष पंशूनां यत्कूर्मो यत्कूर्ममुंपदर्धाति स्वमेव मेथम्पश्यंन्तः पृशव उपं तिष्ठन्ते श्मशानं वा एतिक्रियते यन्मृतानां पशूना शीर्षाण्युपधीयन्ते यञ्जीवंन्तं कूर्ममुंपदर्धाति तेनाश्मशानचिद्वास्तुव्यों वा एष यत्॥४५॥

कूर्मो मधु वातां ऋतायत इति द्र्या मधुमिश्रेणाभ्यंनक्ति स्वदयंत्येवैनंङ्गाम्यं वा एतदत्रुं यद्दथ्यार्ण्यम्मधु यद्द्या मधुमिश्रेणांभ्यनक्त्युभयस्यावंरुद्धौ मही द्यौः पृथिवी च न इत्यांहाभ्यामेवैनंमुभ्यतः परिं गृह्णाति प्राश्चमुपं द्रधाति सुवर्गस्यं लोकस्य सम्प्रे पुरस्तांत्प्रत्यश्चमुपं दधाति तस्मांत्॥४६॥

पुरस्तांत्प्रत्यश्चंः पृशवो मेधुमुपं तिष्ठन्ते यो वा अपंनाभिमृग्निं चिनुते यजंमानस्य नाभिमनु प्र विंशति स एंनमीश्वरो हि॰सिंतोरुलूखंलुमुपं दधात्येषा वा अग्नेर्नाभिः सनांभिमेवाग्निं चिनुतेऽहि॰साया औदुम्बरम्भवृत्यूर्ग्वा उंदुम्बर् ऊर्जमेवावं रुन्द्धे मध्यत उपं दधाति मध्यत एवास्मा ऊर्जं दधाति तस्मांन्मध्यत ऊर्जा भुंश्चत इयंद्भवति प्रजापंतिना यज्ञमुखेन सम्मित्मवं हुन्त्यन्नमेवाकंर्वेष्ण्व्यर्चोपं दधाति विष्णुर्वे युज्ञो वैष्ण्वा वनस्पतंयो यज्ञ एव युज्ञं प्रति ष्ठापयित॥४७॥

एष वै पुशुर्यमंसर्पदेष यत्तस्मात्तस्मांथ्सप्तवि १ शतिश्च॥

=[∠]

पुषां वा पुतल्लोकानां ज्योतिः सम्भृतं यदुखा यदुखामुंप्दधाँत्येभ्य पुव लोकेभ्यो ज्योतिरवं रुन्द्धे मध्यत उपं दधाति मध्यत पुवास्मे ज्योतिर्दधाति तस्माँनमध्यतो ज्योतिरुपाँस्महे सिकंताभिः पूरयत्येतद्वा अग्नेर्वैश्वानुरस्यं रूपः रूपेणैव वैश्वानुरमवं रुन्द्धे यं कामयेत् क्षोधुंकः स्यादित्यूनां तस्योपं॥४८॥

द्ध्यात्क्षोधुंक एव भंवति यं कामयेतानुंपदस्यदन्नंमद्यादितिं पूर्णां तस्योपं दध्यादनुंपदस्यदेवान्नंमत्ति सहस्रं वै प्रति पुरुषः पशूनां यंच्छति सहस्रंमन्ये पृशवो मध्ये पुरुषशीर्षमुपं दधाति सवीर्यत्वायोखायामपिं दधाति प्रतिष्ठामेवैनंद्रमयित व्यृंद्धं वा एतत्प्राणैरंमेध्यं यत्पुंरुषशीर्षम्मृतं खलु वै प्राणाः॥४९॥

अमृत् हिरंण्यं प्राणेषुं हिरण्यश्लकान्प्रत्यंस्यित प्रतिष्ठामेवैनंद्रमियत्वा प्राणेः समंध्यिति द्व्रा मंधुमिश्रेणं पूरयति मध्व्योऽसानीति शृतात्ङ्क्ष्येन मेध्यत्वायं ग्राम्यं वा एतदन्नं यद्ध्यांर्ण्यम्मधु यद्द्व्या मंधुमिश्रेणं पूरयंत्युभयस्यावंरुख्ये पशुशीर्षाण्युपं दधाति पृशवो वै पंशुशीर्षाणि पृश्नेवावं रुन्द्वे यं कामयेतापृशुः स्यादिति॥५०॥

विष्णीनांनि तस्योपं दथ्याद्विषूंच एवास्माँत्पशून्दंधात्यपृशुरेव भंवित यं कामयेत पशुमान्थ्रस्यादितिं समीचीनांनि तस्योपं दथ्याथ्यमीचं एवास्मैं पृशून्दंधाति पशुमानेव भंवित पुरस्तांत्प्रतीचीनमश्वस्योपं दधाति पृश्चात्प्राचीनंमृष्भस्यापंशवो वा अन्ये गोंअश्वभ्यः पृशवों गोअश्वानेवास्मैं सुमीचों दधात्येतावंन्तो वै पृशवंः॥५१॥

द्विपादंश्च चतुंष्पादश्च तान् वा एतदुग्नौ प्र दंधाति यत्पंशुशीर्षाण्युंपदधाँत्यमुमांरण्यमनुं ते दिशामीत्यांह ग्राम्येभ्यं एव पुशुभ्यं आरुण्यान्पुशूञ्छुचमनूथ्सृंजति तस्माँथ्समावंत्पशूनां प्रजायमानानामार्ण्याः पृशवः कनीया २ स्यावा ह्यंताः संपिशीर्षमुपं दधाति यैव सुपि त्विषिस्तामेवावं रुन्द्वे॥ ५२॥

यथ्संमीचीनंम्पशुशीर्षैरुंपद्ध्याद्भाम्यान्पशून्दःश्चंकाः स्युर्यद्विषूचीनंमार्ण्यान् यजुरेव वंदेदव् तां त्विषिरं रुन्द्वे या सर्पे न ग्राम्यान्पशून् हिनस्ति नार्ण्यानथो खलूप्धेयंमेव यदुपदधांति तेन तां त्विषिमवं रुन्द्वे या सर्पे यद्यजुर्वदंति तेनं शान्तम्॥५३॥

ক্রনাन्तस्योपं प्राणाः स्यादिति वै पृशवीं रुन्धे चतुंश्चत्वारि १शच॥————[९]

पृशुर्वा एष यद्ग्नियोंनिः खलु वा एषा पृशोर्वि क्रियते यत्प्राचीनंमैष्टकाद्यज्ञंः क्रियते रेतोंऽपृस्यां अपृस्यां उपं दधाति योनांवेव रेतों दधाति पञ्चोपं दधाति पाङ्गाः पृशवः पृशूनेवास्मै प्र जनयति पञ्चं दक्षिणतो वज्रो वा अपृस्यां वज्रेणैव यज्ञस्यं दक्षिणतो रक्षाः स्यपं हन्ति पञ्चं पश्चात्॥५४॥

प्राची्रुपं दधाति पृश्चाद्वै प्राचीन् रेतों धीयते पृश्चादेवास्मैं प्राचीन् रेतों दधाति पश्चं पुरस्तांत्प्रतीची्रुपं दधाति पश्चं पृश्चात्प्राची्र्स्तस्मांत्प्राचीन् रेतों धीयते प्रतीचींः पृजा जांयन्ते पश्चौत्तर्त्तरु दस्याः पृश्चवे वे छंन्द्स्याः पृश्चेव प्रजातान्थ्स्वमायतंनम्भि पर्यूहत इयं वा अग्नेरंतिदाहादंबिभेथ्सेताः॥५॥

अपुस्यां अपश्यत्ता उपाधत्त् ततो वा इमां नात्यंदहृद्यदंपुस्यां उपुदधांत्यस्या अनंतिदाहायोवाचं हेयमद्दिथ्स ब्रह्मणात्रुं यस्यैता उपधीयान्तै य उं चैना एवं वेद्दितिं प्राणभृत उपं दधाति रेतंस्येव प्राणान्दंधाति तस्माद्वदंन्प्राणन्पश्यंञ्छृण्वन्पशुर्जायते-ऽयम्पुरः॥५६॥

भुव इति पुरस्तादुपं दधाति प्राणमेवैताभिर्दाधारायं देक्षिणा विश्वकर्मेति दक्षिणतो मनं पुवैताभिर्दाधारायम्पश्चाद्विश्वव्यंचा इति पश्चाचक्षुरेवैताभिर्दाधारेदमुंत्तराथ्सुविरित्युंत्तरतः श्रोत्रमेवैताभिर्दाधारेयमुपरि मृतिरित्युपरिष्टाद्वाचंमेवैताभिर्दाधार् दशंद्शोपं दधाति सवीर्युत्वायांक्ष्णया॥५७॥

उपं दथाति तस्मांदक्ष्णया पृशवोऽङ्गांनि प्र हंरन्ति प्रतिष्ठित्यै याः प्राचीस्ताभिर्वसिष्ठ आर्ग्नोद्या दक्षिणा ताभिर्भरद्वांजो याः प्रतीचीस्ताभिर्विश्वामित्रो या उदींचीस्ताभिर्जुमदिग्नियां कुर्ध्वास्ताभिर्विश्वकंर्मा य पुवमेतासामृद्धिं वेद्र्प्नोत्येव य आसामेवम्बन्धतां वेद् बन्धंमान्भवित् य आसामेवं क्रुप्तिं वेद् कल्पंते॥५८॥

अस्मै य आंसामेवमायतेनं वेदायतेनवान्भवित य आंसामेवम्प्रतिष्ठां वेद प्रत्येव तिष्ठति प्राण्भृतं उपधार्यं संयत् उपं दधाति प्राणानेवास्मिन्धित्वा संयद्भिः सं येच्छिति तथ्संयता संयत्त्वमर्थौ प्राण एवापानं दंधाति तस्मौत्प्राणापानौ सं चंरतो विषूचीरुपं दधाति तस्माद्विष्वंश्चौ प्राणापानौ यद्वा अग्नेरसं यतम्॥५९॥

असुंवर्ग्यमस्य तथ्सुंवर्ग्योऽग्निर्यथ्सं यतं उपदर्धाति समेवैनं यच्छति सुवर्ग्यमेवाकुस्र्यविर्वर्यः कृतमयानामित्याह् वर्योभिरेवायानवं रुन्द्धेऽयैर्वयार्शस सर्वती वायुमतीर्भवन्ति तस्माद्यर सर्वतः पवते॥६०॥

पृश्चादेताः पुरोंंऽक्ष्ण्या कल्पृतेऽसं यतं पश्चंत्रि शच॥————[१०]

गायत्री त्रिष्टु अगंत्यनुष्टु क्पूङ्गां सह। बृह्त्यं िष्णहां कुकुथ्सूचीभिः शिम्यन्तु त्वा। द्विपदा या चतुंष्पदा त्रिपदा या च षद्वंदा। सछंन्दा या च विच्छंन्दाः सूचीभिः शिम्यन्तु त्वा। महानां मी रेवतंयो विश्वा आशाः प्रसूवंरीः। मेघ्यां विद्युतो वाचः सूचीभिः शिम्यन्तु त्वा। रज्ता हरिणीः सीसा युजो युज्यन्ते कर्मभिः। अश्वंस्य वाजिनंस्त्वचि सूचीभिः शिम्यन्तु त्वा। नारीः॥६१॥

ते पत्नयो लोम् वि चिन्वन्तु मनीषयाँ। देवानाम्पत्नीर्दिशः सूचीभिः शिम्यन्तु त्वा। कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूयं। इहेहैंषां कृणुत् भोजनानि ये ब्रहिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः॥६२॥

नारींस्रि॰्शर्च॥———[११]

कस्त्वां छाति कस्त्वा वि शांस्ति कस्ते गात्रांणि शिम्यति। क उं ते शिम्ता कृविः। ऋतवंस्त ऋतुधा पर्रुः शिमृतारो वि शांसतु। संवथ्सरस्य धायंसा शिमीभिः शिम्यन्तु त्वा। दैव्यां अध्वर्यवंस्त्वा छान्तु वि चं शासतु। गात्रांणि पर्वशस्ते शिमाः कृण्वन्तु शिम्यंन्तः। अर्धुमासाः परूर्ंषि ते मासांश्छान्तु शिम्यंन्तः। अर्होरात्राणि मुरुतो विलिष्टं॥६३॥

सृद्यन्तु ते। पृथिवी तेऽन्तरिक्षेण वायुश्छिद्रिम्पिज्यत्। द्यौस्ते नक्षेत्रैः सह रूपं कृंणोतु साधुया। शं ते परेंभ्यो गात्रेभ्यः शम्स्त्ववंरेभ्यः। शम्स्थभ्यो मुज्जभ्यः शम् ते

तुनुवे भुवत्॥६४॥

उथ्सन्नयुज्ञ इन्द्रांग्नी देवा वा अंक्षणयास्तोमीयां अग्नेर्भागांऽस्यग्ने जातान्नश्मिरितिं नाक्सद्भिष्ठन्दारंसि सर्वांभ्यो वृष्टिसनींर्देवासुराः कनीयारसः प्रजापंतेरिक्षे द्वादंश॥[१३]उथ्सन्नयुज्ञो देवा वै यस्य मुख्यंवतीर्नाकुसद्भिरेवैताभिर्ष्टाचंत्वारिरशत्॥48॥ उथ्सन्नयुज्ञः संर्वृत्वायं॥

॥ तृतीयः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां पञ्चमकाण्डे तृतीयः प्रश्नः॥

उथ्सन्नयुज्ञो वा एष यद्ग्निः किं वाहैतस्यं क्रियते किं वा न यद्वै यज्ञस्यं क्रियमाणस्यान्तर्यन्ति पूर्यति वा अस्य तदांश्विनीरुपं दधात्यश्विनौ वै देवानां भिषजौ ताभ्यामेवास्में भेषजं कंरोति पञ्चोपं दधाति पाङ्को यज्ञो यावांनेव यज्ञस्तस्में भेषजं कंरोत्यृत्वयां उपं दधात्यृतूनां क्रस्यैं॥१॥

पश्चोपं दधाति पश्च वा ऋतवो यावंन्त एवर्तव्स्तान्कंत्पयित समानप्रंभृतयो भवन्ति समानोदंका्ंस्तस्मांध्समाना ऋतव एकेन पदेन व्यावंर्तन्ते तस्मांदृतवो व्यावंर्तन्ते प्राण्भृत उपं दधात्यृतुष्वेव प्राणान्दंधाति तस्मांध्समानाः सन्तं ऋतवो न जीर्यन्त्यथो प्र जनयत्येवैनांनेष व वायुर्यत्प्राणो यदंतव्यां उपधायं प्राण्भृतंः॥२॥

उपदर्धाति तस्माथ्सर्वानृतूनन् वायुरा वंरीवर्त्ति वृष्टिसनीरुपं दधाति वृष्टिमेवावं रुन्द्धे यदेंक्धोपंद्ध्यादेकंमृतुं वंर्षेदनुपरिहार्रं सादयति तस्माथ्सर्वानृतून् वंर्षिति यत्प्राण्भृतं उपधायं वृष्टिसनीरुपद्धांति तस्माद्धायुप्रंच्युता दिवो वृष्टिरीर्ते पृशवो वै वयस्यां नानांमनसः खलु वै पृशवो नानांव्रतास्तेऽप पृवाभि समंनसः॥३॥

यं कामयेतापृशः स्यादितिं वयस्याँस्तस्योपृधायांपृस्यां उपं दथ्यादसँज्ञानमेवास्मैं पृशुभिः करोत्यपृशुरेव भविति यं कामयेत पृशुमान्थस्यादित्यंपृस्याँस्तस्योपृधायं वयस्यां उपं दथ्याथ्संज्ञानमेवास्मै पृशुभिः करोति पृशुमानेव भविति चतसः पुरस्तादुपं दधिति तस्माँचत्वारि चक्षुंषो रूपाणि द्वे शुक्के द्वे कृष्णे॥४॥

मूर्धन्वर्तींर्भवन्ति तस्माँत्पुरस्ताँन्मूर्धा पञ्च दक्षिणायाः श्रेण्यामुपं दधाति पञ्चोत्तंरस्यां तस्माँत्पश्चाद्वर्षीयान् पुरस्ताँत्प्रवणः पृशुर्बस्तो वय इति दक्षिणेऽश्स उपं दधाति वृष्णिर्वय इत्युत्तरेऽश्सांवेव प्रति दधाति व्याघ्रो वय इति दक्षिणे पृक्ष उपं दधाति सिश्हो वय इत्युत्तरे पृक्षयोरेव वीर्यं दधाति पुरुषो वय इति मध्ये तस्मात्पुरुषः पशूनामधिपतिः॥५॥

क्रुस्यां उपुधार्य प्राणुभृतः समंनसः कृष्णे पुरुषो वय इति पश्चं च॥-----[१]

इन्द्रांग्नी अव्यंथमानामितिं स्वयमातृण्णामुपं दधातीन्द्राग्निभ्यां वा हुमौ लोकौ विधृंतावनयौलींकयोर्विधृंत्या अधृंतेव वा पृषा यन्मंध्यमा चितिंरन्तिरक्षिमिव वा पृषेन्द्रांग्नी इत्यांहेन्द्राग्नी वै देवानामोजोभृतावोजंसैवैनांमन्तिरक्षे चिनुते धृत्ये स्वयमातृण्णामुपं दधात्यन्तिरक्षे वै स्वयमातृण्णान्तिरक्षिमेवोपं धृत्तेऽश्वमुपं॥६॥

प्राप्यति प्राणमेवास्यां दधात्यथां प्राजापत्यो वा अर्थः प्रजापंतिनैवाग्निं चिनुते स्वयमातृण्णा भवति प्राणानामुथ्सृष्ट्या अथां सुवर्गस्यं लोकस्यानुंख्यात्ये देवानां वै सुंवर्गं लोकं यतां दिशः समंब्लीयन्त त एता दिश्यां अपश्यन्ता उपांदधत् ताभिर्वे ते दिशोंऽदृश्हृन्यद्दिश्यां उपदर्धाति दिशां विधृत्ये दशं प्राण्भृतः पुरस्तादुपं॥७॥

द्धाति नव वै पुरुषे प्राणा नाभिर्दश्मी प्राणानेव पुरस्ताँ छत्ते तस्माँतपुरस्ताँत्प्राणा ज्योतिष्मतीमृत्तमामुपं दधाति तस्माँतप्राणानां वाग्ज्योतिष्मतीमृत्तमामुपं दधाति तस्माँतप्राणानां वाग्ज्योतिष्त्तमा दशोपं दधाति दशाँक्षरा विराङ्किराद्वन्दंसां ज्योतिज्योतिरेव पुरस्ताँ छत्ते तस्माँतपुरस्ताङ्योतिरुपाँस्महे छन्दार्शसि पुशुष्वाजिमंयुस्तान्बृहत्युदंजयत्तस्माद्वार्हताः॥८॥

पृशवं उच्यन्ते मा छन्द् इतिं दक्षिणत उपं दधाति तस्माँदक्षिणावृंतो मासाः पृथिवी छन्द् इतिं पृश्चात्प्रतिष्ठित्या अग्निर्देवतेत्युंत्तर्त ओजो वा अग्निरोजं एवोत्तर्तो धंते तस्मांदुत्तरतोभिप्रयायी जंयित षिट्गर्रश्चाथ्यम्पंद्यन्ते षिट्गर्रश्चरक्षरा बृह्ती बार्ह्ताः पृशवो बृह्त्यैवास्मै पृश्चनवं रुन्द्वे बृह्ती छन्दंसा् इं स्वारांज्यं परीयाय यस्यैताः॥९॥

उपधीयन्ते गच्छंति स्वाराँज्यः सप्त वालंखिल्याः पुरस्तादुपं दधाति सप्त पश्चाथ्सप्त वै शीर्षण्याः प्राणा द्वाववांश्चो प्राणानाः सवीर्यत्वायं मूर्धासि राडितिं पुरस्तादुपं दधाति यत्री राडितिं पृश्चात्प्राणानेवास्मैं सुमीचों दधाति॥१०॥

अश्वमुपं पुरस्तादुप् बार्हंता एताश्चर्तिस्रि श्चा ॥————[२]

देवा वै यद्यज्ञेऽकुर्वत् तदस्रंरा अकुर्वत् ते देवा एता अंक्ष्णयास्तोमीयां अपश्यन्ता

अन्यथानूच्यान्यथोपांदधत् तदसुंरा नान्ववायन्ततो देवा अभवन्यरासुंरा यदंक्ष्णयास्तोमीयां अन्यथानूच्यान्यथोपदधांति भ्रातृंच्याभिभूत्यै भवंत्यात्मना परांस्य भ्रातृंच्यो भवत्याशुस्त्रिवृदितिं पुरस्तादुपं दधाति यज्ञमुखं वै त्रिवृत्॥११॥

यज्ञमुखमेव पुरस्ताद्वि यांतयित् व्योम सप्तदश इतिं दक्षिणतोऽत्रृं वै व्योमान्नर्थं सप्तदशोऽन्नमेव दक्षिणतो धंत्ते तस्माद्दक्षिणेनान्नमद्यते धुरुणं एकविर्श इतिं पृक्षात्प्रतिष्ठा वा एकविर्शः प्रतिष्ठित्ये भान्तः पंश्चदश इत्यंत्तरत ओजो वै भान्त ओजेः पश्चदश ओजं एवोत्तरतो धंत्ते तस्माद्त्तरतोभिप्रयायी जंयित् प्रतूर्तिरष्टादश इतिं पुरस्तांत्॥१२॥

उपं दधाति द्वौ त्रिवृतांविभपूर्वं यंज्ञमुखे वि यांतयत्यभिवृतः संविष्श इतिं दक्षिण्तोऽत्रं वा अभिवृत्तीऽत्रर्थं सिव्ष्शोऽत्रंमेव देक्षिण्तो धेत्ते तस्माद्दक्षिणेनान्नंमद्यते वर्चौ द्वाविष्श इतिं पृश्चाद्यद्विष्शृतिर्द्वे तेनं विराजौ यद्वे प्रतिष्ठा तेनं विराजौरेवाभिपूर्वमृन्नाद्ये प्रतिं तिष्ठति तपो नवदश इत्युंत्तर्तस्तस्माध्युव्यः॥१३॥

हस्तयोस्तप्स्वितंरो योनिश्चतुर्विष्य इति पुरस्तादुपं दधाति चतुर्विष्यात्यक्षरा गायत्री गायत्री यंज्ञमुखम् यंज्ञमुखमेव पुरस्ताद्वि यांतयित गर्भाः पश्चिविष्या इति दक्षिणतोऽत्रं वै गर्भा अत्रं पश्चिविष्योऽत्रमेव दक्षिणतो धंत्ते तस्माद्दक्षिणेनात्रमद्यत् ओजिस्निण्व इति पश्चिदिमे वै लोकास्निण्व एष्वेव लोकेषु प्रति तिष्ठति सम्भरणस्रयोविष्या इति॥१४॥

उत्तर्तस्तस्मांथ्सव्यो हस्तंयोः सम्भायंतरः ऋतुंरेकत्रिष्ट्श इति पुरस्तादुपं दधाति वाग्वे ऋतुंर्यज्ञमुखं वाग्यंज्ञमुखम्व पुरस्ताद्वि यांतयित ब्रध्नस्यं विष्टपं चतुः स्त्रिष्ट्श इति दिक्षणतोऽसौ वा आदित्यो ब्रध्नस्यं विष्टपंम् ब्रह्मवर्चसम्व दिक्षणतो धंत्ते तस्माद्दक्षिणोऽधौ ब्रह्मवर्चसितंरः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिष्ट्रश इति पृश्चात्प्रतिष्ठित्यै नाकः पद्विष्ट्श इत्यंत्तर्तः सुवर्गो वै लोको नाकः सुवर्गस्यं लोकस्य समष्टि॥१५॥

वै त्रिवृदितिं पुरस्तांथ्सव्यस्त्रंयोवि र्श इतिं सुवर्गो वै पश्चं च॥————[३]

अग्नेर्भागिंऽसीतिं पुरस्तादुपं दधाति यज्ञमुखं वा अग्निर्यंज्ञमुखं दीक्षा यंज्ञमुखं ब्रह्मं यज्ञमुखं त्रिवृद्यंज्ञमुखमेव पुरस्ताद्वि यांतयित नृचक्षंसाम्भागोंऽसीतिं दक्षिणतः शुंश्रुवारसो वै नृचक्षसोऽत्रं धाता जातायैवास्मा अत्रमिं दधाति तस्मांज्ञातोऽत्रंमित्त जनित्रई स्पृतर संप्तदशः स्तोम् इत्याहात्रुं वै जनित्रम्॥१६॥ अन्नर्थं सप्तद्शोऽन्नमेव देक्षिणतो धेत्ते तस्माद्दक्षिणेनान्नमद्यते मित्रस्यं भागोऽसीतिं पृश्चात्प्राणो वै मित्रोऽपानो वर्षणः प्राणापानावेवास्मिन्दधाति दिवो वृष्टिर्वाताः स्पृता एकिविश्षः स्तोम् इत्याह प्रतिष्ठा वा एकिविश्षः प्रतिष्ठित्या इन्द्रस्य भागोऽसीत्युंत्तर्त ओजो वा इन्द्र ओजो विष्णुरोजः क्षत्रमोजः पश्चदशः॥१७॥

ओजं एवोत्तंरतो धंत्ते तस्मांदुत्तरतोभिप्रयायी जंयित वसूंनाम्भागोंऽसीतिं पुरस्तादुपं दधाति यज्ञमुखं वै वसंवो ंयज्ञमुखर रुद्रा यंज्ञमुखं चंतुर्विर्शो यंज्ञमुखमेव पुरस्ताद्वि यांतयत्यादित्यानां भागोंऽसीतिं दक्षिणतोऽत्रृं वा आंदित्या अत्रंम्म्रुरुतोऽत्रृं गर्भा अत्रं पश्चिव्रशोऽत्रंमेव दक्षिणतो धंत्ते तस्माद्दक्षिणेनात्रंमद्यतेऽदिंत्ये भागः॥१८॥

असीतिं पृश्चात्प्रंतिष्ठा वा अदिंतिः प्रतिष्ठा पूषा प्रंतिष्ठा त्रिणवः प्रतिष्ठित्ये देवस्यं सिवृतुर्भागोंऽसीत्युंत्तर्तो ब्रह्म वै देवः सिवृता ब्रह्म बृह्स्पित्र्ब्रह्मं चतुष्टोमो ब्रह्मवर्च्समेवोत्तंरतो धेत्ते तस्मादुत्त्तरोऽधौं ब्रह्मवर्च्सितंरः सावित्रवंती भवति प्रसूत्ये तस्माद्भाह्मणानामुदींची सिनः प्रसूता धर्त्रश्चंतुष्टोम इति पुरस्तादुपं दधाति यज्ञमुखं वै धर्त्रः॥१९॥

यज्ञमुखं चंतुष्टोमो यंज्ञमुखमेव पुरस्ताद्वि यांतयित यावांनाम्भागोंऽसीतिं दक्षिणतो मासा वै यावां अर्धमासा अयांवास्तस्माँदक्षिणावृंतो मासा अत्रं वै यावा अत्रं प्रजा अन्नमेव दक्षिणतो धंते तस्माद्दक्षिणेनान्नमद्यत ऋभूणाम्भागोंऽसीतिं पृश्चात् प्रतिष्ठित्ये विवर्तौ- ऽष्टाचत्वारि श्च इत्युंत्तरतोंऽनयौंलींकयौंः सवीर्यत्वाय तस्मादिमौ लोकौ समावद्वीर्यौ॥२०॥

यस्य मुख्यंवतीः पुरस्तांदुपधीयन्ते मुख्यं एव भंवत्यास्य मुख्यं जायते यस्यान्नंवतीर्दक्षिणतोऽत्त्यन्नमास्यान्नादो जायते यस्यान्नंवतीर्दक्षिणतोऽत्त्यन्नमास्यान्नादो जायते यस्यो प्रतिष्ठावेतीः पृश्चात्प्रत्येव तिष्ठति यस्योजंस्वतीरुत्तर्त ओंजुस्ब्येव भंवत्यास्योजस्वी जायतेऽकी वा एष यद्ग्निस्तस्यैतदेव स्तोत्रमेतच्छस्रं यदेषा विधा॥२१॥

विधीयतेऽर्क एव तदर्क्यमनु वि धीयतेऽत्त्यन्नमास्यान्नादो जायते यस्यैषा विधा विधीयते य उं चैनामेवं वेद सृष्टीरुपं दधाति यथासृष्टमेवावं रुन्द्धे न वा इदं दिवा न नक्तमासीदव्यांवृत्तन्ते देवा एता व्यंष्टीरपश्यन्ता उपादधत् ततो वा इदं व्यौंच्छुद्यस्यैता उपधीयन्ते व्येवास्मां उच्छुत्यथो तमं एवापं हते॥२२॥

वै जुनित्रं पश्चदुशोऽदिंत्यै भागो वै धर्त्रः सुमावद्वीर्यौ विधा ततो वा इदं चतुंर्दश च॥[४]

अग्नें जातान्त्र णुंदा नः सपत्नानितिं पुरस्तादुपं दधाति जातानेव भ्रातृंव्यान्त्र णुंदते सहंसा जातानितिं पृश्वाञ्चंनिष्यमांणानेव प्रतिं नुदते चतुश्चत्वारिष्शः स्तोम् इतिं दक्षिणतो ब्रह्मवर्चसं वै चंतुश्चत्वारिष्शो ब्रह्मवर्चसमेव दक्षिणतो धंत्ते तस्माद्दक्षिणोऽर्धौ ब्रह्मवर्चसितंरः षोडशः स्तोम् इत्युंत्तरत ओजो वै षोडश ओजं एवोत्तंरतो धंत्ते तस्मात्॥२३॥

उत्तर्तोभिप्रयायी जंयित वज्रो वै चंतुश्चत्वारिष्शो वर्ज्यः षोड्शो यदेते इष्टंके उपदर्धाति जाता इश्चेव जिन्छ्यमाणा इश्च आतृं व्यान्प्रणुद्य वज्रमनु प्र हंरित स्तृत्ये पुरींषवती म्मध्य उपं दर्धाति पुरींषु वै मध्यमात्मनः सात्मानमेवाग्निं चिंनुते सात्मामुष्मिं ह्योंके भविति य एवं वेदैता वा असपुता नामेष्टंका यस्येता उपधीयन्ते॥ २४॥

नास्यं स्पत्नों भवति पृशुर्वा एष यद्ग्निर्वि्राजं उत्तमायां चित्यामुपं दधाति विराजंमेवोत्तमाम्पृशुषुं दधाति तस्मात्पशुमानुत्तमां वाचं वदति दशंदशोपं दधाति सवीर्यृत्वायांक्ष्णयोपं दधाति तस्मादक्ष्णया पृशवोऽङ्गानि प्र हंरन्ति प्रतिष्ठित्यै यानि वै छन्दार्शसे सुवुर्ग्याण्यासुन्तेर्देवाः सुवुर्गं लोकमायुन्तेनर्षयः॥२५॥

अश्राम्यन्ते तपौऽतप्यन्त् तानि तपंसापश्यन्तेभ्यं एता इष्टंका निरंमिम्तेवृश्छन्दो विरंवृश्छन्द इति ता उपांदधत् ताभिवै ते सुंवृगं लोकमायन् यदेता इष्टंका उपदर्धाति यान्येव छन्दा स्सि सुवृग्याणि तैरेव यजमानः सुवृगं लोकमेति यज्ञेन वै प्रजापंतिः प्रजा अंसुजत् ताः स्तोमंभागैरेवासृंजत् यत्॥२६॥

स्तोमंभागा उप्दर्धाति प्रजा एव तद्यजंमानः सृजते बृह्स्पित्वा एतद्यज्ञस्य तेजः समंभरद्यथ्स्तोमंभागा यथ्स्तोमंभागा उपदर्धाति सतेजसमेवाग्नि चिनुते बृह्स्पित्वा एता यज्ञस्यं प्रतिष्ठामंपश्यद्यथ्स्तोमंभागा यथ्स्तोमंभागा उपदर्धाति यज्ञस्य प्रतिष्ठित्यै स्प्तस्प्तापं दर्धाति सवीर्युत्वायं तिस्रो मध्ये प्रतिष्ठित्यै॥२७॥

उत्तर्तो धंत्ते तस्मांदुपधीयन्त ऋषयोऽसृजत् यत्रिचंत्वारिश्शच॥————[५]

र्श्मिरित्येवादित्यमंसृजत् प्रेतिरिति धर्ममन्वितिरिति दिवर् सुंधिरित्युन्तरिक्षं प्रतिधिरिति पृथिवीं विष्टम्भ इति वृष्टिंम्प्रवेत्यहंरनुवेति रात्रिंमुशिगिति वस्नैन्प्रकेत इति रुद्रान्थ्सुंदीतिरित्यांदित्यानोज् इति पितृङ्स्तन्तुरिति प्रजाः पृंतनाषाडिति पृशूत्रेवदित्योषंधीरभिजिदंसि युक्तग्रांवा॥२८॥

इन्द्रांयु त्वेन्द्रं जिन्वेत्येव देक्षिणतो वज्रं पर्यौहद्भिजित्यै ताः प्रजा अपंप्राणा असृजत् तास्विधंपतिर्सीत्येव प्राणमंदधाद्यन्तेत्यंपानः स्र्सप् इति चक्षुंवयोधा इति श्रोत्रन्ताः प्रजाः प्राणतीरंपानतोः पश्यंन्तीः शृण्वतीर्न मिथुनी अभवन्तास् त्रिवृद्सीत्येव मिथुनमंदधाताः प्रजा मिथुनी॥२९॥

भवंन्तीर्न प्राजांयन्त् ताः सर्रग्रेहोंऽसि नीरोहोंऽसीत्येव प्राजनयृत्ताः प्रजाः प्रजांता न प्रत्यंतिष्ठन्ता वंसुकोंऽसि वेषंश्रिरसि वस्यंष्टिर्सीत्येवेषु लोकेषु प्रत्यंस्थापयद्यदाहं वसुकोंऽसि वेषंश्रिरसि वस्यंष्टिर्सीतिं प्रजा एव प्रजांता एषु लोकेषु प्रतिं ष्ठापयित् सात्मान्तरिक्षर रोहित् सप्रांणोऽमुष्मिं ह्याँके प्रतिं तिष्ठत्यव्यंर्धुकः प्राणापानाभ्यां भवित् य एवं वेदं॥३०॥

युक्तग्रांवा प्रजा मिथुन्यंन्तरिक्षुन्द्वादंश च॥------[६]

नाकसिद्धिवें देवाः सुंवर्गं लोकमायन्तन्नांकसदां नाकसत्त्वं यन्नांकसदं उपदर्धाति नाकसिद्धिरेव तद्यजीमानः सुवर्गं लोकमेति सुवर्गो वै लोको नाको यस्यैता उपधीयन्ते नास्मा अकम्भवित यजमानायत्नं वै नांकसदो यन्नांकसदे उपदर्धांत्यायतंनमेव तद्यजीमानः कुरुते पृष्ठानां वा एतत्तेजः सम्भृतं यन्नांकसदो यन्नांकसदः॥३१॥

उपदर्धाति पृष्ठानांमेव तेजोऽवं रुन्द्धे पश्चचोडा उपं दधात्यप्स्तरसं पृवैनंमेता भूता अमुिष्मिं ह्याँक उपं शेरेऽथों तनूपानींरेवैता यजमानस्य यं द्विष्यात्तमुंपदर्धस्त्रायेदेताभ्यं पृवैनं देवतांभ्य आ वृंश्विति ताजगार्तिमार्च्छ्वत्युत्तरा नाक्सन्द्य उपं दधाति यथां जायामानीयं गृहेषुं निषादयंति तादृगेव तत्॥३२॥

पृश्चात्प्राचीमुत्त्मामुपं दधाति तस्मौत्पृश्चात्प्राची प्रत्यन्वौस्ते स्वयमातृण्णां चं विकृणीं चौत्तमे उपं दधाति प्राणो वे स्वयमातृण्णायुंर्विकृणीं प्राणं चैवायुंश्च प्राणानांमृत्तमौ धंते तस्मौत्प्राणश्चायुंश्च प्राणानांमृत्तमौ नान्यामुत्तंरामिष्टंकामुपं दध्याद्यदन्यामुत्तंरामिष्टंकामुपदध्यात्पंशूनाम्॥३३॥

च् यजंमानस्य च प्राणं चायुश्चापि दथ्यात्तस्मान्नान्योत्तरेष्टंकोप्धेयां स्वयमातृण्णामुपं दधात्यसा वे स्वयमातृण्णामूमेवोपं धृत्तेऽश्वमुपं घ्रापयित प्राणमेवास्यां दधात्यथां प्राजापत्यो वा अर्थः प्रजापितनैवाग्निं चिनुते स्वयमातृण्णा भवित प्राणानामुथ्सृष्ट्या अथी सुवर्गस्यं लोकस्यानुंख्यात्या एषा वे देवानां विक्रांन्तिर्यद्विंकुर्णी यद्विंकुर्णीम्पुंपदधाति देवानांमेव

विक्रौन्तिमनु वि क्रंमत उत्तर्त उपं दधाति तस्मांदुत्तर्तउंपचारोऽग्निर्वायुमतीं भवति समिंद्धौ॥३४॥

सम्भृतं यन्नांकसदो यन्नांकसद्स्तत्पंशूनामेषां वै द्वाविर्शतिश्च॥———[७]

छन्दार्स्युपं दधाति पृशवो वै छन्दार्स्स पृशूनेवावं रुन्द्धे छन्दार्स्सि वै देवानां वामम्पृशवो वाममेव पृशूनवं रुन्द्ध एतार हु वै यज्ञसेनश्चेत्रियायणश्चितिं विदां चंकार तया वै स पृशूनवांरुन्द्ध यदेतामुंपृदधांति पृशूनेवावं रुन्द्धे गायत्रीः पुरस्तादुपं दधाति तेजो वै गांयत्री तेजं एव॥३५॥

मुख्तो धंत्ते मूर्ध्न्वतींर्भवन्ति मूर्धानंमेवैन र समानानां करोति त्रिष्टुभ् उपं दधातीन्द्रियं वै त्रिष्टुगिन्द्रियमेव मध्यतो धंत्ते जगंतीरुपं दधाति जागंता वै पृशवंः पृश्नेवावं रुन्द्धे- उनुष्टुभ् उपं दधाति प्राणा वा अनुष्टुप्राणानामुथ्सृष्ट्रे बृह्तीरुण्णिहाः पृङ्कीरुक्षरंपङ्कीरिति विष्रंरूपाणि छन्दारस्युपं दधाति विष्रंरूपा वै पशवंः पृशवंः॥३६॥

छन्दा ५ सि विष्रूं रूपानेव पृश्नवं रुन्द्वे विष्रूं रूपमस्य गृहे दृश्यते यस्यैता उपधीयन्ते य उं चैना एवं वेदातिंच्छन्दसमुपं दधात्यतिंच्छन्दा वै सर्वाणि छन्दा ५ सर्वेभिरेवैनं छन्दोंभिश्चिन्ते वर्ष्म् वा एषा छन्दंसां यदितंच्छन्दा यदितंच्छन्दसमुप्दधांति वर्ष्मेवैन ५ समानानां करोति द्विपदा उपं दधाति द्विपाद्यजंमानः प्रतिष्ठित्यै॥३७॥

तेर्ज एव प्रार्वः प्रायो यर्जमान् एकंश्र॥-----[८]

सर्वाभ्यो वै देवताभ्योऽग्निश्चीयते यथ्सयुजो नोपंद्ध्याद्देवतां अस्याग्निं वृंश्चीर्न् यथ्सयुजं उपदधांत्यात्मनैवेन र् स्युजं चिनुते नाग्निना व्यृध्यतेऽथो यथा पुरुषः स्नावंभिः सन्तंत एवमेवैताभिर्ग्निः सन्तंतोऽग्निना वै देवाः सुंवर्गं लोकमायन्ता अमूः कृंत्तिका अभवन् यस्यैता उपधीयन्ते सुवर्गमेव॥३८॥

लोकमेति गर्च्छिति प्रकाशं चित्रमेव भेवित मण्डलेष्ट्रका उपं दधातीमे वै लोका मण्डलेष्ट्रका इमे खलु वै लोका देवपुरा देवपुरा एव प्र विंशिति नार्तिमार्च्छित्यग्निं चिक्यानो विश्वज्योतिष उपं दधातीमानेवैताभिर्लोकां ज्योतिष्मतः कुरुतेऽथौं प्राणानेवैता यर्जमानस्य दाप्रत्येता वै देवताः सुवर्ग्यास्ता एवान्वारभ्यं सुवर्गं लोकमेति॥३९॥

सुवर्गमेव ता एव चत्वारि च॥-----[९]

वृष्टिसनीरुपं दधाति वृष्टिमेवावं रुन्द्धे यदेक्धोपंदध्यादेकंमृतुं वंर्षेदनुपरिहार र् सादयति तस्माथ्सर्वानृतून् वंर्षति पुरोवातुसनिरुसीत्यांहैतद्वै वृष्ट्यै रूप र रूपेणैव वृष्टिमवं रुन्द्वे संयानींभिर्वे देवा इमाल्लौंकान्थ्समंयुस्तथ्संयानीना संयानित्वं यथ्संयानीरुपदर्धाति यथापसु नावा संयात्येवम्॥४०॥

एवैताभिर्यजंमान इमाल्लाँकान्थ्सं यांति प्रवो वा एषों उग्नेर्यथ्संयानीर्यथ्संयानीर्रुपदधांति प्रुवमेवैतम् ग्रयं उपं दधात्युत यस्यैतासूपंहितास्वापोऽग्नि हरन्त्यह्रंत एवास्याग्निरांदित्येष्टका उपं दधात्यादित्या वा एतम्भूत्यै प्रतिं नुदन्ते योऽलम्भूत्यै सन्भूतिं न प्राप्नोत्यांदित्याः॥४१॥

एवैनम्भूतिं गमयन्त्यसौ वा एतस्यांदित्यो रुचमा दंत्ते योंऽग्निं चित्वा न रोचंते यदांदित्येष्टका उंपदर्धांत्यसावेवास्मिन्नादित्यो रुचं दधाति यथासौ देवाना रोचंत एवमेवैष मंनुष्याणा रोचते घृतेष्ट्रका उपं दधात्येतद्वा अग्नेः प्रियं धाम् यद्भृतिम्प्रियेणैवैनं धाम्रा समर्धयति॥४२॥

अथो तेर्ज्ञंसानुपरिहार र् सादयत्यपंरिवर्गमेवास्मिन्तेर्जो दधाति प्रजापंतिरग्निमंचिनुत स यशंसा व्यार्ध्यत स एता यंशोदा अंपश्यत्ता उपांधत्त ताभिर्वे स यशं आत्मन्नंधत्त यद्यंशोदा उपदर्थाति यशं एव ताभिर्यजमान आत्मन्धंते पञ्चोपं दधाति पाङ्कः पुरुषो यावांनेव पुरुषस्तस्मिन् यशों दधाति॥४३॥

पुवं प्राप्नोत्यांदित्या अर्धयत्येकान्नपेश्चाशचं॥———[१०]

देवासुराः संयंत्ता आसुन्कनीया सो देवा आसुन्भूया १ सोऽसुं रास्ते देवा एता इष्टंका अपश्यन्ता उपांदधत भूयस्कृदसीत्येव भूया १ सो-ऽभवन्वनुस्पतिंभिरोषंधीभिर्वरिवस्कृद्सीतीमामंजयन्त्राच्यसीति प्राचीं दिशंमजयत्रूर्ध्वासीत्यमूमंजय सीदेत्यन्तरिक्षमजयन्तती देवा अभवन्न॥४४॥

परासुंरा यस्यैता उंपधीयन्ते भूयांनेव भंवत्यभीमाल्लौंकाञ्जंयति भवंत्यात्मना पराँस्य भार्तृंव्यो भवत्यप्रसुषदंसि श्येनसद्सीत्यांहैतद्वा अग्ने रूप रूपेणैवाग्निमवं रुन्द्वे पृथिव्यास्त्वा द्रविणे सादयामीत्याहेमानेवैताभिर्लोकान् द्रविणावतः कुरुत आयुष्यां उपं दधात्यायुरेव॥४५॥

अस्मिन्द्धात्यग्ने यत्ते पर्ष् हन्नामेत्यांहैतद्वा अग्नेः प्रियं धामं प्रियमेवास्य धामोपाँप्रोति तावेहि स॰ रंभावहा इत्यांह व्येवैनेन परि धत्ते पार्श्वजन्येष्वप्येष्यग्र इत्यांहैष वा अग्निः पार्श्वजन्यो यः पश्चेचितीकुस्तस्मादेवमाहर्त्वयां उपं दधात्येतद्वा ऋतूनाम्प्रियं धाम् यदंतव्यां ऋतूनामेव प्रियं धामावं रुन्द्धे सुमेक इत्याह संवथ्सरो वै सुमेकः संवथ्सरस्यैव प्रियं धामोपापापोति॥४६॥

अभंवन्नायुरेवर्त्व्यां उप षड्विर्श्यातिश्च॥————[११]

प्रजापंतेरक्ष्यंश्वयत्तत्परांपत्तदश्वोऽभवद्यदश्वंयत्तदश्वंस्याश्वत्वन्तद्देवा अंश्वमेधेनैव प्रत्यंदधुरेष वै प्रजापंति सर्वं करोति यौंऽश्वमेधेन यजंते सर्व एव भंवति सर्वस्य वा एषा प्रायंश्वित्तिः सर्वंस्य भेषज्ञ सर्वं वा एतेनं पाप्मानं देवा अंतर्त्रपि वा एतेनं ब्रह्महत्यामंतरन्थ्सर्वम्पाप्मानम्॥४७॥

त्रति तरित ब्रह्महृत्यां योंऽश्वमेधेन् यजंते य उं चैनमेवं वेदोत्तंरं वै तत्प्रजापंतेरक्ष्यंश्वयृत्तस्मादश्वंस्योत्तर्तोऽवं द्यन्ति दक्षिणृतौंऽन्येषां पश्नाम्वैत्सः कटों भवत्यपसुर्योनिर्वा अश्वौंऽपसुजो वेत्सः स्व एवैनं योनौ प्रति ष्ठापयित चतुष्टोमः स्तोमो भवित स्राहु वा अश्वंस्य सक्थ्यावृह्तद्देवाश्चंतुष्टोमेनैव प्रत्यंदधूर्यचेतुष्टोमः स्तोमो भवत्यश्वंस्य सर्वत्वायं॥४८॥

सर्वं पाप्मानंमवृह्द्वादंश च॥-----[१२]

देवासुराः तेनर्तृव्यां रुद्रोऽश्मंत्रृषदे वडुदेनं प्राचीमिति वसोधीरांमुग्निदेवेभ्यः सुवर्गायं यत्राकृतायं छन्दश्चितं पर्वस्व द्वादंश॥———[१३]देवासुरा अजायां वै ग्रुंमुष्टिः प्रथमो देवयतामेतद्वै छन्दंसामृग्नोत्युष्टौ पंश्वाशचत्॥58॥ देवयुसुराः सर्वं जयति॥

॥ चतुर्थः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां पञ्चमकाण्डे चतुर्थः प्रश्नः॥

देवासुराः संयंत्ता आस्-ते न व्यंजयन्त् स एता इन्द्रंस्तुनूरंपश्यत्ता उपांधत्त् ताभिर्वे स तुनुविमिन्द्रियं वीर्यमात्मन्नंधत्त् ततीं देवा अर्भवन्परासुरा यदिन्द्रतुनूरुंपदधांति तुनुविमेव ताभिरिन्द्रियं वीर्यं यर्जमान आत्मन्धत्तेऽथो सेन्द्रंमेवाग्नि सतेनुं चिनुते भवंत्यात्मना परांस्य भ्रातृंच्यः॥१॥

भुवृति युज्ञो देवेभ्योऽपाँकामृत्तमंवुरुधं नाशंक्कुवृन्त एता यंज्ञतुनूरंपश्युन्ता उपांदधत् ताभिवें ते युज्ञमवारुम्यत् यद्यंज्ञतुनूरुपद्धांति युज्ञमेव ताभिर्यजंमानोऽवं रुन्द्धे त्रयंस्त्रिश्शतमुपं दधाति त्रयंस्त्रिश्शद्धे देवतां देवतां एवावं रुन्द्धेऽथो सात्मानमेवाग्निश् सर्तनुं चिनुते सात्मानुष्मिं ह्राँके॥२॥

भ्वति य एवं वेद ज्योतिष्मतीरुपं दधाति ज्योतिरेवास्मिन्दधात्येताभिर्वा अग्निश्चितो ज्वंलिति ताभिरेवेन् समिन्द्ध उभयोरस्मै लोकयोज्योतिर्भवित नक्षत्रेष्टका उपं दधात्येतानि वै दिवो ज्योतीर्भषि तान्येवावं रुन्द्धे सुकृतां वा एतानि ज्योतीर्भषि यन्नक्षेत्राणि तान्येवाप्रोत्यथों अनुकाशमेवेतानि॥३॥

ज्योती १पि कुरुते सुवर्गस्यं लोकस्यानुंख्यात्ये यथ्सइस्पृंष्टा उपद्ध्याद्वृष्ट्यं लोकमिपं दध्यादवंर्षुकः पूर्जन्यः स्यादसईस्पृष्टा उपं दधाति वृष्ट्यां एव लोकं करोति वर्षुकः पूर्जन्यो भवति पुरस्तांदन्याः प्रतीचीरुपं दधाति पृश्चादन्याः प्राचीस्तस्मांत्प्राचीनांनि च प्रतीचीनांनि च नक्षंत्राण्या वर्तन्ते॥४॥

भ्रातृंव्यो लोक एवैतान्येकंचत्वारि शच॥

-[∘]

ऋत्व्यां उपं दधात्यृतूनां क्रस्यैं द्वंद्वमुपं दधाति तस्माँद्वंद्वमृतवोऽधृंतेव वा एषा यन्मध्यमा चितिंर्न्तरिक्षमिव वा एषा द्वंद्वम्न्यासु चिती्षूपं दधाति चतंस्रो मध्ये धृत्यां अन्तःश्लेषणं वा एताश्चितींनां यदंत्व्यां यदंत्व्यां उपदधाति चितीनां विधृंत्या अवंकामनूपं दधात्येषा वा अग्नेर्योनिः सयोनिम्॥५॥

एवाग्निं चिनुत उवाचे ह विश्वामित्रोऽदिदश्स ब्रह्मणात्रुं यस्येता उपधीयान्तै य उं चैना एवं वेदिदितिं संवथ्सरो वा एतम्प्रेतिष्ठायैं नुदते योंऽग्निं चित्वा न प्रतितिष्ठिति पश्च पूर्वाश्चितयो भवन्त्यथं षष्ठीं चितिं चिनुते षङ्गा ऋतवः संवथ्सर ऋतुष्वेव संवथ्सरे प्रतिं तिष्ठत्येता वै॥६॥

अधिपत्नीर्नामेष्टंका यस्यैता उपधीयन्तेऽधिपतिरेव संमानानां भवित् यं द्विष्यात्तम्पदर्धद्धायेदेताभ्यं एवैनं देवतांभ्य आ वृश्चित ताजगार्तिमार्च्छ्वत्यिङ्गंरसः सुवृगं लोकं यन्तो या यज्ञस्य निष्कृंतिरासीत्तामृषिभ्यः प्रत्यौहृन् तद्धिरण्यमभवद्यद्धिरण्यश्वल्कैः प्रोक्षिति यज्ञस्य निष्कृंत्या अर्थो भेषजमेवास्मै करोति॥७॥

अथों रूपेणैवैन् समर्धयत्यथों हिरंण्यज्योतिषैव सुंवर्गं लोकमेति साहस्रवंता प्रोक्षंति

साह्सः प्रजापंतिः प्रजापंतेरास्यां इमा में अग्न इष्टंका धेनवः सन्त्वित्यांह धेन्रेवैनाः कुरुते ता एनं कामुदुधां अमुत्रामुष्मिल्लाँक उपं तिष्ठन्ते॥८॥

रुद्रो वा एष यद्ग्निः स एतर्हिं जातो यर्हि सर्विश्चितः स यथां वृथ्सो जातः स्तनंम्प्रेप्सत्येवं वा एष एतर्हि भाग्धेयम्प्रेप्सिति तस्मै यदाहितिं न जुंहुयादेध्वर्युं च यजमानं च ध्यायेच्छतरुद्रीयं जुहोति भाग्धेयेनैवैन शमयित नार्तिमार्च्छत्यध्वर्युर्न यजमानो यद्ग्राम्याणां पश्नाम्॥९॥

पर्यसा जुहुयाद्ग्राम्यान्पशूञ्छुचार्पयेद्यदांर्ण्यानांमार्ण्याञ्जंतिलयवाग्वां वा जुहुयाद्गंवीधुकयवाग्वां वा न ग्राम्यान्पशून् हिनस्ति नार्ण्यानथो खल्वांहुरनांहुतिवैं जितिलाश्च ग्वीधुंकाश्चेत्यंजक्षीरेणं जुहोत्याग्चेयी वा एषा यद्जाहुंत्यैव जुहोति न ग्राम्यान्पशून् हिनस्ति नार्ण्यानिङ्गंरसः सुवृगं लोकं यन्तः॥१०॥

अजायां घूर्मम्प्रासिश्च-थ्सा शोचंन्ती पूर्णं पराजिहीत् सो ईऽर्कों-ऽभवत्तद्रकस्यांकृत्वमकपूर्णेनं जुहोति सयोनित्वायोदङ्किष्ठश्चहोत्येषा वै रुद्रस्य दिख्स्वायांमेव दिशि रुद्रं निरवंदयते चर्मायामिष्टंकायां जुहोत्यन्तत एव रुद्रं निरवंदयते त्रेधाविभक्तं जुंहोति त्रयं इमे लोका इमानेव लोका-थ्समावंद्वीर्यान्करोतीयृत्यग्रे जुहोति॥११॥

अथेयृत्यथेयंति त्रयं इमे लोका एभ्य एवैनं लोकेभ्यः शमयति तिस्र उत्तर्ग् आहुंतीर्जुहोति षद्थ्सम्पंद्यन्ते षड्वा ऋतवं ऋतुभिरेवैन शमयति यदंनुपरिकामं जुहुयादंन्तरवचारिण र्र रुद्रं कुंर्यादयो खल्बांहुः कस्यां वाहं दिशि रुद्रः कस्यां वेत्यंनुपरिकाममेव होत्व्यंमपंरिवर्गमेवैन र्र शमयति॥१२॥

पुता वै देवताः सुव्गर्या या उत्तमास्ता यजमानं वाचयित् ताभिरेवैन र् सुवृगं लोकं गमयित् यं द्विष्यात्तस्यं सञ्चरे पंशूनां न्यस्येद्यः प्रथमः पृशुरिभितिष्ठति स आर्तिमार्च्छंति॥१३॥

पृश्नां यन्तोऽग्रें जुहोत्यपंरिवर्गमेवैन र शमयति त्रिर्शर्च॥———[3]

अश्मन्नूर्जिमिति परि षिश्चिति मार्जियंत्येवैन्मथों तुर्पयंत्येव स एनं तृप्तो-ऽक्षुंध्यन्नशोंचन्नमुष्मिल्लौंक उपं तिष्ठते तृप्यंति प्रजयां पृशुभिर्य एवं वेद तां न इष्मूर्जं धत्त मरुतः स॰रराणा इत्याहान्नं वा ऊर्गन्नेम्मुरुतोऽन्नमेवावं रुन्द्धेऽश्म ईस्ते क्षुद्मुं ते शुक्॥१४॥

ऋच्छुत् यं द्विष्म इत्यांह् यमेव द्वेष्टि तमंस्य क्षुधा चं शुचा चाँर्पयिति त्रिः पंरिषिञ्जन्पर्येति त्रिवृद्धा अग्नियावांनेवाग्निस्तस्य शुचरं शमयित त्रिः पुनः पर्येति पद्थ्सम्पद्यन्ते षङ्घा ऋतवं ऋतुभिरेवास्य शुचरं शमयत्यपां वा एतत्पुष्पं यद्वेत्सों- ऽपाम्॥१५॥

शरोऽवंका वेतसशाखया चावंकाभिश्च वि कंर्ष्त्यापो वै शान्ताः शान्ताभिरेवास्य शुचर्र शमयति यो वा अग्निं चितम्प्रंथमः पृशुरंधिकामंतीश्वरो वै तर शुचा प्रदहो मण्डूकेंन् वि कंर्षत्येष वै पंशूनामंनुपजीवनीयो न वा एष ग्राम्येषुं पृशुषुं हितो नार्ण्येषु तमेव शुचार्पयत्यष्टाभिर्वि कंर्षति॥१६॥

अष्टाक्षेरा गायत्री गांयत्रौंऽग्निर्यावांनेवाग्निस्तस्य शुचरे शमयति पावकवंतीभिरत्रं वै पांवकोऽत्रेंनैवास्य शुचरे शमयति मृत्युर्वा एष यद्ग्निर्ब्रह्मण एतद्रूपं यत्कृष्णाजिनम् कार्ष्णी उपानहावुपं मुश्चते ब्रह्मणैव मृत्योर्न्तर्धत्तेऽन्तर्मृत्योर्धत्तेऽन्तर्त्राद्यादित्यांहुर्न्याम्ंपमुञ्चतेऽन्यां नान्तः॥१७॥

पुव मृत्योर्धत्तेऽवान्नाद्यर्थं रुन्द्धे नर्मस्ते हरेसे शोचिष् इत्यांह नम्स्कृत्य हि वसीयारसमुप्चरंन्त्यन्यं ते अस्मत्तंपन्तु हेतय् इत्यांह् यमेव द्वेष्टि तमंस्य शुचार्पयिति पावको अस्मभ्यर्थं शिवो भवेत्याहान्नं वै पांवकोऽन्नमेवार्वं रुन्द्दे द्वाभ्यामिधे क्रामित् प्रतिष्ठित्या अपस्यंवतीभ्यार शान्त्यै॥१८॥

शुग्वेत्सोऽपामष्टाभिर्विकर्षति नान्तरेकान्नपंश्चाशचं॥————[४]

नृषदे विडिति व्याघारयित पुङ्ग्याहुंत्या यज्ञमुखमा रंभतेऽक्ष्ण्या व्याघारयित तस्मांदक्ष्ण्या पृशवोऽङ्गानि प्र हंरन्ति प्रतिष्ठित्ये यद्वंषद्भुर्याद्यातयांमास्य वषद्भारः स्याद्यन्न वषद्भुर्याद्रक्षारंसि यज्ञः हंन्युर्विडित्यांह प्रोक्षंमेव वषंद्भरोति नास्यं यातयांमा वषद्भारो भवंति न यज्ञः रक्षारंसि घ्रन्ति हुतादो वा अन्ये देवाः॥१९॥

अहुतादोऽन्ये तानंभ्रिचिदेवोभयाँन्प्रीणाति ये देवा देवानामिति दुप्रा मंधुमिश्रेणावौँक्षति हुतादंश्चेव देवानंहुतादंश्च यजंमानः प्रीणाति ते यजंमानम्प्रीणन्ति दुप्रेव हुतादंः प्रीणाति मधुंषाहुतादौँ ग्राम्यं वा एतदन्तं यद्दध्यांर्ण्यम्मधु यद्द्र्प्रा मंधुमिश्रेणावोक्षंत्युभयस्यावंरुख्ये ग्रुमुष्टिनावौँक्षति प्राजापत्यः॥२०॥

वै ग्रुंमुष्टिः संयोनित्वाय द्वाभ्यां प्रतिष्ठित्या अनुपरिचारमवौक्षत्यपंरिवर्गमेवैनौन्प्रीणाति वि वा एष प्राणैः प्रजयां पृशुभिर्ऋध्यते यौऽग्निं चिन्वन्नधिकामिति प्राणदा अपानदा इत्यांह प्राणानेवात्मन्धेत्ते वर्चोदा वंरिवोदा इत्यांह प्रजा वै वर्चः पृशवो वरिवः प्रजामेव पश्नात्मन्थेत्त इन्द्रों वृत्रमहन्तं वृत्रः॥२१॥

ह्तः षोंड्शिमेर्म्गेरेसिनाथ्स एताम्ग्रयेऽनींकवत् आहुंतिमपश्यत्तामंजुहोत्तस्याग्निरनींकवान्थ्स् भागुधेयेन प्रीतः षोंडश्रधा वृत्रस्यं भोगानप्यंदहद्वैश्वकर्मणेनं पाप्पनो निरंमुच्यत् यद्ग्रये-ऽनींकवत् आहुंतिं जुहोत्यग्निरेवास्यानींकवान्थ्स्वेनं भागुधेयेन प्रीतः पाप्पान्मिपं दहति वैश्वकर्मणेनं पाप्पनो निर्मुच्यते यं कामयेत चिरम्पाप्पनः॥२२॥

निर्मुच्येतेत्येकैकं तस्यं जुहुयाचिरमेव पाप्मनो निर्मुच्यते यं कामयेत ताजक्पाप्मनो निर्मुच्येतेति सर्वाणि तस्यानुद्रुत्यं जुहुयात्ताजगेव पाप्मनो निर्मुच्यतेऽथो खलु नानैव सूक्ताभ्यां जुहोति नानैव सूक्तयोंर्वीर्यं दधात्यथो प्रतिष्ठित्यै॥२३॥

देवाः प्रांजापृत्यो वृत्रश्चिरं पाप्मनेश्चत्वारिष्ट्शर्च॥------[५]

उदेनमुत्तरां न्येतिं स्मिध् आ देधाति यथा जर्नं यतेऽवसं करोतिं ताहगेव तत्तिस्र आ देधाति त्रिवृद्वा अग्निर्यावांनेवाग्निस्तस्मै भाग्धेयं करोत्योदुंम्बरीर्भवन्त्यूग्वा उदुम्बर् ऊर्जमेवास्मा अपिं दधात्युद्ं त्वा विश्वं देवा इत्याह प्राणा वै विश्वं देवाः प्राणैः॥२४॥

एवैन्मुद्यंच्छ्तेऽग्रे भरंन्तु चित्तिंभि्रित्यांह् यस्मां एवैनं चित्तायोद्यच्छंते तेनैवैन् समर्थयित् पश्च दिशो देवींर्य्ज्ञमंवन्तु देवीरित्यांह् दिशो ह्यंपोऽनुं प्रच्यवतेऽपामंतिं दुर्मृतिम्बाधंमाना इत्यांह् रक्षंसामपंहत्यै रायस्पोषं युज्ञपंतिमाभजन्तीरित्यांह पृशवो वै रायस्पोषंः॥२५॥

पुशूनेवावं रुन्द्धे षुङ्गिर्हरित् षङ्गा ऋतवं ऋतुभिरेवैन र हरित द्वे परिगृह्यंवती

भवतो रक्षंसामपंहत्ये सूर्यंरिष्मिर्हिरंकेशः पुरस्तादित्यांहु प्रसूँत्ये ततंः पावका आिशवों नो जुषन्तामित्याहान्नं वै पावकोऽन्नंमेवावं रुन्द्धे देवासुराः संयंत्ता आसुन्ते देवा पृतदप्रतिरथमपश्यन्तेन वै तैंऽप्रति॥२६॥

असुरानजयुन्तदप्रंतिरथस्याप्रतिरथृत्वं यदप्रंतिरथं द्वितीयो होतान्वाहाँप्रत्येव तेन् यजमानो भ्रातृंव्याञ्जयत्यथो अनंभिजितमेवाभि जंयित दश्रचम्भविति दशाँक्षरा विराद्विराजेमौ लोकौ विर्धृतावनयौंलींकयोर्विर्धृत्या अथो दशाँक्षरा विराद्वश्रं विराद्विराज्येवान्नाचे प्रतिं तिष्ठत्यसंदिव वा अन्तरिक्षमन्तरिक्षमिवाग्नींप्रमाग्नींग्रे॥२७॥

अश्मांनं नि दंधाति स्त्त्वाय द्वाभ्यां प्रतिष्ठित्यै विमानं एष दिवो मध्यं आस्त इत्यांह् व्येवैतयां मिमीते मध्ये दिवो निर्हितः पृश्चिरश्मेत्याहात्रं वै पृश्चत्रमेवावं रुन्द्धे चत्रसृभिरा पुच्छांदेति चत्वारि छन्दांश्सि छन्दोंभिरेवेन्द्रं विश्वां अवीवृधन्नित्यांह् वृद्धिमेवोपावर्तते वाजांना् सत्यंतिम्पतिम्॥२८॥

इत्याहान्नं वै वाजोऽन्नंमेवावं रुन्द्धे सुमृहूर्यज्ञो देवार आ चं वक्षदित्यांह प्रजा वै पृशवंः सुम्नं प्रजामेव पृश्नात्मन्थेते यक्षंद्गिर्देवो देवार आ चं वक्षदित्यांह स्वृगाकृत्ये वाजंस्य मा प्रस्वेनौद्धाभेणोदंग्रभीदित्यांहासौ वा आंदित्य उद्यन्नंद्वाभ एष निम्नोचन्निग्राभो ब्रह्मणैवात्मानंमुद्गृह्णाति ब्रह्मणा भ्रातृंव्यं नि गृंह्णाति॥२९॥

प्राणैः पोषौंऽप्रत्याग्नींध्रे पतिंमेष दर्श च॥______[ह

प्राचीमन् प्रदिशम्प्रेहिं विद्वानित्यांह देवलोकमेवैतयोपावर्तते ऋमेध्वमग्निना नाकमित्यांहेमानेवैतयां लोकान्क्रंमते पृथिव्या अहमुद्दन्तरिक्षमारुहमित्यांहेमानेवैतयां लोकान्थ्समारोहिति सुवर्यन्तो नापेक्षन्त इत्याह सुवर्गमेवैतयां लोकमेत्यग्ने प्रेहि॥३०॥

प्रथमो देवयतामित्यांहोभर्येष्वेवैतयां देवमनुष्येषु चक्षुंर्दधाति पञ्चभिरिधं क्रामित् पाङ्कों युज्ञो यावांनेव युज्ञस्तेनं सह सुंवृर्गं लोकमेति नक्तोषासेति पुरोनुवाक्यांमन्वांह प्रत्या अग्नें सहस्राक्षेत्यांह साहुस्रः प्रजापंतिः प्रजापंतेरास्यै तस्मै ते विधेम वाजांय स्वाहेत्याहान्नं वै वाजोऽन्नंमेवावं॥३१॥

रुन्द्धे दुभ्रः पूर्णामौदुंम्बरी स्वयमातृण्णायां जुहोत्यूर्ग्वे दध्यूर्गुदुम्बरोऽसौ स्वयमातृण्णामुष्यांमेवोर्जं दधाति तस्मादमुतोऽर्वाचीमूर्जुमुपं जीवामस्तिसृभिः सादयति त्रिवृद्वा अग्निर्यावांनेवाग्निस्तम्प्रंतिष्ठां गंमयति प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो न इत्यौदुम्बंरीमा दंधात्येषा वै सूर्मी कर्णकावत्येतयां ह स्म॥३२॥

वै देवा असुंराणाः शतत्र्हाः स्तृ रहित् यदेतयां स्मिधंमादधाति वर्जमेवैतच्छंत्रधीं यर्जमानो भ्रातृंच्याय प्र हंरित स्तृत्या अछंम्बद्गारं विधेमं ते पर्मे जन्मंत्रम् इति वैकंङ्कतीमा दंधाति भा पुवावं रुन्द्धे ताः संवितुर्वरेण्यस्य चित्रामिति शमीमयीः शान्त्यां अग्निर्वा ह वा अग्निचितं दुहैंऽग्निचिद्वाग्निं दुहे ताम्॥३३॥

स्वितुर्वरेण्यस्य चित्रामित्यांहैष वा अग्नेर्दोह्स्तमंस्य कण्वं एव श्रांयसोऽवेत्तेनं ह स्मैन् सं दुंहे यदेतयां समिधंमादधांत्यग्निचिदेव तद्ग्निं दुंहे सप्त ते अग्ने समिधंः सप्त जिह्वा इत्यांह सप्तैवास्य साप्तांनि प्रीणाति पूर्णयां जुहोति पूर्ण इंव हि प्रजापंतिः प्रजापंतेः॥३४॥

आस्यै न्यूंनया जुहोति न्यूंनािद्ध प्रजापंतिः प्रजा असृंजत प्रजानाि सृष्टां अग्निर्देवेभ्यो निलायत् स दिशोऽनु प्राविश्वज्ञह्वन्मनंसा दिशों ध्यायेद्दिग्भ्य एवेन्मवं रुन्द्दे द्व्रा पुरस्तां ज्ञहोत्याज्येनोपरिष्टात्तेजंश्चेवास्मां इन्द्रियं चं समीचीं दधाति द्वादंशकपालो वैश्वान्रो भवति द्वादंश मासाः संवथसुरः संवथस्रौऽग्निर्वेश्वान्रः साक्षात्॥३५॥

पुव वैंश्वान्रमवं रुन्द्धे यत्प्रंयाजानूयाजान्कुर्याद्विकंस्तिः सा युज्ञस्यं दर्विहोमं कंरोति युज्ञस्य प्रतिष्ठित्ये राष्ट्रं वे वैश्वान्रो विण्मरुतो वैश्वान्रे हृत्वा मांरुताञ्चंहोति राष्ट्र पृव विश्ममन् ब्रात्युचैर्वेश्वान्रस्या श्रांवयत्युपार्श्यु मांरुताञ्चंहोति तस्माँद्राष्ट्रं विश्मितिं वदित मारुता भंवन्ति मुरुतो वे देवानां विशो देवविशेनैवास्मे मनुष्यविशमवं रुन्द्धे सप्त भंवन्ति स्प्तगंणा वे मुरुतो गण्श पृव विश्मवं रुन्द्धे गुणेनं गुणमंनुद्रुत्यं जुहोति विशंमेवास्मा अनुंवर्त्मानं करोति॥३६॥

अग्ने प्रेह्मवं स्म दुह् तां प्रजापंतेः साक्षान्मंनुष्यविशमेकंवि १शतिश्व॥———[७]

वसोधीराँ जुहोति वसौँमें धारांसिदिति वा एषा हूंयते घृतस्य वा एंनमेषा धारामुष्मिश्लौंके पिन्वंमानोपं तिष्ठत आज्येंन जुहोति तेजो वा आज्यें तेजो वसोधीरा तेजंसैवास्मै तेजोऽवं रुन्द्धेऽथो कामा वै वसोधीरा कामांनेवावं रुन्द्धे यं कामयेंत प्राणानंस्यान्नाद्यं वि॥३७॥

छिन्द्यामिति विग्राहं तस्यं जुहुयात्र्राणानेवास्यान्नाद्यं विच्छिनत्ति यं कामयेत

प्राणानंस्यान्नाद्यः सं तेनुयामिति सन्तेतां तस्ये जुहुयात्प्राणानेवास्यान्नाद्यः सं तेनोति द्वादंश द्वादंश द्वादंश द्वादंश मासाः संवथ्सरः संवथ्सरेणैवास्मा अन्नमवं रुन्द्धेऽन्नं च् मेऽक्षुंच मु इत्याहितद्वै॥३८॥

अन्नस्य रूप र रूपेणैवान्नमवं रुन्द्धेऽग्निश्चं म् आपश्च म् इत्यांहै्षा वा अन्नस्य योनिः सयोंन्येवान्नमवं रुन्द्धेऽर्धेन्द्राणिं जुहोति देवतां एवावं रुन्द्धे यथ्सर्वेषाम्धिमिन्द्रः प्रति तस्मादिन्द्रों देवतांनाम्भूयिष्ठभाक्तंम् इन्द्रमुत्तंरमाहेन्द्रियमेवास्मिन्नुपरिष्ठाद्दधाति यज्ञायुधानि जुहोति यज्ञः॥३९॥

वै यंज्ञायुधानि यज्ञम्वावं रुन्द्धेऽथों पृतद्वे यज्ञस्यं रूप र रूपेणैव यज्ञमवं रुन्द्वे-ऽवभृथश्चं मे स्वगाकारश्चं म् इत्यांह स्वगाकृत्या अग्निश्चं मे घर्मश्चं म् इत्यांहैतद्वे ब्रह्मवर्चसस्यं रूप र रूपेणैव ब्रह्मवर्चसमवं रुन्द्व ऋकं मे सामं च म् इत्यांह॥४०॥

पृतद्वे छन्दंसार रूपर रूपेणेव छन्दार्स्यवं रुन्द्वे गर्भाश्च मे वृथ्साश्चं मृ इत्यांहैतद्वे पंशूनार रूपर रूपेणेव पृशूनवं रुन्द्वे कल्पांश्चहोत्यक्लंप्तस्य क्रुप्टे युग्मदयुजे जुंहोति मिथुन्त्वायोत्त्त्रावंती भवतोऽभिक्रांन्त्या एकां च मे तिस्रश्चं मृ इत्यांह देवछन्द्सं वा एकां च तिस्रश्चं॥४१॥

म्नुष्यछुन्द्सं चर्तस्रश्चाष्टौ चं देवछन्द्सं चैव मंनुष्यछन्द्सं चावं रुन्द्ध् आ त्रयंस्त्रिश्शतो जुहोति त्रयंस्त्रिश्शद्धे देवतां देवतां एवावं रुन्द्ध् आष्टाचंत्वारिश्शतो जुहोत्यष्टाचंत्वारिश्शदक्षरा जगंती जागंताः पृशवो जगंत्यैवास्मै पृशूनवं रुन्द्धे वाजंश्च प्रस्वश्चेतिं द्वाद्शं जुंहोति द्वादंश् मासाः संवथ्सरः संवथ्सर एव प्रतिं तिष्ठति॥४२॥

वि वै युज्ञः सामं च म् इत्यांह च ति्स्रश्चैकाुन्नपंश्चाशचं॥————[८]

अग्निर्देवेभ्योऽपाँकामद्भाग्धेर्यमिच्छमांनस्तं देवा अंब्रुवृत्तुपं न आ वंर्तस्व हृव्यं नों वृहेति सौंऽब्रवीद्वरं वृणै मह्यंमेव वांजप्रस्वीयं जुहवृत्तिति तस्मांद्ग्नये वाजप्रस्वीयं जुह्विति यद्वांजप्रस्वीयं जुहोत्यग्निमेव तद्भाग्धेयेन समर्धयत्यथों अभिषेक एवास्य स चंतुर्द्शभिर्जुहोति सप्त ग्राम्या ओषंधयः सप्त॥४३॥

आर्ण्या उभयीषामवंरुद्धा अन्नंस्यान्नस्य जुहोत्यन्नंस्यान्नस्यावंरुद्धा औदुंम्बरेण स्रुवेणं जुहोत्यूर्ग्वा उंदुम्बर् ऊर्गन्नंमूर्जेवास्मा ऊर्जमन्नमवं रुन्द्धेऽग्निर्वे देवानांम्भिषिक्तो- ऽग्निचिन्मंनुष्यांणान्तस्मांदग्निचिद्वर्षति न धांवेदवंरुद्ध् ह्यंस्यान्नमन्नमिव खलु वै वर्षं यद्धावेदन्नाद्यांद्धावेदुपावंर्तेतान्नाद्यंमेवाभि॥४४॥

उपावंतिते नक्तोषासेति कृष्णायै श्वेतवंथ्सायै पर्यसा जुहोत्यहैवास्मै रात्रिम्प्र दांपयित् रात्रियाहं रहोरात्रे एवास्मै प्रते कामंमुन्नाद्यं दुहाते राष्ट्रभृतों जुहोति राष्ट्रमेवावं रुन्द्धे पङ्किर्जुहोति षङ्घा ऋतवं ऋतुष्वेव प्रति तिष्ठति भुवंनस्य पत् इति रथमुखे पश्चाहुंतीर्जुहोति वज्रो वै रथो वर्ज्रेणैव दिशः॥४५॥

अभि जंयत्यग्निचितर् हु वा अमुष्मिं ह्रोंके वातोऽभि पंवते वातनामानिं ज्ञहोत्यभ्येंवैनंम् मुष्मिं ह्रोंके वातंः पवते त्रीणिं ज्ञहोति त्रयं इमे लोका एभ्य एव लोकेभ्यो वात्मवं रुन्द्धे समुद्रोऽसि नभंस्वानित्यां हैतद्धे वातंस्य रूपर रूपेणैव वात्मवं रुन्द्धेऽञ्जलिनां जुहोति न ह्येतेषां मन्यथा हुंतिरवकल्पते॥४६॥

ओषंधयः सप्ताभि दिशोऽन्यथा द्वे चं॥______[९]

सुवर्गाय वै लोकार्य देवर्थो युंज्यते यत्राकृतार्यं मनुष्यर्थ एष खलु वै देवर्थो यद्ग्रिर्गित्रं युंनज्मि शवंसा घृतेनेत्यांह युनक्त्येवैन् स एनं युक्तः सुंवर्गं लोकम्भि वहिति यथ्सर्वाभिः पश्चभिर्युक्ष्याद्युक्तौंऽस्याग्निः प्रच्युंतः स्यादप्रतिष्ठिता आहुंतयः स्युरप्रतिष्ठिताः स्तोमा अप्रतिष्ठितान्युक्थानिं तिस्भिः प्रातःसवनेऽभि मृंशति त्रिवृत्॥४७॥

वा अग्निर्यावांनेवाग्निस्तं युंनिक्त् यथानंसि युक्त आंधीयतं एवमेव तत्प्रत्याहुंतयस्तिष्ठन्ति प्रित् स्तोमाः प्रत्युक्थानि यज्ञायज्ञियंस्य स्तोत्रे द्वाभ्यांम्भि मृंशत्येतावान् वै यज्ञो यावांनिग्निष्टोमो भूमा त्वा अस्यातं ऊर्ध्वः क्रियते यावांनेव यज्ञस्तमंन्ततौऽन्वारोहित् द्वाभ्यां प्रतिष्ठित्या एक्याप्रंस्तुतम्भवृत्यर्थ॥४८॥

अभि मृंशृत्युपैन्मुत्तरो युज्ञो नंमृत्यथो सन्तंत्यै प्र वा एषौंऽस्माल्लोकाच्यंवते यौंऽग्निं चिनुते न वा एतस्यांनिष्ट्रक आहुंतिरवं कल्पते यां वा एषोंऽनिष्ट्रक आहुंतिं जुहोति स्रवंति वै सा ताङ् स्रवंन्तीं युज्ञोऽनु परां भवति युज्ञं यजंमानो यत्पुनश्चितिं चिनुत आहुंतीनां प्रतिष्ठित्यै प्रत्याहुंतयुस्तिष्ठंन्ति॥४९॥

न युज्ञः पंराभवंति न यजंमानोऽष्टावुपं दधात्यष्टाक्षंरा गायत्री गांयत्रेणैवेनं छन्दंसा चिनुते यदेकांदश त्रेष्टुंभेन यद्वादंश जागंतेन छन्दोंभिरेवेनं चिनुते नपात्को वै नामैषौं-ऽग्निर्यत्पुंनश्चितिर्य एवं विद्वान्पुंनश्चितिं चिनुत आ तृतीयात्पुरुंषादन्नंमत्ति यथा वै पुंनराधेयं एवम्पुंनश्चितिर्यौऽग्र्याधेयेन न॥५०॥

ऋभ्रोति स पुंनराधेयमा धंते यौंऽग्निं चित्वा नर्भ्रोति स पुंनिश्चितिं चिनुते यत्पुंनिश्चितिं चिनुते यत्पुंनिश्चितिं चिनुत ऋद्धा अथो खल्वांहुर्न चेत्व्येतिं रुद्रो वा एष यद्ग्निर्यथां व्याघ्र स्मामबोधयंति ताहगेव तदथो खल्वांहुश्चेत्व्येति यथा वसीया सम्भाग्धेयेन बोधयंति ताहगेव तन्मनुंर्ग्निमंचिनुत् तेन नार्भ्रोध्स एताम्पुंनिश्चितिमंपश्यत्तामंचिनुत् तया वै स आँर्भ्रोद्यत्पुंनिश्चितिं चिनुत ऋद्यौ॥५१॥

त्रिवृदथ् तिष्ठंन्त्यग्र्याधेयेंन् नाचिंनुत स्प्तदंश च॥______[

छुन्दश्चितंं चिन्वीत पृशुकांमः पृशवो वै छन्दा रेसि पशुमानेव भंवति श्येन्चितं चिन्वीत सुवर्गकांमः श्येनो वै वर्यसाम्पतिष्ठः श्येन एव भूत्वा सुंवर्गं लोकम्पंति कङ्कचितंं चिन्वीत् यः कामयेत शीर्षण्वानुमुष्मिं ह्योंके स्यामितिं शीर्षण्वानेवामुष्मिं ह्योंके भंवत्यलज्चितं चिन्वीत् चतुंःसीतं प्रतिष्ठाकांमश्चतंस्रो दिशों दिश्वेव प्रतिं तिष्ठति प्रउग्चितं चिन्वीत भातृंव्यवान्प्र॥५२॥

एव भ्रातृंव्यान्नुदत उभयतंःप्रउगं चिन्वीत् यः कामयेत् प्र जातान्भ्रातृंव्यान्नुदेय् प्रतिंजनिष्यमाणानिति प्रैव जातान्भ्रातृंव्यान्नुदते प्रतिं जनिष्यमाणान्नथचक्रचितंं चिन्वीत् भ्रातृंव्यवान् वज्रो वै रथो वज्रमेव भ्रातृंव्येभ्यः प्र हंरति द्रोणचितंं चिन्वीतान्नंकामो द्रोणे वा अन्नंम्भ्रियते सयौन्येवान्नमवं रुन्द्धं समूह्यं चिन्वीत पुशुकांमः पशुमानेव भवति॥५३॥

परिचार्य्यं चिन्वीत् ग्रामंकामो ग्राम्येव भंवति श्मशान्चितं चिन्वीत् यः कामयेत पितृलोक ऋंध्रुयामिति पितृलोक एवर्ग्रोति विश्वामित्रजमद्ग्री वसिष्ठेनास्पर्धेता ए स एता जमदंग्निर्विह्व्यां अपश्यत्ता उपांधत्त् ताभिर्वे स वसिष्ठस्येन्द्रियं वीर्यमवृङ्कः यद्विह्व्यां उपदर्धातीन्द्रियमेव ताभिर्वीर्यं यजंमानो भ्रातृंव्यस्य वृङ्के होतुर्धिष्णिय उपं दधाति यजमानायतनं वै॥५४॥

होता स्व एवास्मां आयतंन इन्द्रियं वीर्यमवं रुन्द्वे द्वाद्शोपं दधाति द्वादंशाक्षरा जगंती जागंताः पृशवो जगंत्यैवास्में पृश्नवं रुन्द्वेऽष्टावंष्टावन्येषु धिष्णियेषूपं दधात्यष्टाशंफाः पृशवंः पृश्ननेवावं रुन्द्वे षण्मांर्जालीये षड्वा ऋतवं ऋतवः खलु वै देवाः पितरं ऋतूनेव देवान्पितॄन्त्रींणाति॥५॥

पर्वस्व वाजंसातय इत्यंनुष्टुक्प्रंतिपद्भंवित तिस्रोंऽनुष्टुभ्श्वतंस्रो गायत्रियो यत्तिस्रों-ऽनुष्टुभ्स्तस्मादः श्वंस्त्रिभिस्तिष्टर्श् स्तिष्ठिति यचतंस्रो गायत्रियस्तस्माथ्सर्वार्श्श्वतुर्रः पदः प्रतिद्वयत्पलायते पर्मा वा एषा छन्दंसां यदंनुष्टुक्पर्मश्चंतुष्टोमः स्तोमानां पर्मस्रिंगुत्रो युज्ञानां पर्मोऽश्वंः पशूनां परंमेणैवैनं पर्मतां गमयत्येकविश्शमहंभविति॥५६॥

यस्मिन्नश्वं आल्भ्यते द्वादंश् मासाः पश्चर्तवस्त्रयं इमे लोका असावंदित्य एंकविष्श एष प्रजापंतिः प्राजापत्योऽश्वस्तमेव साक्षादंभ्रोति शक्वंरयः पृष्ठम्भवन्त्यन्यदंन्यच्छन्दोऽन्यैन्ये वा एते पृशव् आ लेभ्यन्त उतेवं ग्राम्या उतेवांरण्या यच्छक्वंरयः पृष्ठम्भवन्त्यश्वंस्य सर्वृत्वायं पार्थुर्श्मम्ब्रह्मसामम्भविति रश्मिना वा अश्वः॥५७॥

यत ईश्वरो वा अश्वोऽयतोऽप्रंतिष्ठितः पर्रां परावतं गन्तोत्पीर्थुर्श्मम्ब्रंह्मसामम्भवृत्यश्वंस्य यत्ये धृत्ये सङ्कृत्यच्छावाकसामम्भवत्यथ्यसत्रयज्ञो वा एष यदंश्वमेधः कस्तद्वेदेत्यांहुर्यदि सर्वो वा क्रियते न वा सर्व इति यथ्सङ्कृत्यच्छावाकसामम्भवृत्यश्वंस्य सर्वृत्वाय पर्यांत्र्या अनंन्तरायाय सर्वस्तोमोऽतिरात्र उत्तममहंभवित सर्वस्यात्ये सर्वस्य जित्ये सर्वमेव तेनाप्रोति सर्वं जयति॥५८॥

अहंभीवति वा अश्वोऽहंभीवति दशं च॥-----[१२]

यदेकेन प्रजापंतिः प्रेणानु यजुषापों विश्वकर्माग्र आ यांहि सुवर्गाय वज्रों गायत्रेणाग्नं उदधे समीचीन्द्रांय मुयुर्पां बलाय पुरुषमृगः सौरी पृष्तः शका रुरुरल्जः सुंपूर्ण आग्नेयो-ऽश्वोऽग्नयेऽनींकवते चतुंर्विश्शतिः॥ [१३]यदेकेन् स पापीयान्तद्वा अग्नेर्धनुस्तद्देवास्त्वेन्द्रंज्येष्ठा अपां नप्रेऽश्वेस्तूप्रो द्विषष्टिः॥62॥ यदेकेनैकंशितिपात्पेत्वंः॥

पश्चमः प्रश्नः (काण्डम् ५)

॥पञ्चमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां पञ्चमकाण्डे पञ्चमः प्रश्नः॥

यदेकेन सङ्स्थापयंति युज्ञस्य सन्तंत्या अविंच्छेदायैन्द्राः पृशवो ये मुंष्करा यदैन्द्राः सन्तोऽग्निभ्यं आलभ्यन्तें देवताभ्यः समदंं दधात्याग्नेयीस्त्रिष्टभों याज्यानुवाक्याः कुर्याद्यदांग्नेयीस्तेनांग्नेया यिश्रष्टभस्तेनैन्द्राः समृद्धौ न देवताभ्यः समदंं दधाति वायवें नियुत्वंते तूप्रमा लंभते तेजोऽग्नेर्वायुस्तेजंस एष आ लंभ्यते तस्माद्यद्वियंङ्गायुः॥१॥

वातिं तृद्रियंङ्कृग्निर्देहिति स्वमेव तत्तेजोऽन्वेति यन्न नियुत्वेते स्यादुन्माँ द्येद्यजंमानो नियुत्वेते भवित् यर्जमानस्यानुन्मादाय वायुमतीं श्वेतवेती याज्यानुवाक्ये भवतः सतेजस्त्वायं हिरण्यगुर्भः समेवर्तृताम्र इत्यांघारमा घारयित प्रजापंतिर्वे हिरण्यगुर्भः प्रजापंतेरनुरूपृत्वाय् सर्वाणि वा एष रूपाणि पशूनाम्प्रत्या लेभ्यते यच्चश्रुणस्तत्॥२॥

पुरुषाणाः रूपम् यत्तूंप्रस्तदश्वांनां यद्न्यतोद्न्तद्गवां यदव्यां इव शुफास्तदवींनां यद्जस्तद्जानां वायुर्वे पंशूनाम्प्रियं धाम् यद्वांयव्यो भवंत्येतमेवेनंमुभि संजानानाः पशव उपं तिष्ठन्ते वायव्येः कार्या(३)ः प्रांजापृत्या(३) इत्यांहुर्यद्वांयव्ये कुर्यात्प्रजापंतिरियाद्यत्प्रांजापृत्यं कुर्याद्वायाः॥३॥

ड्याद्यद्वांयव्यः पृशुर्भवंति तेनं वायोर्नेति यत्प्रांजापृत्यः पुरोडाशो भवंति तेनं प्राजापंतेर्नेति यद्वादंशकपाल्स्तेनं वैश्वान्रान्नेत्यामावैष्णवमेकांदशकपाल्ं निर्वपिति दीक्षिष्यमाणोऽग्निः सर्वा देवता विष्णुंर्यज्ञो देवतांश्चेव यृज्ञं चा रंभतेऽग्निरंवमो देवतांनां विष्णुंः परमो यदामावैष्णवमेकांदशकपालं निर्वपिति देवताः॥४॥

एवोभ्यतः परिगृह्य यर्जमानोऽवं रुन्द्वे पुरोडाशेन् वै देवा अमुष्मिंश्लाँक आँधुंवं चरुणास्मिन् यः कामयेतामुष्मिंश्लाँक ऋंध्रुयामिति स पुरोडाशं कुर्वीतामुष्मिन्नेव लोक ऋंध्रोति यद्ष्टाकंपालस्तेनांभ्रेयो यत्रिकपालस्तेनं वैष्णवः समृंद्धौ यः कामयेतास्मिश्लाँक ऋंध्रुयामिति स चुरुं कुर्वीताभ्रेर्धृतं विष्णोंस्तण्डुलास्तस्मांत्॥५॥

चुरुः कार्योंऽस्मिन्नेव लोक ऋभोत्यादित्यो भवतीयं वा अदितिर्स्यामेव प्रति तिष्ठत्यथीं अस्यामेवाधि युज्ञं तंनुते यो वै संवथ्सरमुख्यमभृत्वाभ्रिं चिनुते यथां सामि गर्भोऽवपद्यंते ताहगेव तदार्तिमार्च्छेंद्वैश्वानुरं द्वादेशकपालम् पुरस्तान्निर्वपेथ्संवथ्सरो वा अग्निर्वैश्वानुरो यथां संवथ्सरमास्वा॥६॥

काल आगंते विजायंत पुवमेव संवथ्सरमास्वा काल आगंतेऽग्निं चिंनुते नार्तिमार्च्छ्रंत्येषा वा अग्नेः प्रिया तुनूर्यद्वैश्वानुरः प्रियामेवास्यं तुनुवमवं रुन्द्धे त्रीण्येतानिं हुवीर्श्वं भवन्ति त्रयं इमे लोका पुषां लोकानार् रोहांय॥७॥

यद्रियंङ्वायुर्यच्चंश्रुणस्तद्वायोर्निर्वपंति देवतास्तस्मादास्वाष्टात्रिरंशच॥———[१]

प्रजापंतिः प्रजाः सृष्ट्वा प्रेणानु प्राविंशताभ्यः पुनः सम्भवितुं नाशंक्रोथ्सौऽब्रवीदृप्रवृदिथ्स यो मेतः पुनः सश्चिनवृदिति तं देवाः समिचिन्वन्ततो वै त और्ध्रवन् यथ्समिचिन्वन्तचित्यंस्य चित्युत्वम् य एवं विद्वानृग्निं चिनुत ऋधोत्येव कस्मै कमुग्निश्चीयत् इत्याहुरग्निवान्॥८॥

असानीति वा अग्निश्चीयतेऽग्निवानेव भेवित कस्मै कम्ग्निश्चीयत् इत्यांहुर्देवा मां वेदन्निति वा अग्निश्चीयते विदुरेंनं देवाः कस्मै कम्ग्निश्चीयत् इत्यांहुर्गृह्यंसानीति वा अग्निश्चीयते गृह्यंव भंवित कस्मै कम्ग्निश्चीयत् इत्यांहुः पशुमानंसानीति वा अग्निः॥९॥

चीयते प्रशुमानेव भंवति कस्मै कम्प्रिश्चीयत् इत्यांहुः सप्त मा पुरुषा उपं जीवानिति वा अग्निश्चीयते त्रयः प्राश्चस्त्रयः प्रत्यं चं आत्मा संप्तम एतावंन्त एवैनम्मुष्मिंश्लौंक उपं जीवन्ति प्रजापंतिर्ग्निमंचिकीषत् तं पृथिव्यंब्रवीन्न मय्यग्निं चैष्यसेतिं मा धक्ष्यति सा त्वांतिद्ह्यमाना वि धंविष्ये॥१०॥

स पापीया-भविष्यसीति सौंऽब्रवीत्तथा वा अहं करिष्यामि यथाँ त्वा नार्तिधृक्ष्यतीति स इमाम्भ्यंमृशत् प्रजापंतिस्त्वा सादयतु तयां देवतंयाङ्गिर्स्वद्भुवा सीदेतीमामेवेष्टंकां कृत्वोपांधृत्तानंतिदाहाय् यत्प्रत्यृग्निं चिन्वीत तद्भि मृंशेत्प्रजापंतिस्त्वा सादयतु तयां देवतंयाङ्गिर्स्वद्भुवा सीद॥११॥

इतीमामेवेष्टंकां कृत्वोपं धृत्तेऽनंतिदाहाय प्रजापंतिरकामयत् प्र जांयेयेति स एतमुख्यंमपश्यत्तरः संवथ्सरमंबिभुस्ततो वै स प्राजायत् तस्मांथ्संवथ्सरम्भार्यः प्रैव जायते तं वसंवोऽब्रुवन्प्र त्वमंजिनष्ठा वयं प्र जांयामहा इति तं वसुंभ्यः प्रायंच्छुत्तं त्रीण्यहाँन्यविभरुस्तेनं॥१२॥

त्रीणिं च श्वान्यसृंजन्त त्रयंस्त्रि १ शतं च तस्मान्त्र्यहम्भार्यः प्रैव जायते तानुद्रा अंब्रुवन्प्र

यूयमंजिनिद्वं व्यं प्र जांयामह्। इति त॰ रुद्रेभ्यः प्रायंच्छ्नत॰ षडहाँन्यिबभरुस्तेन् त्रीणिं च श्तान्यसृंजन्त त्रयंस्त्रि॰शतं च् तस्मांत्षड्हम्भार्यः प्रैव जांयते तानांदित्या अंब्रुवन्प्र यूयमंजिनिद्वं व्यं ॥१३॥

प्र जांयामहा इति तमांदित्येभ्यः प्रायंच्छुन्तं द्वाद्शाहाँन्यबिभरुस्तेन् त्रीणिं च श्तान्यसृंजन्त त्रयंस्त्रिश्शतं च तस्मांद्वादशाहम्भार्यः प्रैव जांयते तेनै्व ते सहस्रंमसृजन्तोखाः संहस्रत्नमीं य एवमुख्यः साहस्रं वेद प्र सहस्रं पृश्नांप्रोति॥१४॥

अग्निवान्पंशुमानंसानीति वा अग्निर्धविष्ये मृशेत्प्रजापंतिस्त्वा सादयतु तयां देवतंयाङ्गिर्स्वद्भुवा सींद् तेन् तानांदित्या अंब्रुवन्प्र यूयमंजनिङ्गं वयर्श्वत्वारिश्शचं॥—————[२]

यजुंषा वा एषा कियते यजुंषा पच्यते यजुंषा वि मुंच्यते यदुखा सा वा एषैतर्हिं यातयाँमी सा न पुनंः प्रयुज्येत्यांहुरग्नें युक्ष्वा हि ये तवं युक्ष्वा हि देवहूतंमा ह द्वयुखायाँ जुहोति तेनैवेनाम्पुनः प्र युंङ्कें तेनायांतयामी यो वा अग्निं योग् आगंते युनिक्तं युङ्कें युंञ्जानेष्वग्ने॥१५॥

युक्ष्वा हि ये तवं युक्ष्वा हि देवहूतंमार् इत्यांहैष वा अग्नेर्योग्स्तेनैवैनं युनिक्त युङ्के युंआनेषुं ब्रह्मवादिनों वदन्ति न्यंङ्काग्नेश्चेत्व्या(३) उत्ताना(३) इति वयंसां वा एष प्रतिमयां चीयते यदग्निर्यन्थंश्चं चिनुयात्पृष्टित एनमाहृतय ऋच्छेयुर्यद्त्तानं न पतिंतुर शक्नुयादसुंवर्ग्योऽस्य स्यात्प्राचीनंमृत्तानम्॥१६॥

पुरुष्शोर्षम्पं दधाति मुख्त एवैन्माहुंतय ऋच्छन्ति नोत्तानं चिनुते सुवर्ग्यांऽस्य भवित सौर्या जुंहोति चक्षुंरेवास्मिन्प्रति दधाति द्विर्जुहोति द्वे हि चक्षुंषी समान्या जुंहोति समानः हि चक्षुः समृद्धौ देवासुराः संयंता आस्नते वामं वसु सं न्यंदधत् तद्देवा वाम्भृतांवृञ्जत् तद्वांम्भृतां वामभृत्वं यद्वांम्भृतंमुपदधाति वाममेव तया वसु यजंमानो भ्रातृंव्यस्य वृङ्को हिरंण्यमूर्धी भवित ज्योतिर्वे हिरंण्यं ज्योतिर्वामं ज्योतिर्वेवास्य ज्योतिर्वामं वृङ्को द्वियुजुर्भवित प्रतिष्ठित्यै॥१७॥

युआनेष्वग्रे प्राचीनम्तानं वामभृत्अतुर्वि १ शतिश्च॥—————[३]

आपो वरुंणस्य पत्नंय आसुन्ता अग्निर्भ्यंध्यायत्ताः सर्मभवृत्तस्य रेतः परापतृत्तिद्वयम्भवद्यद्वितीयंम्पुरापंतृत्तद्सावभवद्ययं वै विराड्सौ स्वराद्यद्विराजांवुपद्धांतीमे पुवोपं धत्ते यद्वा असौ रेतः सिश्चित् तदस्यां प्रति तिष्ठति तत्प्र जांयते ता ओषंधयः॥१८॥

वीरुधों भवन्ति ता अग्निरंति य एवं वेद प्रैव जांयतेऽन्नादो भंवति यो रंतस्वी स्यात्प्रंथमायां तस्य चित्यांमुभे उपं दध्यादिमे एवास्में सुमीची रेतः सिश्चतो यः सिक्तरेताः स्यात्प्रंथमायां तस्य चित्यांमृन्यामुपं दध्यादुत्तमायांमृन्या रेतं एवास्यं सिक्तमाभ्यामुभ्यतः परिं गृह्णाति संवथ्सरं न कम्॥१९॥

चन प्रत्यवंरोहेन्न हीमे कं चन प्रत्यव्रोहंत्स्तदेनयोर्व्रतं यो वा अपंशीर्षाणमृग्निं चिनुतेऽपंशीर्षामुष्मिं ह्याँके भविति यः सशीर्षाणं चिनुते सशीर्षामुष्मिं ह्याँके भविति चित्तिं ज्ञहोमि मनसा घृतेन यथां देवा इहागमंन्वीतिहाँना ऋतावृधेः समुद्रस्यं वयुनस्य पत्मं अहोमि विश्वकर्मणे विश्वाहामर्त्यं हिविरितिं स्वयमातृण्णाम्पुधायं जुहोति॥२०॥

पृतद्वा अग्नेः शिरः सशीर्षाणमेवाग्निं चिनुते सशीर्षामुष्मिं ह्यों के भेवित य एवं वेदं सुवर्गाय वा एष लोकायं चीयते यदग्निस्तस्य यदयंथापूर्वं क्रियतेऽस्वर्ग्यमस्य तथ्सुंवर्ग्याऽग्निश्चितिंमुप्धायाभि मृंशेचितिमचित्तिं चिनवृद्धि विद्वान्पृष्ठेवं वीता वृंजिना च मर्तात्राये चं नः स्वपृत्यायं देव दितिं च रास्वादितिमुरुष्येतिं यथापूर्वमेवैनामुपं धत्ते प्राश्चमेनं चिनुते सुवर्ग्यांऽस्य भवति॥२१॥

ओर्षथयः कञ्जहोति स्वपृत्यायाष्टादंश च॥______[

विश्वकंमां दिशाम्पतिः स नंः पृशून्पांतु सौंऽस्मान्पांतु तस्मै नमंः प्रजापंती रुद्रो वर्रुणोऽग्निर्दिशाम्पतिः स नंः पृशून्पांतु सौंऽस्मान्पांतु तस्मै नमं एता वै देवतां एतेषां पशूनामधिपतयस्ताभ्यो वा एष आ वृंश्च्यते यः पशुशीर्षाण्युंपदधांति हिरण्येष्ट्रका उपं दधात्येताभ्यं एव देवतांभ्यो नमंस्करोति ब्रह्मवादिनंः॥२२॥

वृदन्त्युग्नौ ग्राम्यान्पुशून्त्र दंधाति शुचार्ण्यानंपंयित् किं तत् उच्छि १ षतीत् यिद्धंरण्येष्टका उपदर्धांत्यमृतं वै हिरंण्यम्मृतंनैव ग्राम्येभ्यः पृशुभ्यो भेषुजं करोत् नैनानं हिनस्ति प्राणो वै प्रथमा स्वयमातृण्णा व्यानो द्वितीयांपानस्तृतीयानु प्राण्यांत्प्रथमाः स्वयमातृण्णाम्ंप्धायं प्राणेनैव प्राणः समर्धयत् व्यन्यात्॥२३॥

द्वितीयांमुप्धायं व्यानेनैव व्यानः समर्धयत्यपाँन्यात्तृतीयांमुप्धायांपानेनैवापानः

समंध्यत्यथौँ प्राणैरेवैन् समिन्द्धे भूर्भुवः सुवृरितिं स्वयमातृण्णा उपं दधातीमे वै लोकाः स्वयमातृण्णा पृताभिः खलु वै व्याहृंतीभिः प्रजापितः प्राजायत् यदेताभिव्याहृंतीभिः स्वयमातृण्णा उपदधातीमानेव लोकानुंपुधायैषु॥२४॥

लोकेष्विध् प्र जांयते प्राणायं व्यानायांपानायं वाचे त्वा चक्षुंषे त्वा तयां देवतंयाङ्गिर्म्बद्भुवा सींदाग्निना वै देवाः सुंवर्गं लोकमंजिगा स्मन्तेन पतिंतुं नाशंक्रुवन्त एताश्चतंस्रः स्वयमातृण्णा अपश्यन्ता दिक्षूपांदधत् तेनं सुर्वतंश्वक्षुषा सुवर्गं लोकमायन्यचतंस्रः स्वयमातृण्णा दिक्षूंपदधांति सुर्वतंश्वक्षुष्वेव तदिग्निना यजंमानः सुवर्गं लोकमंति॥२५॥

बृह्मवादिनो व्यंन्यादेषु यजमानुस्त्रीणि च॥————[५]

अग्र आ यांहि बीतय इत्याहाह्वंतैवेनंमुग्निं दूतं वृंणीमह् इत्यांह हूत्वेवेनं वृणीते-ऽग्निनाग्निः समिध्यत् इत्यांह् समिन्द्ध एवेनंमुग्निर्वृत्राणि जङ्घनदित्यांह् समिद्ध एवास्मिन्निन्द्रयं दंधात्युग्नेः स्तोमंम्मनामह इत्यांह मनुत एवेनंमुतानि वा अह्वारं रूपाणि॥२६॥

अन्वहमेवेनं चिनुतेऽवाहार् रूपाणि रुन्द्धे ब्रह्मवादिनों वदन्ति कस्मांथ्मत्याद्यातयाँम्रीर्न्या इष्टंका अयांतयाम्री लोकं पृणेत्यैंन्द्राम्नी हि बांर्हस्पत्येतिं ब्रूयादिन्द्राम्नी च हि देवानाम्बृह्स्पतिश्चायांतयामानोऽनुच्रवंती भवत्यजांमित्वायानुष्टुभानुं चरत्यात्मा वे लोकं पृणा प्राणोंऽनुष्टुप्तस्मांत्प्राणः सर्वाण्यङ्गान्यनुं चरित ता अस्य सूदंदोहसः॥२७॥

इत्यांहु तस्मात्पर्रुषिपरुषि रसः सोमई श्रीणन्ति पृश्वंय इत्याहान्नं वै पृश्चन्नमेवावं रुन्द्धेऽकीं वा अग्निर्कोऽन्नमन्नमेवावं रुन्द्धे जन्मं देवानां विशिश्चिष्वा रीचने दिव इत्याहिमानेवास्में लोकां ज्योतिष्मतः करोति यो वा इष्टंकानां प्रतिष्ठां वेद प्रत्येव तिष्ठति तयां देवत्याङ्गिर्स्वद्भुवा सीदेत्यांहैषा वा इष्टंकानां प्रतिष्ठा य एवं वेद प्रत्येव तिष्ठति॥२८॥

रूपाणि सूर्ददोहस्स्तया षोर्डश च॥————[६]

सुवर्गाय वा एष लोकायं चीयते यद्ग्निर्वर्ज्ञं एकाद्शिनी यद्ग्नावेकाद्शिनीं िम्मनुयाद्वज्रेणैन र सुवर्गाक्षोकादन्तर्दध्याद्यन्न मिनुयाथ्स्वरुंभिः पुशून्व्यंधयेदेकयूपिम्मिनोति नैनं वर्ज्जेण सुवर्गाल्लोकादंन्तर्दधांति न स्वर्रुभः पृशून्त्र्यर्धयित वि वा एष इंन्द्रियेणं वीर्येणर्ध्यते योऽग्निं चिन्वन्नंधिकामंत्यैन्द्रिया॥२९॥

ऋचाक्रमंणुम्प्रतीष्टंकामुपं दध्यान्नेन्द्रियेणं वीर्येण व्यंध्यते रुद्रो वा एष यद्ग्निस्तस्यं तिस्रः शंर्व्याः प्रतीचीं तिरश्चन्ची ताभ्यो वा एष आ वृश्चते यौंऽग्निं चिंनुतैंऽग्निं चित्वा तिसृध्न्वमयांचितम्ब्राह्मणायं दद्यात्ताभ्यं एव नमस्करोत्यथो ताभ्यं एवात्मानं निष्क्रीणीते यत्ते रुद्र पुरः॥३०॥

धनुस्तद्वातो अनुं वातु ते तस्मैं ते रुद्र संवथ्सरेण नमंस्करोमि यत्ते रुद्र दक्षिणा धनुस्तद्वातो अनुं वातु ते तस्मै ते रुद्र परिवथ्सरेण नमंस्करोमि यत्ते रुद्र पृश्चाद्धनुस्तद्वातो अनुं वातु ते तस्मैं ते रुद्रेदावथ्सरेण नमंस्करोमि यत्ते रुद्रोत्तराद्धनुस्तत्॥३१॥

वातो अनुं वातु ते तस्मैं ते रुद्रेदुवथ्सरेण नमंस्करोमि यत्ते रुद्रोपिर् धनुस्तद्वातो अनुं वातु ते तस्मैं ते रुद्र वथ्सरेण नमंस्करोमि रुद्रो वा एष यदग्निः स यथाँ व्याघ्रः कुद्धस्तिष्ठंत्येवं वा एष एतर्हि सर्श्चितमेतैरुपं तिष्ठते नमस्कारेरेवेन शमयित यैंऽग्नयः॥३२॥

पुरीष्याः प्रविष्टाः पृथिवीमन्। तेषां त्वर्मस्युत्तमः प्र णीं जीवातेवे सुव। आपं त्वाऽग्रे मन्सापं त्वाऽग्रे तपसापं त्वाग्ने दीक्षयापं त्वाग्ने उपसद्धिरापं त्वाग्ने सुत्ययापं त्वाऽग्रे दिक्षणाभिरापं त्वाग्नेऽवभृथेनापं त्वाग्ने वृशयापं त्वाग्ने स्वगाकारेणेत्याहुषा वा अग्नेराप्तिस्तयैवैनंमाप्नोति॥३३॥

ऐन्द्रिया पुर उंत्तराद्धनुस्तद्ग्नयं आह्। चं॥______[७]

गायत्रेणं पुरस्तादुपं तिष्ठते प्राणमेवास्मिन्दधाति बृहद्रथन्तराभ्यां पृक्षावोजं पृवास्मिन्दधात्यृतुस्थायंज्ञाय्ज्ञियंन पुच्छंमृतुष्वेव प्रतिं तिष्ठति पृष्ठेरुपं तिष्ठते तेज्ञो वै पृष्ठानि तेजं पृवास्मिन्दधाति प्रजापंतिर्ग्निमंसृजत् सौंऽस्माथ्सृष्टः परांङ्केत्तं वारवन्तीयंनावारयत् तद्वारवन्तीयंस्य वारवन्तीयत्वः श्यैतेनं श्येती अंकुरुत् तच्छौतस्यं श्यैतत्वम्॥३४॥

यद्वांरवन्तीयेनोप्तिष्ठंते वारयंत एवैन ई श्यैतेनं श्येती कुंरुते प्रजापंतेर्हृदंयेनापिपृक्षम्प्रत्युपं तिष्ठते प्रेमाणंमेवास्यं गच्छति प्राच्यां त्वा दिशा सादयामि गायत्रेण छन्दंसाग्निनां देवतंयाग्नेः शीष्णाग्नेः शिर् उपं दधामि दक्षिणया त्वा दिशा सादयामि त्रैष्टुंभेन् छन्द्सेन्द्रेण देवतंयाुग्नेः पक्षेणाुग्नेः पक्षमुपं दधामि प्रतीच्यां त्वा दिशा सांदयामि॥३५॥

जागंतेन छन्दंसा सिव्त्रा देवतंयाग्नेः पुच्छेनाग्नेः पुच्छमुपं दधाम्युदींच्या त्वा दिशा सांदयाम्यानुष्टुभेन छन्दंसा मित्रावर्रुणभ्यां देवतंयाग्नेः पक्षेणाग्नेः पक्षमुपं दधाम्यूर्ध्वयां त्वा दिशा सांदयामि पाङ्केन छन्दंसा बृह्स्पतिना देवतंयाग्नेः पृष्ठेनाग्नेः पृष्ठमुपं दधामि यो वा अपांत्मानमृग्निं चिनुतेऽपांत्मामृष्टिमेल्लांके भंवति यः सात्मांनं चिनुते सात्मामृष्टिमेल्लांके भंवत्यात्मेष्टका उपं दधात्येष वा अग्नेरात्मा सात्मांनमेवाग्निं चिनुते सात्मामृष्टिमेल्लांके भंवति य एवं वेदं॥३६॥

श्यैतृत्वं प्रतीच्यां त्वा दिशा सांदयामि यः सात्मांनश्चिनुते द्वावि^५शतिश्च॥———[८]

अग्नं उद्ये या त् इषुंर्युवा नाम् तयां नो मृड् तस्यांस्ते नमस्तस्यांस्त् उप् जीवंन्तो भूयास्माग्नं दुध्र गह्य कि॰शिल वन्य या त् इषुंर्युवा नाम् तयां नो मृड् तस्यांस्ते नम्स्तस्यांस्त् उप् जीवंन्तो भूयास्म् पश्च वा एतेंऽग्नयो यचितंय उद्धिरेव नामं प्रथमो दुधः॥३७॥

द्वितीयो गह्यंस्तृतीयः कि श्रीलश्चंतुर्थो वन्यः पश्चमस्तेभ्यो यदाहंतीर्न जुंहुयादंष्वर्यं च यजंमानं च प्र दंहेयुर्यदेता आहंतीर्जुहोतिं भाग्धेयेनैवैनौञ्छमयित नार्तिमार्च्छत्यध्वर्यनं यजंमानो वाङ्गं आसन्नसोः प्राणौऽक्ष्योश्चक्षुः कर्णयोः श्रोत्रंम्बाहुवोर्बलंमूरुवोरोजोऽरिष्टा विश्वान्यङ्गांनि तनः॥३८॥

त्नुवां मे सह नमंस्ते अस्तु मा मां हिश्सीरप् वा एतस्मांत्प्राणाः क्रांमन्ति यौंऽग्निं चिन्वन्नंधिकामंति वाङ्गं आसन्नसोः प्राण इत्याह प्राणानेवात्मन्थत्ते यो रुद्रो अग्नौ यो अपस् य ओषधीषु यो रुद्रो विश्वा भुवनाविवेश तस्मै रुद्राय नमीं अस्त्वाहुंतिभागा वा अन्ये रुद्रा हविर्मागाः॥३९॥

अन्ये शंतरुद्रीयर् हुत्वा गांवीधुकं चरुमेतेन यर्जुषा चर्मायामिष्टंकायां नि दंध्याद्भाग्धेयेंनैवैनर् शमयित तस्य त्वे शंतरुद्रीयर् हुतिमित्यांहुर्यस्यैतदुग्रौ क्रियत् इति वसंवस्त्वा रुद्रैः पुरस्तौत्पान्तु पितरंस्त्वा यमरांजानः पितृभिदिक्षिणतः पौन्त्वादित्यास्त्वा विश्वैदेवैः पश्चात्पौन्तु द्युतानस्त्वां मारुतो मुरुद्धिरुत्तरुतः पांतु॥४०॥

देवास्त्वेन्द्रं ज्येष्ठा वर्रुणराजानो ऽधस्ताँ चोपरिष्ठाच पान्तु न वा पृतेनं पूतो न मेध्यो

न प्रोक्षितो यदेनमतः प्राचीनं प्रोक्षति यथ्सश्चितमाज्येन प्रोक्षति तेनं पूतस्तेन मेध्यस्तेन प्रोक्षितः॥४१॥

दुधस्तुनूर्ह्विर्भागाः पातु द्वात्रिर्शच॥-----[९]

समीची नामांसि प्राची दिक्तस्याँस्तेऽग्निरिधंपतिरसितो रेक्षिता यश्चािधंपितिर्यश्चं गोप्ता ताभ्यां नमस्तौ नो मृडयतान्ते यं द्विष्मो यश्चं नो द्वेष्टि तं वां जम्भे दधाम्योजस्विनी नामांसि दक्षिणा दिक्तस्याँस्त इन्द्रोऽधिंपितुः पृदांकुः प्राची नामांसि प्रतीची दिक्तस्याँस्ते॥४२॥

सोमोऽधिपतिः स्वृजोंऽवस्थावा नामास्युदींची दिक्तस्याँस्ते वरुणो-ऽधिपतिस्तिरश्चराजिरधिपत्नी नामांसि बृह्ती दिक्तस्याँस्ते बृह्स्पतिरधिपतिः श्वित्रो वृशिनी नामांसीयं दिक्तस्याँस्ते यमोऽधिपतिः कल्माषंग्रीवो रक्षिता यश्चाधिपतिर्यश्चं गोप्ता ताभ्यां नमस्तौ नों मृडयतान्ते यं द्विष्मो यश्चं॥४३॥

नो द्वेष्टि तं वां जम्भे दधाम्येता वै देवतां अग्निं चितर रेक्षन्ति ताभ्यो यदाहुंतीर्न जुंहुयादंध्वर्युं च यजंमानं च ध्यायेयुर्यदेता आहुंतीर्जुहोतिं भागधेयेंनैवैनां ञ्छमयित् नार्तिमार्च्छंत्यध्वर्युर्न यजंमानो हेतयो नामं स्थ तेषां वः पुरो गृहा अग्निर्व इषंवः सिलुलो निलिम्पा नामं॥४४॥

स्थ तेषां वो दक्षिणा गृहाः पितरों व इषंवः सगरो विज्ञिणो नामं स्थ तेषां वः पश्चाद्गृहाः स्वप्नों व इषंवो गह्वंरोऽवस्थावांनो नामं स्थ तेषां व उत्तराद्गृहा आपों व इषंवः समुद्रोऽधिपतयो नामं स्थ तेषां व उपिरं गृहा वर्षं व इष्वोऽवंस्वान्क्रव्या नामं स्थ पार्थिवास्तेषां व इह गृहाः॥४५॥

अर्न्न व इपंबो निमिषो वांतनामन्तेभ्यों वो नमस्ते नी मृडयत् ते यं द्विष्मो यश्चं नो द्वेष्टि तं वो जम्भे दथामि हुतादो वा अन्ये देवा अंहुतादोऽन्ये तानिम्निचिदेवोभयाँन्प्रीणाति द्र्मा मंधुमिश्रेणैता आहुंतीर्जुहोति भाग्धेर्येनैवैनाँन्प्रीणात्यथो खल्वांहुरिष्टंका वै देवा अंहुताद् इतिं॥४६॥

अनुपरिकामं जुहोत्यपेरिवर्गमेवैनांन्प्रीणातीमः स्तन्मूर्जस्वन्तं धयापाम्प्रप्यांतमभ्रे सरिरस्य मध्यैं। उथ्सं जुषस्व मधुंमन्तमूर्व समुद्रियः सदंन्मा विशस्व। यो वा अभिम्प्रयुज्य न विमुश्चति यथाश्वों युक्तोऽविमुच्यमानः क्षुध्यंन्पराभवंत्येवमंस्याभिः परां भवति तं पंराभवन्तं यर्जमानोऽनु परां भवति सौंऽग्निं चित्वा लूक्षः॥४७॥

भ्वतीमः स्तन्मूर्जस्वन्तं धयापामित्याज्यंस्य पूर्णाः सुर्चं जुहोत्येष वा अग्नेर्विमोको विमुच्येवास्मा अन्नमिपं दधाति तस्मांदाहुर्यश्चैवं वेद यश्च न सुधायः ह वै वाजी सुहितो दधातीत्यग्निर्वाव वाजी तमेव तत्प्रींणाति स एनम्प्रीतः प्रींणाति वसींयान्भवति॥४८॥

प्रतीची दिक्तस्याँस्ते द्विष्मो यश्चं निलिम्पा नामेह गृहा इतिं लूक्षो वसीया-भवति॥[१०]

इन्द्रांय राज्ञें सूक्रो वर्रुणाय राज्ञे कृष्णो यमाय राज्ञ ऋश्यं ऋष्भाय राज्ञे गवयः शाँदूलाय राज्ञें गौरः पुरुषराजायं मुर्कटः क्षिप्रश्येनस्य वर्तिका नीलंगोः क्रिमिः सोमंस्य राज्ञेः कुलुङ्गः सिन्धौः शिश्शुमारों हिमवंतो हस्ती॥४९॥

मृयुः प्रांजापृत्य ऊलो हलींक्ष्णो वृषद् १ शस्ते धातुः सरंस्वत्यै शारिः श्येता पुंरुष्वाख्सरंस्वते शुकंः श्येतः पुंरुष्वागांरुण्योऽजो नंकुलः शका ते पौष्णा वाचे क्रौश्चः॥५०॥

मृयुम्नयोवि २ शतिः॥——[१२]

अपां नर्त्रे जुषो नाुक्रो मर्करः कुर्लीकयुस्तेऽकूपारस्य वाचे पैङ्गराजो भगाय कुषीतिक आती वाहसो दर्विदा ते वायव्यां दिग्भ्यश्चेकवाकः॥५१॥

अ्पामेकाृत्रवि १ शतिः॥______[१३]

बलायाजगुर आखुः संज्ञया श्रायण्डंकस्ते मैत्रा मृत्यवेऽसितो मृन्यवे स्वजः कुंम्भीनसंः पुष्करसादो लोहिताहिस्ते त्वाष्ट्राः प्रतिश्रुत्काये वाहसः॥५२॥

[88]

पुरुषमृगश्चन्द्रमंसे गोधा कालंका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनामेण्यहे कृष्णो रात्रियै पिकः क्ष्विङ्का नीलंशीर्णी तेंंऽर्यम्णे धातुः कंत्कटः॥५३॥

[१५]

सौरी बुलाकर्श्यों मुयूर्रः श्येनस्ते गंन्धुर्वाणां वसूनां कृपिञ्जलो रुद्राणां तित्तिरी

| रोहित्कुंण्डृणाची गोलत्तिंका ता अंफ्सरसामरंण्याय सृम्रः॥५४॥ |
|---|
| [38] |
| पृष्तो वैश्वदेवः पित्वो न्यङ्कुः कश्क्तेऽनुंमत्या अन्यवापौऽर्धमासानौम्मासां कृश्यपः |
| क्विं कुटर्रुद्यत्यौहस्ते सिनीवाल्यै बृह्स्पतंये शित्पुटः॥५॥ |
| [8/9] |
| शर्का भौमी पात्रः कशो मान्धीलवस्ते पितृणामृतूनां जहंका संवथ्सराय लोपां कुपोत् उलूकः शुशस्ते नैर्ंऋताः कृंकवाकुः सावित्रः॥५६॥ |
| बलांय पुरुषमृगः सौरी पृंषतः शकाृष्टादंशाृष्टादंश॥[१८] |
| रुर्रू रौद्रः कृंकलासः शकुनिः पिप्पंका ते शर्रव्यायै हरिणो मारुतो ब्रह्मणे |
| शार्गस्तरक्षुः कृष्णः श्वा चंतुरक्षो गर्दभस्त इंतरजनानांमुग्नये धृङ्क्षां॥५७॥ |
| रुर्फर्वि ४ श्रातिः॥[१९] |
| अलुज आँन्तरिक्ष उद्रो मृद्धः प्रुवस्तेंऽपामदित्यै ह×सुसाचिंरिन्द्राण्यै कीर्शा गृध्रः |
| शितिकक्षी वाँर्प्राण्सस्ते दिच्या द्यांवापृथिव्यां श्वावित्॥५८॥ |
| [२०] |
| सुपूर्णः पार्जुन्यो हर्सो वृकों वृषद्र्शस्त ऐन्द्रा अपामुद्रौंऽर्युम्णे लोपा्शः सिर्हो |
| नंकुलो व्याघ्रस्ते मंहेन्द्राय कामांय परंस्वान्॥५९॥ |
| अ्तुजः सुंपूर्णोऽष्टादंशाष्ट्रादंश॥————[२१] |
| आग्नेयः कृष्णग्नीवः सारस्वती मेषी बुभुः सौम्यः पौष्णः श्यामः शितिपृष्ठो बार्हस्पत्यः |
| शिल्पो वैश्वदेव ऐन्द्रोऽरुणो मारुतः कुल्मार्ष ऐन्द्राग्नः सर्रहितोऽधोरांमः सावित्रो वारुणः |
| पेर्त्वः॥६०॥ |
| आुग्नेयो द्वावि १ शतिः॥————[२२] |
| अर्श्वस्तूपरो गोंमृगस्ते प्रांजापृत्या आंंग्रेयौ कृष्णग्नींवौ त्वाष्ट्रौ लोंमशसुक्थौ शिंतिपृष्ठौ |

बार्हस्पत्यौ धात्रे पृषोदरः सौर्यो बलक्षः पेर्त्वः॥६१॥

अश्वष्योडंश॥———[२३]

अग्नयेऽनींकवते रोहिंताञ्जिरनङ्घानधोरांमौ सावित्रौ पौष्णौ रंजतनांभी वैश्वदेवौ पिशङ्गौ तूपरौ मारुतः कुल्माषं आग्नेयः कृष्णोऽजः सारस्वती मेषी वारुणः कृष्ण एकंशितिपात्पेत्वं:॥६२॥

अ्ग्नयोऽनींकवते द्वावि १ शतिः॥——[२४]

॥षष्ठमः प्रश्नः॥

॥तैत्तिरीयसंहितायां पञ्चमकाण्डे षष्ठमः प्रश्नः॥

हिरंण्यवर्णाः शुचंयः पावृका यासुं जातः कृश्यपो यास्विन्द्रंः। अग्निं या गर्भं दिधिरे विरूपास्ता न आपः शङ् स्योना भवन्तु। यासाष्ट्र राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अंवपश्यञ्जनानाम्। मधुश्चतः शुचंयो याः पांवृकास्ता न आपः शङ् स्योना भवन्तु। यासाँ देवा दिवि कृण्वन्तिं भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति। याः पृथिवीम्पयंसोन्दन्ति॥१॥

शुक्रास्ता न आपः शङ् स्योना भेवन्तु। शिवेनं मा चक्षुंषा पश्यतापः शिवयां तुनुवोपं स्पृशत् त्वचंम्मे। सर्वारं अग्नीर रंप्स्षुषदों हुवे वो मिय वर्चो बलुमोजो नि घंत्त। यददः संम्प्रयतीरहावनंदता हुते। तस्मादा नद्यों नामं स्थ ता वो नामानि सिन्धवः। यत्प्रेषिता वर्रुणेन ताः शीभरं सुमवंत्यत।॥२॥

तदाँप्रोदिन्द्रों वो यतीस्तस्मादापो अनुं स्थन। अपकाम स्यन्दंमाना अवींवरत वो हिकम्ं। इन्द्रों वः शक्तिंभिर्देवीस्तस्माद्वाणांमं वो हितम्। एकों देवो अप्यंतिष्ठथ्स्यन्दंमाना यथावृशम्। उदानिषुर्मृहीरिति तस्मादुद्कमुंच्यते। आपों भुद्रा घृतमिदापं आसुरुग्नीषोमौं बिभ्रत्याप इत्ताः। तीव्रो रसो मधुपृचांम्॥३॥

अरंगम आ माँ प्राणेनं सह वर्चसा गन्न्। आदित्पंश्याम्युत वां शृणोम्या मा घोषों गच्छिति वाङ्गं आसाम्। मन्यें भेजानो अमृतंस्य तर्हि हिरंण्यवर्णा अतृपं यदा वंः। आपो हि ष्ठा मंयोभुवस्ता नं ऊर्जे दंधातन। महे रणाय चक्षंसे। यो वंः शिवतंमो रसस्तस्य भाजयतेह नंः। उश्तीरिंव मातरंः। तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयांय जिन्वंथ। आपो जनयंथा च नः। दिवि श्रंयस्वान्तरिंक्षे यतस्व पृथिव्या सम्भंव ब्रह्मवर्च्समंसि ब्रह्मवर्चसायं त्वा॥४॥

उन्दन्तिं समवंल्गत मधुपृचांम्मातरो द्वावि १ शतिश्च॥———[१]

अपां ग्रह्रौनगृह्णात्येतद्वाव राज्सूयं यदेते ग्रह्रौः स्वौंऽग्निर्वंरुणस्वो राजसूर्यमग्निस्वश्चित्यस्ताभ्यांमेव सूयतेऽथौं उभावेव लोकाविभ जंयित यश्चं राजसूर्येनेजानस्य यश्चौंग्निचित आपों भवन्त्यापो वा अग्नेर्भ्रातृंच्या यद्पौंऽग्नेर्धस्तांदुपद्धांति भ्रातृंच्याभिभृत्यै भवंत्यात्मना परौस्य भ्रातृंच्यो भवत्यमृतम्॥५॥

वा आपुस्तस्मांदुद्भिरवंतान्तम्भि विश्वन्ति नार्तिमार्च्छति सर्वमायुरिति यस्यैता उपधीयन्ते य उं चैना एवं वेदान्नं वा आपंः पृशव आपोऽन्नंम्पृशवौंऽन्नादः पंशुमान्भविति यस्यैता उपधीयन्ते य उं चैना एवं वेद द्वादंश भवन्ति द्वादंश मासाः संवथ्सरः संवथ्सरेणैवास्मै॥६॥

अन्नमवं रुन्द्धे पात्राणि भवन्ति पात्रे वा अन्नमद्यते सयौँन्येवान्नमवं रुन्द्ध आ द्वांदशात्पुरुंषादन्नमृत्त्यथो पात्रान्न छिंद्यते यस्यैता उंपधीयन्ते य उं चैना एवं वेदं कुम्भाश्चं कुम्भीश्चं मिथुनानिं भवन्ति मिथुनस्य प्रजाँत्यै प्र प्रजयां पृशुभिंमिंथुनैर्जायते यस्यैता उंपधीयन्ते य उं॥७॥

चैना एवं वेद शुग्वा अग्निः सौंऽध्वर्युं यजंमानं प्रजाः शुचार्पयित् यद्प उंप्दधांति शुचंमेवास्यं शमयित् नार्तिमार्च्छंत्यध्वर्युनं यजंमानः शाम्यन्ति प्रजा यत्रैता उंपधीयन्तेऽपां वा एतानि हृदंयानि यदेता आपो यदेता अप उंपदधांति दिव्याभिरेवैनाः स॰ सृंजिति वर्षुकः पुर्जन्यः॥८॥

भुवृति यो वा एतासामायतेनं क्रृप्तिं वेदायतेनवा-भवित कल्पंतेऽस्मा अनुसीतमुपं दधात्येतद्वा आसामायतेनमेषा क्रृप्तिर्य एवं वेदायतेनवा-भवित कल्पंतेऽस्मै द्वन्द्वमुन्या उपं दधाति चर्तस्रो मध्ये धृत्या अन्नं वा इष्टंका एतत्खलु वै साक्षादन्नं यदेष चरुर्यदेतं चरुर्मुपदधांति साक्षात्॥९॥

एवास्मा अन्नमवं रुन्धे मध्यत उपं दधाति मध्यत एवास्मा अन्नं दधाति तस्मान्मध्यतोऽन्नमद्यते बार्हस्पत्यो भंवित् ब्रह्म वै देवानाम्बृह्स्पतिर्ब्रह्मणैवास्मा अन्नमवं रुन्धे ब्रह्मवर्च्समंसि ब्रह्मवर्च्साय त्वेत्यांह तेज्ञस्वी ब्रह्मवर्च्सी भंवित् यस्यैष उपधीयते य उ चैनमेवं वेदं॥१०॥

अमृतंमस्मै जायते यस्यैता उपधीयन्ते य उ पूर्जन्यं उपदर्धाति साक्षाथ्सप्तचंत्वारि शच॥[२]

भूतेष्टका उपं दधात्यत्रात्र् वै मृत्युर्जायते यत्रयत्रेव मृत्युर्जायते ततं एवैन्मवं यजते तस्मादिग्निचिथ्सर्वमायुरेति सर्वे ह्यस्य मृत्यवोऽवेष्टास्तस्मादिग्निचित्राभिचेरित्वे प्रत्यगेनमभिचारः स्तृंणुते सूयते वा एष योऽग्निं चिनुते देवसुवामेतानिं ह्वी९िषं भवन्त्येतावंन्तो वै देवानार्थं सुवास्त एव॥११॥

अस्मै स्वान्प्र यंच्छन्ति त एंन॰ सुवन्ते स्वौंऽग्निर्वरुणस्वो रांज्यसूयं ब्रह्मस्वश्चित्यों देवस्यं त्वा सिवृतुः प्रस्व इत्याह सिवृत्रुप्रसूत एवेन् ब्रह्मणा देवतांभिर्भि विश्चत्यन्नस्यान्नस्याभि विश्चत्यन्नस्यान्नस्यावरुख्यै पुरस्तौत्प्रत्यश्चम्भि विश्चति पुरस्तािख्य प्रतीचीन्मन्नमृद्यते शीर्ष्तोऽभि विश्चति शीर्ष्तो शीर्ष्तो ह्यन्नमृद्यते आ मुखांदन्ववंस्रावयित॥१२॥

मुख्त एवास्मां अन्नाद्यं दधात्यग्नेस्त्वा साम्राज्येनाभि विश्वामीत्यांहैष वा अग्नेः स्वस्तेनैवैनंमभि विश्वति बृह्स्पतेंस्त्वा साम्राज्येनाभि विश्वामीत्यांह् ब्रह्म वे देवानाम्बृह्स्पतिब्रह्मंणैवैनंमभि विश्वतीन्द्रंस्य त्वा साम्राज्येनाभि विश्वामीत्यांहेन्द्रियमेवास्मिन्नुपरिष्टाद्दधात्येतत्॥१३॥

वै राज्ञसूयंस्य रूपं य एवं विद्वानुग्निं चिनुत उभावेव लोकाविभ जंयित यश्चे राज्ञसूयेंनेजानस्य यश्चांग्निचित् इन्द्रंस्य सुषुवाणस्यं दश्घेन्द्रियं वीर्यं परापतत्तद्देवाः सौंत्रामृण्या समंभरन्थ्रसूयते वा एष योंऽग्निं चिनुतेंऽग्निं चित्वा सौंत्रामृण्या यंजेतेन्द्रियमेव वीर्यर्थं सम्भृत्यात्मन्थंते॥१४॥

त एवान्ववंस्रावयत्येतदष्टाचंत्वारि १श च॥

[३]

स्जूरब्दोऽयांविभः स्जूरुषा अर्रुणीभिः स्जूः सूर्य एतंशेन स्जोषांविश्वना दश्सोभिः

स्जूरग्निर्वैश्वान्र इडांभिर्घृतेन् स्वाहां संवथ्सरो वा अब्दो मासा अयांवा उषा अर्रुणी सूर्य् एतंश हुमे अश्विनां संवथ्सरौंऽग्निर्वैश्वान्रः पृशव् इडां पृशवों घृत र संवथ्सरम्पृशवोऽनु प्र जांयन्ते संवथ्सरेणैवास्मै पश्न्म्र जनयति दर्भस्तम्बे जुंहोति यत्॥१५॥

वा अस्या अमृतं यद्वीर्यं तद्दुर्भास्तस्मिञ्जहोति प्रैव जायतेऽन्नादो भविति यस्यैवं जुह्वत्येता वै देवतां अग्नेः पुरस्ताद्भागास्ता एव प्रीणात्यथो चक्षुरेवाग्नेः पुरस्ताद्भितिं दधात्यनंन्थो भविति य एवं वेदापो वा इदमग्ने सिल्लिमासीथ्स प्रजापंतिः पुष्करपूर्णे वार्तो भूतोऽलेलायथ्सः॥१६॥

प्रतिष्ठां नाविन्दत स एतद्पां कुलायंमपश्यत्तस्मिन्नग्निमिचनुत् तद्यमंभवृत्ततो वै स प्रत्यंतिष्ठद्याम्पुरस्तांदुपादंधात्तच्छिरोऽभवृथ्सा प्राची दिग्यां दंक्षिण्त उपादंधाथ्स दिक्षिणः पृक्षोऽभवृथ्सा दंक्षिणा दिग्याम्पश्चादुपादंधात्तत्पुच्छंमभवृथ्सा प्रतीची दिग्यामुत्तर्त उपादंधात्॥१७॥

स उत्तरः पृक्षोऽभवृथ्सोदींची दिग्यामुपरिष्टादुपादेधात्तत्पृष्टमंभवृथ्सोध्वा दिगियं वा अग्निः पश्चौष्टकस्तस्माद्यद्स्यां खनंन्त्यभीष्टंकां तृन्दन्त्यभि शर्कराष्ट्रं सर्वा वा इयं वयौभ्यो नक्तं दृशे दीप्यते तस्मादिमां वयार्षसि नक्तं नाध्यांसते य एवं विद्वानृग्निं चिनुते प्रत्येव॥१८॥

तिष्ठत्यभि दिशों जयत्याग्नेयो वै ब्राँह्मणस्तस्माँद्वाह्मणाय सर्वासु दिक्ष्वर्धुंक्ड् स्वामेव तिद्दशमन्वेँत्यपां वा अग्निः कुलायन्तस्मादापोऽग्नि हार्रुकाः स्वामेव तद्योनिम्प्र विशन्ति॥१९॥

यदंलेलायुथ्स उत्तर्त उपादंधादेव द्वात्रिर्श्शच॥-----[४]

संवध्सरमुख्यंम्भृत्वा द्वितीये संवध्सर आँग्नेयमृष्टाकंपालं निर्वपेदैन्द्रमेकांदशकपालं वैश्वदेवं द्वादंशकपालम् बार्हस्पृत्यं चुरुं वैष्णुवं त्रिकपालन्तृतीये संवध्सरेऽभिजितां यजेत् यद्ष्टाकंपालो भवंत्यृष्टाक्षरा गायृत्र्यांग्नेयं गायृत्रम्प्रातःसवनम् प्रातःसवनमेव तेनं दाधार गायृत्रं छन्दो यदेकांदशकपालो भवत्येकांदशाक्षरा त्रिष्टुगैन्द्रं त्रेष्टुंभम्माध्यंदिन् सर्वन्ममाध्यंदिनमेव सर्वनं तेनं दाधार त्रिष्टुभम्॥२०॥

छन्दो यद्वादंशकपालो भवंति द्वादंशाक्षरा जर्गती वैश्वदेवं जार्गतं

षष्ठमः प्रश्नः (काण्डम् ५)

तृतीयसवनन्तृतीयसवनम्व तेनं दाधार् जगंतीं छन्दो यद्वांर्हस्पत्यश्चरुभंवंति ब्रह्म वै देवानाम्बृह्स्पतिब्रह्मेव तेनं दाधार् यद्वैष्ण्वस्त्रिकपालो भवंति यज्ञो वै विष्णुंर्यज्ञम्व तेनं दाधार् यत्तृतीये संवथ्स्रेऽभिजिता यजंतेऽभिजित्यै यथ्संवथ्स्रसृख्यंम्ब्र्भर्तीममेव॥२१॥

तेनं लोक स्पृणोति यहितीयं संवथ्सरेंऽग्निं चिनुतेंऽन्तरिक्षमेव तेनं स्पृणोति यत्तृतीयं संवथ्सरे यजंतेऽमुमेव तेनं लोक स्पृणोत्येतं वै परं आद्वारः कक्षीवारं औशिजो वीतहंच्यः श्रायसस्रसदंस्यः पौरुकुथ्स्यः प्रजाकांमा अचिन्वत् ततो वै ते सहस्रश्यस्त्रम्पुत्रानंविन्दन्त प्रथंते प्रजयां पृश्विम्स्ताम्मात्रांमाप्नोति यां तेऽगंच्छुन् य एवं विद्वानेतमृग्निं चिनुते॥२२॥

प्रजापंतिरिश्चमंचिन्त् स क्षुरपंविर्भूत्वातिष्ठत्तं देवा बिभ्यंतो नोपायन्ते छन्दोभिरात्मानं छादियत्वोपायन्तच्छन्दंसां छन्दस्तवं ब्रह्म वै छन्दार्शस् ब्रह्मण एतद्रूपं यत्कृष्णाजिनङ्कार्ष्णी उपानहावुपं मुश्चते छन्दोभिरेवात्मानं छादियत्वाग्निमुपं चरत्यात्मनोऽहिर्श्सायै देविनिधिर्वा एष नि धीयते यदग्निः॥२३॥

अन्ये वा वै निधिमगुप्तं विन्दन्ति न वा प्रति प्र जांनात्युखामा क्रांमत्यात्मानंमेवाधिपां कुंरुते गुप्त्या अथो खल्वांहुर्नाक्रम्येति नैर्ऋत्युंखा यदाक्रामेक्रिर्ऋत्या आत्मान्मिषं दध्यात्तस्मान्नाक्रम्यां पुरुषशीर्षमुपं दधाति गुप्त्या अथो यथां ब्रूयादेतन्में गोपायेतिं तादृगेव तत्॥२४॥

प्रजापंतिर्वा अर्थर्वाग्निरेव द्रध्यङ्कांथर्वणस्तस्येष्टंका अस्थान्येतः ह् वाव तद्दषिर्भ्यनूंबाचेन्द्रों दधीचो अस्थिभिरिति यदिष्टंकाभिर्ग्निं चिनोति सात्मानमेवाग्निं चिनते सात्मामुष्मिं ह्याँके भवति य एवं वेद् शरीर्ं वा एतद्ग्नेयीचित्यं आत्मा वैश्वानरो यचिते वैश्वानरं जुहोति शरीरमेव सङ्स्कृत्यं॥२५॥

अभ्यारोहिति शरीर्ं वा एतद्यजंमानः सङ्स्कुंरुते यदिष्ठें चिनुते यचिते वैंश्वान्रं जुहोति शरीरमेव स्ङ्स्कृत्यात्मनाभ्यारोहिति तस्मात्तस्य नावं द्यन्ति जीवंन्नेव देवानप्येति वैश्वान्यर्चा पुरीष्मुपं दधातीयं वा अग्निर्वेश्वान्रस्तस्यैषा चितिर्यत्पुरीषमृग्निमेव वैंश्वान्रं षष्ठमः प्रश्नः (काण्डम् ५)

चिनुत एषा वा अग्नेः प्रिया तुनूर्यद्वैश्वानुरः प्रियामेवास्यं तुनुवुमवं रुन्द्वे॥२६॥

अग्निस्तथ्स् ड्स्कृत्याग्नेर्दशं च॥————[६]

अग्नेर्वे दीक्षयां देवा विराजंमाप्नविन्त्स्रो रात्रींदीक्षितः स्यांत्रिपदां विराड्विराजंमाप्नोति षड्रात्रींदीक्षितः स्यात् षड्वा ऋतवंः संवथ्सरः संवथ्सरो विराड्विराजंमाप्नोति दश रात्रींदीक्षितः स्याद्दशांक्षरा विराड्विराजंमाप्नोति द्वादंश रात्रींदीक्षितः स्याद्दशांक्षरा विराड्विराजंमाप्नोति त्रयोंदश रात्रींदीक्षितः स्यात्रयोंदश॥२७॥

मासाः संवथ्सरः संवथ्सरो विरािब्वराजंमाप्रोति पश्चंदश् रात्रींदीक्षितः स्यात्पश्चंदश् वा अर्धमासस्य रात्रयोऽर्धमासशः संवथ्सर आंप्यते संवथ्सरो विरािब्वराजंमाप्रोति सप्तदंश् रात्रींदीक्षितः स्याद्वादंश् मासाः पश्चर्तवः स संवथ्सरः संवथ्सरो विरािब्वराजंमाप्रोति चतुर्विरशतिर्ध रात्रींदीक्षितः स्याचतुर्विरशतिरर्धमासाः संवथ्सरः संवथ्सरः संवथ्सरः संवथ्सरो विरािब्वराजंमाप्रोति त्रिर्शतिर् रात्रींदीक्षितः स्याचतुर्विरशतिरर्धमासाः संवथ्सरः संवथ्सरो विरािब्वराजंमाप्रोति त्रिर्शतिर् रात्रींदीक्षितः स्यांत्॥२८॥

त्रिष्शदंक्षरा विराि्ट्टराजंमाप्रोति मासं दीक्षितः स्याद्यो मासः स संवथ्सरः संवथ्सरो विरािट्टराजंमाप्रोति चतुरों मासो दीक्षितः स्याँचतुरो वा एतम्मासो वसंवोऽविभक्स्ते पृथिवीमाजंयन्गायत्रीं छन्दोऽष्टौ क्द्रास्तें उन्तरिक्षमाजंयत्रिष्टभं छन्दो द्वादंशािदत्यास्ते दिवमाजंयअर्गतीं छन्दस्ततो वे ते व्यावृतंमगच्छुञ्छ्रेष्ठमं देवानाम् तस्माद्वादंश मासो भृत्वािग्नं चिन्वीत् द्वादंश् मासौः संवथ्सरः संवथ्सरोंऽग्निश्चित्यस्तस्यांहोरात्राणीष्टंका आप्तेष्टंकमेनं चिनुतेऽथौं व्यावृतंमेव गंच्छति श्रैष्ठमं समानानांम्॥२९॥

स्यात्रयोंदश त्रि र्शत्र रात्रींदीक्षितः स्याद्वे तेंऽष्टावि रशतिश्व॥————[७]

सुवर्गाय वा एष लोकायं चीयते यद्ग्निस्तं यन्नान्वारोहें ध्सुवर्गाक्षोकाद्यजंमानो हीयेत पृथिवीमार्क्रमिषं प्राणो मा मा हांसीदन्तिरिक्षमार्क्रमिषं प्रजा मा मा हांसीदिवमार्क्रमिष् सुवरगुन्मेत्यांहैष वा अग्नेरंन्वारोहस्ते नैवेनम्न्वारोहित सुवर्गस्यं लोकस्य सम्ध्ये यत्पक्षसंम्मिताम्मिनुयात्॥३०॥

कनीयाश्सं यज्ञऋतुमुपेयात्पापीयस्यस्यात्मनः प्रजा स्याद्वेदिसम्मिताम्मिनोति ज्यायाश्समेव यंज्ञऋतुमुपेति नास्यात्मनः पापीयसी प्रजा भवति साहुस्रं चिन्वीत प्रथमं चिन्वानः सहस्रंसम्मितो वा अयं लोक इममेव लोकम्भि जंयति द्विषांहस्रं चिन्वीत द्वितीयं चिन्वानो द्विषांहस्रुं वा अन्तरिक्षम्नतिरक्षमेवाभि जंयित त्रिषांहस्रं चिन्वीत तृतीयं चिन्वानः॥३१॥

त्रिषांहस्रो वा असौ लोकोंऽमुमेव लोकम्भि जंयित जानुद्धं चिन्वीत प्रथमं चिन्वानो गांयत्रियैवेमं लोकम्भ्यारोहित नाभिद्धं चिन्वीत द्वितीयं चिन्वानस्त्रिष्टभैवान्तरिक्षम्भ्यारोहित ग्रीवद्धं चिन्वीत तृतीयं चिन्वानो जगंत्यैवामुं लोकम्भ्यारोहित नाग्निं चित्वा रामामुपेयादयोनौ रेतों धास्यामीति न द्वितीयं चित्वान्यस्य स्त्रियम्॥३२॥

उपेयात्र तृतीयं चित्वा कां चनोपेयाद्रेतो वा पृतित्र धंत्ते यद्ग्रिं चिंनुते यदुंपेयाद्रेतंसा व्यृध्येताथो खल्वांहुरप्रजस्यं तद्यत्रोपेयादिति यद्रेतःसिचांवुपदधांति ते एव यजंमानस्य रेतों बिभृतस्तस्मादुपेयाद्रेतसोऽस्कंन्दाय त्रीणि वाव रेतार्श्सि पिता पुत्रः पौत्रंः॥३३॥

यद्वे रेतःसिचांवुपद्ध्याद्रेतौंऽस्य विच्छिंन्द्यातिस्र उपं दधाति रेतंसः सन्तंत्या इयं वाव प्रथमा रेतःसिग्वाग्वा इयं तस्मात्पश्यंन्तीमाम्पश्यंन्ति वाचं वदंन्तीम्न्तिरिक्षं द्वितीयाँ प्राणो वा अन्तिरिक्षं तस्मान्नान्तिरिक्षम्पश्यंन्ति न प्राणम्सौ तृतीया चक्षुर्वा असौ तस्मात्पश्यंन्त्यमूम्पश्यंन्ति चक्षुर्यजुंषेमां चं॥३४॥

अमूं चोपं दधाति मनंसा मध्यमामेषां लोकानां क्रस्या अथौं प्राणानांमिष्टो यज्ञो भृगुंभिराशीर्दा वसुंभिस्तस्यं त इष्टस्यं वीतस्य द्रविणेह भंक्षीयेत्यांह स्तुतश्चे एवैतेनं दुहे पिता मांतिरश्वाच्छिंद्रा पदा धा अच्छिंद्रा उशिजः पदानुं तक्षुः सोमों विश्वविन्नेता नेषद्गहरूपतिरुक्थामदानिं शश्सिषदित्यांहैतद्वा अग्नेरुक्थन्तेनैवैनमनुं शश्सित॥३५॥

मिनुयात्तृतीयं चिन्वानस्त्रियं पौत्रेश्च वै सप्तदंश च॥————[८]

सूयते वा एषौँ ऽग्नीनां य उखायाँ भ्रियते यद्धः सादयेद्दर्भाः प्रपादंकाः स्युरथो यथां स्वात्प्रत्यवरोहंति तादगेव तदांसन्दी सादयित गर्भाणां धृत्या अप्रपादायाथों स्वमेवैनं करोति गर्भो वा एष यदुख्यो योनिः शिक्यं यच्छिक्यांदुखां निरूहेद्योनेर्गर्भं निर्हण्याथ्यडुंद्यामः शिक्यंम्भवति षोढाविहितो वै॥३६॥

पुरुष आत्मा च शिरंश्च चृत्वार्यङ्गांन्यात्मन्नेवैनंम्बिभर्ति प्रजापंतिर्वा एष यद्ग्निस्तस्योखा चोलूखंलं च स्तनौ तावंस्य प्रजा उपं जीवन्ति यदुखां चोलूखंलं चोपदर्धाति ताभ्यामेव षष्ठमः प्रश्नः (काण्डम् ५)

यर्जमानोऽमुष्मिं ह्याँकैंऽग्निं दुंहे संवथ्सरो वा एष यद्ग्निस्तस्यं त्रेधाविह्तिता इंष्टकाः प्राजापत्या वैष्णवीः॥३७॥

वैश्वकर्मणीरंहोरात्राण्येवास्यं प्राजापृत्या यदुख्यंम्बिभितं प्राजापृत्या एव तदुपं धत्ते यथ्समिधं आदधांति वैष्णवा वै वनस्पतंयो वैष्णवीरेव तदुपं धत्ते यदिष्टंकाभिर्गितं चिनोतीयं वै विश्वकर्मा वैश्वकर्मणीरेव तदुपं धत्ते तस्मांदाहुस्त्रिवृद्ग्निरिति तं वा एतं यजमान एव चिन्वीत् यदंस्यान्यश्चिनुयाद्यत्तं दक्षिणाभिर्न राध्येद्ग्निमंस्य वृञ्जीत् यौंऽस्याग्निं चिनुयात्तं दक्षिणाभी राध्येदग्निमेव तथ्स्पृंणोति॥३८॥

षोढाविहितो वै वैष्ण्वीर्न्यो विर्ष्श्रितिश्चं॥———[१]

प्रजापंतिर्ग्निमंचिनुत्त्तिंः संवथ्सरं वंसन्तेनैवास्यं पूर्वार्धमंचिनुत ग्रीष्मेण् दक्षिणम्पक्षं वर्षाभिः पुच्छरं श्रदोत्तंरम्पक्षर हेमन्तेन मध्यं ब्रह्मणा वा अस्य तत्पूर्वार्धमंचिनुत क्षत्रेण् दक्षिणम्पक्षम्पश्चभिः पुच्छं विशोत्तंरम्पक्षमाशया मध्यं य एवं विद्वानृग्निं चिनुत ऋतुभिरवेनं चिनुतेऽथों एतदेव सर्वमवं॥३९॥

रुन्द्धे शृण्वन्त्येनमृग्निं चिंक्यानमत्त्यन्नर् रोचंत इयं वाव प्रंथमा चितिरोषंधयो वनस्पतंयः पुरीषम्न्तरिक्षं द्वितीया वयारंसि पुरीषम्सौ तृतीया नक्षंत्राणि पुरीषं यज्ञश्चंतुर्थी दक्षिणा पुरीषं यज्ञमानः पश्चमी प्रजा पुरीषं यत्रिचितीकं चिन्वीत यज्ञं दक्षिणामात्मानं प्रजाम्न्तरियात्तस्मात्पश्चंचितीकश्चेत्व्यं एतदेव सर्वर्धं स्पृणोति यत्तिस्रश्चितंयः॥४०॥

त्रिवृद्धंग्नियंद्वे द्विपाद्यजंमानः प्रतिष्ठित्ये पश्च चितयो भवन्ति पाङ्कः पुरुष आत्मानंमेव स्पृणोति पश्च चितयो भवन्ति पश्चभिः पुरीषेरभ्यूहिति दश् सम्पंद्यन्ते दशाँक्षरो वै पुरुषो यावांनेव पुरुष्दत्र स्पृणोत्यथो दशाँक्षरा विराड्यं विराङ्विराज्येवात्राद्ये प्रति तिष्ठति संवथ्सरो वै षष्ठी चितिर्ऋतवः पुरीष् पद्वतयो भवन्ति षद्वरीषाणि द्वादेश सम्पंद्यन्ते द्वादेश मासाः संवथ्सरः संवथ्सर एव प्रति तिष्ठति॥४१॥

अव चितंयः पुरीषं पश्चंदश च॥-----[१०]

रोहिंतो धूम्ररोहितः कुर्कन्धुंरोहित्स्ते प्रांजापृत्या बुभुरंरुणबंभुः शुकंबभुस्ते रौद्राः श्येतंः श्येताक्षः श्येतंग्रीवस्ते पिंतृदेवृत्यांस्तिस्रः कृष्णा वृशा वारुण्यंस्तिस्रः श्वेता वृशाः सौर्यो मैत्राबार्हस्पृत्या धूम्रलंलामास्तूपुराः॥४२॥

-[88]

पृश्जिंस्तिरश्चीनंपृश्जिरूर्ध्वपृंश्जिस्ते मांठ्ताः फुल्गूर्लोहितोणीं बंलुक्षी ताः सांरस्वत्यः पृषंती स्थूलपृंषती क्षुद्रपृंषती ता वैश्वदेव्यस्तिस्रः श्यामा वृशाः पौष्णियंस्तिस्रो रोहिंणीर्वशा मैत्रियं ऐन्द्राबार्हस्पत्या अरुणलंलामास्तूपराः॥४३॥

रोहिंतः पृश्चिष्पिङ्व रेशित्षिष्पिङ्व रेशितः॥------[१२]

शितिबाहुर्न्यतंःशितिबाहुः सम्न्तिशितिबाहुस्त ऐन्द्रवायवाः शितिरन्ध्रोऽन्यतंःशितिरन्ध्रः सम्न्तिशितिरन्ध्रः सम्न्तिशितिरन्ध्रस्ते मैन्नावरुणाः शुद्धवांलः सर्वशुद्धवालो मृणिवांलस्त आश्विनास्तिस्रः शिल्पा वृशा वैश्वदेव्यंस्तिस्रः श्येनीः परमेष्ठिने सोमापौष्णाः श्यामलंलामास्तूप्राः॥४४॥

-[१३]

उन्नत ऋष्मो वांमनस्त ऐंन्द्रावरुणाः शितिंककुच्छितिपृष्ठः शितिंभस्त ऐंन्द्राबार्हस्पृत्याः शितिपाच्छित्योष्ठः शितिभ्रुस्त ऐंन्द्रावैष्णवास्तिस्रः सिध्मा वृशा वैश्वकर्मण्यंस्तिस्रो धात्रे पृषोदरा ऐंन्द्रापौष्णाः श्येतंललामास्तूपराः॥४५॥

कुर्णास्रयों यामाः सौम्यास्रयः श्वितिङ्गा अग्नये यविष्ठाय त्रयो नकुलास्तिस्रो रोहिंणी्स्र्यव्यस्ता वसूनान्तिस्रोऽरुणा दित्यौह्यंस्ता रुद्राणार्थं सोमैन्द्रा बभुलंलामास्तूपराः॥४६॥

कुर्णास्त्रयोवि १ शतिः॥-----[१५]

शुण्ठास्रयों वैष्णवा अंधीलोधकर्णास्रयों विष्णंव उरुक्रमायं लफ्सुदिनस्रयो विष्णंव उरुगायाय पश्चांवीस्तिस्र आंदित्यानांत्रिवथ्सास्तिस्रोऽङ्गिरसामैन्द्रावैष्णवा गौरलंलामास्तूपराः॥४७॥

शुण्ठा विर्श्यतिः॥———[१६]

इन्द्रांय राज्ञे त्रयंः शितिपृष्ठा इन्द्रांयाधिराजाय त्रयः शितिंककुद् इन्द्रांय स्वराज्ञे त्रयः शितिंभसदस्तिस्रस्तुंयोंह्यः साध्यानांन्तिस्रः पष्ठौह्यों विश्वेषां देवानांमाग्नेन्द्राः

कृष्णलेलामास्तूपुराः॥४८॥

इन्द्रांय राज्ञे द्वाविर्श्यतिः॥———[१७]

अदित्ये त्रयों रोहितेता इंन्द्राण्ये त्रयंः कृष्णेताः कुह्वै त्रयोंऽरुणेतास्तिस्रो धेनवों राकाये त्रयोंऽनुङ्गाहंः सिनीवाल्या आग्नावेष्णवा रोहिंतललामास्तूपराः॥४९॥

अदित्या अष्टादंश॥-----[१८]

सौम्यास्त्रयंः पिशङ्गाः सोमाय राज्ञे त्रयंः सारङ्गाः पार्जन्या नभोरूपास्तिस्रोऽजा मुल्हा इन्द्राण्ये तिस्रो मेष्यं आदित्या द्यांवापृथिव्यां मालङ्गौस्तूपराः॥५०॥

सौम्या एकान्नवि १ शतिः॥_______[१९]

वारुणास्त्रयंः कृष्णलेलामा वर्रुणाय राज्ञे त्रयो रोहितोललामा वर्रुणाय रिशादंसे त्रयोऽरुणलेलामाः शिल्पास्त्रयो वैश्वदेवास्त्रयः पृश्नयः सर्वदेवत्या ऐन्द्रासूराः श्येतेललामास्तूपराः॥५१॥

वारुणा विर्श्वातिः॥-----[२०]

सोमांय स्वराज्ञें ऽनोवाहावं नुङ्गाहां विन्द्राग्निभ्यां मोजोदाभ्या मुष्टां राविन्द्राग्निभ्यां बलुदाभ्या है सीरवाहाववी द्वे धेनू भौमी दिग्भ्यो वडंबे द्वे धेनू भौमी वैराजी पुरुषी द्वे धेनू भौमी वायवं आरोहणवाहावं नुङ्गाहौं वारुणी कृष्णे वृशे अंराङ्गौ दिव्यावृष्मौ पेरिम्रौ॥५२॥

सोमाय स्वराज्ञे चतुंस्त्रि शत्॥ [२१

एकांदश प्रातर्ग्व्याः पुशव् आ लेभ्यन्ते छुगुलः कुल्मार्षः किकिदीविर्विदीगयुस्ते त्वाष्ट्राः सौरीर्नवं श्वेता वृशा अनूबन्ध्यां भवन्त्याग्नेय ऐन्द्राग्न आश्विनस्ते विशालयूप आ लेभ्यन्ते॥५३॥

एकांदश् पश्चंवि २ शतिः॥-----[२२]

पिशङ्गास्त्रयों वासन्ताः सारङ्गास्त्रयो ग्रैष्माः पृषंन्तस्त्रयो वार्षिकाः पृश्र्नयस्त्रयंः शारदाः

सप्तमः प्रश्नः (काण्डम् ५)

पृंश्विम् कथास्त्रयो हैर्मन्तिका अवलिप्तास्त्रयः शैशिराः संवथ्मराय निवंक्षसः॥५४॥

यो वा अयंथादेवत्न्त्वामंग्र् इन्द्रंस्य चित्तिं यथा वै वयो वै यदाकूंताद्यास्तें अग्र्रे मियं गृह्णामि प्रजापंतिः सौंऽस्माध्स्तेगान् वाजं कूर्मान् योक्रं मित्रावरुंणाविन्द्रंस्य पूष्ण ओजं आन्नन्दमहंर्ग्नेर्वायोः पन्थाङ्कमैद्यौंस्तेऽग्निः पृश्र्रांसीध्यिद्वर्ंशतिः॥——————[२४]यो वा एवाह्ंतिमभवन्पथिभिरवरुध्यांनन्दमष्टौपंश्चाशत्॥58॥ यो वा अयंथादेवतं यद्यंवजिद्यंसि॥

॥सप्तमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां पञ्चमकाण्डे सप्तमः प्रश्नः॥

यो वा अयंथादेवतम्भिं चिंनुत आ देवताँभ्यो वृथ्यते पापीयान्भवित यो यंथादेवतं न देवताँभ्य आ वृंथ्यते वसीयान्भवत्याभ्रेय्या गांयत्रिया प्रंथमां चितिम्भि मृंशेत्रिष्टभाँ द्वितीयां जगत्या तृतीयांमनुष्टभां चतुर्थीम्पङ्क्ष्या पंश्वमीं यंथादेवतमेवाभ्रिं चिंनुते न देवताँभ्य आ वृंथ्यते वसीयान्भवतीडांयै वा एषा विभक्तिः पृशव इडां पृशुभिरेनम्॥१॥

चिनुते यो वै प्रजापंतये प्रतिप्रोच्याभ्रिं चिनोति नार्तिमार्च्छ्त्यश्वांव्भितंस्तिष्ठतां कृष्ण उत्तर्तः श्वेतो दक्षिणस्तावालभ्येष्टंका उपं दध्यादेतद्वै प्रजापंत रूपम्प्रांजापृत्योऽश्वंः साक्षादेव प्रजापंतये प्रतिप्रोच्याभ्रिं चिनोति नार्तिमार्च्छत्येतद्वा अह्रों रूपं यच्छ्वेतोऽश्वो रात्रिये कृष्ण एतदहंः॥२॥

रूपं यदिष्टंका रात्रिये पुरीष्मिष्टंका उपधास्यञ्चेतमश्चंम्भि मृंशेत्पुरीषमुपधास्यन्कृष्णमंहोराः चिनुते हिरण्यपात्रम्मधौः पूर्णं दंदाति मध्व्योऽसानीति सौर्या चित्रवृत्यावेंक्षते चित्रमेव भंवित मध्यन्दिनेऽश्वमवं घ्रापयत्यसौ वा आंदित्य इन्द्रं एष प्रजापंतिः प्राजापृत्योऽश्वस्तमेव साक्षादंभ्रोति॥३॥

पुनम्तेदह्योऽष्टाचंत्वारि॰शच॥----[१]

त्वामंग्ने वृष्मं चेकितानम्पुन्युंवांनञ्जनयंत्रुपागांम्। अस्थूरि णो गार्हंपत्यानि सन्तु तिग्मेनं नो ब्रह्मणा स॰ शिंशाधि। पृशवो वा एते यदिष्टंकाश्चित्यांचित्यामृष्ममुपं दधाति मिथुनमेवास्य तद्यज्ञे केरोति प्रजनेनाय तस्माँद्यूथेयूंथ ऋष्भः। संवथ्सरस्यं प्रतिमां यां त्वां रात्र्युपासंते। प्रजार सुवीरांं कृत्वा विश्वमायुर्व्यश्चवत्। प्राजापत्याम्॥४॥

पुतामुपं दधातीयं वावैषैकाँष्ट्रका यदेवैकाँष्ट्रकायामन्नं क्रियते तदेवैतयावं रुन्द्ध एषा वै प्रजापतेः कामदुघा तयैव यर्जमानोऽमुष्मिंश्लाँकैंऽग्निं दुंहे येनं देवा ज्योतिषोध्वा उदायन् येनादित्या वसंवो येनं रुद्राः। येनाङ्गिरसो महिमानमानृशुस्तेनैतु यर्जमानः स्वस्ति। सुवर्गाय वा एष लोकायं॥५॥

चीयते यद्ग्निर्येनं देवा ज्योतिषोध्वा उदायन्नित्युख्युष्ट् सिमेन्द्व इष्टंका एवैता उपं धत्ते वानस्पत्याः सुंवर्गस्यं लोकस्य समष्ट्ये शतायुंधाय शतवींर्याय शतोतंयेऽभिमातिषाहें। शतं यो नः शरदो अजीतानिन्द्रों नेषदितं दुरितानि विश्वां। ये चत्वारः पथयों देवयानां अन्तरा द्यावांपृथिवी वियन्ति। तेषां यो अज्यांनिमजीतिमा वहात्तस्मैं नो देवाः॥६॥

परिं दत्तेह सर्वे। ग्रीष्मो हेम्न्त उत नो वस्न्तः श्ररद्वर्षाः सुंवितं नो अस्त्। तेषांमृत्ना श्रतशांरदानां निवात एषामभये स्याम। इदुवृथ्सरायं परिवथ्सरायं संवथ्सरायं कृणुता बृहन्नमः। तेषां वय सुंमतौ युज्ञियांनां ज्योगजीता अहंताः स्याम। भृद्रान्नः श्रेयः समनेष्ट देवास्त्वयांवसेन् समंशीमहि त्वा। स नो मयोभूः पितो॥७॥

आ विशस्त शं तोकायं तनुवें स्योनः। अज्यांनीरेता उपं दधात्येता वे देवता अपंराजितास्ता एव प्र विशति नैव जीयते ब्रह्मवादिनों वदन्ति यदर्धमासा मासां ऋतवंः संवथ्सर ओषंधीः पचन्त्यथ् कस्मांदन्याभ्यों देवताभ्य आग्रयणं निरुप्यत् इत्येता हि तद्देवतां उदजंयन् यद्तुभ्यों निर्वपेद्देवताभ्यः समदं दध्यादाग्रयणं निरुप्येता आहुंतीर्जुहोत्यर्धमासानेव मासांनृत्नथ्संवथ्सरम्प्रीणाति न देवताभ्यः समदंन्दधाति भुद्रान्नः श्रेयः समनेष्ट देवा इत्यांह हुताद्यांय यजमानस्यापंराभावाय॥८॥

प्राजापुत्याल्लोंकार्य देवाः पितो दध्यादाग्रयणं पश्चेवि २ शतिश्च॥————[२]

इन्द्रंस्य वज्रोऽसि वार्त्रघ्नस्तनूपा नः प्रतिस्पृशः। यो नः पुरस्ताँदक्षिणतः पृश्चादुंतर्तौ-ऽघायुरंभिदासंत्येत सोऽश्मानमृच्छत्। देवासुराः संयंत्ता आस्नतेऽसुरा दिग्भ्य आबाधन्त तां देवा इष्वां च वज्रेण चापानुदन्त यद्वज्रिणीरुप्दधातीष्वां चैव तद्वज्रेण च यजमानो भ्रातृंव्यानपं नुदते दिक्षूपं॥९॥ द्धाति देवपुरा एवैतास्तंनूपानीः पर्यृहतेऽग्नांविष्णू स्जोषंसेमा वंर्धन्तु वां गिरं। द्युम्नैर्वाजेभिरा गंतम्। ब्रह्मवादिनों वदन्ति यन्न देवतायै जुह्बत्यथं किन्देवत्यां वसोधरित्यग्निर्वसुस्तस्यैषा धारा विष्णुर्वसुस्तस्यैषा धारांग्नावैष्णव्यर्चा वसोधर्रां जुहोति भागधेर्येनैवैनौ समर्धयत्यथों एताम्॥१०॥

पुवाहुंतिमायतंनवतीं करोति यत्कांम एनां जुहोति तदेवावं रुन्धे रुद्रो वा एष यद्ग्निस्तस्यैते तुनुवौं घोरान्या शिवान्या यच्छंतरुद्रीयं जुहोति यैवास्यं घोरा तुनूस्तां तेनं शमयति यद्वसोर्धारां जुहोति यैवास्यं शिवा तुनूस्तां तेनं प्रीणाति यो वै वसोर्धाराये॥१९॥

प्रतिष्ठां वेद प्रत्येव तिष्ठति यदाज्यंमुच्छिष्यंत तस्मिन्ब्रह्मौद्नम्पंचेत्तम्ब्रांह्मणाश्चत्वारः प्राश्त्रीयरेष वा अग्निर्वेश्वान्रो यद्वांह्मण एषा खलु वा अग्नेः प्रिया तन्यद्वेश्वान्रः प्रियायांमेवेनां तन्वां प्रति ष्ठापयति चतंस्रो धेनूर्दंद्यात्ताभिरेव यजमानोऽमुष्मिं ह्याँकेऽग्निं दुंह॥१२॥

उपैतान्धारांयै षद्गंत्वारि शच॥

=[≥]

चित्तिं श्रुहोम् मनंसा घृतेनत्याहादाँभ्या वै नामैषाहुंतिर्वेश्वकर्मणी नैनं चिक्यानम्आतृंव्यो दभ्रोत्यथों देवतां एवावं रुन्द्धेऽग्रे तम्द्येतिं पङ्ग्या जुंहोति पङ्ग्याहुंत्या यज्ञमुखमारंभते सप्त ते अग्रे समिधः सप्त जिह्वा इत्यांहु होत्रां एवावं रुन्द्वेऽग्निर्देवेभ्योऽपाँकामद्भाग्धेयम्॥१३॥

इच्छमान्स्तस्मां पृतद्भांगुधेयम्प्रायंच्छन्नेतद्वा अग्नेरंग्निहोत्रमेतर्रह् खलु वा एष जातो यर्हि सर्विश्चितो जातायैवास्मा अन्नमपि दधाति स एनम्प्रीतः प्रीणाति वसीयान्भवति ब्रह्मवादिनों वदन्ति यदेष गार्हंपत्यश्चीयतेऽथ् क्वांस्याहवनीय इत्यसावादित्य इति ब्रूयादेतस्मिन् हि सर्वांभ्यो देवतांभ्यो जुह्वंति॥१४॥

य एवं विद्वान्त्रिं चिनुते साक्षादेव देवतां ऋध्रोत्यग्नें यशस्विन् यशसेममप्येन्द्रांवतीमपंचितीमिहा वह। अयम्मूर्धा पंरमेष्ठी सुवर्चाः समानानांमुत्तमश्लोंको अस्तु। भृद्रम्पश्यंन्त उपं सेदुरग्ने तपों दीक्षामृषयः सुवर्विदः। ततः क्षत्रम्बलमोर्जश्च जातं तद्समै देवा अभि सं नमन्तु। धाता विधाता पंरमा॥१५॥

उत सुन्दक्य्रजापंतिः परमेष्ठी विराजां। स्तोमाश्छन्दारंसि निविदों म आहुरेतस्मैं राष्ट्रम्भि सं नंमाम। अभ्यावंर्तध्वमुप् मेतं साकमयर शास्ताधिपतिर्वो अस्तु। अस्य सप्तमः प्रश्नः (काण्डम् ५)

विज्ञानमनु सर रंभध्वमिमम्पश्चादनुं जीवाथ सर्वै। राष्ट्रभृतं एता उपं दधात्येषा वा अग्नेश्चितीं राष्ट्रभृत्तयैवास्मिन्नाष्ट्रं दंधाति राष्ट्रमेव भवति नास्मान्नाष्ट्रम्भरंशते॥१६॥

भागधेय अहंति पर्मा राष्ट्रन्दंधाति सप्त चं॥_____[४]

यथा वै पुत्रो जातो म्रियतं एवं वा एष म्रियते यस्याग्निरुख्यं उद्वायंति यत्निर्म्न्थ्यं कुर्याद्विच्छिन्द्याद्भातृं व्यमस्मै जनयेथ्स एव पुनः प्रीध्यः स्वादेवेनं योनैर्जनयति नास्मै भ्रातृंव्यं जनयति तमो वा एतं गृह्णाति यस्याग्निरुख्यं उद्वायंति मृत्युस्तमः कृष्णं वासः कृष्णा धेनुर्दक्षिणा तमसा॥१७॥

एव तमों मृत्युमपं हते हिरंण्यं ददाति ज्योतिर्वे हिरंण्यं ज्योतिषेव तमोऽपं ह्तेऽथो तेजो वै हिरंण्यन्तेजं एवात्मन्धंते सुवर्न घर्मः स्वाहा सुवर्नार्कः स्वाहा सुवर्न शुकः स्वाहा सुवर्न ज्योतिः स्वाहा सुवर्न सूर्यः स्वाहार्को वा एष यद्ग्रिर्सावंदित्यः॥१८॥

अश्वमेधो यदेता आहुंतीर्जुहोत्यंर्काश्वमेधयोरेव ज्योतीर्षेषि सं दंधात्येष ह् त्वा अंर्काश्वमेधी यस्यैतद्ग्रौ क्रियत् आपो वा इदमग्रे सलिलमांसीथ्स एतां प्रजापंतिः प्रथमां चितिमपश्यत्तामुपांधत्त् तदियमंभवृत्तं विश्वकंर्माब्रवीदुप् त्वायानीति नेह लोकौंऽस्तीति॥१९॥

अब्रबीथ्स एतां द्वितीयां चितिमपश्यत्तामुपांधत्त तद्न्तरिक्षमभव्थ्स यज्ञः प्रजापंतिमब्रबीदुप् त्वायानीति नेह लोकौंऽस्तीत्यंब्रबीथ्स विश्वकंर्माणमब्रबीदुप् त्वायानीति केनं मोपैष्यसीति दिश्यांभिरित्यंब्रबीत्तन्दिश्यांभिरुपैत्ता उपांधत्त ता दिशः॥२०॥

अभवन्थ्स पंरमेष्ठी प्रजापंतिमब्रवीदुप् त्वायानीति नेह लोकोंऽस्तीत्यंब्रवीथ्स विश्वकेर्माणं च युज्ञं चांब्रवीदुपं वामायानीति नेह लोकोंऽस्तीत्यंब्र्ताष्ट्रं स एतां तृतीयां चितिमपश्यत्तामुपांधत्त् तदुसावंभवथ्स आंदित्यः प्रजापंतिमब्रवीदुपं त्वा॥२१॥

आयानीति नेह लोकोंऽस्तीत्यंब्रवीथ्स विश्वकंर्माणं च यज्ञं चांब्रवीदुपं वामायानीति नेह लोकोंऽस्तीत्यंब्र्ताष् स पंरमेष्ठिनंमब्रवीदुप् त्वायानीति केनं मोपैष्यसीति लोकं पृणयेत्यंब्रवीत्तं लोकं पृणयोपैत्तस्मादयांतयाम्री लोकं पृणाऽयांतयामा ह्यसौ॥२२॥

आदित्यस्तानृषंयोऽब्रुवृत्रुपं व आयामेति केनं न उपैष्यथेति भूम्नेत्यंब्रुवृन्तान्द्वाभ्यां चितीभ्यामुपायुन्थ्स पश्चंचितीकः समंपद्यत् य एवं विद्वानुग्निं चिनुते भूयानेव भंवत्यभीमाञ्जाँकाञ्जयित विदुरेनं देवा अथों एतासांमेव देवतांना सायुंज्यं गच्छति॥२३॥
तमंसाऽऽदित्यौंऽस्तीति दिशं आदित्यः प्रजापंतिमब्रवीदुपं त्वाऽसौ पश्चंचत्वारि शच॥=[५]

वयो वा अग्निर्यदंग्निचित्पक्षिणों ऽश्जीयात्तमेवाग्निमंद्यादार्तिमार्च्छे थ्संवथ्स्र व्रतं चेरेथ्संवथ्स्र हि व्रतं नाति पृशुर्वा एष यद्ग्निर्हिनस्ति खलु वै तम्पृशुर्य एंनम्पुरस्तौत्प्रत्यश्चेमुप्चरंति तस्मौत्पश्चात्प्राङ्गंपूचर्यं आत्मनोऽहि रंसायै तेजोंऽसि तेजों मे यच्छ पृथिवीं यंच्छ॥२४॥

पृथिब्यै मां पाहि ज्योतिरसि ज्योतिर्मे यच्छान्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षान्मा पाहि सुवरसि सुवर्मे यच्छा दिवे यच्छा दिवो मां पाहीत्याहैताभिर्वा इमे लोका विधृंता यदेता उपदर्धात्येषां लोकानां विधृंत्ये स्वयमातृण्णा उपधायं हिरण्येष्टका उपं दधातीमे वै लोकाः स्वयमातृण्णा ज्योतिरहिरण्यं यथ्स्वयमातृण्णा उपधायं॥२५॥

हिर्ण्येष्ट्रका उपदर्धातीमानेवैताभिर्लीकां ज्योतिष्मतः कुरुतेऽथीं एताभिरेवास्मां इमे लोकाः प्र भाँन्ति यास्तें अग्ने सूर्ये रुचं उद्यतो दिवंमातन्वन्तिं रिश्मिभिः। ताभिः सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि। या वो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचंः। इन्द्रांग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त बृहस्पते। रुचं नो धेहि॥२६॥

ब्राह्मणेषु रुच् राजंसु नस्कृधि। रुचं विश्येषु श्रूद्रेषु मियं धेहि रुचा रुचम्ं। द्वेधा वा अभिं चिक्यानस्य यशं इन्द्रियं गंच्छत्यभिं वां चितमीजानं वा यदेता आहुंतीर्जुहोत्यात्मन्नेव यशं इन्द्रियं धंत्त ईश्वरो वा एष आर्तिमार्तोर्योऽभिं चिन्वन्नंधिकामंति तत्त्वां यामि ब्रह्मणा वन्दंमान इति वारुण्यर्चा॥२७॥

जुहुयाच्छान्तिरेवेषाभ्रेग्पिंरात्मनों हिविष्कृंतो वा एष यौंऽभ्रिं चिनुते यथा वे हिविः स्कन्दंत्येवं वा एष स्कन्दित् यौंऽभ्रिं चित्वा स्नियंमुपैतिं मैत्रावरुण्यामिक्षया यजेत मैत्रावरुणतांमेवोपैत्यात्मनोऽस्कन्दाय यो वा अभ्रिमृंतुस्थां वेदुर्तुर्ऋतुरस्मै कल्पमान एति प्रत्येव तिष्ठति संवथ्सरो वा अभ्रिः॥२८॥

ऋतुस्थास्तस्यं वसंन्तः शिरों ग्रीष्मो दक्षिणः पृक्षो वृर्षाः पुच्छर् शृरदुत्तंरः पृक्षो हेम्नतो मध्यंम्पूर्वपृक्षाश्चित्तयोऽपरपृक्षाः पुरीषमहोरात्राणीष्टंका एष वा अग्निर्ऋतुस्था य एवं वेदुर्तुर्ऋतुरस्मे कर्त्पमान एति प्रत्येव तिष्ठति प्रजापंतिर्वा एतं ज्येष्ठ्यंकामो न्यंधत्त् ततो वै स ज्यैष्ठांमगच्छ्दा एवं विद्वानुग्निं चिनुते ज्यैष्ठांमेव गंच्छति॥२९॥

पृथिवीं यंच्छ् यथ्स्वंयमातृण्णा उंप्धायं धेह्युचाग्निश्चिंनुते त्रीणिं च॥————[६]

यदाकूंताथ्समसुंस्रोद्धृदो वा मनंसो वा सम्भृंतं चक्षुंषो वा। तमनु प्रेहिं सुकृतस्यं लोकं यत्रर्षयः प्रथमजा ये पुंराणाः। एतः संधस्थ परिं ते ददामि यमावहाँच्छेवधिं जातवेदाः। अन्वागन्ता यज्ञपंतिर्वो अत्र तः समं जानीत पर्मे व्योमन्न। जानीतादेनं परमे व्योमन्देवाः सधस्था विद रूपमंस्य। यदागच्छांत्॥३०॥

पृथिभिर्देवयानैरिष्टापूर्ते कृंणुतादाविरंस्मै। सम्प्र च्यंवध्वमनु सम्प्र याताग्नें पृथो देवयानौन्कृणुध्वम्। अस्मिन्थस्थस्थे अध्युत्तंरस्मिन्विश्वं देवा यर्जमानश्च सीदत। प्रस्त्रेणं परि्धिनौ स्रुचा वेद्यां च बुर्हिषौ। ऋचेमं युज्ञं नौ वह् सुवंदेवेषु गन्तंवे। यदिष्टं यत्पंरादानं यद्दतं या च दक्षिणा। तत्॥३१॥

अग्निवैश्वकर्मणः सुवंदेवेषुं नो दधत्। येनां सहस्रं वहंसि येनांग्ने सर्ववेदसम्। तेनेमं यज्ञं नों वह सुवंदेवेषु गन्तवे। येनांग्ने दक्षिणा युक्ता यज्ञं वहंन्त्यृत्विजः। तेनेमं यज्ञं नों वह सुवंदेवेषु गन्तवे। येनांग्ने सुकृतः पृथा मधोर्धारां व्यानृशुः। तेनेमं यज्ञं नों वह सुवंदेवेषु गन्तवे। यत्र धारा अनंपेता मधौर्धृतस्यं च याः। तद्गिर्वैश्वकर्मणः सुवंदेवेषुं नो दधत्॥३२॥

आगच्छात्तद्यांनुशुस्तेनेमं युज्ञं नीं वह सुवर्देवेषु गन्तेवे चतुर्दश च॥————[७]

यास्तें अग्ने स्मिधो यानि धाम् या जिह्ना जांतवेदो यो अर्चिः। ये तें अग्ने मेडयो य इन्दंवस्तेभिंरात्मानं चिनुहि प्रजानन्न। उथ्सन्नयुक्तो वा एष यद्ग्निः किं वाहैतस्यं क्रियते किं वा न यद्वा अध्वर्युर्ग्नेश्चिन्वन्नंन्तरेत्यात्मनो वै तद्न्तरेति यास्तें अग्ने स्मिधो यानि॥३३॥

धामेत्यांहैषा वा अग्नेः स्वयश्चितिर्ग्निरेव तद्ग्निं चिनोति नाष्वर्युरात्मनोऽन्तरेति चतंस्र आशाः प्र चेरन्त्वग्नयं इमं नो यज्ञं नयतु प्रजानन्न। घृतम्पिन्वंन्नजररे सुवीरं ब्रह्मं समिद्भंवत्याहुंतीनाम्। सुवर्गाय वा एष लोकायोपं धीयते यत्कूर्मश्चतंस्र आशाः प्र चेरन्त्वग्नय इत्याह॥३४॥

दिशं पुवैतेन प्र जानातीमं नों युज्ञं नयतु प्रजानिन्नत्यांह सुवर्गस्यं लोकस्याभैनीत्यै

ब्रह्मं स्मिद्धंवत्याहुंतीना्मित्यांह् ब्रह्मंणा वै देवाः सुंवर्गं लोकमायन् यद्वह्मंण्वत्योप्दधांति ब्रह्मंणैव तद्यजंमानः सुवर्गं लोकमेंति प्रजापंतिर्वा एष यद्ग्रिस्तस्यं प्रजाः पृशवृश्छन्दा रेसि रूपः सर्वान् वर्णानिष्टंकानां कुर्याद्रूपेणैव प्रजां पृश्वञ्छन्दाः स्यवं रुन्द्धेऽथौं प्रजाभ्यं एवैनंम्पश्भ्यश्छन्दौंभ्योऽवरुद्धं चिनुते॥३५॥

मियं गृह्णाम्यग्रं अग्नि॰ रायस्पोषांय सुप्रजास्त्वायं सुवीर्याय। मियं प्रजाम्मिय् वर्चो दधाम्यिरिष्टाः स्याम तुनुवां सुवीराः। यो नो अग्निः पितरो हृथ्स्वंन्तरमंत्र्यो मर्त्याः आविवेशः। तमात्मन्पिरं गृह्णीमहे वयं मा सो अस्मा॰ अंवहाय परां गात्। यदेध्वर्युरात्मन्नग्निमगृहीत्वाग्निं चिनुयाद्योंऽस्य स्वौंऽग्निस्तमिपे॥३६॥

यजमानाय चिनुयाद्ग्निं खलु वै पृशवोऽनूपं तिष्ठन्तेऽपृक्तामुंका अस्मात्पृशवंः स्युर्मियं गृह्णाम्यग्ने अग्निमित्यांहात्मन्नेव स्वमृग्निं दांधार् नास्मात्पृशवोऽपं क्रामन्ति ब्रह्मवादिनों वदन्ति यन्मृचापंश्चाग्नेरंनाद्यमथ् कस्मान्मृदा चाद्भिश्चाग्निश्चीयत् इति यदद्भिः संयौति॥३७॥

आपो वै सर्वा देवतां देवतांभिरेवेन् स् सं संजित् यन्मृदा चिनोतीयं वा अग्निर्वेश्वान्रौं-ऽग्निनेव तद्भिं चिनोति ब्रह्मवादिनो वदन्ति यन्मृदा चाद्भिश्चाम्रिश्चीयतेऽथ् कस्माद्ग्निरुंच्यत् इति यच्छन्दोभिश्चिनोत्यग्नयो वै छन्दा सेसि तस्माद्ग्निरुंच्यतेऽथो इयं वा अग्निर्वेश्वान्रो यत्॥३८॥

मृदा चिनोति तस्मांद्रिग्नरुंच्यते हिरण्येष्टका उपं दधाति ज्योतिर्वे हिरण्यं ज्योतिरेवास्मिन्दधात्यथो तेजो वै हिरण्यं तेजं पृवात्मन्थत्ते यो वा अग्निर सर्वतोमुखं चिनुते सर्वास् प्रजास्वन्नमित्ति सर्वा दिशोऽभि जंयति गायत्रीम्पुरस्तादुपं दधाति त्रिष्टभं दक्षिणतो जर्गतीम्पुश्चादंनुष्टुभंमुत्तर्तः पृङ्किम्मध्यं पृष वा अग्निः सर्वतोमुख्सतं य एवं विद्वाङ्श्चिनुते सर्वासु प्रजास्वन्नमित्ति सर्वा दिशोऽभि जंयत्यथो दिश्येव दिश्मप्र वंयति तस्मांदिशि दिश्योतां॥३९॥

अपिं सुं यौतिं वैश्वानुरो यदेष वै पश्चंवि शतिश्च॥———[९]

प्रजापंतिर्ग्निमंस्जत् सौंऽस्माथ्सृष्टः प्राङ्गाद्रंवत्तस्मा अश्वम्प्रत्यौस्यथ्स देक्षिणावंर्तत् तस्मै वृष्णिम्प्रत्यौस्यथ्स प्रत्यङ्कावंर्तत् तस्मां ऋष्भम्प्रत्यौस्यथ्स उद्ङ्कावंर्तत् तस्मै बस्तम्प्रत्यौस्यथ्स ऊर्ध्वोऽद्रवृत्तस्मे पुरुषम्प्रत्यांस्यत् यत्पंशुशीर्षाण्युंपदधांति सुर्वतं एवेनम्॥४०॥

अवरुष्यं चिनुत एता वै प्राण्भृतश्चक्षुंष्मतीरिष्टंका यत्पंशुशीर्षाण् यत्पंशुशीर्षाण्यंपदधांति ताभिरेव यजंमानोऽमुष्मिल्लांके प्राणित्यथो ताभिरेवास्मां इमे लोकाः प्र भाँन्ति मृदाभिलिप्योपं दधाति मेध्यत्वायं पृशुर्वा एष यद्ग्रिरन्नम्पृशवं एष खलु वा अग्निर्यत्पंशुशीर्षाणि यं कामयेत् कनीयोऽस्यान्नम्॥४१॥

स्यादितिं सन्तरां तस्यं पशुशीर्षाण्युपं दथ्यात्कनीय पुवास्यान्नम्भवित् यं कामयेत समावदस्यान्नई स्यादितिं मध्यतस्तस्योपं दथ्याथ्समावदेवास्यान्नम्भवित् यं कामयेत् भूयो-ऽस्यान्नई स्यादित्यन्तेषु तस्यं व्युद्ह्योपं दथ्यादन्तत पुवास्मा अन्नमवं रुन्द्वे भूयो-ऽस्यान्नम्भवित॥४२॥

पुनमस्यात्रुम्भूयोस्यात्रमभवति॥————[१०]

स्तेगान्दश्र्माँभ्याम्मण्डूकाञ्जम्भ्येभिरादंकां खादेनोर्जरं सश्सूदेनारण्यं जाम्बीलेन् मृदंम्बर्स्वेभिः शर्कराभिरवंकामवंकाभिः शर्करामुथ्सादेनं जिह्वामंवऋन्देन् तालुश् सरंस्वतीं जिह्वाग्रेणं॥४३॥

वाज् १ हनूँ भ्याम्प आस्येनादित्याञ्च श्रुंभिरुपयाममधेरेणोष्ठेन सदुत्तरेणान्तरेणानूका्शम्प्रंका्शे बाह्य १ स्तनियृत्तुं निर्वाधेन सूर्याग्री चक्षुंभ्यां विद्युतौं कुनानंकाभ्याम्शनिंम्मस्तिष्केण बर्लम्मज्ञभिंः॥४४॥

वाजुं पश्चवि १ शतिः॥——[१२]

कूर्माञ्छुफैर्च्छलांभिः कृपिञ्जलान्थ्साम् कुष्ठिकाभिर्जुवं जङ्घांभिरगृदं जार्नुभ्यां वीर्यं कुहाभ्यां भ्यम्प्रचालाभ्याम् गुहोपपक्षाभ्यामश्चिनावश्साभ्यामिदितिश् शीर्ष्णा निर्ऋतिं निर्जाल्मकेन शीर्ष्णा॥४५॥

कूर्मात्रयोवि १शतिः॥-----[१३]

योक्रुं गृध्रांभिर्युगमानंतेन चित्तम्मन्यांभिः सङ्ग्रोशान्प्राणैः प्रंकाशेन् त्वचें पराका्शेनान्तराम्मुशकान्केशैरिन्द्रङ् स्वपंसा वहेन् बृह्स्पतिरं शकुनिसादेन् रथंमुि हांभिः॥४६॥

योक्रमेकंवि॰शितः॥

[१४]

मृत्रावर्रणौ श्रोणौंभ्यामिन्द्राग्नी शिंखुण्डाभ्यामिन्द्राबृहुस्पतीं ऊरुभ्यामिन्द्राविष्णूं अष्ठीवन्द्र्याः सिवृतार्म्पुच्छेन गन्धवीञ्छेपेनाप्स्रसो मुष्काभ्याम्पर्वमानम्पायुनां प्वित्रम्पोत्राभ्यामाक्रमण स्थूराभ्यां प्रतिक्रमणं कुष्ठाभ्याम्॥४७॥

[१५]

इन्द्रंस्य क्रोडोऽदित्यै पाजुस्यंन्दिशां ज्ञत्रवों जीमूतांन्हृदयोपुशाभ्यांमन्तरिक्षं पुरितता

नर्भ उद्येंणेन्द्राणीम्भ्रीहा वृत्मीकाँन्क्रोम्ना गिरीन्स्राशिभिः समुद्रमुदरेण वैश्वान्रम्भरमंना॥४८॥ मित्रावरुणाविन्द्रंस्य द्वावि १शतिद्वावि १शतिः॥———[१६]

पूष्णो वंनिष्ठरंन्थाहेः स्थूंरगुदा सूर्पान्गुदांभिर्ऋतून्पृष्टीभिर्दिवं पृष्ठेन वसूंनाम्प्रथमा कीकंसा रुद्राणां द्वितीयांदित्यानां तृतीयाङ्गिरसां चतुर्थी साध्यानां पश्चमी विश्वेषां देवानारं पृष्ठी॥४९॥

पूष्णश्चतुंर्वि २ शतिः॥______[१७]

ओजों ग्रीवाभिर्निर्ऋतिमस्थिभिरिन्द्रङ् स्वपंसा वहेन रुद्रस्यं विच्लः स्कन्थों-ऽहोरात्रयोंर्द्वितीयोंऽर्धमासानां तृतीयों मासां चंतुर्थ ऋतूनाम्पंश्चमः संवथ्सरस्यं षष्ठः॥५०॥

ओजों विरश्तिः॥_____[१८]

आनुन्दं नृन्दर्थुना कार्मम्प्रत्यासाभ्यां भयः शितीमभ्यां प्रशिषंम्प्रशासाभ्याः सूर्याचन्द्रमसौ वृक्यांभ्याः श्यामशबुलौ मतस्राभ्याब्ब्युंष्टिः रूपेण निम्नुंक्तिमरूपेण॥५१॥

अहंर्मा १ सेन् रात्रिम्पीवंसापो यूषेणं घृत १ रसेन् श्यां वसंया दूषीकांभिर्हादुन्मिश्रुंभिः पृष्वान्दिव १ रूपेण् नक्षंत्राणि प्रतिरूपेण पृथिवीं चर्मणा छुवीं छुव्योपाकृताय स्वाहालंब्धाय स्वाहां हुताय स्वाहाँ॥५२॥

 अग्नेः पंक्षतिः सरंस्वत्यै निपंक्षतिः सोमंस्य तृतीयापां चंतुर्थ्योषंधीनां पश्चमी संवथ्सरस्यं षष्ठी मुरुतार् सप्तमी बृह्स्पतेरष्टमी मित्रस्यं नवमी वर्रुणस्य दश्मीन्द्रंस्यैकाद्शी विश्वेषां देवानां द्वादशी द्यावापृथिव्योः पार्श्वं युमस्यं पाटूरः॥५३॥

अुग्नेरेकान्नित्र्शा———[२१]

वायोः पंक्षतिः सरंस्वतो निपंक्षतिश्चन्द्रमंसस्तृतीया नक्षंत्राणां चतुर्थी संवितुः पंश्चमी रुद्रस्यं पृष्ठी सुर्पाणार्थं सप्तम्यंर्यमणौऽष्ट्रमी त्वष्टंर्नवमी धातुर्दंशमीन्द्राण्या एंकाद्श्यदित्यै द्वादशी द्यावापृथिव्योः पार्श्वं यस्ये पाटूरः॥५४॥

वायोर्ष्टावि र्शितिः॥_____[२२]

पन्थांमनूवृग्भ्याः सन्तंतिः स्नावन्यांभ्याः शुकांन्यित्तेनं हरिमाणं युक्रा हलींक्ष्णान्यापवातेनं कृश्माञ्छकंभिः शवर्तानूवंध्येन शुनों विशसंनेन सूर्पाङ्कौंहितगुन्धेन् वयाःरसि पक्कगुन्धेनं पिपीलिकाः प्रशादेनं॥५॥

पन्थान्द्वावि र्शितः॥_____[२३]

क्रमैरत्यंक्रमीद्वाजी विश्वैर्देवैर्युज्ञियैंः संविदानः। स नों नय सुकृतस्यं लोकं तस्यं ते वयङ् स्वधयां मदेम॥५६॥

क्रमेंर्ष्टादंश॥——[२४]

द्यौस्तें पृष्ठं पृंथिवी स्थर्स्थमात्मान्तरिक्षः समुद्रो योनिः सूर्यस्ते चक्षुर्वातेः प्राणश्चन्द्रमाः श्रोत्रम्मासांश्चार्थमासाश्च पर्वाण्यृतवोङ्गानि संवथ्सरो महिमा॥५७॥

द्यौः पश्चविश्शतिः॥———[२५]

अग्निः पुशुर्रासीत्तेनायजन्त् स पृतं लोकमंजयद्यस्मिन्नृग्निः स तें लोकस्तं जेष्यस्यथावं जिघ्र वायुः पुशुरासीत्तेनायजन्त् स पृतं लोकमंजयद्यस्मिन्वायुः स तें लोकस्तस्मान्त्वान्तरेष्यामि यदि नाव्जिप्रस्यादित्यः पुशुरासीत्तेनायजन्त् स पृतं यस्मिन्नष्टौ चं॥ [२६]
प्राचीनंवश्यां यार्वन्त ऋख्सामे वाग्वै देवेभ्यों देवा वै देवयर्जनङ्कृद्रश्च तिस्तरंण्यश् षद्वदानिं
ब्रह्मवादिनों विचित्यो यत्कुलयां ते वारुणो वै कीतः सोम् एकांदश॥ [२७]

॥काण्डम् ६॥

॥प्रथमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां षष्ठमकाण्डे प्रथमः प्रश्नः॥

प्राचीनंबरशं करोति देवमनुष्या दिशो व्यंभजन्त प्राचीं देवा देक्षिणा पितरंः प्रतीचींम्मनुष्यां उदींचीर रुद्रा यत्प्राचीनंबरशं करोतिं देवलोकमेव तद्यजमान उपावंतित परि श्रयत्यन्तर्हितो हि देवलोको मंनुष्यलोकान्नास्माल्लोकाथ्स्वतव्यमिवेत्यांहुः को हि तद्वेद यद्यमुष्मिं ह्याँकेऽस्तिं वा न वेतिं दिक्ष्वतींकाशान्करोति॥१॥

उभयौंर्लोकयोर्भिजित्यै केशश्मृश्रु वंपते नुखानि नि कृंन्तते मृता वा एषा त्वर्गमेध्या यत्केशश्मृश्रु मृतामेव त्वचंममेध्यामंपहत्यं युज्ञियों भूत्वा मेधुमुपैत्यिङ्गिरसः सुवृर्गं लोकं यन्तोऽपसु दीक्षातृपसी प्रावेशयन्नुपसु स्नांति साक्षादेव दीक्षातृपसी अवं रुन्द्धे तीर्थे स्नांति तीर्थे हि ते ताम्प्रावेशयन्तीर्थे स्नांति॥२॥

तीर्थमेव संमानानां भवत्यपौं ऽष्रजात्यन्तर्त एव मेध्यों भवित वासंसा दीक्षयित सौम्यं वै क्षौमं देवत्या सोमंमेष देवतामुपैति यो दीक्षते सोमंस्य तुनूरंसि तुनुवं मे पाहीत्यांह स्वामेव देवतामुपैत्यथों आशिषंमेवैतामा शांस्ते ऽग्नेस्तूंषाधानं वायोर्वात्पानंम्यतृणान्नीविरोषंधीनाम्प्रघातः॥३॥

आदित्यानां प्राचीनतानो विश्वेषां देवानामोतुर्नक्षंत्राणामतीकाशास्तद्वा एतथ्संवेदेवृत्यं यद्वासो यद्वासंसा दीक्षयंति सर्वाभिरेवैनं देवतांभिर्दीक्षयति बृहिःप्राणो वै मंनुष्यंस्तस्याशंनं प्राणोंऽश्ञाति सप्राण एव दीक्षत्व आशितो भवति यावांनेवास्यं प्राणस्तेनं सह मेध्मुपैति घृतं देवानाम्मस्तुं पितृणान्निष्यंकम्मनुष्यांणान्तद्वै॥४॥

पुतर्थ्सविदेवृत्यं यन्नवंनीत् यन्नवंनीतेनाभ्युङ्के सर्वा पुव देवताः प्रीणाति प्रच्युंतो वा पुषां-ऽस्माल्लोकादगतो देवलोकं यो दीक्षितौंऽन्तरेव नवंनीतन्तस्मान्नवंनीतेनाभ्येङ्केऽनुलोमं यर्जुषा व्यावृत्त्या इन्द्रो वृत्रमंहुन्तस्यं कुनीनिका परापत्त्तदाञ्जनमभवद्यदाङ्के चक्षुरेव भ्रातृंव्यस्य वृङ्के दक्षिणम्पूर्वमाङ्के॥५॥ प्रथमः प्रश्नः (काण्डम् ६)

स्व्यः हि पूर्वम्मनुष्यां आञ्चते न नि धांवते नीव हि मंनुष्यां धावंन्ते पञ्च कृत्व आङ्के पञ्चांक्षरा पङ्किः पाङ्को यज्ञो यज्ञमेवावं रुन्द्धे परिमित्माङ्केऽपरिमित् हि मंनुष्यां आञ्चते सत्तृंलयाङ्केऽपंतृलया हि मंनुष्यां आञ्चते व्यावृत्त्यै यदपंतृलयाञ्चीत वर्ज्ञ इव स्याथ्सतृंलयाङ्के मित्रत्वायं॥६॥

इन्द्रों वृत्रमंहुन्थ्सोऽ इं पोऽ इं भ्यंम्रियत् तासां यन्मेध्यं यज्ञिय् सर्वेवमासीत्तदपोर्दक्रामृत्ते दर्भा अभवन् यहर्भपुञ्जीलैः प्वयंति या एव मेध्यां यज्ञियाः सर्वेवा आप्स्ताभिरेवैनंम्पवयित द्वाभ्यां पवयत्यहोरात्राभ्यांमेवैनंम्पवयित त्रिभिः पंवयित् त्रयं इमे लोका एभिरेवैनं लोकैः पंवयित पुश्चभिः॥७॥

प्वयति पश्चौक्षरा पृङ्किः पाङ्को यज्ञा यज्ञायैवैनंम्पवयति षङ्किः पंवयति षङ्घा ऋतवं ऋतुभिरेवैनंम्पवयति सप्तभिः पवयति स्प्त छन्दार्शसे छन्दोभिरेवैनंम्पवयति नवभिः पवयति नव वै पुरुषे प्राणाः सप्राणमेवैनंम्पवयत्येकंविश्शत्या पवयति दश् हस्त्यां अङ्गुलयो दश् पद्यां आत्मैकंविश्शो यावानेव पुरुष्टस्तमपरिवर्गम्॥८॥

प्<u>वयति</u> चित्पतिंस्त्वा पुनात्वित्यांहु मनो वै चित्पतिर्मनंसैवैनंम्पवयति वाक्पतिंस्त्वा पुनात्वित्यांह वाचैवैनंम्पवयति देवस्त्वां सिवता पुनात्वित्यांह सिवतृप्रंसूत पुवैनंम्पवयति तस्यं ते पिवत्रपते पिवत्रेण यस्मै कम्पुने तच्छंकेयमित्यांहाशिषंमेवैतामा शांस्ते॥९॥

अतीकाशान्कंरोत्यवेशयन्तीर्थे स्नांति प्रघातो मंनुष्यांणान्तद्वा आङ्के मित्रत्वायं पश्चभिरपंरिवर्गमृष्टाचंत्वारि १शच॥————[१]

यावंन्तो वै देवा युज्ञायापुंनत् त एवाभंवन् य एवं विद्वान् युज्ञायं पुनीते भवंत्येव बहिः पंवियत्वान्तः प्र पांदयित मनुष्यलोक एवैनंम्पवियत्वा पूतन्देवलोकम्प्र णयत्यदीक्षित् एक्याहुत्येत्यांहुः स्रुवेण् चतंस्रो जुहोति दीक्षित्त्वायं स्रुचा पश्चमीं पश्चौक्षरा पृङ्किः पाङ्को युज्ञो युज्ञमेवावं रुन्द्ध आकूँत्ये प्रयुज्ञेऽप्रये॥१०॥

स्वाहेत्याहाकूँत्या हि पुरुषो यज्ञमभि प्रयुङ्को यज्ञेयेति मेथायै मनसेऽग्नये स्वाहेत्यांह मेथया हि मनसा पुरुषो यज्ञमभिगच्छंति सरस्वत्ये पूष्णेंऽग्नये स्वाहेत्यांह् वाग्वे सरस्वती पृथिवी पूषा वाचेव पृथिव्या यज्ञम्प्र युङ्का आपो देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भुव इत्यांह् या वै वर्ष्यास्ताः॥११॥ आपों देवीर्बृह्तीर्विश्वशंम्भुवो यदेतद्यजुर्न ब्रूयाद्दिव्या आपोऽशाँन्ता इमल्लाँकमा गंच्छेयुरापों देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भुव इत्यांहास्मा एवैनां लोकायं शमयति तस्माँच्छान्ता इमल्लाँकमा गंच्छन्ति द्यावांपृथिवी इत्यांह द्यावांपृथिव्योर्हि यज्ञ उर्वन्तिरंक्षिमित्यांहान्तिरंक्षे हि यज्ञो बृहस्पतिनों हिवषां वृधातु॥१२॥

इत्यांह् ब्रह्म वै देवानाम्बृह्स्पतिब्रह्मणैवास्मै यज्ञमवं रुन्द्वे यद्भूयाद्विधेरितिं यज्ञस्थाणुमृंच्छेद्वृधात्वित्यांह यज्ञस्थाणुमेव पिरं वृणक्ति प्रजापंतिर्यज्ञमंसृजत् सौंऽस्माथ्सृष्टः परांङ्केथ्स प्र यजुरद्वीनात्प्र साम् तमृगुदंयच्छुद्यदगुदयंच्छुत्तदौंद्वहणस्यौंद्वहण्त्वमृचा॥१३॥

जुहोति यज्ञस्योद्यंत्या अनुष्टुप्छन्दंसामुदंयच्छुदित्यांहुस्तस्मांदनुष्टुभां जुहोति यज्ञस्योद्यंत्ये द्वादंश वाथ्सबन्धान्युदंयच्छुन्नित्यांहुस्तस्मांद्वाद्शभिवांथ्सबन्धविदों दीक्षयन्ति सा वा पृषर्गनुष्टुग्वागंनुष्टुग्यदेतय्चां दीक्षयंति वाचैवेन् सर्वया दीक्षयित विश्वे देवस्यं नेतुरित्यांह सावित्र्येतेन् मर्तो वृणीत सख्यम्॥१४॥

इत्यांह पितृदेवत्यैतेन् विश्वे राय इंषुध्यसीत्यांह वैश्वदेव्येतेनं द्युम्नं वृंणीत पुष्यस् इत्यांह पौष्ण्येतेन् सा वा पुषर्ज्सवदेवत्यां यदेतयुर्चा दीक्षयंति सर्वाभिरेवैनं देवतांभिर्दीक्षयित सप्ताक्षरम्प्रथमम्पदम्ष्टाक्षराणि त्रीणि यानि त्रीणि तान्यष्टावुपं यन्ति यानि चत्वारि तान्यष्टी यद्ष्टाक्षर्य तेनं॥१५॥

गायत्री यदेकांदशाक्षरा तेनं त्रिष्टुग्यद्वादंशाक्षरा तेन् जर्गती सा वा एषर्व्सर्वाणि छन्दारंसि यदेतय्वां दीक्षयंति सर्वेभिरेवैनं छन्दोंभिर्दीक्षयति सप्ताक्षंरम्प्रथमम्पद सप्तपंदा शक्रेरी पृशवः शक्रेरी पृश्नेवावं रुन्द्व एकंस्मादक्षरादनांप्तमप्रथमम्पदन्तस्माद्यद्वाचो- उनांप्तन्तन्मंनुष्यां उपं जीवन्ति पूर्णयां जुहोति पूर्ण इंव हि प्रजापंतिः प्रजापंतेरास्यै न्यूंनया जुहोति न्यूंनाद्धि प्रजापंतिः प्रजा असृंजत प्रजाना सुष्टौं॥१६॥

अग्नये ता वृंधात्वृचा सुख्यन्तेनं जुहोति पश्चंदश च॥———[२]

ऋख्सामे वै देवेभ्यों युज्ञायातिष्ठमाने कृष्णों रूपं कृत्वापुक्रम्यांतिष्ठतान्तेऽमन्यन्त यं वा इमे उपाव्थ्स्यतः स इदं भविष्यतीति ते उपामन्त्रयन्त ते अहोरात्रयौर्मिहिमानंमपनिधायं देवानुपावर्तेतामेष वा ऋचो वर्णो यच्छुक्ं कृष्णाजिनस्यैष साम्रो यत्कृष्णमृंख्सामयोः शिल्पें स्थ इत्याहरूर्सामे एवावं रुन्ध एषः॥१७॥ वा अह्रो वर्णो यच्छुक्तं कृष्णाजिनस्यैष रात्रिया यत्कृष्णं यदेवैनयोस्तत्र न्यंक्तं तदेवावं रुन्द्धे कृष्णाजिनेनं दीक्षयित ब्रह्मणो वा एतद्रूपं यत्कृष्णाजिनं ब्रह्मणैवैनं दीक्षयतीमान्धिय् शिक्षंमाणस्य देवेत्यांह यथायुजुरेवैतद्गर्भो वा एष यद्दीक्षित उल्बं वासः प्रोण्ते तस्मात्॥१८॥

गर्भाः प्रावृंता जायन्ते न पुरा सोमंस्य क्रयादपोंण्वीत् यत्पुरा सोमंस्य क्रयादंपोण्वीत गर्भाः प्रजानां परापातुंकाः स्युः कीते सोमेऽपोंणीते जायंत एव तदथो यथा वसीया सम्प्रत्यपोणीते ताद्दगेव तदिङ्गिरसः सुवर्गं लोकं यन्त ऊर्जं व्यंभजन्त ततो यदत्यशिष्यत् ते शरा अंभवन्नूर्ग्वे शरा यच्छंरमयी॥१९॥

मेखंला भवत्यूर्जम्वावं रुन्द्धे मध्यतः सन्नंद्धति मध्यत एवास्मा ऊर्जं दधाति तस्मान्मध्यत ऊर्जा भुंञ्जत ऊर्ध्वं वै पुरुषस्य नाभ्यै मेध्यंमवाचीनंममेध्यं यन्मध्यतः संनद्धिति मेध्यं चैवास्यामेध्यं च व्यावंतयतीन्द्रों वृत्राय वज्रम्प्राहंर्थ्स त्रेधा व्यंभव्थस्फ्यस्तृतीय् रथ्स्तृतीयं यूपस्तृतीयम्॥२०॥

येंऽन्तःश्वरा अशींर्यन्त ते श्वरा अंभवन्तच्छुराणार् शर्त्वं वज्रो वै श्वराः क्षुत्खलु वै मंनुष्यंस्य भ्रातृंव्यो यच्छंर्मयी मेखंला भवंति वज्रेंणैव साक्षात्क्षुधम्भ्रातृंव्यम्मध्यतोऽपं हते त्रिवृद्धंवित त्रिवृद्धं प्राणिभ्रवृतंमेव प्राणम्मध्यतो यजमाने दधाति पृथ्वी भविति रज्जूना्व्यावृत्त्ये मेखंलया यजमानन्दीक्षयित योक्रेण पत्नीम्मिथुन्त्वायं॥२१॥

युज्ञो दक्षिणामुभ्यंथ्यायृत्ताः समंभवृत्तदिन्द्रोंऽचायथ्सोंऽमन्यत् यो वा इतो जंनिष्यते स इदम्भविष्यतीति ताम्प्राविंशृत्तस्या इन्द्रं एवाजांयत् सोंऽमन्यत् यो वै मदितोऽपंरो जिन्ष्यते स इदम्भविष्यतीति तस्यां अनुमृश्य योनिमाच्छिन्थ्सा सूतवंशाभवृत्तथ्सूतवंशायै जन्मं॥२२॥

ता १ हस्ते न्यंबेष्टयत् ताम्मृगेषु न्यंदधाथ्सा कृष्णविषाणाभेवदिन्द्रंस्य योनिरिस् मा मां हिश्सीरितिं कृष्णविषाणाम्प्र यंच्छति सयोनिमेव यज्ञं करोति सयोनिन्दक्षिणा १ सयोनिमिन्द्रं सयोनित्वायं कृष्ये त्वां सुसस्याया इत्यांह् तस्मादकृष्टपुच्या ओषंधयः पच्यन्ते सुपिप्पुलाभ्युस्त्वौषंधीभ्य इत्यांह् तस्मादोषंधयः फर्लं गृह्णन्ति यद्धस्तेन॥२३॥

कुण्ड्येतं पामनुम्भावुंकाः प्रजाः स्युर्यथ्स्मयेत नग्रुम्भावुंकाः कृष्णविषाणयां कण्ड्यते-

ऽपिगृह्यं स्मयते प्रजानां गोपीथाय न पुरा दक्षिणाभ्यो नेतों कृष्णविषाणामवं चृतेद्यत्पुरा दिक्षिणाभ्यो नेतों कृष्णविषाणामवंचृतेद्योनिं प्रजानां परापातुंका स्यान्नीतासु दिक्षिणासु चात्वांले कृष्णविषाणाम्प्रास्यंति योनिर्वे यज्ञस्य चात्वांलं योनिः कृष्णविषाणा योनांवेव योनिन्दधाति यज्ञस्यं सयोनित्वायं॥२४॥

रुन्य एष तस्माँच्छर्मयी यूप्स्तृतीयिम्मिथुन्त्वाय जन्म हस्तेनाष्टाचंत्वारि १शच॥——[३]

वाग्वे देवेभ्योऽपाँकामद्यज्ञायातिष्ठमाना सा वनस्पतीन्प्राविश्वथ्सेषा वाग्वनस्पतिषु वदित् या दुंन्दुभौ या तूणवे या वीणायां यद्दौक्षितदण्डम्प्रयच्छंति वाचंमेवावं रुन्द् औदुंम्बरो भवृत्यूग्वा उंदुम्बर् ऊर्जमेवावं रुन्द्वे मुखेन सम्मितो भवित मुख्त एवास्मा ऊर्जं दधाति तस्मांनमुखत ऊर्जा भुंक्षते॥२५॥

क्रीते सोमें मैत्रावरुणायं दण्डम्प्र यंच्छति मैत्रावरुणो हि पुरस्तांदृत्विग्भ्यो वाचं विभजंति तामृत्विजो यजंमाने प्रतिं ष्ठापयन्ति स्वाहां यज्ञम्मन्सेत्यांह मनंसा हि पुरुषो यज्ञमंभिगच्छंति स्वाहा द्यावांपृथिवीभ्यामित्यांह द्यावांपृथिव्योर्हि यज्ञः स्वाहोरोर्न्तरिक्षादित्यांहान्तरिक्षे हि युज्ञः स्वाहो युज्ञं वातादारंभु इत्याहायम्॥२६॥

वाव यः पवंते स युज्ञस्तमेव साक्षादा रंभते मुष्टी करोति वार्चं यच्छति युज्ञस्य धृत्या अदीक्षिष्टायम्ब्राह्मण इति त्रिरुंपार्श्वांह देवेभ्यं एवेन्म्प्राह् त्रिरुंचेरुभयेंभ्य एवेनं देवमनुष्येभ्यः प्राह् न पुरा नक्षंत्रेभ्यो वार्चं वि सृंजेद्यत्पुरा नक्षंत्रेभ्यो वार्चं विसृजेद्यज्ञं विच्छिंन्द्यात्॥२७॥

उदितेषु नक्षंत्रेषु ब्रतं कृणुतेति वाचं वि सृंजित युज्ञब्रंतो वै दींक्षितो युज्ञमेवाभि वाचं वि सृंजित यदि विसृजेद्वेष्ण्वीमृच्मम् ब्रूयाद्यज्ञो वै विष्णुर्यज्ञेनेव युज्ञ सं तंनोति दैवीन्धियंम्मनामह् इत्यांह युज्ञमेव तन्म्रंदयित सुपारा नो असद्वश् इत्यांह् व्युंष्टिमेवाव रुन्द्वे॥२८॥

ब्रह्मवादिनों वदन्ति होत्व्यं दीक्षितस्यं गृहा(३)इ न होत्व्या(३)मितिं हुविर्वे दींक्षितो यज्ञुंहुयाद्यजंमानस्यावदायं जुहुयाद्यन्न जुंहुयाद्यंजपुरुन्तिरयाद्ये देवा मनोजाता मनोयुज् इत्याह प्राणा वै देवा मनोजाता मनोयुज्स्तेष्वेव पुरोक्षं जुहोति तन्नेवं हुतं नेवाहुंतक्ष् स्वपन्तं वै दींक्षितर रक्षारंसि जिघारसन्त्यग्निः॥२९॥ खलु वै रेक्षोहाभ्रे त्वर सु जांगृहि वयर सु मंन्दिषीम्हीत्यांहाभ्रिमेवाधिपां कृत्वा स्वंपिति रक्षंसामपंहत्या अब्रत्यमिंव वा एष कंरोति यो दीक्षितः स्वपिति त्वमंभ्रे ब्रत्पा असीत्यांहाभिर्वे देवानां ब्रतपंतिः स एवैनं ब्रतमालंम्भयति देव आ मर्त्येप्वेत्यांह देवः॥३०॥

ह्यंष सन्मत्येषु त्वं यज्ञेष्वीड्य इत्यांहैत र हि यज्ञेष्वीड्तेऽप् वै दींक्षिताथ्संषुपुषं इन्द्रियं देवताः क्रामन्ति विश्वें देवा अभि मामावंवृत्रन्नित्यांहेन्द्रियेणैवैनं देवतांभिः सं नयित यदेतद्यजुर्न ब्रूयाद्यावंत एव पृश्नन्भि दीक्षेत् तावंन्तोऽस्य पृशवंः स्यू रास्वेयंत्॥३१॥

सोमा भूयों भ्रेत्याहापंरिमितानेव पृश्नवं रुन्छे चन्द्रमंसि मम् भोगांय भ्वेत्यांह यथादेवतमेवेनाः प्रतिं गृह्णाति वायवे त्वा वरुणाय त्वेति यदेवमेता नानुंदिशेदयंथादेवतं दक्षिणा गमयेदा देवताभ्यो वृथ्येत् यदेवमेता अनुदिशति यथादेवतमेव दक्षिणा गमयित् न देवताभ्य आ॥३२॥

वृथ्च्यते देवीरापो अपां नपादित्यांह् यद्वो मेध्यं युज्ञिय् सदेवं तद्वो मार्व ऋमिषमिति वावैतदाहाच्छिन्नं तन्तुं पृथिव्या अनुं गेषमित्यांह् सेतुंमेव कृत्वात्येति॥३३॥

भुञ्जतेऽयञ्छिन्द्याद्रन्धेऽग्निरांह देव इयंद्देवतांभ्य आ त्रयंस्त्रिश्शच॥————[४]

देवा वै देवयर्जनमध्यवसाय दिशो न प्राजानन्तेऽ चे न्योन्यमुपाधावन्त्वया प्र जानाम् त्वयेति तेऽदित्या समंध्रियन्त त्वया प्र जानामेति साब्रंवीद्वरं वृणे मत्प्रांयणा एव वो यज्ञा मदुंदयना अस्त्रिति तस्मांदादित्यः प्रांयणीयो यज्ञानांमादित्य उंदयनीयः पश्चं देवतां यजिति पश्च दिशों दिशाम्प्रज्ञांत्ये॥३४॥

अथो पश्चौक्षरा पुङ्किः पाङ्को युज्ञो युज्ञमेवावं रुन्द्धे पथ्याई स्वस्तिमंयज्नम्प्राचीमेव तया दिशम्प्राजांनन्नृग्निनां दक्षिणा सोमेन प्रतीचीई सिव्तेन्नोदीचीमदित्योध्वाम्पथ्याई स्वस्ति यंजित प्राचीमेव तया दिशम्प्र जांनाति पथ्याई स्वस्तिमिष्ट्वाग्नीषोमौ यजित चक्षुंषी वा एते युज्ञस्य यदुग्नीषोमौ ताभ्यांमेवानुं पश्यति॥३५॥

अम्रीषोमांविष्ट्वा संवितारं यजित सिवतृप्रंसूत एवानुं पश्यित सिवतारंमिष्ट्वादितिं यजितीयं वा अदितिर्स्यामेव प्रतिष्ठायानुं पश्यत्यदितिमिष्ट्वा मांरुतीमृचमन्वांह मुरुतो वै देवानां विशों देवविशं खलु वै कल्पंमानम्मनुष्यविशमनुं कल्पते यन्मांरुतीमृचंमन्वाहं

विशां कृप्यैं ब्रह्मवादिनों वदन्ति प्रयाजवंदननूयाजम्प्रांयणीयं कार्यमनूयाजवंत्॥३६॥

अप्रयाजमुंदयनीयमितीमे वै प्रयाजा अमी अनूयाजाः सैव सा यज्ञस्य सन्तंतिस्तत्तथा न कार्यमात्मा वै प्रयाजाः प्रजानूयाजा यत्प्रयाजानंन्तिरयादात्मानंमन्तिरयाद्यदंनूयाजानंन्तिर्यात् खलु वै यज्ञस्य वितंतस्य न क्रियते तदनुं यज्ञः परां भवति यज्ञं पंराभवंन्तुं यजमानोऽनुं॥३७॥

परां भवति प्रयाजवंदेवानूंयाजवंत्प्रायणीयंं कार्यम्प्रयाजवंदनूयाजवंदुदयनीयं नात्मानंमन्तरेति न प्रजां न यज्ञः पंराभवंति न यजंमानः प्रायणीयंस्य निष्कास उंदयनीयंम्भि निर्वपति सैव सा यज्ञस्य सन्तंतिर्याः प्रायणीयंस्य याज्यां यत्ता उंदयनीयंस्य याज्याः कुर्यात्परांङुमुं लोकमा रोहेत्प्रमायुंकः स्याद्याः प्रायणीयंस्य पुरोनुवाक्यांस्ता उंदयनीयंस्य याज्याः करोत्यस्मिन्नेव लोके प्रतिं तिष्ठति॥३८॥

प्रज्ञांत्ये पश्यत्यनूयाजवृद्यजंमानोऽनुं पुरोनुवाक्यांस्ता अष्टौ चं॥-----[५]

कृद्रश्च वै सुंपूर्णी चाँत्मरूपयोरस्पर्धेता सा कृद्गः सुंपूर्णीमं जयुथ्सा ब्रंबी तृती यंस्यामितो दिवि सोमस्तमा ह्रंर तेनात्मानं निष्क्रीणीष्वेतीयं वै कृद्ग्रूरसो सुंपूर्णी छन्दा रेसि सौपर्णेयाः साब्रंबी दस्मै वै पितरौं पुत्रान्बिंभृतस्तृती यंस्यामितो दिवि सोमस्तमा ह्रंर तेनात्मानं निष्क्रीणीष्व॥३९॥

इति मा कृद्भूरंबोच्दिति जगृत्युदंपत्चतुंर्दशाक्षरा स्ती साप्रांप्य न्यंवर्तत् तस्यै द्वे अक्षरं अमीयेता स् सा पृश्विश्व दीक्षया चार्गच्छत्तस्माज्ञगंती छन्दंसाम्पश्च्यंतमा तस्मांत्पशुमन्तं दीक्षोपं नमित त्रिष्टुगुदंपत्त्रयोदशाक्षरा स्ती साप्रांप्य न्यंवर्तत् तस्यै द्वे अक्षरं अमीयेता सा दिक्षंणाभिश्च॥४०॥

तपंसा चार्गच्छ्तस्मांत्रिष्टभों लोके माध्यंदिने सवंने दक्षिणा नीयन्त एतत्खलु वाव तप इत्यांहुर्यः स्वं ददातीति गायत्र्युदंपत्चतुंरक्षरा सत्यंजया ज्योतिषा तमंस्या अजाभ्यंरुन्द्व तद्जायां अज्ञत्व सा सोमं चाहरच्चत्वारि चाक्षराणि साष्टाक्षंग् समंपद्यत ब्रह्मवादिनों वदन्ति॥४१॥

कस्माँथ्यत्याद्गांयत्री किनेष्ठा छन्दंसा॰ सृती यंज्ञमुखं परीयायेति यदेवादः सोमुमाहंर्त्तस्माँद्यज्ञमुखं पर्येत् तस्माँतेज्स्विनीतमा पुद्धां द्वे सर्वने सुमगृह्णान्मुखेनैकं यन्मुर्खेन स्मगृह्णात्तदेधयृत्तस्माद्वे सर्वने शुक्रवंती प्रातःसव्नं च मार्ध्यंदिनं च तस्मांतृतीयसवन ऋंजीषमभि षुंण्वन्ति धीतमिव हि मन्यंन्ते॥४२॥

आशिर्मवं नयति सशुकृत्वायाथों सम्भंरत्येवैन्तर सोमंमाह्वियमाणं गन्धर्वो विश्वावंसुः पर्यमुष्णाथ्स तिस्रो रात्रीः परिमुषितोऽवस्त्तस्मांतिस्रो रात्रीः कीतः सोमो वसित ते देवा अंब्रुवन्थ्स्रीकांमा वै गन्धर्वाः स्त्रिया निष्क्रीणामेति ते वाच् हिस्यमेकंहायनीं कृत्वा तया निर्क्रीणान्थ्सा रोहिद्रूपं कृत्वा गन्धर्वेभ्यः॥४३॥

अपुक्रम्यातिष्ठत्तद्रोहितो जन्म ते देवा अंब्रुवृन्नपं युष्मदक्रमीन्नास्मानुपावंर्तते वि ह्वंयामहा इति ब्रह्मं गन्धवी अवंदन्नगायं देवाः सा देवान्गायंत उपावंर्तत तस्माद्रायंन्त् इ स्त्रियंः कामयन्ते कामुंका एन् इस्त्रियों भवन्ति य एवं वेदाथो य एवं विद्वानिप जन्येषु भवंति तेभ्यं एव दंदत्युत यद्वहृतंयाः॥४४॥

भवन्त्येकंहायन्या कीणाति वाचैवैन् सर्वया कीणाति तस्मादेकंहायना मनुष्यां वाचं वदन्त्यकूंट्याऽकंर्ण्याऽ कांण्याऽश्लोंण्याऽसंप्तशफया कीणाति सर्वयैवैनं कीणाति यच्छ्वेतयां कीणीयादुश्चर्मा यजंमानः स्याद्यत्कृष्णयांनुस्तरंणी स्यात्प्रमायुंको यजंमानः स्याद्यद्विरूपया वात्रंघी स्याय्य वान्यं जिनीयात्तं वान्यो जिनीयादरुणयां पिङ्गाक्ष्या कीणात्येतद्वै सोमंस्य रूप स्वयैवैनं देवतंया कीणाति॥४५॥

निष्क्रीणीष्व दक्षिणाभिश्च वदन्ति मन्यन्ते गन्धर्वेभ्यों बुहुतंयाः पिङ्गाक्ष्या दशं च॥ \longrightarrow [६]

तिष्करंण्यमभवृत्तस्मांदुन्द्यो हिरंण्यम्पुनिन्ति ब्रह्मवादिनो वदन्ति कस्मांध्सत्यादंनस्थिकेन प्रजाः प्रवीयन्तेऽस्थन्वतींर्जायन्त इति यिष्करंण्यं घृतेंऽवधायं जुहोति तस्मांदनस्थिकेन प्रजाः प्र वीयन्तेऽस्थन्वतींर्जायन्त एतद्वा अग्नेः प्रियं धाम् यद्भृतं तेजो हिरंण्यमियं ते शुक्र तुनूरिदं वर्च इत्यांह् सर्तेजसमेवेन् सत्तंनुम्॥४६॥

क्रोत्यथो सम्भंरत्येवैनं यदबंद्धमवद्ध्याद्गर्भाः प्रजानां परापातुंकाः स्युर्बद्धमवं दधाति गर्भाणां धृत्ये निष्टक्यम्बधाति प्रजानां प्रजननाय वाग्वा एषा यथ्सोम्कर्यणी जूरसीत्यांह् यद्धि मनसा जवते तद्वाचा वदंति धृता मन्सेत्यांह् मनसा हि वाग्धृता जुष्टा विष्णंव इत्यांह॥४७॥

युज्ञो वै विष्णुंर्युज्ञायैवैनां जुष्टां करोति तस्यास्ते सृत्यसंवसः प्रसुव इत्याह

सिवृतृप्रंसूतामेव वाचमवं रुन्द्धे काण्डेकाण्डे वै क्रियमांणे यज्ञर रक्षारंसि जिघारसन्त्येष खलु वा अरंक्षोहतः पन्था योंऽग्नेश्च सूर्यस्य च सूर्यस्य चक्षुरारुहमुग्नेर्क्ष्णः कुनीनिकामित्यांह् य पुवारंक्षोहतः पन्थास्तर सुमारोहति॥४८॥

वाग्वा एषा यथ्सोम्ऋयंणी चिदंसि म्नासीत्यांहु शास्त्येवैनांमेतत्तस्माँच्छिष्टाः प्रजा जायन्ते चिद्सीत्यांह् यद्धि मनंसा चेतयंते तद्घाचा वदंति म्नासीत्यांह् यद्धि मनंसाभिगच्छंति तत्कुरोति धीर्सीत्यांह यद्धि मनंसा ध्यायंति तद्घाचा॥४९॥

वदंति दक्षिणासीत्यांह् दक्षिणा ह्यंषा यज्ञियासीत्यांह यज्ञियांमेवैनां करोति क्षित्रियासीत्यांह क्षित्रिया ह्यंषादितिरस्युभ्यतंःशीर्ष्णीत्यांह् यदेवादित्यः प्रांयणीयो यज्ञानांमादित्य उंदयनीयस्तस्मादेवमांह् यदबंद्धा स्यादयंता स्याद्यत्पंदिबद्धानुस्तरंणी स्यात्प्रमायुंको यज्ञंमानः स्यात्॥५०॥

यत्कंर्णगृहीता वार्त्रघ्नी स्याथ्स बान्यं जिनीयात्तं वान्यो जिनीयान्मित्रस्त्वां प्रि बंध्रात्वित्यांह मित्रो वै शिवो देवानान्तेनैवैनां पदि बंध्राति पूषाध्वंनः पात्वित्यांहेयं वै पूषेमामेवास्यां अधिपामंकः समेष्ट्या इन्द्रायाध्यक्षायेत्याहेन्द्रमेवास्या अध्यक्षं करोति॥५१॥

अनुं त्वा माता मन्यतामनुं पितेत्याहानुंमतयैवैनया क्रीणाति सा देवि देवमच्छेहीत्यांह देवी ह्येषा देवः सोम् इन्द्रांय सोम्मित्याहेन्द्रांय हि सोमं आह्रियते यदेतद्यजुर्न ब्रूयात्परांच्येव सोमक्रयंणीयाद्रुद्रस्त्वा वंतयत्वित्याह रुद्रो वै क्रूरः॥५२॥

देवाना-तमेवास्यै प्रस्ताँद्दधात्यावृत्त्यै क्रूरमिव वा एतत्करोति यद्रुद्रस्यं कीर्तयंति मित्रस्यं पृथेत्यांहु शान्त्यै वाचा वा एव वि कीणीते यः सीम्कयंण्या स्वस्ति सोमंसखा पुनरेहिं सह र्य्येत्यांह वाचैव विक्रीय पुनरात्मन्वाचं धत्तेऽनुंपदासुकास्य वाग्भंवित य एवं वेदं॥५३॥

सर्तनुं विष्णंव इत्यांह सुमारोहिति ध्यायंति तद्वाचा यजंमानः स्यात्करोति कूरो वेदं॥[७]

षद्वान्यनु नि क्रांमित षड्हं वाङ्गाति वदत्युत संवथ्सरस्यायंने यावंत्येव वाक्तामवं रुन्द्धे सप्तमे पदे जुंहोति सप्तपंदा शक्रंरी पृशवः शक्रंरी पृश्नेवावं रुन्द्धे सप्त ग्राम्याः पृशवः सप्तार्ण्याः स्प्त छन्दार्रस्युभयस्यावंरुद्धे वस्व्यंसि रुद्रासीत्यांह रूपमेवास्यां पृतन्मंहिमानम्॥५४॥

व्याचंष्ट्रे बृह्स्पतिंस्त्वा सुम्ने रंण्वत्वित्यांह् ब्रह्म वे देवानाम्बृह्स्पित् ब्रह्मंणैवास्मैं पृश्नवं रुन्द्धे रुद्रो वसुंभिरा चिंकेत्वित्याहावृत्त्ये पृथिव्यास्त्वां मूर्धन्ना जिंधिम देवयजंन इत्यांह पृथिव्या ह्यंष मूर्धा यद्देवयजंनमिडांयाः पद इत्याहेडांयै ह्यंतत्पदं यथ्सोम्कयंण्ये घृतवंति स्वाहा॥५॥

इत्यांह् यदेवास्यै प्दाब्धृतमपींड्यत् तस्मांदेवमांह् यदेध्वर्युरंन्ग्नावाहुंतिं जुहुयाद्-थौं-ऽध्वर्युः स्याद्रक्षार्थसे यज्ञश् हंन्युर्हिरंण्यमुपास्यं जुहोत्यग्निवत्येव जुहोति नान्थौंऽध्वर्युर्भवंति न यज्ञश् रक्षार्थसे प्रन्ति काण्डेकाण्डे वै क्रियमाणे यज्ञश् रक्षार्थसे जिघाश्सन्ति परिलिखित्श् रक्षः परिलिखिता अरांतय इत्यांह रक्षंसामपंहत्यै॥५६॥

ड्दम्ह र रक्षंसो ग्रीवा अपिं कृन्तामि यौंऽस्मान्द्वेष्टि यं चं वयं द्विष्म इत्यांह् द्वौ वाव पुरुषौ यं चैव द्वेष्टि यश्चैनं द्वेष्टि तयोरेवानंन्तरायं ग्रीवाः कृन्तित पृशवो वे सोम्कयंण्ये पुदं यावत्त्मूत र सं वंपित पृश्नेवावं रुन्द्वेऽस्मे राय इति सं वंपत्यात्मानंमेवाध्वर्युः॥५७॥

मृहिमान् स्वाहापंहत्या अध्वर्युर्धीयते चतुंर्विH १ शतिश्च॥————[८]

ब्रह्मवादिनों वदन्ति विचित्यः सोमा (३) न विचित्या (३) इति सोमो वा ओषंधीनाः राजा तस्मिन् यदापंत्रं ग्रसितमेवास्य तद्यद्विचनुयाद्यथास्याँद्वसितं निष्विदति ताद्दगेव तद्यन्न विचिनुयाद्यथाक्षन्नापंत्रं विधावंति ताद्दगेव तत्क्षोधंकोऽध्वर्यः स्यात्क्षोधंको यर्जमानः सोमंविकयिन्थ्सोमर् शोध्येत्येव ब्रूयाद्यदीतंरम्॥५९॥

यदीतंरमुभयेंनै्व सोमिविक्रियणंमर्पयित् तस्माँ थ्सोमिविक्र्यी क्षोधंकोऽरुणो हं स्माहौपंविशिः सोमुक्रयंण एवाहं तृतीयसवनमवं रुन्ध् इति पशूनां चर्मिनिमीते पृशूनेवावं रुन्धे पृशवो हि तृतीयु सवेनं यङ्कामयेतापृशुः स्यादित्यृक्षतस्तस्यं मिमीतक्षं वा अपश्चयमंपृशुरेव भवित् यं कामयेत पशुमान्थस्यात्॥६०॥

इतिं लोमृतस्तस्यं मिमीतैतद्वे पंशूनाः रूपः रूपेणैवास्में पृशूनवं रुन्द्वे पशुमानेव भंवत्यपामन्तें कीणाति सरंसमेवेनं कीणात्यमात्योऽसीत्यांहामैवेनं कुरुते शुक्रस्ते ग्रह् इत्याह शुक्रो ह्यस्य ग्रहोऽन्साच्छं याति महिमानेमेवास्याच्छं यात्यनंसा॥६१॥

अच्छं याति तस्मांदनोवाह्य समे जीवंनं यत्र खलु वा एत शीर्णा हरेन्ति तस्मांच्छीर्षहार्यं गिरौ जीवंनम्भि त्यं देव संवितार्मित्यतिंछन्दस्चां मिमीतेऽतिंच्छन्दा वे सर्वाणि छन्दा स्विभिरेवेनं छन्दोभिर्मिमीते वर्ष्म वा एषा छन्दंसां यदितंच्छन्दा यदितंच्छन्दम्चां मिमीते वर्ष्मेवेन समानानां करोत्येकयोध्सर्गम्॥६२॥

मिमीतेऽयांतयाम्नियायातयाम्नियैवैनंम्मिमीते तस्मान्नानांवीर्या अङ्गुलंयः सर्वांस्वङ्गुष्ठमुप् नि गृंह्णाति तस्मांथ्समावंद्वीर्योऽन्याभिर्ङ्गुलिभिस्तस्माथ्सर्वा अनु सं चंरित यथ्सह सर्वाभिर्मिमीत सङ्श्लिष्टा अङ्गुलंयो जायेरन्नेकंयैकयोथ्सर्गम्मिमीते तस्माद्विभंक्ता जायन्ते पश्च कृत्वो यज्ञंषा मिमीते पश्चांक्षरा पृङ्काः पाङ्को युज्ञो युज्ञमेवावं रुन्द्धे पश्च कृत्वंस्तूष्णीम्॥६३॥

दश् सम्पंद्यन्ते दशाँक्षरा विराडन्नं विराडित्राजैवान्नाद्यमवं रुन्द्वे यद्यजुंषा मिमीते भूतमेवावं रुन्द्वे यत्तूष्णीम्भविष्यद्यद्वे तावानेव सोमः स्याद्यावन्तम्मिमीते यजमानस्यैव स्यान्नापि सद्स्यांनां प्रजाभ्यस्त्वेत्युप् समूहिति सद्स्यांनेवान्वाभंजित् वास्सोपं नह्यति सर्वदेवृत्यं वै॥६४॥

वासः सर्वाभिरेवेनं देवतांभिः समंधयित पृशवो वै सोमः प्राणाय त्वेत्युपं नह्यति प्राणमेव पृशुषुं दधाति व्यानाय त्वेत्यनुं शृन्थति व्यानमेव पृशुषुं दधाति तस्मांथ्स्वपन्तं प्राणा न जहिति॥६५॥

इतंरम्पशुमान्थस्याँद्यात्यनंसोथसर्गन्तूष्णी ४ संविदेवृत्यं वै त्रयंस्त्रि ४ शच॥ ______[9]

यत्कुलयां ते शुफेनं ते कीणानीति पणेतागों अर्घ् सोमं कुर्यादगों अर्घ् यजमानमगों अर्घमध्वर्युङ्गोस्तु महिमानं नावं तिरेद्भवां ते कीणानीत्येव ब्रूयाद्गो अर्घमेव सोमं करोतिं गो अर्घं यजमानं गो अर्घमेध्वर्युन्न गोर्महिमानमवं तिरत्यजयां कीणाति सर्तपसमेवैनं कीणाति हिरंण्येन कीणाति सर्शुक्रमेव॥६६॥

एनं कीणाति धेन्वा कीणाति साशिरमेवेनं कीणात्यृष्भेणं कीणाति सेन्द्रंमेवेनं

प्रथमः प्रश्नः (काण्डम् ६)

क्रीणात्यनुडुहाँ क्रीणाति विहुर्वा अनुङ्वान् विहुर्नेव विहुं युज्ञस्यं क्रीणाति मिथुनाभ्याँ क्रीणाति मिथुनस्यावंरुद्धे वासंसा क्रीणाति सर्वदेवृत्यं वै वासः सर्वाभ्य पुवैनं देवताभ्यः क्रीणाति दश् सम्पंद्यन्ते दशाक्षरा विराडन्नं विराड्विराजैवान्नाद्यमवं रुन्द्रे॥६७॥

तपंसस्तनूरंसि प्रजापंतेर्वर्ण् इत्यांह पृशुभ्यं एव तदंध्वर्युर्नि ह्रुंत आत्मनोऽनांब्रस्काय् गच्छंति श्रियम्प्र पृश्नांप्रोति य एवं वेदं शुक्रं ते शुक्रेणं क्रीणामीत्यांह यथायजुरे्वैतद्देवा वै येन् हिरंण्येन सोम्मक्रीणन्तदंभीषहा पुन्रादंदत् को हि तेर्जंसा विक्रेष्यत् इति येन् हिरंण्येन॥६८॥

सोमं क्रीणीयात्तदंभीषहा पुन्रा दंदीत् तेजं पुवात्मन्धंतेऽस्मे ज्योतिः सोमविक्वियिण् तम् इत्याह् ज्योतिरेव यजमाने दधाति तमंसा सोमविक्वियणंमर्पयति यदन्पग्रथ्य हुन्याद्दंन्द्रशूकास्ता समा समा स्पाः स्युरिदम्ह स्पर्णणं दन्द्रशूकांनां ग्रीवा उप ग्रथ्रामीत्याहादंन्दशूकास्ता समा समा स्पर्ण भवन्ति तमंसा सोमविक्वियणं विध्यति स्वानं॥६९॥

भ्राजेत्यांहैते वा अमुष्मिं ह्याँके सोमंमरक्षन्तेभ्योऽधि सोममाहं र्न् यदेतेभ्यंः सोम्कयंणात्रानुं दिशेदकीं तोऽस्य सोमंः स्यान्नास्यैतें ऽमुष्मिं ह्याँके सोमर्थ रक्षेयुर्यदेतेभ्यंः सोम्कयंणाननु दिशतिं की तौंऽस्य सोमों भवत्येतें ऽस्यामुष्मिं ह्याँके सोमर्थ रक्षन्ति॥७०॥

सशुंक्रमेव रुन्य इति येन हिरंण्येन स्वान चतुंश्चत्वारि शच॥———[१०]

वारुणो वै क्रीतः सोम् उपनद्धो मित्रो न् एहि सुमित्रधा इत्यांह् शान्त्या इन्द्रंस्योरुमा विश्व दक्षिणमित्यांह देवा वै य॰ सोम्मकीणन्तमिन्द्रंस्योरौ दक्षिण आसांदयन्नेष खलु वा एतर्हीन्द्रो यो यजेते तस्मादेवमाहोदायुंषा स्वायुषेत्यांह देवतां एवान्वारभ्योत्॥७१॥

तिष्ठत्युर्वन्तरिक्षमिन्वहीत्यांहान्तरिक्षदेवत्यो ३ ह्यंतर्हि सोमोऽदित्याः सदोऽस्यिदित्याः सद् आ सीदेत्यांह यथायुजुरेवेतिद्व वा एनमेतदर्धयित यद्वांरुण सन्तम्मैत्रं करोतिं वारुण्यर्चा सादयित स्वयैवेनं देवतंया समर्धयित वासंसा पूर्यानंह्यित सर्वदेवत्यं व वासः सर्वाभिरेव॥७२॥

एनं देवतांभिः समर्धयत्यथो रक्षंसामपंहत्ये वनेषु व्यन्तरिक्षं ततानेत्यांह वनेषु हि व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्विभ्वित्यांह वाज् इ ह्यर्वेथ्सु पयो अघ्नियास्वित्यांह पयो ह्यंघ्रियासुं हृथ्सु ऋतुमित्यांह हृथ्सु हि ऋतुं वरुणो विक्ष्विग्निमित्यांह वरुणो हि विक्ष्विग्निन्दिवि सूर्यम्ं॥७३॥

इत्यांह दिवि हि सूर्येष्ट् सोम्मद्रावित्यांह् ग्रावांणो वा अद्रयस्तेषु वा एष सोमं दधाति यो यजंते तस्मादेवमाहोदु त्यं जातवेदस्मिति सौर्यर्चा कृष्णाजिनम्प्रत्यानंह्यति रक्षंसामपंहत्या उस्रावेतं धूर्षाहावित्यांह यथायजुरेवैतत्प्र च्यंवस्व भुवस्पत् इत्यांह भूतानाष्ट्र हि॥७४॥

पुष पतिविश्वांन्यभि धामानीत्यांहु विश्वांनि ह्ये ई षोंऽभि धामांनि प्रच्यवंते मा त्वां परिपरी विंद्दित्यांहु यदेवादः सोमंमाह्वियमाणं गन्धर्वो विश्वावंसुः पर्यमुंष्णात्तस्मांदेवमाहापंरिमोषाय यजंमानस्य स्वस्त्ययंन्यसीत्यांहु यजंमानस्यैवैष यज्ञस्यांन्वारुम्भोऽनंबछित्त्यै वरुंणो वा एष यजंमानम्भ्यैति यत्॥७५॥

क्रीतः सोम् उपनद्धो नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षंस् इत्यांह् शान्त्या आ सोमं वहंन्त्यग्निना प्रति तिष्ठते तौ सम्भवन्तौ यजंमानम्भि सम्भवतः पुरा खलु वावैष मेथायात्मानमारभ्यं चरित यो दीक्षितो यदंग्नीषोमीयम्पशुमालभंत आत्मिनिष्क्रयंण एवास्य स तस्मात्तस्य नाश्यं पुरुषिनिष्क्रयंण इव ह्यथो खल्वांहुर्ग्नीषोमाभ्यां वा इन्द्रों वृत्रमहिन्निति यदंग्नीषोमीयम्पशुमालभंते वार्त्रघ्न एवास्य स तस्माद्वाश्यं वारुण्यर्चा परि चरित स्वयैवैनं देवतंया परि चरित॥७६॥

अन्वारभ्योथ्सर्वाभिरेव सूर्यं भूताना् होति यदाहुः सप्तवि रंशतिश्व॥———[११]

यदुभौ देवासुरा मिथस्तेषार् सुवर्गं यद्वा अनीशानः पुरोहंविषि तेभ्यः सोत्तंरवेदिर्बुद्धं देवस्याभ्रिर् शिरो वा एकांदश॥——[१२]यदुभावित्यांह देवानाः यज्ञो देवेभ्यो न रथाय यज्ञमानाय पुरस्तांदुर्वाचीन्नवंपश्चाशत्॥59॥ यदुभौ दुह एवैनाम्॥

॥द्वितीयः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां षष्ठमकाण्डे द्वितीयः प्रश्नः॥

यदुभौ विमुच्यांतिथ्यं गृंह्णीयाद्यज्ञं विच्छिन्द्याद्यदुभावविमुच्य यथानांगतायातिथ्यं क्रियते तादृगेव तद्विमुंक्तोऽन्योऽनुङ्गान्भवृत्यविमुक्तोऽन्योऽथांतिथ्यं गृह्णाति यज्ञस्य सन्तत्यै पल्यन्वारंभते पत्नी हि पारीणह्यस्येशे पत्नियैवानुंमतं निर्वपिति यद्वै पत्नी यज्ञस्यं करोतिं मिथुनं तदथो पत्निया एव॥१॥

पुष यज्ञस्याँन्वार्म्भोऽनंबच्छित्त्यै यावंद्भिर्वे राजांनुचरैरागच्छंति सर्वेभ्यो वै तेभ्यं आतिथ्यं क्रियते छन्दार्शसे खलु वै सोमंस्य राज्ञोऽनुचराण्यग्नेरांतिथ्यमंसि विष्णंवे त्वेत्यांह गायत्रिया पृवैतेनं करोति सोमंस्यातिथ्यमंसि विष्णंवे त्वेत्यांह त्रिष्टुभं पृवैतेनं करोत्यतिथेरातिथ्यमंसि विष्णंवे त्वेत्यांह जगंत्य॥२॥

पृवैतेनं करोत्युग्नयें त्वा रायस्पोषदाब्ने विष्णंवे त्वेत्यांहानुष्टभं पृवैतेनं करोति श्येनायं त्वा सोम्भृते विष्णंवे त्वेत्यांह गायत्रिया पृवैतेनं करोति पश्च कृत्वों गृह्णाति पश्चांक्षरा पृङ्किः पाङ्कों युज्ञो युज्ञमेवावं रुन्छे ब्रह्मवादिनों वदन्ति कस्मांथ्सृत्याद्गांयत्रिया उंभयतं आतिथ्यस्यं क्रियत इति यदेवादः सोममा॥३॥

अहंर्त्तस्माँद्रायित्रया उंभ्यतं आतिथ्यस्यं क्रियते पुरस्ताँचोपरिष्टाच् शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदांतिथ्यं नवंकपालः पुरोडाशों भवित तस्माँत्रवधा शिरो विष्यूत्त्रवंकपालः पुरोडाशों भवित ते त्रयंश्विकपालाश्चिवृता स्तोमेन सम्मितास्तेजंश्चिवृत्तेजं एव यज्ञस्यं शीर्षन्दंधाित नवंकपालः पुरोडाशों भवित ते त्रयंश्विकपालाश्चिवृतां प्राणेन सम्मिताश्चिवृद्वै॥४॥

प्राणिस्त्रिवृतंमेव प्राणमंभिपूर्वं यज्ञस्यं शीर्षन्दंधाति प्रजापंतेर्वा एतानि पक्ष्माणि यदंश्ववाला ऐक्षिवी तिरश्ची यदाश्वंवालः प्रस्तरो भवंत्येक्षवी तिरश्ची प्रजापंतेरेव तचक्षुः सम्भरित देवा वै या आहंतीरजुंहवुस्ता असुरा निष्कावंमादन्ते देवाः कौर्ष्मर्यमपश्यन्कर्मृण्यों वै कर्मैनेन कुर्वीतिति ते कौष्मर्यमयौन्परिधीन्॥५॥

अकुर्वत् तैर्वे ते रक्षार्स्यपाँघ्रत् यत्काँर्ष्मर्यमयाँः परिधयो भवन्ति रक्षंसामपेहत्यै सङ्स्पंशयिति रक्षंसामनंन्ववचाराय न पुरस्तात्परि दधात्यादित्यो ह्यंवोद्यन्पुरस्ताव्रक्षारंस्यपहन्त्यूर्ध्वे स्मिधावा दंधात्युपरिष्टादेव रक्षार्स्यपंहन्ति यजुंषान्यां तूष्णीमन्याम्मिथुन्त्वाय द्वे आ दंधाति द्विपाद्यजंमानः प्रतिष्ठित्यै ब्रह्मवादिनो वदन्ति॥६॥

अग्निश्च वा एतौ सोमश्च कथा सोमायातिथ्यं क्रियते नाग्नय् इति यदुग्नावृग्निम्मथित्वा प्रहरिते तेनैवाग्नयं आतिथ्यं क्रियतेऽथो खल्वांहुरग्निः सर्वा देवता इति यद्धविरासाद्याग्निम्मन्थंति हव्यायैवासंन्नाय सर्वा देवता जनयति॥७॥

पिन्निया एव जगत्या आ त्रिवृद्धै पंरि्धीन् वंदन्त्येकंचत्वारि १शच॥______

देवासुराः संयंत्ता आस्-ते देवा मिथो विप्रिया आस्-तेऽ ई न्यौंन्यस्मै ज्यैष्ठ्यायातिष्ठमानाः पश्च्या व्यंक्रामन्नृग्निर्वसृभिः सोमों रुद्रैरिन्द्रों म्रुद्धिर्वरुण आदित्यैर्बृह्स्पतिर्विश्वैदेवेस्तेऽमन्य-तासुरेभ्यो वा इदम्भ्रातृंव्येभ्यो रध्यामो यन्मिथो विप्रियाः स्मो या न इमाः प्रियास्तुनुवस्ताः स्मवंद्यामहै ताभ्यः स निर्ऋंच्छाद्यः॥८॥

नः पृथ्मोऽ ३ न्यौन्यस्मै द्रुह्मादिति तस्माद्यः सतानूनित्रणाम्प्रथ्मो द्रुह्मिति स आर्तिमार्च्छिति यत्तानूनत्र॰ संमवद्यति भ्रातृंव्याभिभूत्यै भवंत्यात्मना परौस्य भ्रातृंव्यो भवति पश्च कृत्वोऽवं द्यति पश्चधा हि ते तथ्संम्वाद्यन्ताथो पश्चौक्षरा पङ्किः पाङ्को युज्ञमेवावं रुन्द्ध आपंतये त्वा गृह्णामीत्यांह प्राणो वै॥९॥

आपंतिः प्राणमेव प्रीणाति परिपतय इत्यांह मनो वै परिपतिर्मनं एव प्रीणाति तनूनम्र इत्यांह तनुवो हि ते ताः संम्वाद्यन्त शाक्करायेत्यांह शक्त्ये हि ते ताः संम्वाद्यन्त शाक्करायेत्यांह शक्त्ये हि ते ताः संम्वाद्यन्त शाक्करायेत्यांह शक्त्ये हि ते ताः संम्वाद्यन्त शक्त्यत्रोजिष्ठायेत्याहौजिष्ठ हो ते तदात्मनः सम्वाद्यन्तानाधृष्टमस्यनाधृष्यमित्याहानाधृष्ट होतदीनाधृष्यं देवानामोजः॥१०॥

इत्यांह देवाना १ ह्यंतदोजों ऽभिशस्तिपा अंनभिशस्तेन्यमित्यां हाभिशस्तिपा ह्यंतदंनभिशस्तेन्यमन् मे दीक्षां दीक्षापंतिर्मन्यतामित्यांह यथायजुरेवैतद्भृतं वै देवा वर्ज्यं कृत्वा सोमंमप्रन्नन्तिकमिंव खलु वा अंस्यैतचंरन्ति यत्तांनून्न्रेणं प्रचरंन्त्य १ शुरूरे वेव सोमा प्यांयतामित्यांह यत्॥११॥

पुवास्यापुवायते यन्मीयंते तदेवास्यैतेना प्याययत्या तुभ्यमिन्द्रः प्यायतामा त्विमिन्द्रांय प्यायस्वेत्याहोभावेवेन्द्रं च सोम्ं चा प्याययत्या प्यायय सर्खीन्थ्सन्या मेधयेत्याहिर्त्विजो वा अस्य सर्खायस्तानेवा प्याययित स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामंशीय॥१२॥

इत्यांहाशिषंमेवेतामा शाँस्ते प्र वा एतेँ उस्माल्लोकाच्यंवन्ते ये सोमंमाप्याययंन्त्यन्तिरक्षदेव्त्यों हि सोम् आप्यायित् एष्टा रायः प्रेषे भगायेत्यांहु द्यावांपृथिवीभ्यांमेव नंमस्कृत्यास्मिल्लोंके प्रिति तिष्ठन्ति देवासुराः संयंत्ता आस्-ते देवा विभ्यंतोऽग्निम्प्राविंश्-तस्मादाहुर्ग्निः सर्वा देवता इति ते॥१३॥

अग्निमेव वर्रूथं कृत्वासुंरान्भ्यंभवत्रग्निमेव खलु वा एष प्र विंशति यों-ऽवान्तरदीक्षामुपैति भ्रातृंव्याभिभूत्ये भवंत्यात्मना परांस्य भ्रातृंव्यो भवत्यात्मानमेव दीक्षयां पाति प्रजामंवान्तरदीक्षयां सन्तराम्मेखंला समायंच्छते प्रजा ह्यांत्मनो उन्तरतरा त्प्तव्रंतो भवति मदंन्तीभिर्मार्जयते निर्ह्यंग्निः शीतेन वायंति समिंख्ये या ते अग्ने रुद्रिया तुनूरित्यांह् स्वयैवैनेद्देवत्या व्रतयति सयोनित्वाय शान्त्यै॥१४॥

यो वा ओर्ज आह् यर्दशीयेति तैंऽग्रु एकांदश च॥_____

___[a]

तेषामसुराणान्तिस्रः पुरं आसन्नयस्मय्यंवमाऽथं रज्ताऽथ् हरिणी ता देवा जेतुन्नाशंक्कवन्ता उपसदैवाजिंगीषन्तस्मादाहुर्यश्चैवं वेद् यश्च नोपसदा वै मंहापुरं जयन्तीति त इषुर् समंस्कुर्वताग्निमनींकर् सोमर्र शल्यं विष्णुन्तेजंनन्तैंऽब्रुवन्क इमामंसिष्यतीतिं॥१५॥

रुद्र इत्यंब्रुवन्रुद्रो वै क्रूरः सौंऽस्युत्विति सौंऽब्रवीद्वर्रं वृणा अहमेव पंशूनामधिपतिरसानीति तस्मौद्भद्धः पंशूनामधिपितिस्ताः रुद्रोऽवांसृज्ञथ्स तिस्रः पुरो भिक्त्वैभ्यो लोकेभ्योऽसुरान्प्राणुंदत् यदुंपसदं उपसद्यन्ते भ्रातृंव्यपराणुत्त्यै नान्यामाहुंतिम्पुरस्तौज्ञहृयाद्यदन्यामाहुंतिम्पुरस्तौज्ञहृयात्॥१६॥

अन्यन्मुर्खं कुर्याध्सुवेणांघारमा घारयति यज्ञस्य प्रज्ञांत्ये परांङतिक्रम्यं जुहोति परांच एवैभ्यो लोकेभ्यो यजंमानो भातृंव्यान्म्य णुंदते पुनंरत्याक्रम्योंप्सदं जुहोति प्रणुद्यैवैभ्यो लोकेभ्यो भातृंव्याञ्चित्वा भांतृव्यलोकम्भ्यारोहिति देवा वै याः प्रातरुप्सदं उपासीदन्नहस्ताभिरसुरान्म्राणुंदन्त् याः साय रात्रिये ताभिर्यथ्सायम्प्रांतरुप्सदं॥१७॥

उपस्छन्तेऽहोरात्राभ्यामेव तद्यजमानो भ्रातृंच्यान्प्र णुंदते याः प्रातर्याज्याः स्युस्ताः सायम्पुरोनुवाक्याः कुर्यादयातयामत्वाय तिस्र उपसद् उपैति त्रयं इमे लोका इमानेव लोकान्प्रीणाति षट्थ्सम्पद्यन्ते षड्वा ऋतवं ऋतूनेव प्रीणाति द्वादंशाहीने सोम् उपैति द्वादंश मासाः संवथ्सरः संवथ्सरमेव प्रीणाति चतुंर्विरशितः सम्॥१८॥

पृद्यन्ते चतुर्वि शतिरर्धमासा अर्धमासानेव प्रीणात्याराँग्रामवान्तरदीक्षामुर्पेयाद्यः कामयेतास्मिन्मे लोकेऽर्धुक स्यादित्येकमग्रेऽथे द्वावथ त्रीनथं चतुरं एषा वा आराँग्रावान्तरदीक्षास्मिन्नेवास्मे लोकेऽर्धुकम्भवति पुरोवंरीयसीमवान्तरदीक्षामुर्पेयाद्यः कामयेंतामुष्मिन्मे लोकेऽर्धुंकः स्यादितिं चतुरोऽग्रेऽथ् त्रीनथ् द्वावथैकंमेषा वै पुरोवंरीयस्यवान्तरदीक्षामुष्मिन्नेवास्मैं लोकेऽर्धुंकम्भवति॥१९॥

असिष्यतीति जुहुयाथ्सायम्प्रांतरुप्सद्श्चतुर्वि शतिः सश्चतुरोऽग्रे षोडंश च॥———[३]

सुवर्गं वा एते लोकं येन्ति य उपसदं उपयन्ति तेषां य उन्नयंते हीयंत एव स नोदंनेषीति सून्नीयमिव यो वै स्वार्थेतां यता श्रान्तो हीयंत उत स निष्ट्रायं सह वंसति तस्माध्सकृदुन्नीय नापंरमुन्नयेत द्ध्रोन्नयेतैतद्वै पंशूना रूप रूपणेव पृश्नवं रुन्द्वे॥२०॥

युज्ञो देवेभ्यो निलायत् विष्णूं रूपं कृत्वा स पृथिवीम्प्राविश्वत्तं देवा हस्ताँ-थ्स् रभ्यैंच्छुन्तमिन्द्रं उपर्युपर्यत्यंज्ञाम्थ्सों'ऽब्रवीत्को मायमुपर्युपर्यत्यंज्ञमीदित्यहं दुर्गे हन्तेत्यथ् कस्त्वमित्यहं दुर्गादाहुर्तेति सों'ऽब्रवीद्दुर्गे वै हन्तांवोचथा वराहोंऽयं वांममोषः॥२१॥

स्प्तानां गिरीणाम्प्रस्ताँद्वित्तं वेद्यमसुंराणाम्बिभर्ति तं जीह् यदिं दुर्गे हन्तासीति स दर्भपुञ्जीलमुद्ध्वस्रं सप्त गिरीन्भित्त्वा तमेहुन्थ्सौंऽब्रवीद्दुर्गाद्वा आहंर्तावोचथा एतमा हुरेति तमैंभ्यो यज्ञ एव यज्ञमाहंरद्यत्तद्वित्तं वेद्यमसुंराणामविन्दन्त तदेकं वेद्यै वेदित्वमसुंराणाम्॥२२॥

वा इयमग्रं आसीद्यावदासींनः परापश्यंति ताबंद्देवानान्ते देवा अंब्रुवृत्रस्त्वेव नी-ऽस्यामपीति कियंद्वो दास्याम् इति याबंदियः संलावृकी त्रिः परिकामंति ताबंन्नो दत्तेति स इन्द्रंः सलावृकी रूपं कृत्वेमां त्रिः सर्वतः पर्यकामृत्तदिमामंविन्दन्त यदिमामविन्दन्त तद्वेदौ वेदित्वम्॥२३॥

सा वा इय सर्वेव वेदिरियंति शक्ष्यामीति त्वा अंवमायं यजन्ते त्रि श्रात्पदानिं पश्चात्तिरश्ची भवति षद्गिरंशात्प्राची चतुंर्विरशतिः पुरस्तौत्तिरश्ची दशंदश् सम्पंद्यन्ते दशौक्षरा विराडन्नं विराडिन्नं विराडिन्नं विराडिन्नं विराडिन्नं विराडिन्नं विराडिन्नं वर्षे हन्त्युद्धेन्ति तस्मादोषंधयः परां भवन्ति बर्हिः स्तृंणाति तस्मादोषंधयः पुन्रा भंवन्त्युत्तंरम्बर्हिषं उत्तरब्र्हिः स्तृंणाति प्रजा वै ब्र्हिर्यजमान उत्तरब्र्हिर्यजमानमेवायंजमानादुत्तंरं करोति तस्माद्यजमानोऽयंजमानादुत्तंरः॥२४॥

रुन्धे वामुमोषो वेदित्वमसुराणां वेदित्वं भवन्ति पश्चविश्शतिश्च॥

यद्वा अनींशानो भारमांदत्ते वि वै स लिंशते यद्वादंश साह्रस्योप्सदः स्युस्तिस्रीं-ऽहीनंस्य युज्ञस्य विलोम क्रियेत तिस्र एव साह्रस्योपसदो द्वादंशाहीनंस्य युज्ञस्यं सवीर्यृत्वायाथो सलोम क्रियते वृथ्सस्यैकः स्तनी भागी हि सोऽथैक्ड् स्तने वृतमुपैत्यथ् द्वावथ् त्रीनर्थं चृतुरं एतद्वै॥२५॥

क्षुरपंवि नामं व्रतं येन् प्र जातान्त्रातृंव्यात्रुदते प्रति जिन्ष्यमाणानथो कनीयसैव भूय उपैति चतुरोऽग्रे स्तनांन्व्रतमुपैत्यथ् त्रीनथ् द्वावथैकंमेतद्वे सुंजघनं नामं व्रतं तंपस्यश् सुवर्ग्यमथो प्रैव जांयते प्रजयां पृशुभिर्यवाग् रांजन्यंस्य व्रतं क्रूरेव वै यंवाग्ः क्रूर इंव॥२६॥

राज्न्यों वर्ज्ञस्य रूप॰ समृद्धा आमिक्षा वैश्यंस्य पाकय्ज्ञस्यं रूपम्पुष्ट्ये पयौं ब्राह्मणस्य तेजो वै ब्राह्मणस्तेजः पय्स्तेजंसैव तेजः पयं आत्मन्यत्तेऽथो पयंसा वै गर्भा वर्धन्ते गर्भ इव खलु वा एष यद्दीक्षितो यदंस्य पयौं व्रतम्भवंत्यात्मानंमेव तद्वंर्धयिति त्रिव्रंतो वै मनुरासीद्विव्रंता असुरा एकंव्रताः॥२७॥

देवाः प्रातर्मध्यन्दिने सायं तन्मनौर्वृतमांसीत्पाकयुज्ञस्यं रूपम्पुष्टैं प्रातश्चं सायं चासुंराणां निर्मध्यं श्रुधो रूपं तत्सते परांभवन्मध्यन्दिने मध्यरात्रे देवानां तत्सते-ऽभवन्थ्सुवर्गं लोकमायन् यदंस्य मध्यन्दिने मध्यरात्रे ब्रतम्भवंति मध्यतो वा अत्रेन भुञ्जते मध्यत एव तद्र्जंं धत्ते भ्रातृंच्याभिभूत्ये भवंत्यात्मनां॥२८॥

पराँऽस्य भ्रातृंव्यो भवित् गर्भो वा एष यद्दीं क्षितो योनिंदी क्षितिविम्ति यद्दीं क्षितो दीं क्षितिविम्ति त्यदीं क्षितो विम्तित्यं स्वाध्य योनेर्गर्भः स्कन्दिति ताहग्व तन्न प्रवस्तव्यं मात्मनो गोपी थायैष वै व्याघः कुंलगोपो यद्ग्रिस्तस्माद्यद्दीं क्षितः प्रवसेथ्स एनमी श्वरो ऽनूत्थाय हन्तोर्न प्रवस्तव्यं मात्मनो गुस्यै दक्षिणतः शंय एतद्वै यजंमानस्यायतं नु स्व एवायतं ने शये ऽग्निमे भ्यावृत्यं शये देवतां एव युज्ञमं भ्यावृत्यं शये॥२९॥

एतद्वै क्रूर इवैकंव्रता आत्मना यर्जमानस्य त्रयोदश च॥————[५]

पुरोहंविषि देवयजंने याजयेद्यं कामयेतोपैनमुत्तरो युज्ञो नंमेद्भि सुंवुर्गं लोकं जयेदित्येतद्वे पुरोहंविर्देवयजंनं यस्य होतां प्रातरनुवाकमनुब्रुवन्नग्निम्प आंदित्यम्भि विपश्यत्युपैनमुत्तरो युज्ञो नंमत्यभि सुंवुर्गं लोकं जयत्याप्ते देवयजंने याजयेद्भातृंव्यवन्तम्पन्थां वाधिस्पर्श्यत्कुर्तं वा यावन्नानंसे यात्वै॥३०॥ न रथायैतद्वा आप्तं देवयजंनमाप्नोत्येव भ्रातृंच्यं नैन्म्भ्रातृंच्य आप्नोत्येकोंन्नते देवयजंने याजयेत्पशुकांमुमेकोंन्नताद्वे देवयजंनादिङ्गिरसः पृशूनंमृजन्तान्तरा संदोहिविर्धाने उन्नतः स्यादेतद्वा एकोन्नतं देवयजंनम्पशुमानेव भविति त्र्यंन्नते देवयजंने याजयेथ्सुवर्गकांमृत्र्यंन्नताद्वे देवयजंनादिङ्गिरसः सुवर्गं लोकमायन्नतराहंवनीयं च हिवर्धानं च॥३१॥

उन्नतः स्यादन्तरा हंविधानं च सदेश्चान्तरा सदेश्च गार्हपत्यं चैतद्वै त्र्युन्नतं देवयर्जनः सुवर्गमेव लोकमेति प्रतिष्ठितं देवयर्जनः याजयेत्प्रतिष्ठाकांममेतद्वै प्रतिष्ठितं देवयर्जनं याजयेत्प्रतिष्ठाकांममेतद्वै प्रतिष्ठितं देवयर्जनं यथ्सर्वतः समम्प्रत्येव तिष्ठति यत्रान्याअन्या ओषंधयो व्यतिषक्ताः स्युस्तद्यांजयेत्प्रशुकांममेतद्वै पंशूनाः रूपः रूपेणैवास्मै पुशून्॥३२॥

अवं रुन्द्वे पशुमानेव भेवति निर्ऋंतिगृहीते देवयजंने याजयेद्यं कामयेत् निर्ऋंत्यास्य यज्ञं ग्रांहयेयमित्येतद्वे निर्ऋंतिगृहीतं देवयजंनं यथ्सदृश्यें सृत्यां ऋक्षन्निर्ऋंत्यैवास्यं यज्ञं ग्रांहयति व्यावृंत्ते देवयजंने याजयेद्यावृत्कांमं यम्पात्रं वा तत्त्पं वा मीमार्श्सरन्प्राचीनंमाहवनीयात्प्रवृणः स्यात्प्रतीचीनं गार्हंपत्यादेतद्वे व्यावृंत्तं देवयजंनं वि पाप्मना भ्रातृंव्येणा वंतिते नैनम्पात्रे न तत्त्पं मीमार्श्सन्ते कार्ये देवयजंने याजयेद्भृतिकामं कार्यो वे पुरुषो भवंत्येव॥३३॥

यात्वै हंवि्र्धानंश्च पुशून्पाप्मनाऽष्टादंश च॥------

-[ε]

तेभ्यं उत्तरवेदिः सि्र्ही रूपं कृत्वोभयांनन्त्रापुक्रम्यांतिष्ठत्ते देवा अंमन्यन्त यत्रान् वा इयमुंपाव्थस्यति त इदम्भंविष्यन्तीति तामुपांमन्त्रयन्त साब्रंवीद्वरं वृणे सर्वान्मया कामान्व्यंश्ववथ् पूर्वां तु माऽग्नेराहुंतिरश्ववता इति तस्मांदुत्तरवेदिम्पूर्वामुग्नेर्व्याघारयन्ति वारंवृत्रु ह्यंस्ये शम्यंया परि मिमीते॥३४॥

मात्रैवास्यै साऽथीं युक्तेनैव युक्तमवं रुन्छे वित्तायंनी मेऽसीत्यांह वित्ता ह्येनानावित्तिक्तायंनी मेऽसीत्यांह तिकान् ह्येनानावदवंतान्मा नाथितमित्यांह नाथितान् ह्येनानावदवंतान्मा व्यथितमित्यांह व्यथितान् ह्येनानावंद्विदेरग्निर्नभो नामं॥३५॥

अग्नें अङ्गिर् इति त्रिर्हंरति य एवैषु लोकेष्वग्नय्स्तानेवावं रुन्द्धे तूष्णीं चंतुर्थर हंर्त्यनिरुक्तमेवावं रुन्द्धे सिर्हीरंसि महिषीर्सीत्यांह सिर्हीर्ह्मेषा रूपं कृत्वोभयानन्त्रापुक्रम्यातिष्ठदुरु प्रथस्वोरु ते युज्ञपंतिः प्रथतामित्यांह यजमानमेव प्रजयां पृशुभिः प्रथयित ध्रुवा॥३६॥

असीति स॰ हंन्ति धृत्यै देवेभ्यः शुन्धस्व देवेभ्यः शुम्भस्वेत्यवं चोक्षिति प्र चं किरति शुद्धां इन्द्रघोषस्त्वा वसुंभिः पुरस्तांत्पात्वित्यांह दिग्भ्य एवेनां प्रोक्षंति देवाङ्श्चेद्रंत्तरवेदिरुपावंवर्तीहैव वि जंयामहा इत्यसुंग् वर्ज्रमुद्यत्यं देवान्भ्यायन्त् तानिन्द्रघोषो वसुंभिः पुरस्तादपं॥३७॥

अनुद्त मनोजवाः पितृभिर्दक्षिणृतः प्रचेता रुद्रैः पृश्चाद्विश्वकंर्मादित्यैरुंत्तर्तो यदेवम्त्तरवेदिं प्रोक्षितिं दिग्भ्य एव तद्यजंमानो भ्रातृंव्यान्प्रणुंदत् इन्द्रो यतींन्थ्सालावृकेभ्यः प्रायंच्छ्तान्दिक्षिणृत उत्तरवेद्या आंद्न् यत्प्रोक्षंणीनामुच्छिष्यंत् तद्दंक्षिणृत उत्तरवेद्ये निनयेद्यदेव तत्रं क्रूरं तत्तेनं शमयित् यं द्विष्यात्तं ध्यायेच्छुचैवैनंमर्पयिति॥३८॥

मिमीते नाम ध्रुवाऽपं शुचा त्रीणि च॥————[७

सोत्तंरवेदिरंब्रवीथ्सर्वान्मया कामान्व्यंश्ववथेति ते देवा अंकामयन्तासुंगुन्भ्रातृंव्यान्भि भंवेमेति तेंऽजुहवुः सिर्होरंसि सपलसाही स्वाहेति तेऽसुंगुन्भ्रातृंव्यान्भ्यंभवन्ते-ऽसुंगुन्भ्रातृंव्यानिभूयांकामयन्त प्रजां विन्देम्हीति तेंऽजुहवुः सिर्होरंसि सुप्रजाविनः स्वाहेति ते प्रजामंविन्दन्त ते प्रजां वित्त्वा॥३९॥

अकाम्यन्त पृशून् विन्देम्हीति तेंऽजुहवुः सि्र्हीरसि रायस्पोष्विनः स्वाहेति ते पृशूनंविन्दन्त ते पृशून् वित्त्वाऽ कांमयन्त प्रतिष्ठां विन्देम्हीति तेंऽजुहवुः सि्र्हीरंस्यादित्यविनः स्वाहेति त इमाम्प्रंतिष्ठामंविन्दन्त त इमाम्प्रंतिष्ठां वित्त्वाकांमयन्त देवतां आशिष उपयामेति तेंऽजुहवुः सि्र्हीर्स्या वह देवान्देवयुते॥४०॥

यजंमानाय स्वाहेति ते देवतां आशिष् उपांयन्पश्च कृत्वो व्याघांरयित पश्चांक्षरा पृक्किः पाङ्को यज्ञो यज्ञमेवावं रुन्द्धेऽक्ष्णया व्याघांरयित तस्मांदक्ष्णया पृशवोऽङ्गांनि प्र हंरन्ति प्रतिष्ठित्ये भूतेभ्यस्त्वेति स्रुचमुद्गृह्णाति य एव देवा भूतास्तेषान्तद्भांगुधेयन्तानेव तेनं प्रीणाति पौतुंद्रवान्परिधीन्परिं दधात्येषाम्॥४१॥

लोकानां विधृत्या अग्नेस्नयो ज्यायार्श्सो भ्रातंर आसन्ते देवेभ्यों हृव्यं वहंन्तः प्रामीयन्त सौँऽग्निरंबिभेदित्थं वाव स्य आर्तिमारिष्यतीति स निलायत् स यां वनस्पतिष्ववंसत्ताम्पूतुंद्रौ यामोषंधीषु तार सुंगन्धितेजंने याम्पृशुषु ताम्पेत्वंस्यान्तरा शृङ्गे तं देवताः प्रैषंमैच्छुन्तमन्वंविन्दन्तमंत्रुवन्न॥४२॥

उपं न आ वर्तस्व ह्व्यं नों वहेति सौंऽब्रवीद्वरं वृणै यदेव गृहीतस्याहुंतस्य

बहिःपरिधि स्कन्दात्तन्मे भ्रातृंणाम्भागुधेयंमस्दिति तस्माद्यद्गृंहीतस्याहुंतस्य बहिःपरिधि स्कन्दंति तेषान्तद्भांगुधेयं तानेव तेनं प्रीणाति सोंऽमन्यतास्थन्वन्तों मे पूर्वे भ्रातंरः प्रामेषतास्थानि शातया इति स यानि॥४३॥

अस्थान्यशांतयत् तत्पूतुंद्वभवद्यन्मार्सममुपंमृत्ं तद्गुल्गुंलु यदेतान्थ्संम्भारान्थ्सम्भरंत्यग्निमेव तथ्सम्भरत्यग्नेः पुरीषम्सीत्यांहाग्नेर्ह्यंतत्पुरीष् यथ्संभारा अथो खल्वांहुरेते वावैनं ते भ्रातंरः परि शेरे यत्पौतुंद्रवाः परिधय इति॥४४॥

वित्त्वा देवयुत एषामंब्रुवुन् यानि चतुंश्चत्वारि शच॥

-[2]

बुद्धमवं स्यित वरुणपाशादेवैनें मुश्चित् प्र णेंनेक्ति मेध्यें एवैनें करोति सावित्रियर्चा हुत्वा हंविधीने प्र वंतियित सिवृत्यप्रंस्त एवैने प्र वंतियित वरुणो वा एष दुर्वागुंभयतों बुद्धो यदक्षः स यदुथ्सर्जेद्यजंमानस्य गृहान्भ्युथ्संर्जेथ्सुवाग्देव दुर्याः आ वदेत्यांह गृहा व दुर्याः शान्त्ये पत्नीं॥४५॥

उपांनिक्त् पत्नी हि सर्वस्य मित्रिम्मित्रत्वाय यद्वै पत्नी यज्ञस्यं करोति मिथुनं तदथो पत्निया एवेष यज्ञस्यांन्वार्म्भोऽनंबच्छित्त्यै वर्त्मना वा अन्वित्यं यज्ञ रक्षार्रसि जिघारसन्ति वैष्णवीभ्यांमृग्भ्यां वर्त्मनोर्जुहोति यज्ञो वै विष्णुंर्यज्ञादेव रक्षार्स्स्यपं हन्ति यदंष्वर्युरंनुग्नावाहुंतिञ्जहुयाद्भ्यांऽष्वर्युः स्याद्रक्षार्रसि यज्ञर हंन्युः॥४६॥

हिरंण्यमुपास्यं जुहोत्यग्निवत्येव जुंहोति नान्धौंऽध्वर्युर्भवंति न यज्ञ रक्षारंसि प्रन्ति प्राची प्रेतमध्वरं कृल्पयंन्ती इत्यांह सुवर्गमेवैने लोकं गंमयत्यत्रं रमेथां वर्ष्मन्यृथिव्या इत्याह् वर्ष्म ह्येतत्पृथिव्या यद्देवयजंन् शिरो वा एतद्यज्ञस्य यद्वंविधीनंन्दिवो वां विष्णवुत वां पृथिव्याः॥४७॥

इत्याशीर्पदयुर्चा दक्षिणस्य हिव्धानस्य मेथीं नि हिन्ति शीर्षत एव युज्ञस्य यर्जमान आशिषोऽवं रुन्द्धे दुण्डो वा औप्रस्तृतीयस्य हिव्धानस्य वषद्कारेणाक्षेमच्छिन्द्यत्तृतीयं छुदिर्हिव्धानयोश्दाह्रियतं तृतीयस्य हिव्धानस्यावंश्र्द्धे शिरो वा एतद्यज्ञस्य यद्धविधानं विष्णो र्राटेमिस् विष्णोः पृष्ठम्सीत्यांह् तस्मादेतावृद्धा शिरो विष्यूतं विष्णोः स्यूरंसि विष्णोधुवम्सीत्याह वैष्णवश्र हि देवतया हिव्धानं यम्प्रथमं ग्रन्थि ग्रंश्रीयाद्यतं न

विंस्र सयेदमें हेनाध्वर्युः प्र मीयेत तस्माथ्स विस्रस्यः॥४८॥

पत्नीं हन्युर्वा पृथिव्या विष्यूंतं विष्णोः षड्वि १ शतिश्च॥———[९]

देवस्यं त्वा सिवृतुः प्रंस्व इत्यभ्रिमा दंत्ते प्रसूत्या अश्विनौर्बाहुभ्यामित्यांहाश्विनौ हि देवानांमध्वर्यू आस्तां पूष्णो हस्तांभ्यामित्यांहु यत्ये वज्रं इव वा एषा यदभ्रिरभ्रिरिस् नारिर्सीत्यांहु शान्त्ये काण्डेंकाण्डे वे क्रियमांणे यृज्ञ रक्षारंसि जिघारसन्ति परिलिखित्र रक्षः परिलिखिता अरांतय इत्यांह रक्षंसामपंहत्ये॥४९॥

ड्दम्हर रक्षंसो ग्रीवा अपिं कृन्तामि योंऽस्मान्द्वेष्टि यं चं वयं द्विष्म इत्यांह् द्वौ वाव पुर्रुषो यं चैव द्वेष्टि यश्चेंनं द्वेष्टि तयोरेवानंन्तरायं ग्रीवाः कृन्तिति दिवे त्वान्तिरक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वेत्यांहैभ्य एवैनांह्रोंकेभ्यः प्रोक्षंति प्रस्तांदर्वाचीं प्रोक्षंति तस्मात्॥५०॥

प्रस्तांदुर्वाचींम्मनुष्यां ऊर्जुमुपं जीवन्ति ऋूरिमंव वा एतत्कंरोति यत्खनंत्यपोऽवं नयति शान्त्ये यवंमती्रवं नयत्यूर्वे यव् ऊर्गुदुम्बरं ऊर्जेवोर्जुष् समर्धयिति यजंमानेन् सिम्मृतौदुंम्बरी भवति यावांनेव यजंमान्स्तावंतीमेवास्मिन्नूर्जं दधाति पितृणाष् सदंनम्सीतिं बर्हिरवं स्तृणाति पितृदेवत्यम्॥५१॥

ह्यंतद्यन्निखांतं यद्वर्हिरनंवस्तीर्य मिनुयात्पितृदेवत्यां निखांता स्याद्वर्हिरंवस्तीर्यं मिनोत्यस्यामेवेनांम्मिनोत्यथां स्वारुहंमेवेनां इरोत्युद्दिव हं स्तभानान्तरिक्षं पृणेत्याहेषाङ्काँकानां विधृंत्ये द्युतानस्त्वां मारुतो मिनोत्वित्यांह द्युतानो हं स्म वे मारुतो देवानामोदंम्बरीम्मिनोति तेनैव॥५२॥

एनाम्मिनोति ब्रह्मविनें त्वा क्षत्रविनिमित्यांह यथायुजुरेवैतद्भृतेनं द्यावापृथिवी आ पृंणेथामित्यौदुंम्बर्यां जुहोति द्यावापृथिवी एव रसेनानक्त्व्यान्तम्नववंस्रावयत्यान्तमेव यजमानं तेजंसाऽनक्त्यैन्द्रमुसीतिं छुदिरिध् नि दंधात्यैन्द्र हि देवतंया सदों विश्वजनस्यं छायेत्यांह विश्वजनस्य ह्येषा छाया यथ्सदो नवंछिदि॥५३॥

तेर्जस्कामस्य मिनुयात्रिवृता स्तोमेन सम्मित्न्तेर्जस्त्रिवृत्तेज्स्व्येव भेवृत्येकांदशछदीन्द्रियकांम् त्रिष्ठुगिन्द्रियं त्रिष्ठुगिन्द्रियाव्येव भेवित पश्चंदशछिद भ्रातृंव्यवतः पश्चद्शो वज्रो भ्रातृंव्याभिभूत्ये सप्तदंशछिद प्रजाकांमस्य सप्तद्शः प्रजापंतिः प्रजापंतेरास्या एकवि शतिछिद प्रतिष्ठाकांमस्यैकवि भ्षाः स्तोमांनां प्रतिष्ठा प्रतिष्ठित्या उदर्ं वै सद् ऊर्गुदुम्बरों मध्यत औदुंम्बरीम्मिनोति मध्यत एव प्रजानामूर्जं दधाति तस्मात्॥५४॥

मध्यत ऊर्जा भुंञ्जते यजमानलोके वै दक्षिणानि छुदी १ षि भ्रातृव्यलोक उत्तराणि दिक्षिणान्युत्तराणि करोति यजमानमेवायंजमानादुत्तरं करोति तस्माद्यजमानोऽयंजमानादुत्तरो- ऽन्तर्वृतान्करोति व्यावृत्त्ये तस्मादरण्यं प्रजा उपं जीवन्ति परि त्वा गिर्वणो गिर् इत्याह यथायुजुरेवैतदिन्द्रस्य स्यूरसीन्द्रस्य भ्रुवम्सीत्यांहैन्द्र हे देवत्या सदो यम्प्रंथमं ग्रुन्थिं ग्रंश्रीयाद्यत्तं न विस्रुर्सयेदमेहेनाध्वर्युः प्र मीयेत तस्माथ्स विस्रस्यः॥५॥

अपंहत्यै तस्मांत्पितृदेवृत्यंन्तेनैव नवंछिद् तस्माथ्सदः पश्चंदश च॥-----[१०]

शिरो वा एतद्यज्ञस्य यद्धविधानं प्राणा उपरवा हंविधानं खायन्ते तस्माँच्छीर्षन्त्राणा अधस्ताँत्खायन्ते तस्माँच्छीर्णः प्राणा रंक्षोहणां वलगृहनां वैष्णवान्खंनामीत्यांह वैष्णवा हि देवतंयोपर्वा असुरा वै निर्यन्तां देवानां प्राणेषुं वलगान्त्र्यंखन्नतान्बांहुमात्रे- उन्वविन्दन्तस्माँद्वाहुमात्राः खांयन्त इदमहं तं वलगमुद्धंपामि॥५६॥

यं नंः समानो यमसंमानो निच्खानेत्यांहु द्वौ वाव पुरुषो यश्चैव संमानो यश्चासंमानो यमेवास्मै तौ वेलुगं निखनंतस्तमेवोद्वंपिति सं तृंणित्ति तस्माथ्सन्तृंण्णा अन्तर्तः प्राणा न सिम्निनित्ति तस्मादसंस्भिन्नाः प्राणा अपोऽवं नयित तस्मादार्द्रा अन्तर्तः प्राणा यवमतीरवं नयित॥५७॥

ऊर्ग्वे यवंः प्राणा उपर्वाः प्राणेष्वेवोर्जं दधाति ब्र्हिरवं स्तृणाति तस्माँ क्षेम्शा अन्तर्तः प्राणा आज्येन व्याघारयित तेजो वा आज्ये प्राणा उपर्वाः प्राणेष्वेव तेजों दधाति हनू वा एते यज्ञस्य यदिधिषवंणे न सं तृण्त्यसंतृण्णे हि हनू अथो खलुं दीर्घसोमे सन्तृद्ये भृत्ये शिरो वा एतद्यज्ञस्य यद्धेविधीनम्॥५८॥

प्राणा उपर्वा हर्नू अधिषवंणे जिह्ना चर्म ग्रावांणो दन्ता मुखंमाहव्नीयो नासिकोत्तरवेदिरुदर्भ सदों यदा खलु वे जिह्नयां द्थ्स्विध खाद्त्यथ मुखं गच्छति यदा मुखं गच्छत्यथादरं गच्छति तस्माँद्धविधाने चर्मन्निध ग्रावंभिरिभेषुत्यांहव्नीयें हुत्वा प्रत्यश्चं प्रेत्य सदेसि भक्षयन्ति यो वे विराजों यज्ञमुखे दोहं वेदं दुह एवैनांमियं वे विराद्गस्यैं त्वक्रमींधोऽिधषवंणे स्तनां उपर्वा ग्रावांणो वथ्सा ऋत्विजों दुहन्ति सोमः

पयो य एवं वेदं दुह एवैनांम्॥५९॥

वृपामि यवमतीरवं नयति हिवधिनिमेव त्रयोवि १ शतिश्च॥------------[११]

चात्वांलाथ्सुवर्गाय यद्वैसर्जुनानिं वैष्ण्व्यर्चा पृंथिव्यै साध्या इषे त्वेत्यग्निना पर्यग्नि पृशोः पृशुमालभ्य मेदंसा सुचावेकांदश॥——[१२]चात्वांलाद्देवानुपैतिं मुश्चति प्रह्रियमाणाय पर्यग्नि पृशुमालभ्य चतुंष्पादो द्विषष्टिः॥62॥ चात्वांलात्पृशुषुं दधाति॥

॥ तृतीयः प्रश्नः॥

॥तैत्तिरीयसंहितायां षष्ठमकाण्डे तृतीयः प्रश्नः॥

चात्वांलाद्धिष्णियानुपं वपित् योनिर्वे यज्ञस्य चात्वांलं यज्ञस्यं सयोनित्वायं देवा वै यज्ञं पराजयन्त तमाग्नींभात्पुन्रपांजयन्नेतद्वे यज्ञस्यापंराजितं यदाग्नींभुं यदाग्नींभाद्धिष्णियान् विहरंति यदेव यज्ञस्यापंराजितं ततं एवैन्म्पुनंस्तनुते पराजित्येव खलु वा एते यन्ति ये बंहिष्यवमान सर्वेन्त बहिष्यवमान स्तुते॥१॥

आहाग्नींद्ग्रीन् वि हंर ब्र्हिः स्तृंणाहि पुरोडाशा ४ अर्लं कुर्विति यज्ञमेवाप्जित्य पुनंस्तन्वाना यन्त्यङ्गारैर्द्वे सर्वने वि हंरति श्लाकांभिस्तृतीयर्थ सशुकृत्वायाथो सम्भंरत्येवैनृद्धिणिया वा अमुष्मिंश्लोंके सोमंमरक्षन्तेभ्योऽिय सोम्माहंर्न्तमंन्ववायन्तं पर्यविश्वन् य एवं वेदं विन्दते॥२॥

परिवेष्टार्न्ते सोमपीथेन् व्यार्ध्यन्त् ते देवेषुं सोमपीथमैंच्छन्त् तां देवा अंब्रुवन्द्वेद्वे नामंनी कुरुध्वमथ् प्र वापस्यथ् न वेत्यग्नयो वा अथ् धिष्णियास्तस्माहिनामां ब्राह्मणोऽर्धुकस्तेषां ये नेदिष्टम्पूर्यविश्वन्ते सोमपीथं प्राप्नुवन्नाहवनीयं आग्नीधीयो होत्रीयो मार्जालीयस्तस्मात्तेषु जुह्वत्यितिहाय् वषद्वरोति वि हि॥३॥

पृते सोमपीथेनार्ध्यन्त देवा वै याः प्राचीराहुंतीरजुंहबुर्ये पुरस्तादसुंरा आस्ननाः स्ताभिः प्राणुंदन्त याः प्रतीचीर्ये पृश्चादसुंरा आस्नताः स्ताभिः प्राणुंदन्त याः प्रतीचीर्ये पृश्चादसुंरा आस्नताः स्ताभिरपानुदन्त प्राचीर्न्या आहुंतयो हूयन्ते पृत्यङ्कासीनो धिष्णियान्व्याघारयति पृश्चाचैव पुरस्तांच यजमानो भ्रातृंव्यान्त्र णुंदते तस्मात्परांचीः प्रजाः प्र वीयन्ते प्रतीचीः॥४॥

जायन्ते प्राणा वा एते यद्धिष्णिया यदेष्वर्यः प्रत्यिङ्घष्णियानित्सर्पेत्प्राणान्थसं कंर्षेत्प्रमायुंकः स्यान्नाभिवां एषा यज्ञस्य यद्धोतोष्वः खलु वै नाभ्ये प्राणोऽवांङपानो यदेष्वर्युः प्रत्यङ्गोतांरमित्सर्पेदपाने प्राणं देध्यात् प्रमायुंकः स्यान्नाष्वर्युरुपं गायेद्वाग्वींयर्गे वा अष्वर्युर्यदेष्वर्युरुप्पगायेदुद्भात्रे॥५॥

वाच् सम्प्र यंच्छेदुप्दासुंकास्य वाख्स्याँद्वह्मवादिनों वदन्ति नासईस्थिते सोमैंऽध्वर्यः प्रत्यङ्ख्सदोऽतींयाद्वयं कथा दाँक्षिणानि होतुंमेति यामो हि स तेषां कस्मा अहं देवा यामं वायामं वान् ज्ञास्यन्तीत्युत्तरेणाग्रींग्रं प्रीत्यं जुहोति दाक्षिणानि न प्राणान्थ्सं कर्षिति न्यंन्ये धिष्णिया उप्यन्ते नान्ये यान्निवपंति तेन तान्ग्रींणाति यान्न निवपंति यदंनुदिशति तेन तान्॥६॥

स्तुते विन्दते हि वीयन्ते प्रतीचीरुद्गात्र उप्यन्ते चतुर्दश च॥———[१]

सुवर्गाय वा एतानि लोकार्य हूयन्ते यद्वैसर्जुनानि द्वाभ्यां गार्हंपत्ये जुहोति द्विपाद्यजंमानः प्रतिष्ठित्या आग्नीप्रे जुहोत्यन्तिरक्ष एवा क्रंमत आहवनीये जुहोति सुवर्गमेवैनं लोकं गंमयित देवान् वै सुवर्ग लोकं यतो रक्षार्रस्यजिघारस्नते सोमेन राज्ञा रक्षार्रस्यपहत्याप्तमात्मानं कृत्वा सुवर्ग लोकमायत्रक्षंसामन्पलाभायातः सोमो भवत्यर्थ॥७॥

वैसर्जुनानि जुहोति रक्षंसामपंहत्यै त्व॰ सोम तनूकृज्य इत्यांह तनूकृद्धीष द्वेषोँभ्यो-ऽन्यकृतेभ्य इत्यांहान्यकृतानि हि रक्षा॰स्युरु यन्तासि वरूथमित्याहोरु णंस्कुधीति वावैतदांह जुषाणो अप्तुराज्यस्य वेत्वित्यांहाप्तुमेव यर्जमानं कृत्वा सुंवर्गं लोकं गमयित रक्षंसामनुंपलाभाया सोमं ददते॥८॥

आ ग्राच्ण् आ वांय्व्यांन्या द्रोणकल्शमृत्पत्नीमा नंयन्त्यन्वनारेसि प्र वंर्तयन्ति यावंदेवास्यास्ति तेनं सह सुंवर्गं लोकमेति नयंवत्यर्चाग्रींप्रे जुहोति सुवर्गस्यं लोकस्याभिनीत्यै ग्राच्णां वायव्यानि द्रोणकल्शमाग्रींप्र उपं वासयित वि ह्येनं तैर्गृहृते यथ्सहोपंवासयेंदपुवायेतं सौम्यर्चा प्र पांदयित स्वयां॥९॥

पुवैनं देवतंया प्र पांदयत्यदित्याः सदोऽस्यदित्याः सद् आ सीदेत्यांह यथायुजुरेवैतद्यजंमानो वा एतस्यं पुरा गोप्ता भवत्येष वो देव सवितः सोम् इत्यांह सवितृप्रंसूत पुवैनं देवतांभ्यः सम्प्र यंच्छत्येतत्त्वः सोम देवो देवानुपांगा इत्यांह देवो ह्यंष सन्॥१०॥

देवानुपैतीदमहम्मंनुष्यों मनुष्यांनित्यांह मनुष्यो ३ ह्यंष सन्मंनुष्यांनुपैति यदेतद्यजुर्न ब्रूयादप्रंजा अपृशुर्यजंमानः स्याध्सह प्रजयां सह रायस्पोषेणेत्यांह प्रजयेव पृशुभिः सहेमं लोकमुपावंतिते नमीं देवेभ्य इत्यांह नमस्कारो हि देवानाई स्वधा पितृभ्य इत्यांह स्वधाकारो हि॥११॥

पितृणामिदम्हं निर्वरुणस्य पाशादित्यांह वरुणपाशादेव निर्मुच्यतेऽग्नें व्रतपत आत्मनः पूर्वा तुनूरादेयेत्यांहुः को हि तद्वेद यद्वसीयान्थ्यते वशे भूते पुनेर्वा ददांति न वेति ग्रावांणो वै सोमंस्य राज्ञों मिलिसुसेना य एवं विद्वान्ग्राव्णण आग्नींग्न उपवासयंति नैनंम्मिलिसुसेना विन्दित॥१२॥

अर्थ ददते स्वया सन्थ्स्वंधाकारो हि विंन्दति॥———[२]

वैष्ण्व्यर्चा हुत्वा यूपमच्छैति वैष्ण्वो वे देवत्या यूपः स्वयैवैनं देवत्याच्छैत्यत्यन्यानगां नान्यानुपांगामित्याहाति ह्यंन्यानेति नान्यानुपैत्यर्वाक्ता परैरविदम्परोऽवंरैरित्यांहार्वाग्य्येनं परैंविंन्दितं परोवंरैस्तं त्वां जुषे॥१३॥

वैष्ण्वं देवयुज्याया इत्यांह देवयुज्यायै ह्येनं जुषते देवस्त्वां सिवता मध्वानिकत्यांह् तेजंसैवैनमम्त्त्व्याषेषे त्रायंस्वैन् स्विधिते मैनर् हिरसीरित्यांह् वज्रो वै स्विधितः शान्त्यै स्विधितेर्वृक्षस्य विभ्यंतः प्रथमम् शकंलेन सह तेजः परा पतित् यः प्रथमः शकंलः परापतेत्तमप्या हेर्थ्सतेजसम्॥१४॥

पुवैनुमा हंरतीमे वै लोका यूपाँत्प्रयतो बिभ्यति दिवमग्रेण मा लेखीर्न्तरिक्षुम्मध्येन मा हिर्स्मीरित्यांहैभ्य पुवैनं लोकेभ्यः शमयति वर्नस्पते शतवंलशो वि रोहेत्याव्रश्चेने जुहोति तस्मादाव्रश्चेनाद्वृक्षाणाम्भूयार्स्स उत्तिष्ठन्ति सहस्रंबल्शा वि वयर रुंहेमेत्यांहाशिषंमेवैतामा शास्तेऽनंक्षसङ्गम्॥१५॥

वृश्चेद्यदेश्वस्ङ्गं वृश्चेदेधर्ड्षं यजंमानस्य प्रमायुंकः स्याद्यं कामयेताप्रतिष्ठितः स्यादित्यारोहं तस्मैं वृश्चेदेष वै वनस्पतीनामप्रतिष्ठितोऽप्रतिष्ठित एव भविति यं कामयेतापृशः स्यादित्यंपृणं तस्मै शुष्कांग्रं वृश्चेदेष वै वनस्पतीनामपश्च्योऽपृश्रुरेव भविति यं कामयेत पशुमान्थस्यादिति बहुपृणं तस्मै बहुशाखं वृश्चेदेष वै॥१६॥

वनस्पतीनाम्पश्रव्यः पशुमानेव भेवति प्रतिष्ठितं वृश्चेत्प्रतिष्ठाकांमस्यैष वै वनस्पतीनां प्रतिष्ठितो यः समे भूम्यै स्वाद्योने रूढः प्रत्येव तिष्ठति यः प्रत्यङ्कुपेनतस्तं वृश्चेथ्स हि मेधेम्भ्युपेनतः पश्चारित्वं तस्मै वृश्चेद्यं कामयेतोपैन्मुत्तरो यज्ञो नंमेदिति पश्चांक्षरा पङ्किः पाङ्को यज्ञ उपैनमुत्तरो यज्ञः॥१७॥

नुमृति षडंरित्तं प्रतिष्ठाकांमस्य षङ्घा ऋतवं ऋतुष्वेव प्रतिं तिष्ठति स्प्तारंत्तिम्पृशुकांमस्य सप्तपंदा शक्करी पृश्वः शक्करी पृश्वेवावं रुन्द्धे नवारित्वं तेजंस्कामस्य त्रिवृता स्तोमेन सिम्मितं तेजंस्विवृत्तेजस्व्येव भंवत्येकांदशारित्विमिन्द्रियकांमस्यैकांदशाक्षरा त्रिष्ठुगिन्द्रियं त्रिष्ठुगिन्द्रियाव्येव भंवति पश्चंदशारित्विम्भ्रातृंव्यवतः पश्चदशो वज्रो भ्रातृंव्याभिभूत्ये सप्तदंशारितं प्रजाकांमस्य सप्तद्शः प्रजापंतिः प्रजापंतराया एकंविश्शत्यरितं प्रतिष्ठाकांमस्यैकविश्राः स्तोमांनां प्रतिष्ठा प्रतिष्ठित्या अष्टाश्चिभवत्यष्टाक्षरा गायत्री तेजों गायत्री गायत्

पृथिव्यै त्वान्तरिक्षाय त्वा दिवे त्वेत्यांहैभ्य एवैनं लोकेभ्यः प्रोक्षंति पराँश्चं प्रोक्षंति परांश्चिं परांश्चिं परांश्चिं त्वा एतत्करोति यत्वनंत्यपोवं नयित शान्त्यै यवंमतीरवं नयत्यूर्पेवं यवो यजमानेन यूपः सम्मितो यावांनेव यजमानस्तावंतीमेवास्मिन्नूर्जं द्वाति॥१९॥

पितृणाः सदंनम्सीतिं ब्रहिरवं स्तृणाति पितृदेवृत्य रृंड् ह्यंतद्यन्निखांतं यद्व्र्हिरनंवस्तीर्यं मिन्यात्पंतृदेवृत्यों निखांतः स्याद्व्र्र्हिरंवस्तीर्यं मिनोत्यस्यामेवैनंम्मिनोति यूपशकुलमवांस्यित् सतेंजसमेवैनंम्मिनोति देवस्त्वां सविता मध्यांनुक्कित्यांह् तेजंसैवैनंमनक्ति सुपिप्पुलाभ्यस्त्वोषंधीभ्य इतिं चृषालुं प्रति॥२०॥

मुश्चित् तस्माँच्छीर्षत ओषंधयः फलं गृह्धन्त्यनिक्त् तेजो वा आज्यं यर्जमानेनाग्निष्ठाश्चिः सम्मिता यदंग्निष्ठामश्चिमनिक्त् यर्जमानमेव तेजंसानक्त्यान्तमेनक्त्यान्तमेव यर्जमानं तेजंसानिक्त सर्वतः परि मृश्तत्यपरिवर्गमेवास्मिन्तेजो दधात्युद्दिव स्तभानान्तरिक्षं पृणेत्याहेषां लोकानां विधृत्यै वैष्णव्यर्चा॥२१॥

कुल्पुयति वैष्णुवो वे देवतंया यूपः स्वयैवैनं देवतंया कल्पयति द्वाभ्यां कल्पयति

द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्यै यं कामयेत् तेजंसैनं देवतांभिरिन्द्रियेण् व्यर्धयेयमित्यंग्निष्ठां तस्याश्रिमाहवनीयांदित्थं वेत्थं वातिं नावयेत्तेजंसैवैनं देवतांभिरिन्द्रियेण् व्यर्धयति यं कामयेत् तेजंसैनं देवतांभिरिन्द्रियेण् समर्थयेयमिति॥२२॥

अग्निष्ठां तस्याश्रिमाहव्नीयेन सम्मिन्यात्तेजंसैवेनं देवतांभिरिन्द्रियेण समर्धयित ब्रह्मविनं त्वा क्षत्रविनिम्त्यांह यथायुजुरेवेतत्पिरं व्ययत्यूर्वे रंशना यजमानेन यूपः सम्मितो यजमानमेवोर्जा समर्धयित नाभिद्घ्रे पिरं व्ययति नाभिद्घ्र एवास्मा ऊर्जं दधाति तस्मान्नाभिद्घ्र ऊर्जा भुंञ्जते यं कामयेतोर्जेनम्॥२३॥

व्यर्धयेयमित्यूर्ध्यां वा तस्यावांचीं वावोहेदूर्जैवैनं व्यर्धयति यदिं कामयेत् वर्षुकः पर्जन्यः स्यादित्यवांचीमवीहेद्दृष्टिमेव नि यच्छति यदिं कामयेतावर्षुकः स्यादित्यूर्ध्वामुदृहेद्दृष्टिमेवोद्यंच्छति पितृणां निखातम्मनुष्यांणामूर्ध्वं निखातादा रंशनाया ओषंधीनाः रशना विश्वेषाम्॥२४॥

देवानांमूर्ध्वर रंशनाया आ चृषालादिन्द्रंस्य चृषालर्र साध्यानामितिरिक्तर् स वा पृष संविदेवत्यों यद्यूपो यद्यूपिम्मनोति सर्वा एव देवताः प्रीणाति यज्ञेन वै देवाः सुंवर्गं लोकमायन्तेऽमन्यन्त मनुष्यां नोऽन्वाभविष्यन्तीति ते यूपेन योपयित्वा सुंवर्गं लोकमायन्तमृषयो यूपेनैवानु प्राजानन्तद्यूपंस्य यूपत्वम्॥२५॥

यद्यूपंम्मिनोति सुवर्गस्यं लोकस्य प्रज्ञांत्यै पुरस्तांन्मिनोति पुरस्ताद्धि यज्ञस्यं प्रज्ञायते-ऽप्रंज्ञात् हे हि तद्यदतिपन्न आहुरिदं कार्यमासीदिति साध्या वै देवा यज्ञमत्यंमन्यन्त् तान् यज्ञो नास्पृंश्तान् यद्यज्ञस्यातिरिक्तमासीत्तदंस्पृश्दितिरिक्तं वा पृतद्यज्ञस्य यद्ग्रावृग्निम्मिथित्वा प्रहरत्यतिरिक्तमेतत्॥२६॥

यूपंस्य यदूर्ध्वं च्षालात्तेषां तद्भाग्धेयं तानेव तेनं प्रीणाति देवा वै सङ्स्थिते सोमे प्र स्रुचोहंर्न्प्र यूपं तेंऽमन्यन्त यज्ञवेशसं वा इदं कुंर्म् इति ते प्रंस्त्र्र् स्रुचान्निष्क्रयंणमपश्यन्थ्स्वरुं यूपंस्य सङ्स्थिते सोमे प्र प्रंस्त्रर हरंति जुहोति स्वुरुमयंज्ञवेशसाय॥२७॥

द्धाति प्रत्युचा समर्थयेयमित्यूर्जैनं विश्वेषां यूप्त्वमितिरिक्तमेतिद्विचेत्वारि शच॥——[४]

साध्या वै देवा अस्मिल्लौंक आंसुन्नान्यत्किश्चन मिषत्तें ऽग्निमेवाग्नये मेधायालंभन्त न

ह्यंन्यदांलुम्भ्यंमविन्दुन्ततो वा इमाः प्रजाः प्राजांयन्त यदुग्नावृग्निम्मंथित्वा प्रहरंति प्रजानां प्रजनंनाय रुद्रो वा एष यदुग्निर्यजमानः पुशुर्यत्पृशुमालभ्याग्निम्मन्थंद्रुद्राय यजमानम्॥२८॥

अपि दथ्यात्प्रमायुंकः स्यादथो खल्वांहुर्ग्निः सर्वा देवतां हृविरेतद्यत्पशुरिति यत्पशुमालभ्याग्निम्मन्थिति हृव्यायैवासंन्नाय सर्वा देवतां जनयत्युपाकृत्यैव मन्थ्यस्तन्नेवालंब्यं नेवानांलब्धमुग्नेर्जुनित्रमसीत्यांहाग्नेर्ह्यंतज्जनित्रं वृषंणौ स्थ इत्यांह् वृषंणौ॥२९॥

ह्यंताबुर्वश्यंस्यायुर्सीत्यांह मिथुन्त्वायं घृतेनाक्ते वृषंणं दधाथामित्यांह् वृषंण्ड् ह्यंते दधांते ये अग्निङ्गांयत्रं छन्दोऽनु प्र जांयस्वेत्यांह् छन्दोभिरेवैन्म्प्र जंनयत्यग्रये मुथ्यमानायानुं ब्रूहीत्यांह सावित्रीमृचमन्वांह सवितृप्रंसूत पुवैनंम्मन्थति जातायांनु ब्रूहि॥३०॥

प्रह्रियमांणायानुं ब्रूहीत्यांह् काण्डेंकाण्ड पुवैनं क्रियमांणे समर्धयित गायुत्रीः सर्वा अन्वांह गायुत्रछंन्दा वा अग्निः स्वेनैवैनं छन्दंसा समर्धयत्यग्निः पुरा भवंत्यग्निम्मंथित्वा प्र हंरित तौ सम्भवंन्तौ यजंमानम्भि सम्भवतो भवंतं नः समनसावित्यांह् शान्त्यै प्रह्त्यं जुहोति जातायैवास्मा अन्नमिपं दधात्याज्येन जुहोत्येतद्वा अग्नेः प्रियं धाम् यदाज्यम्प्रियेणेवैनं धाम्ना समर्धयत्यथो तेजंसा॥३१॥

यजंमानमाह् वृषंणौ जातायानुंब्रूह्मप्यष्टादंश च॥------[५]

ड्रषे त्वेतिं ब्र्हिरा देत्त ड्रच्छतं इव् ह्येष यो यर्जत उपवीर्सीत्याहोप् ह्येनानाकरोत्युपों देवान्दैवीर्विशः प्रागुरित्यांह् दैवीर्ह्येता विशः स्तीर्देवानुपयन्ति वहीर्षशज् इत्याहर्त्विजो व वहंय उशिज्स्तस्मादेवमांह बृहंस्पते धारया वसूनीति॥३२॥

आहु ब्रह्म वै देवानाम्बृह्स्पितुर्ब्रह्मणेवास्में पृशूनवं रुन्द्धे हृव्या तें स्वदन्तामित्यांह स्वदयंत्येवैनान्देवं त्वष्ट्वंसुं रुण्वेत्यांह त्वष्टा वै पंशूनाम्मिथुनानार् रूप्कृहूपमेव पृशुषुं दधाति रेवंती रमध्वमित्यांह पृशवो वै रेवतीः पृशूनेवास्में रमयति देवस्यं त्वा सिवृतः प्रमुव इति॥३३॥

र्शनामा देते प्रस्ताया अश्विनौर्बाहुभ्यामित्यांहाश्विनौ हि देवानांमध्वर्य आस्तां पूष्णो हस्तांभ्यामित्यांह् यत्यां ऋतस्यं त्वा देवहिवः पाशेना रंभ इत्यांह सत्यं वा ऋतः सत्येनैवैनंमृतेना रंभतेऽक्ष्णया पिरं हरित वध्यः हि प्रत्यश्चं प्रतिमुश्चिन्त व्यावृत्त्यै धर्षा मानुंषानिति नि युनिक्ते धृत्यां अञ्चः॥३४॥

त्वौषंधीभ्यः प्रोक्षामीत्यांहाद्यो ह्यंष ओषंधीभ्यः सम्भवंति यत्पशुरूपाम्पेरुर्सीत्यांहैष ह्यंपाम्पाता यो मेधायार्भ्यते स्वात्तं चिथ्सदेव ह्वयमापो देवीः स्वदंतैनमित्यांह स्वदयंत्येवैनम्पुपरिष्टात्योक्षंत्युपरिष्टादेवेनम्भध्यं करोति पाययंत्यन्तर्त एवेनम्भध्यं करोत्यधस्तादुपौक्षति सुर्वतं एवेनम्भध्यं करोति॥३५॥

वसूनितिं प्रसुव इत्युद्धौंऽन्तर्त एवेन्-दशं च॥-----[६]

अग्निना वै होत्रां देवा असुंरान्भ्यंभवत्रृग्नयं सिम्ध्यमानायानुं ब्रूहीत्यांहु भ्रातृंव्याभिभूत्ये सप्तदंश सामिधेनीरन्वांह सप्तदंशः प्रजापंतिः प्रजापंतिः प्रजापंतेरास्यं स्प्तदंशान्वांहु द्वादंश मासाः पञ्चर्तवः स संवथ्सरः संवथ्सरं प्रजा अनु प्र जायन्ते प्रजानां प्रजनंनाय देवा वै सामिधेनीरन्च्यं यज्ञं नान्वंपश्यन्थ्स प्रजापंतिस्तूष्णीमांघारम्॥३६॥

आघारयत्ततो वै देवा यज्ञमन्वंपश्यन् यत्तूष्णीमांघारमांघारयंति यज्ञस्यानुंख्यात्या असुरेषु वै यज्ञ आंसीत्तं देवास्तूष्णीश्होमेनांवृञ्जत् यत्तूष्णीमांघारमांघारयंति आतृंव्यस्यैव तद्यज्ञं वृंङ्के परिधीन्थ्सम्मांष्टिं पुनात्येवैनान्त्रिस्त्रिः सम्मांष्टिं त्र्यांवृद्धि यज्ञोऽथो रक्षंसामपंहत्यै द्वादंश सम्पंद्यन्ते द्वादंश॥३७॥

मासाः संवथ्सरः संवथ्सरमेव प्रीणात्यथो संवथ्सरमेवास्मा उपं दधाति सुवर्गस्यं लोकस्य सम्ध्रे शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदांघारांऽग्निः सर्वा देवता यदांघारमाघारयंति शीर्षत एव यज्ञस्य यज्ञमानः सर्वा देवता अवं रुन्द्वे शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदांघार आत्मा पृश्ररांघारमाघार्यं पृशु समनत्त्वात्मन्नेव यज्ञस्य॥३८॥

शिरः प्रतिं दधाति सं ते प्राणो वायुनां गच्छतामित्यांह वायुदेवत्यों वै प्राणो वायावेवास्यं प्राणं जुंहोति सं यजेत्रैरङ्गांनि सं यज्ञपंतिराशिषेत्यांह यज्ञपंतिमेवास्याशिषं गमयति विश्वरूपो वै त्वाष्ट्र उपरिष्टात्पशुम्भ्यंवमीत्तस्मांदुपरिष्टात्पशोर्नावं द्यन्ति यदुपरिष्टात्पशु सम्मक्ति मेध्यमेव॥३९॥

एनं क्रोत्यृत्विजों वृणीते छन्दार्रस्येव वृंणीते सप्त वृंणीते सप्त ग्राम्याः पृशवः सप्तार्ण्याः सप्त छन्दार्रस्युभयस्यावरुद्धा एकांदश प्रयाजान् यंजति दश् वै पृशोः प्राणा आत्मैकांद्रशो यावांनेव पृशुस्तम्प्र यंजति वृपामेकः परि शय आत्मैवात्मानं परि शये वज्रो वै स्विधितिर्वज्ञों यूपशकुलो घृतं खलु वै देवा वर्ज्ञं कृत्वा सोममप्रम्यृतेनाक्तौ पृशं त्रायिथामित्यांह वज्रेणैवैनं वशे कृत्वा लंभते॥४०॥

आ्घारम्पंचन्ते द्वादंशात्मन्नेव युज्ञस्य मेध्यंमेव खलु वा अष्टादंश च॥————[৬]

पर्यम्नि करोति सर्वहुतंमेवेनं करोत्यस्कन्दायास्कन्न् हि तद्यद्धुतस्य स्कन्दंति त्रिः पर्यम्नि करोति त्र्यांवृद्धि यज्ञोऽथो रक्षंसामपंहत्यै ब्रह्मवादिनो वदन्त्यन्वारभ्यः पृशू (३) र्नान्वारभ्या (३) इति मृत्यवे वा एष नीयते यत्पशुस्तं यदंन्वारभेत प्रमायुंको यज्ञंमानः स्यादथो खल्वांहः सुवर्गाय वा एष लोकार्यं नीयते यत्॥४१॥

पृशुरिति यन्नान्वारभेत सुवर्गाल्लोकाद्यजंमानो हीयेत वपाश्रपंणीभ्यामुन्वारंभते तन्नेवान्वारंब्यं नेवानंन्वारब्यमुप् प्रेष्यं होतर्ह्व्या देवेभ्य इत्यांहेषितः हि कर्म क्रियते रेवंतीर्य्ज्ञपंति प्रिय्धा विश्वतत्यांह यथायुजुरेवैतद्ग्निनां पुरस्तांदेति रक्षंसामपंहत्ये पृथिव्याः सम्पृचः पाहीतिं वर्हिः॥४२॥

उपाँस्यत्यस्कंन्दायास्कंन्न् हे तद्यद्वर्हिषि स्कन्दत्यथों बर्हिषदंमेवेनं करोति पराङा वंतितऽध्वर्युः पृशोः संज्ञाप्यमानात्पृशुभ्यं एव तन्नि ह्रंत आत्मनोनांन्नस्काय गच्छंति श्रियम्प्र पृश्चनांप्रोति य एवं वेदं पृश्चाल्लोका वा एषा प्राच्युदानीयते यत्पन्नी नमंस्त आतानेत्यांहादित्यस्य वै रुश्मयः॥४३॥

आतानास्तेभ्यं एव नर्मस्करोत्यन्वां प्रेहीत्यांहु भ्रातृंच्यो वा अर्वा भ्रातृंच्यापनुत्त्यै घृतस्यं कुल्यामनुं सह प्रजयां सह रायस्योषेणेत्यांहाशिषंमेवेतामा शांस्त आपों देवीः शुद्धायुव इत्यांह यथायुजुरेवेतत्॥४४॥

लोकार्य नीयते यद्वर्ही रश्मर्यः सप्तित्रिरंशच॥-----[८]

पृशोर्वा आलंब्यस्य प्राणाञ्छुगृंच्छति वाक्त आ प्यायतां प्राणस्त आ प्यायतामित्यांह प्राणेभ्यं पृवास्य शुचरं शमयति सा प्राणेभ्योऽधि पृथिवीर शुक्प्र विंशति शमहोंभ्यामिति नि नयत्यहोरात्राभ्यांमेव पृथिव्ये शुचरं शमयत्योषंधे त्रायंस्वैन्ड् स्वधिते मैनरं हिरसीरित्यांह वज्रो वै स्वधितिः॥४५॥

शान्त्यै पार्श्वत आच्छांति मध्यतो हि मंनुष्यां आच्छान्ति तिर्श्वीनमा च्छांत्यनूचीन् १ हि मंनुष्यां आच्छान्ति व्यावृत्त्यै रक्षंसाम्भागोऽसीति स्थविमतो बर्हिर्क्वापाँस्यत्यस्रैव रक्षारंसि निरवंदयत इदम्हर रक्षोंऽधुमं तमों नयामि योंऽस्मान्द्वेष्टि यं चं वयं द्विष्म इत्याह द्वौ वाव पुरुषो यं चैव॥४६॥

द्वेष्टि यश्चैनं द्वेष्टि तावुभावंधमं तमो नयतीषे त्वेति वपामुत्खिंदतीच्छतं इव ह्येष यो यजेते यद्पतृन्द्यादुद्रौंऽस्य पृशून्धातुंकः स्याद्यन्नोपतृन्द्यादयंता स्याद्न्ययोपतृणत्त्यन्यया न भृत्यै घृतेनं द्यावापृथिवी प्रोण्वांथामित्यांह द्यावांपृथिवी एव रसेनान्त्त्वछिन्नः॥४७॥

रायः सुवीर् इत्यांह यथायुजुरेवैतत्क्रूरमिंव् वा एतत्कंरोति यद्धपामृंत्खिदत्युर्वन्तरिक्षमिन्विहीत् शान्त्ये प्र वा एषौऽस्माल्लोकाच्यंवते यः पृशुम्मृत्यवे नीयमानमन्वारभेते वपाश्रपंणी पुनर्न्वारंभतेऽस्मिन्नेव लोके प्रति तिष्ठत्यग्निनां पुरस्तांदेति रक्षंसामपंहत्या अथौं देवतां एव हव्येनं॥४८॥

अन्वेति नान्तममङ्गार्मितं हरेद्यदंन्तममङ्गारमित्हरेद्देवता अति मन्येत वायो वीहिं स्तोकानामित्यांह् तस्माद्विभंक्ताः स्तोका अवं पद्यन्तेऽग्रं वा एतत्पंशूनां यद्यपाग्रमोषंधीनाम्बर्हिरग्रेणैवाग्रन् समर्धयत्यथो ओषंधीष्वेव पृशून्प्रतिं ष्ठापयित् स्वाहांकृतीभ्यः प्रेष्येत्यांह॥४९॥

युज्ञस्य सिमेध्यै प्राणापानौ वा एतौ पंशूनां यत्पृषदाज्यमात्मा वृपा पृषदाज्यमंभिघार्य वृपाम्भि घारयत्यात्मन्नेव पंशूनाम्प्राणापानौ दंधाति स्वाहोर्ध्वनंभसम्मारुतं गंच्छत्मित्यांहोर्ध्वनंभा ह स्म वै मांरुतो देवानां वपाश्रपंणी प्रहंरित तेनैवेने प्र हंरित विषूंची प्र हंरित तस्माद्विष्वंश्चौ प्राणापानौ॥५०॥

स्विधितिश्चैवाच्छिन्नो हुव्येनेप्येत्यांहु पद्गंत्वारि १ शच॥————[९]

पृशुमालभ्यं पुरोडाश्ं निर्वपित् समेंधमेवैनमा लंभते व्पयां प्रचर्य पुरोडाशेंन् प्र चंर्त्यूर्वें पुरोडाश् ऊर्जमेव पंशूनाम्मध्यतो दंधात्यथों पृशोरेव छिद्रमिपं दधाति पृषदाज्यस्योपहत्य त्रिः पृच्छिति श्रुतर हुवीः (३) शंमित्रिति त्रिषंत्या हि देवा योऽश्वंतर श्रुतमाह स एनंसा प्राणापानौ वा पृतौ पंशूनाम्॥५१॥

यत्पृषदाज्यम्पृशोः खलु वा आलंब्यस्य हृदयमात्माभि समेति यत्पृषदाज्येन् हृदयमभिघारयंत्यात्मन्नेव पंशूनाम्प्रांणापानौ दंधाति पृशुना वै देवाः सुंवर्गं लोकमायन्ते-ऽमन्यन्त मनुष्यां नोऽन्वाभविष्यन्तीति तस्य शिरंश्छित्त्वा मेधुम्प्राक्षांरय्न्थ्स प्रक्षीं-ऽभवत्तत्प्रक्षस्यं प्रक्षुत्वं यत्प्रक्षशाखोत्तंरबुर्हिर्भविति समेधस्यैव॥५२॥ पृशोरवं द्यति पृशुं वै ह्वियमांण् रक्षा स्यनं सचन्तेऽन्त्रा यूपं चाहवनीयं च हरित रक्षंसामपंहत्ये पृशोर्वा आलंब्यस्य मनोऽपं क्रामित मृनोतांये ह्विषोंऽवदीयमांनस्यानं ब्रूहीत्यांहु मनं पृवास्यावं रुन्द्ध एकांदशावदानान्यवं द्यति दश् वै पृशोः प्राणा आत्मैकांदृशो यावांनेव पशुस्तस्यावं॥५३॥

द्यति हृदंयस्याग्रेऽवं द्यत्यथं जिह्वाया अथ् वक्षंसो यद्वै हृदंयेनाभिगच्छंति ति ति विद्यां वदिते यि विद्यां वदिते तदुरसोऽधि निर्वदत्येतद्वै पृशोर्यथापूर्वं यस्यैवमंवदायं यथाकाम्मत्तंरेषामवद्यति यथापूर्वमेवास्यं पृशोरवंत्तम्भवित मध्यतो गुदस्यावं द्यति मध्यतो हि प्राण उत्तमस्यावं द्यति॥५४॥

उत्तमो हि प्राणो यदीतंरं यदीतंरमुभयंमेवाजांमि जायंमानो वै ब्राँह्मणस्त्रिभिर्ऋणवा जांयते ब्रह्मचर्येणर्षिभ्यो युज्ञेन देवेभ्यः प्रजयां पितृभ्यं एष वा अंनृणो यः पुत्री यज्वां ब्रह्मचरिवासी तदंवदानैरेवावं दयते तदंवदानांनामवदानृत्वन्देवासुराः संयंत्ता आस्नन्ते देवा अग्निमंब्रुवन्त्वयां वीरेणासुरान्भि भवामेति॥५॥

सौंऽब्रवीद्वरं वृणे पृशोरुं द्धारमुद्धंरा इति स एतमुंद्धारमुदंहरत दोः पूँर्वार्धस्यं गुदम्मध्यतः श्रोणिं जघनार्धस्य ततों देवा अभवन्यरासुंरा यत्र्यङ्गाणार्थं समवद्यति आतृंव्याभिभूत्ये भवंत्यात्मना पराँस्य आतृंव्यो भवत्यक्ष्णयावं द्यति तस्मादक्ष्णया पृशवोऽङ्गानि प्र हंरन्ति प्रतिष्ठित्ये॥५६॥

एतौ पंशूनार समेधस्यैव तस्यावौत्तमस्यावं द्यतीति पञ्चंचत्वारिरशच॥————[१०]

मेदंसा सुचौ प्रोर्णोति मेदोंरूपा वै प्शवों रूपमेव पृशुषुं दधाति यूषन्नंवधाय प्रोर्णोति रसो वा एष पंशूनां यद्य रसंमेव पृशुषुं दधाति पार्श्वेनं वसाहोमम्प्र यौति मध्यं वा एतत्पंशूनां यत्पार्श्वर रसं एष पंशूनां यद्वसा यत्पार्श्वनं वसाहोमम्प्रयौतिं मध्यत एव पंशूनार रसं दधाति प्रन्ति॥५७॥

वा एतत्पशुं यथ्मंज्ञ्पयंन्त्येन्द्रः खलु वे देवतंया प्राण ऐन्द्रोऽपान ऐन्द्रः प्राणो अङ्गेअङ्गे नि देष्यदित्यांह प्राणापानावेव पृशुषुं दधाति देवं त्वष्टभूरिं ते सरसंमेत्वित्यांह त्वाष्ट्रा हि देवतंया पृशवो विषुंरूपा यथ्सलंक्ष्माणो भव्येत्यांह विषुंरूपा ह्येते सन्तः सलंक्ष्माण एतर्हि भवन्ति देवत्रा यन्तम्॥५८॥

अवंसे सखायोऽनुं त्वा माता पितरों मदन्त्वत्याहानुंमतमेवैनंम्मात्रा पित्रा सुंवर्गं लोकं गंमयत्यर्धेर्चे वंसाहोमं जुंहोत्यसौ वा अंधेर्च इ्यमंधेर्च इमे एव रसेंनानक्ति दिशों जुहोति दिशं एव रसेंनानक्त्र्यथों दिग्भ्य एवोर्जु रस्मवं रुन्द्धे प्राणापानौ वा एतौ पंशूनां यत्पृंषदाज्यं वानस्पत्याः खलुं॥५९॥

वै देवतया पृशवो यत्पृषदाज्यस्योंपहत्याह् वनस्पत्येऽनुं ब्रूह् वनस्पतये प्रेष्येति प्राणापानावेव पृशुषुं दधात्यन्यस्यान्यस्य समवत्तर समवंद्यति तस्मान्नानांरूपाः पृशवों यूष्णोपं सिश्चति रसो वा एष पंशूनां यद्यू रसंमेव पृशुषुं दधातीडामुपं ह्वयते पृशवो वा इडां पृशूनेवोपं ह्वयते चृतुरुपं ह्वयते॥६०॥

चतुंष्पादो हि पृशवो यं कामयेतापृशुः स्यादित्यंमेदस्कं तस्मा आ देध्यान्मेदोरूपा वै पृशवों रूपेणैवैनंम्पृशुभ्यो निर्भंजत्यपृशुरेव भेवति यं कामयेत पशुमान्थ्रस्यादिति मेदंस्वत्तस्मा आ देध्यान्मेदोरूपा वै पृशवों रूपेणैवास्में पृशूनवं रुन्द्धे पशुमानेव भेवति प्रजापितिर्युज्ञमंसृजत् स आज्यम्॥६१॥

पुरस्तांदसृजत पृशुम्मध्यतः पृषदाज्यम्पश्चात्तस्मादाज्येन प्रयाजा इंज्यन्ते पृशुनां मध्यतः पृषदाज्येनांनूयाजास्तस्मादेतिन्मुश्रमिव पश्चाथ्सृष्ट् ह्येकांदशानूयाजान् यंजति दश् व पृशोः प्राणा आत्मैकांदशो यावांनेव पृशुस्तमन् यजित प्रन्ति वा एतत्पृशुं यथ्मैंज्ञपर्यन्ति प्राणापानौ खलु वा एतौ पंशूनां यत्पृषदाज्यं यत्पृषदाज्येनांनूयाजान् यजित प्राणापानावेव पृशुषुं दधाति॥६२॥

घ्रन्ति यन्तृङ्खलुं चृतुरुपं ह्वयत् आज्यं यत्पृषद्गज्येन् षट्वं॥______[११]

युज्ञेन ता उपयिङ्गिर्देवा वे युज्ञमाश्रींध्रे ब्रह्मवादिनः सत्वे देवस्य ग्रावांणं प्राण उपार्श्वंग्रा देवा वा उपार्श्यो वाग्वे मित्रं युज्ञस्य बृहुस्पतिर्देवा वा आंग्रयणाग्रानेकांदश॥ [१२]युज्ञेनं लोके पंशुमान्थ्स्याथ्सवंनुम्माध्यंन्दिनं वाग्वा अरिक्तानि तत्प्रजा अभ्येकंपश्चाशत्॥51॥ युज्ञेन गौर्भि निवंति॥

॥चतुर्थः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां षष्ठमकाण्डे चतुर्थः प्रश्नः॥

यज्ञेन वै प्रजापितः प्रजा अंसृजत् ता उंप्यिङ्गेरेवासृंजत् यदुंप्यजं उप्यजिति प्रजा एव तद्यजमानः सृजते जघनार्धादवं द्यति जघनार्धाद्धि प्रजाः प्रजायन्ते स्थविमृतोऽवं द्यति स्थविमृतो हि प्रजाः प्रजायन्तेऽसंिम्भिन्द्न्नवं द्यति प्राणानामसंम्भेदाय न पूर्यावर्तयित् यत्पर्यावर्तयेदुदावर्तः प्रजा ग्राहुंकः स्याथ्समुद्रं गंच्छ स्वाहेत्याह रेतंः॥१॥

एव तद्दंधात्यन्तिरक्षं गच्छु स्वाहेत्यांहान्तिरिक्षेणेवास्मैं प्रजाः प्र जंनयत्यन्तिरिक्ष् इ ह्यनुं प्रजाः प्रजायंन्ते देव संवितारं गच्छु स्वाहेत्यांह सवितृप्रंसूत एवास्मैं प्रजाः प्र जंनयत्यहोरात्रे गंच्छु स्वाहेत्यांहाहोरात्राभ्यांमेवास्मैं प्रजाः प्र जंनयत्यहोरात्रे ह्यनुं प्रजाः प्रजायंन्ते मित्रावरुंणो गच्छ स्वाहाँ॥२॥

इत्यांह प्रजास्वेव प्रजांतासु प्राणापानौ दंधाति सोमं गच्छ स्वाहेत्यांह सौम्या हि देवतंया प्रजा युज्ञं गंच्छु स्वाहेत्यांह प्रजा एव यज्ञियाः करोति छन्दारंसि गच्छु स्वाहेत्यांह पृश्वो वै छन्दारंसि पृश्न्वेवावं रुन्द्धे द्यावांपृथिवी गंच्छु स्वाहेत्यांह प्रजा एव प्रजांता द्यावांपृथिवीभ्यांमुभयतः परि गृह्णाति नर्मः॥३॥

दिव्यं गंच्छु स्वाहेत्यांह प्रजाभ्यं एव प्रजांताभ्यो वृष्टिं नि यंच्छत्युग्निं वैश्वान्रं गंच्छु स्वाहेत्यांह प्रजा एव प्रजांता अस्यां प्रतिं ष्ठापयित प्राणानां वा एषोऽवं द्यति योऽवद्यतिं गुदस्य मनों मे हार्दि युच्छेत्यांह प्राणानेव यंथास्थानमुपं ह्वयते पृशोर्वा आलंब्यस्य हृदयेषु शुगृंच्छिति सा हृंदयशूलम्॥४॥

अभि समेति यत्पृंथिव्याः हृंदयशूलमृंद्वासयैत्पृथिवीः शुचार्पयेद्यद्पस्वंपः शुचार्पयेच्छुष्कंस्य चार्द्रस्यं च संधावुद्वांसयत्युभयंस्य शान्त्ये यं द्विष्यात्तं ध्यायेच्छुचैवैनंमर्पयति॥५॥

रेतों मित्रावर्रुणौ गच्छु स्वाहा नभों हृदयशूलन्द्वात्रिर्शशच॥______[१]

देवा वै यज्ञमाग्नींध्रे व्यंभजन्त ततो यद्त्यशिष्यत् तदंब्रुवन्वसंतु नु नं इदमिति तद्वंसतीवरींणां वसतीवरित्वम् तस्मिन्प्रातर्न समंशक्नुवन्तद्फ्सु प्रावेंशयन्ता वंसती्वरीरभवन्वसती्वरींगृह्णाति युज्ञो वै वंसती्वरींर्य्ज्ञमेवारभ्यं गृही्त्वोपं वसति यस्यागृहीता अभि निम्रोचेदनांरब्योऽस्य यज्ञः स्यात्॥६॥

यज्ञं वि च्छिंन्द्याज्ञ्योतिष्यां वा गृह्णीयाद्धिरंण्यं वावधाय सशुंक्राणामेव गृह्णाति यो वाँ ब्राह्मणो बंहुयाजी तस्य कुम्भ्यांनां गृह्णीयाध्स हि गृंहीतवंसतीवरीको वसतीवरींगृंह्णाति पृश्चवो वै वंसतीवरींः पृश्चनेवारभ्यं गृहीत्वोपं वसति यदंन्वीपं तिष्ठंन्गृह्णीयात्रिर्मागुंका अस्मात्पृशवंः स्युः प्रतीपं तिष्ठंन्गृह्णाति प्रतिरुध्यैवास्मै पृशून्गृह्णातीन्द्रंः॥७॥

वृत्रमंहुन्थ्सो ३ऽपो ३ऽभ्यंम्रियत् तासां यन्मेध्यं यज्ञिय् सर्वेवमासीत्तदत्यंमुच्यत् ता वहंन्तीरभवन्वहंन्तीनां गृह्णाति या एव मेध्यां यज्ञियाः सर्वेवा आपस्तासांमेव गृह्णाति नान्तमा वहंन्तीरतीयाद्यदंन्तमा वहंन्तीरतीयाद्यज्ञमितं मन्येत् न स्थांवराणां गृह्णीयाद्वरुणगृहीता वै स्थांवरा यथ्स्थांवराणां गृह्णीयात्॥८॥

वर्रुणेनास्य युज्ञं ग्रांहयेद्यद्वे दिवा भवंत्युपो रात्रिः प्र विंशति तस्मां ताम्रा आपो दिवां ददश्चे यन्नक्तम्भवंत्यपोऽहः प्र विंशति तस्मां चन्द्रा आपो नक्तं ददश्चे छायायै चातपंतश्च संधौ गृह्णात्यहोरात्रयोरेवास्मै वर्णं गृह्णाति ह्विष्मंतीरिमा आप इत्याह ह्विष्कृंतानामेव गृह्णाति हविष्मार्थ अस्तु॥९॥

सूर्य इत्यांह् सशुंक्राणामेव गृंह्णात्यनुष्टुभां गृह्णाति वाग्वा अनुष्टुग्वाचैवैनाः सर्वया गृह्णाति चतुंष्पदय्चां गृह्णाति क्रिः सांदयित सप्त सम्पंद्यन्ते सप्तपंदा शक्करी पृशवः शक्करी पृश्न्वेवावं रुन्द्धेऽस्मै वै लोकाय गार्हंपत्य आ धीयतेऽमुष्मां आहव्नीयो यद्गार्हंपत्य उपसादयेदस्मिल्लोंके पंशुमान्थस्याद्ययदांहवनीयेऽमुष्मिन्नं॥१०॥

लोके पंशुमान्थस्यांदुभयोरुपं सादयत्युभयोंरेवैनं लोकयोः पशुमन्तं करोति सर्वतः परि हरित रक्षंसामपंहत्या इन्द्राग्नियोभांगधेयीः स्थेत्यांह यथायजुरेवैतदाग्नींप्र उपं वासयत्येतद्वे यज्ञस्यापंराजितं यदाग्नींप्रं यदेव यज्ञस्यापंराजितं तदेवेना उपं वासयित यतः खलु वे यज्ञस्य वितंतस्य न क्रियते तदनुं यज्ञ रक्षार्थस्यवं चरन्ति यद्वहंन्तीनां गृह्णाति क्रियमांणमेव तद्यज्ञस्यं शये रक्षंसामनंन्ववचाराय न ह्यंता ईलयन्त्या तृंतीयसवनात्परि शेरे यज्ञस्य सन्तंत्य॥११॥

स्यादिन्द्रो गृह्णीयादंस्त्वमुष्मिन्क्रियते षड्वि रंशतिश्च॥——

ब्रह्मवादिनों वदन्ति स त्वा अंध्वर्युः स्याद्यः सोमंमुपावृहर्न्थ्सर्वाभ्यो देवताभ्य उपावृहरेदितिं हृदे त्वेत्यांह मनुष्येभ्य पृवैतेनं करोति मनंसे त्वेत्यांह पितृभ्यं पृवैतेनं करोति दिवे त्वा सूर्याय त्वेत्यांह देवेभ्यं पृवैतेनं करोत्येतावंतीर्वे देवतास्ताभ्यं पृवैन्ष् सर्वाभ्य उपावंहरति पुरा वाचः॥१२॥

प्रवंदितोः प्रातरनुवाकमुपाकरोति यावंत्येव वाक्तामवं रुन्द्धेऽपोऽग्रेंऽभिव्याहंरित युज्ञो वा आपों यज्ञमेवाभि वाचं वि सृंजित् सर्वाणि छन्दा स्यन्वांह पृशवो वै छन्दा स्सि पृश्नेवावं रुन्द्धे गायित्रया तेजंस्कामस्य पिरं दध्यात्रिष्टुभेन्द्रियकांमस्य जगंत्या पृश्कांमस्यानुष्टुभौ प्रतिष्ठाकांमस्य पृङ्क्या युज्ञकांमस्य विराजान्नेकामस्य शृणोत्विग्निः सुमिधा हवम्॥१३॥

म् इत्यांह सिवतृप्रंसूत एव देवतांभ्यो निवेद्यापोऽच्छैंत्यप इंघ्य होत्रिरत्याहिषित १ हि कर्म क्रियते मैत्रांवरुणस्य चमसाध्वर्यवा द्रवेत्यांह मित्रावरुणौ वा अपां नेतारौ ताभ्यांमेवैना अच्छैति देवीरापो अपां नपादित्याहाहुंत्यैवेनां निष्क्रीयं गृह्णात्यथों ह्विष्कृंतानामेवाभिघृंतानां गृह्णाति॥१४॥

कार्षिर्सीत्यांह् शर्मलमेवासामपं प्लावयित समुद्रस्य वोक्षित्या उन्नय इत्यांह् तस्मांद्द्यमांनाः पीयमांना आपो न क्षीयन्ते योनिर्वे यज्ञस्य चात्वांलं यज्ञो वंसतीवरीर्ंहोत्चम्सं चं मैत्रावरुणचम्सं चं स्ड्स्पर्श्यं वसतीवरीर्व्यानंयित यज्ञस्यं सयोनित्वायाथो स्वादेवेना योनेः प्र जनयत्यध्वर्योऽवेर्पा (३) इत्याहोतेमंनन्नमुरुतेमाः पृश्येति वावेतदांह् यद्यिप्रिष्टोमो जुहोति यद्युक्थ्यः परि्षौ नि मांष्टिं यद्यंतिरात्रो यज्ञविदन्त्र पंद्यते यज्ञकतूनां व्यावृत्त्ये॥१५॥

वाचो हर्वम्भिर्घृतानां गृह्णात्युत पश्चवि शितश्च॥———[३]

देवस्यं त्वा सिवृतुः प्रंस्व इति ग्रावांणमा देते प्रसूँत्या अश्विनौंर्बाहुभ्यामित्यांहाश्विनौ हि देवानांमध्वर्यू आस्तांम् पूष्णो हस्तांभ्यामित्यांह् यत्ये पृशवो वे सोमौं व्यान उपारशुसवंनो यदुंपारशुसवंनम्भि मिमीते व्यानमेव पृशुषुं दधातीन्द्रांय त्वेन्द्रांय त्वेतिं मिमीत इन्द्रांय हि सोमं आहियते पश्च कृत्वो यज्ञंषा मिमीते॥१६॥

पश्चौक्षरा पृङ्किः पाङ्को युज्ञो युज्ञमेवावं रुन्द्धे पश्च कृत्वंस्तूष्णीन्दश् सम्पंद्यन्ते दशाँक्षरा विराडन्नं विराङ्चिराजैवान्नाद्यमवं रुन्द्धे श्वाृत्राः स्थं वृत्रतुर् इत्यांहैष वा अपार सोमपी्थो य एवं वेद नापस्वार्तिमार्च्छति यत्तें सोम दिवि ज्योतिरित्यांहैभ्य एवैनम्॥१७॥

लोकेभ्यः सम्भरिति सोमो वै राजा दिशोऽभ्यंध्यायथ्स दिशोऽनु प्राविंशत्प्रागपागुदंगधरागित्यांह दिग्भ्य एवैन् सम्भर्त्यथो दिशं एवास्मा अवं रुन्द्धेऽम्ब नि ष्वरेत्यांह कामुंका एन् स्नियो भवन्ति य एवं वेद यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवीति॥१८॥

आहैष वै सोमंस्य सोमपीथो य एवं वेद न सौम्यामार्तिमार्च्छति घ्नन्ति वा एतथ्सोम् यदंभिषुण्वन्त्य १ शूनपं गृह्णति त्रायंत एवैनं प्राणा वा अ१ शर्वः प्रशवः सोमोऽ१ शून्पुन्रपि सृजति प्राणानेव पृशुषुं दधाति द्वौद्वाविषं सृजति तस्माद्वौद्वौं प्राणाः॥१९॥

यर्जुषा मिमीत एनं जागृवीति चतुंश्चत्वारि शच॥______

प्राणो वा एष यदुंपा्रश्चर्यदुंपा्रश्चंग्रा ग्रहां गृह्यन्तें प्राणमेवानु प्र यंन्त्यरुणो हं स्माहौपंवेशिः प्रातःसवन एवाहं यज्ञर सङ्स्थांपयामि तेन ततः सङ्स्थितेन चरामीत्यष्टौ कृत्वोऽग्रेऽभि षुंणोत्यष्टाक्षंरा गायत्री गांयत्रम्प्रांतःसवनम् प्रांतःसवनमेव तेनाप्रोत्येकांदश् कृत्वौ द्वितीयमेकांदशाक्षरा त्रिष्टुत्रेष्टुंभम्माध्यंदिनम्॥२०॥

सर्वनुम्मार्ध्येदिनमेव सर्वनं तेनाँप्रोति द्वादंश कृत्वंस्तृतीयुन्द्वादंशाक्षरा जगंती जागंतं तृतीयसवनन्तृतीयसवनमेव तेनाँप्रोत्येताः ह् वाव स यज्ञस्य सङ्स्थितिमुवाचास्कंन्दायास्कंत्रः हि तद्यद्यज्ञस्य सङ्स्थितस्य स्कन्दत्यथो खल्वांहुर्गायत्री वाव प्रांतःसवने नातिवाद इत्यनंतिवादुक एनुम्भ्रातृंव्यो भवति य एवं वेद तस्मादृष्टावंष्टौ॥२१॥

कृत्वोऽभिषुत्यं ब्रह्मवादिनो वदन्ति प्वित्रंवन्तोऽन्ये ग्रहां गृह्मन्ते किम्पंवित्र उपार्शुरिति वाक्पंवित्र इतिं ब्रूयात् वाचस्पतंये पवस्व वाजिन्नित्यांह वाचैवैनंम्पवयिते वृष्णो अर्शुगुभ्यामित्यांह वृष्णो ह्येतावर्श्यू यौ सोमंस्य गभंस्तिपूत् इत्यांह गभंस्तिना ह्येनम्पवयंति देवो देवानां प्वित्रंमसीत्यांह देवो ह्येषः॥२२॥

सं देवानां पिवित्रं येषां भागोऽसि तेभ्यस्त्वेत्यांह् येषा् होष भागस्तेभ्यं एनं गृह्णाति स्वां कृतोऽसीत्यांह प्राणमेव स्वमंकृत् मधुंमतीर्न् इषंस्कृधीत्यांह् सर्वमेवास्मां इदः स्वंदयति विश्वेभ्यस्त्वेन्द्रियेभ्यों दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्य इत्यांहोभयेंष्वेव देवमनुष्येषुं प्राणान्दंधाति मनंस्त्वा॥२३॥

अष्ट्वित्यांह् मनं पुवाश्चंत उर्वन्तरिक्षमन्विहीत्यांहान्तरिक्षदेवृत्यों हि प्राणः स्वाहाँ त्वा सुभवः सूर्यायेत्यांह प्राणा वै स्वभंवसो देवास्तेष्वेव पुरोक्षं जुहोति देवेभ्यंस्त्वा मरीचिपेभ्य इत्याहादित्यस्य वै रश्मयों देवा मंरीचिपास्तेषां तद्भांगुधेयन्तानेव तेनं प्रीणाति यदि कामयेत वर्षुकः पर्जन्यः॥२४॥

स्यादिति नीचा हस्तेन नि मृंज्याद्वृष्टिंमेव नि यंच्छति यदिं कामयेतावंर्षुकः स्यादित्युंतानेन नि मृंज्याद्वृष्टिंमेवोद्यंच्छति यद्यंभिचरेदमुं ज्रह्मथं त्वा होष्यामीतिं ब्रूयादाहुंतिमेवैनंम्य्रेफ्सन् हंन्ति यदिं दूरे स्यादा तिमंतोस्तिष्ठेत्प्राणमेवास्यांनुगत्यं हन्ति यद्यंभिचरेदमुष्यं॥२५॥

त्वा प्राणे सांदयामीति सादयेदसंत्रो वै प्राणः प्राणमेवास्यं सादयित षङ्किर्ष्शुभिः पवयित षङ्का ऋतवं ऋतुभिरेवैनंम्पवयित त्रिः पंवयित त्रयं इमे लोका एभिरेवैनं लोकैः पंवयित ब्रह्मवादिनो वदन्ति कस्मांथ्सृत्यात्रयः पश्चार हस्तांदाना इति यत्रिरुंपार्शुर हस्तेन विगृह्णाति तस्मात्रयः पश्चार हस्तांदानाः पुरुषो हस्ती मुर्कटः॥२६॥

मार्ध्यन्दिनमुष्टावेष्टावेष मनस्त्वा पूर्जन्योऽमुष्य पुरुषो द्वे चं॥-----[५]

देवा वै यद्यज्ञेऽकुंर्वत् तदसुंरा अकुर्वत् ते देवा उंपार्शौ यज्ञश् सङ्स्थाप्यंमपश्यन्तमुंपार्शौ समंस्थापयन्तेऽसुंरा वज्रंमुद्यत्यं देवान्भ्यांयन्त् ते देवा बिभ्यंत् इन्द्रमुपांधावन्तानिन्द्रौंऽन्तर्यामेणान्तरंधत्त तदंन्तर्यामस्यौन्तर्यामुत्वम् यदंन्तर्यामो गृह्यते भ्रातृंव्यानेव तद्यजंमानोऽन्तर्थत्तेऽन्तस्तै॥२७॥

द्धामि द्यावापृथिवी अन्तरुर्वन्तरिक्षमित्यांहैभिरेव लोकेर्यजमानो भ्रातृंव्यानुन्तर्धत्ते ते देवा अमन्यन्तेन्द्रो वा इदर्मभूद्यद्वयः स्म इति तैंऽब्रुवन्मघंवन्नन्नं न आ भजेतिं सजोषां देवैरवंरैः परैश्चेत्यंब्रवीद्ये चैव देवाः परे ये चावरे तानुभयान्॥२८॥

अन्वार्भजथ्मजोषां देवैरवंरैः परैश्चेत्यांह् ये चैव देवाः परे य चावंरे तानुभयांनुन्वार्भजत्यन्तर्यामे मेघवन्मादयस्वेत्यांह यज्ञादेव यजमानं नान्तरैत्युपयामगृहीतो- ऽसीत्यांहापानस्य धृत्ये यदुभावंपवित्रौ गृह्येयांतां प्राणमंपानोऽनु न्यृंच्छेत्प्रमायुंकः स्यात्पवित्रंवानन्तर्यामो गृह्यते॥२९॥

प्राणापानयोर्विधृंत्यै प्राणापानो वा एतौ यदुंपारश्वन्तर्यामौ व्यान उंपारशुसवंनो यं कामयंत प्रमायुंकः स्यादित्यसईस्पृष्टौ तस्यं सादयेद्धानेनैवास्यं प्राणापानौ वि च्छिंनत्ति ताजक्प्रमीयते यं कामयंत सर्वमायुंरियादिति सइस्पृंष्टौ तस्यं सादयेद्धानेनैवास्यं प्राणापानौ सं तंनोति सर्वमायुंरित॥३०॥

त उभयाँन्गृह्यते चतुंश्चत्वारि १शच॥_____

-[ε]

वाग्वा एषा यदैँन्द्रवाय्वो यदैँन्द्रवाय्वाग्रा ग्रहां गृह्यन्ते वाचंमेवानु प्र यन्ति वायुं देवा अंब्रुवन्थ्सोम् राजांन रहनामिति सौंऽब्रवीद्वरं वृणे मदंग्रा एव वो ग्रहां गृह्यान्ता इति तस्मादैन्द्रवायवाग्रा ग्रहां गृह्यन्ते तमंघ्रन्थ्सोऽपूयत् तं देवा नोपांधृष्णुवन्ते वायुमंब्रुवित्रमं नंः स्वदय॥३१॥

इति सौंऽब्रवीद्वरं वृणै महेवृत्याँन्येव वः पात्राँण्युच्यान्ता इति तस्माँन्नानादेवृत्यांनि सन्ति वाय्व्याँन्युच्यन्ते तमेँभ्यो वायुरेवास्वदयत्तस्माद्यत्पूर्यति तत्प्रवाते वि षंजन्ति वायुर्हि तस्यं पवियता स्वंदियता तस्यं विग्रहंणं नार्विन्दुन्थ्साऽदितिरब्रवीद्वरं वृणा अथ मया वि गृह्णीध्वम्महेवृत्यां एव वः सोमाः॥३२॥

स्त्रा अंस्त्रित्युंपयामगृंहीतोऽसीत्यांहादितिदेवृत्यांस्तेन यानि हि दांक्मयांणि पात्रांण्यस्यै तानि योनेः सम्भूंतानि यानि मृन्मयांनि साक्षात्तान्यस्यै तस्मादेवमांह् वाग्वै पराच्यव्यांकृतावद्त्ते देवा इन्द्रंमब्रुवित्नमां नो वाचं व्याकुर्विति सौंऽब्रवीद्वरं वृणे मह्यं चैवैष वायवें च सह गृंह्याता इति तस्मादेन्द्रवायवः सह गृंह्यते तामिन्द्रों मध्यतोंऽवृक्षम्य व्याकंरोत्तस्मादियं व्याकृंता वागुंद्यते तस्मांथ्सकृदिन्द्रांय मध्यतो गृंह्यते द्विव्यवे द्वौ हि स वराववृंणीत॥३३॥

स्वृद्य सोमाः सहाष्टावि १ शतिश्व॥

-[७]

मित्रं देवा अंब्रुवन्थ्सोम् राजांन हनामेति सौंऽब्रवीन्नाह सर्वस्य वा अहम्मित्रम्स्मीति तमंब्रुवन् हनांमैवेति सौंऽब्रवीद्वरं वृणै पयंसैव मे सोम श्रीणन्तिति तस्मौंन्मैत्रावरुणस्पयंसा श्रीणन्ति तस्मौंत्पशवोऽपौंकामन् मित्रः सन्क्रूरमंकरितिं क्रूरमिंव खलु वा एषः॥३४॥

क्रोति यः सोमेन् यजंते तस्मात्पशबोऽपं क्रामन्ति यन्मैत्रावरुणम्पयंसा श्रीणाति

पृशुभिरेव तन्मित्र संमूर्धयंति पृशुभिर्यजमानम्पुरा खलु वावैविम्मित्रोऽवेदप् मत्क्रूरं चुत्रुषंः पृशवंः क्रिमिष्यन्तीति तस्मादेवमंवृणीत् वर्रुणं देवा अंब्रुवन्त्वयार्थश्रभुवा सोम् राजानर हनामेति सौंऽब्रवीद्वरं वृणे मह्यं च॥३५॥

पुवेष मित्रायं च सह गृंह्याता इति तस्माँ-मैत्रावरुणः सह गृंह्यते तस्माद्राज्ञा राजांनम॰श्यभुवाँ घ्रन्ति वैश्येन वैश्ये॰ शूद्रणं शूद्रत्र वा इदं दिवा न नक्तंमासीदव्यावृत्तन्ते देवा मित्रावरुणावब्रुवित्रदं नो वि वांसयत्मिति तावंब्रूतां वरं वृणावहा एकं पुवावत्पूर्वो ग्रहों ग्रहो गृह्याता इति तस्मांदैन्द्रवायवः पूर्वो मैत्रावरुणाद्गृंह्यते प्राणापानौ ह्यंतौ यदुंपा॰श्वन्तर्यामौ मित्रोऽह्रजनयद्वरुणो रात्रिन्ततो वा इदं व्यौच्छ्व द्यन्मैत्रावरुणो गृह्यते व्यष्टिम॥३६॥

एष चैंन्द्रवायवो द्वावि १ शतिश्च॥____

■Γ / 1

यज्ञस्य शिरों ऽच्छिद्यत् ते देवा अश्विनांवब्रुविन्भिषजो वै स्थं इदं यज्ञस्य शिर्ः प्रतिं धत्तितित् तार्वब्रूतां वरं वृणावहै ग्रहं एव नावत्रापिं गृह्यतामिति ताभ्यामेतमांश्विनमंगृह्यन्ततो वै तौ यज्ञस्य शिरः प्रत्यंधत्ताम् यदांश्विनो गृह्यते यज्ञस्य निष्कृत्यै तौ देवा अंब्रुवृत्नपूंतौ वा इमौ मंनुष्यचरौ॥३७॥

भिषजाविति तस्माँ द्वाह्मणेनं भेषुजं न कार्यं मपूर्तो ह्ये ३ षों ऽमेध्यो यो भिषक्तौ बंहिष्यवमानेनं पवियत्वा ताभ्यां मेतमाँ श्विनमंगृह्यन्तस्माँ द्विहिष्यवमाने स्तुत आँश्विनो गृह्यते तस्मादेवं विदुषां बहिष्यवमान उपसद्यः प्वित्रं वै बंहिष्यवमान आत्मानं मेव पंवयते तर्यों स्त्रेधा भेषं ज्यं वि न्यंदधुरुग्नौ तृतीयमुपस् तृतीयम्ब्राह्मणे तृतीयन्तस्मां दुदपात्रम्॥३८॥

उपनिधार्य ब्राह्मणं देक्षिणतो निषाद्यं भेषुजं कुंर्याच्यावेदेव भेषुजं तेनं करोति समर्धुंकमस्य कृतम्भविति ब्रह्मवादिनों वदन्ति कस्माँथ्मत्यादेकंपात्रा द्विदेवत्यां गृह्मन्तें द्विपात्रां हूयन्त इति यदेकंपात्रा गृह्मन्ते तस्मादेकौंऽन्तर्तः प्राणो द्विपात्रां हूयन्ते तस्माद्वौद्वौं बहिष्टांत्प्राणाः प्राणा वा एते यद्विदेवत्याः पृशव इडा यदिडाम्पूर्वां द्विदेवत्येंभ्य उपह्वयंत॥३९॥

पृशुभिः प्राणान्-तर्दधीत प्रमायुंकः स्याद्विदेवृत्याँन्भक्षयित्वेडामुपं ह्वयते प्राणान्वात्मन्धित्वा पृशूनुपं ह्वयते वाग्वा ऐंन्द्रवायवश्चक्षुंर्मैत्रावरुणः श्रोत्रंमाश्विनः पुरस्तांदैन्द्रवायवम्भंक्षयित् तस्मांत्पुरस्तांद्वाचा वंदित पुरस्तांन्मैत्रावरुणं तस्मांत्पुरस्ताचक्षुंषा पश्यित सूर्वतः परि्हारंमाश्विनं तस्मांथ्सुर्वतः श्रोत्रेण शृणोति प्राणा वा एते यिद्वेदेवत्याः॥४०॥

अरिक्तानि पात्राणि सादयित तस्मादिरिक्ता अन्तर्तः प्राणा यतः खलु वै यज्ञस्य वितंतस्य न क्रियते तदनुं यज्ञ र रक्षार्श्स्यवं चरन्ति यदिरिक्तानि पात्राणि सादयिति क्रियमाणमेव तद्यज्ञस्यं शये रक्षंसामनंन्ववचाराय दिक्षंणस्य हिव्धानस्योत्तरस्यां वर्तन्यार सादयित वाच्येव वाचं दधात्या तृतीयसवनात्परि शेरे यज्ञस्य सन्तंत्ये॥४१॥

म्नुष्यच्रावुंदपात्रमुंपृह्वयेत द्विदेवृत्याः षद्वंत्वारि १शच॥———[९]

बृह्स्पतिंर्देवानां पुरोहित् आसीच्छण्डामकीवसुराणां ब्रह्मण्वन्तो देवा आसन्ब्रह्मण्वन्तो-ऽसुरास्ते ३५२योन्यं नाशंक्रुवन्नभिभवितुन्ते देवाः शण्डामकीवुपांमन्त्रयन्त तावंब्र्तां वरं वृणावहै ग्रहांवेव नावत्रापि गृह्येतामिति ताभ्यांमेतौ शुक्रामन्थिनांवगृह्चन्ततो देवा अभवन्यरासुरा यस्यैवं विदुषः शुक्रामन्थिनौ गृह्येते भवत्यात्मना परा॥४२॥

अस्य भ्रातृंच्यो भवित तौ देवा अंपनुद्यात्मन् इन्द्रांयाजुहवुरपंनुत्तौ शण्डामकौं सहामुनेतिं ब्रूयाद्यं द्विष्याद्यमेव द्वेष्टि तेनैनौ सहापं नुदते स प्रथमः सङ्कृतिर्विश्वकुर्मत्येवैनांवात्मन् इन्द्रांयाजुहवुरिन्द्रो ह्येतानिं रूपाणि करिकृदचंरदसौ वा आंदित्यः शुक्रश्चन्द्रमां मन्थ्यंपिगृह्य प्राश्चौ निः॥४३॥

ऋामृत्स्तस्मात्प्राश्चौ यन्तौ न पंश्यन्ति प्रत्यश्चांवावृत्यं जुहृत्स्तस्मांत्प्रत्यश्चौ यन्तौ पश्यन्ति चक्षुंषी वा एते यज्ञस्य यच्छुकामृन्थिनौ नासिंकोत्तरवेदिर्भितः परिक्रम्यं जुहृत्स्तस्मांद्भितो नासिंकां चक्षुंषी तस्मान्नासिंकया चक्षुंषी विधृते सर्वतः परि कामतो रक्षंसामपंहत्यै देवा वै याः प्राचीराहुंतीरजुंहवुर्ये पुरस्तादसुंरा आसुन्ताः स्ताभिः प्र॥४४॥

अनुदन्त याः प्रतिचीर्ये पृश्चादसुंरा आस्नताः स्ताभिरपानुदन्त प्राचीर्न्या आहुंतयो हृयन्ते प्रत्यश्चौ शुक्रामृन्थिनौ पृश्चाचैव पुरस्तांच यजमानो भ्रातृंव्यान्प्र णुंदते तस्मात्परांचीः प्रजाः प्र वीयन्ते प्रतीचीर्जायन्ते शुक्रामृन्थिनौ वा अनुं प्रजाः प्र जायन्तेऽत्रीश्चाद्याश्च सुवीराः प्रजाः प्रंजनयन्परीहि शुक्रः शुक्रशोचिषा॥४५॥

सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन्परीहि मुन्थी मुन्थिशोचिषेत्यांहैता वै सुवीरा

या अत्रीरेताः सुप्रजा या आद्यां य एवं वेदात्र्यंस्य प्रजा जायते नाद्यां प्रजापंतेरक्ष्यंश्वयत्तत्परांपतृत्तद्विकंङ्कतम्प्राविंशृत्तद्विकंङ्कते नारंमत् तद्यवम्प्राविंशृत् तद्यवेंऽरमत् तद्यवंस्य॥४६॥

यवत्वं यद्वैकंङ्कतम्मन्थिपात्रम्भवंति सक्तुंभिः श्रीणातिं प्रजापंतेरेव तच्चक्षुः सम्भरित ब्रह्मवादिनों वदन्ति कस्मांथ्सत्यान्मंन्थिपात्रः सदो नाश्रुंत इत्यांर्तपात्रः हीतिं ब्रूयाद्यदंश्रुवीतान्थौंऽध्वर्युः स्यादार्तिमार्च्छ्रेत्तस्मान्नाश्रुंते॥४७॥

आत्मना परा निष्प्र शुक्रशोचिषा यवस्य सप्तित्रिर्श्शच॥————[१०]

देवा वै यद्यज्ञेऽर्कुर्वत् तदस्रीरा अकुर्वत् ते देवा आग्नयणाग्रान्ग्रहानपश्यन्तानगृह्णत् ततो वै तेऽग्रं पर्यायन् यस्यैवं विदुषं आग्नयणाग्रा ग्रहां गृह्यन्तेऽग्रंमेव संमानानां पर्येति रुग्णवंत्यर्चा भ्रातृंव्यवतो गृह्णीयाद्भातृंव्यस्यैव रुक्षाग्रं समानानां पर्येति ये देवा दिव्येकांदश् स्थेत्यांह॥४८॥

पुतावंतीर्वे देवतास्ताभ्यं पुवैन् सर्वाभयो गृह्णात्येष ते योनिर्विश्वभयस्त्वा देवभ्य इत्याह वैश्वदेवो ह्येष देवत्या वाग्वै देवभ्योऽपाँकामद्यज्ञायातिष्ठमाना ते देवा वाच्यपंकान्तायां तूष्णीं ग्रहानगृह्णत् साऽमन्यत् वागुन्तर्यन्ति वै मेति साग्रयणम्प्रत्यागंच्छत्तदाँग्रयणस्याँग्रयणत्वम्॥४९॥

तस्मादाग्रयणे वाग्वि सृंज्यते यत्तूष्णीम्पूर्वे ग्रहां गृह्यन्ते यथाँ थ्सारीयंति म् आख् इयंति नापं राथ्स्यामीत्युंपावसृजत्येवमेव तदंष्वर्युरांग्रयणं गृहीत्वा यज्ञमारभ्य वाचं वि सृंजते त्रिर्हिं कंरोत्युद्गातॄनेव तद्वंणीते प्रजापंतिर्वा एष यदांग्रयणो यदांग्रयणं गृहीत्वा हिंकरोतिं प्रजापंतिरेव॥५०॥

तत्प्रजा अभि जिंघ्रिति तस्माँद्धथ्सं जातं गौर्भि जिंघ्रत्यात्मा वा एष यज्ञस्य यदाँग्रयणः सर्वनेसवनेऽभि गृंह्णात्यात्मन्नेव यज्ञः सं तंनोत्युपरिष्टादा नंयिति रेतं एव तद्दंधात्यधस्तादुपं गृह्णाति प्र जनयत्येव तद्वंह्मवादिनों वदन्ति कस्माँथ्सत्याद्गायत्री किनेष्ठा छन्दंसाः स्ती सर्वाणि सर्वनानि वह्तीत्येष वै गांयित्रये वथ्सो यदाँग्रयणस्तमेव

तदंभिनिवर्त्र सर्वाणि सर्वनानि वहति तस्मौद्धथ्सम्पाकृतं गौर्भि नि वर्तते॥५१॥

आह्राम्रयणुत्वं प्रजापंतिरेवेति विश्शतिश्चं॥————[११]

इन्द्रों वृत्रायायुर्वे यज्ञेनं सुवृग्गियेन्द्रों मुरुद्धिरिदितिरन्तर्यामपात्रेणं प्राण उंपारशुपात्रेणेन्द्रों वृत्रमंह्न्तस्य ग्रहान् वे प्रान्यान्येकांदश॥ [१२] इन्द्रों वृत्राय पुनंर्ऋतुनांह मिथुनम्पृशवो नेष्टः पत्नीमुपारश्वन्तर्यामयोर्द्विचंत्वारिरशत्॥ 42॥ इन्द्रों वृत्रायं पाङ्कत्वम्॥

॥पञ्चमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां षष्ठमकाण्डे पञ्चमः प्रश्नः॥

इन्द्रों वृत्राय वज्रमुदंयच्छुथ्स वृत्रो वज्रादुद्यंतादिबभेथ्सौंऽब्रवीन्मा मे प्र हारस्ति वा इदम्मयिं वीर्यं तत्ते प्र दौस्यामीति तस्मां उक्थ्यंम्प्रायंच्छुत्तस्मैं द्वितीयमुदंयच्छुथ्सौंऽब्रवीन्मा मे प्र हारस्ति वा इदं मियं वीर्यं तत्ते प्र दौस्यामीति॥१॥

तस्मां उक्थ्यंमेव प्रायंच्छत्तस्मैं तृतीयमुदंयच्छत्तं विष्णुरन्वंतिष्ठत जहीति सौंऽब्रवीन्मा मे प्र हारस्ति वा इदम्मयिं वीर्यं तत्ते प्र दौस्यामीति तस्मां उक्थ्यंमेव प्रायंच्छत्तं निर्मायम्भूतमहन् युज्ञो हि तस्यं मायासीद्यदुक्थ्यों गृह्यतं इन्द्रियमेव॥२॥

तद्वीर्यं यजंमानो भ्रातृंव्यस्य वृङ्कः इन्द्रांय त्वा बृहद्वंते वयंस्वत इत्याहेन्द्रांय हि स तम्प्रायंच्छ्तस्मैं त्वा विष्णंवे त्वेत्यांह् यदेव विष्णुंर्न्वतिष्ठत जहीति तस्माद्विष्णुंम्न्वाभंजित त्रिर्निर्गृह्णाति त्रिर्हि स तं तस्मै प्रायंच्छदेष ते योनिः पुनंर्हविर्सीत्यांह पुनंःपुनः॥३॥

ह्यंस्मान्निर्गृह्णाति चक्षुर्वा पृतद्यज्ञस्य यदुक्थ्यंस्तस्मांदुक्थ्यं हुत सोमां अन्वायंन्ति तस्माद्यात्मा चक्षुरन्वेति तस्मादेकं यन्तंम्बह्वोऽन् यन्ति तस्मादेको बहूनाम्भद्रो भविति तस्मादेको बहुनिर्माये यत्त्रयश्चरेनौपयेय्मित्यंन्तराहंवनीयं च हिव्धानं च तिष्ठन्नवं नयेत्॥४॥

आत्मानंमेव यंज्ञयश्सेनांपियति यदि कामयेत् यजंमानं यज्ञयश्सेनांपियेयमित्यंन्तुरा संदोहविर्धाने तिष्ठन्नवं नयेद्यजंमानमेव यंज्ञयश्सेनांपियति यदि कामयेत सदस्यान् यज्ञयश्रसेनांपययमिति सदं आलभ्यावं नयेथ्सद्स्यांनेव यंज्ञयश्रसेनांपीयति॥५॥

इतींन्द्रियमेव पुनं:पुनर्नयेत्रयंस्नि १ शच॥_____

[8]

आयुर्वा पृतद्यज्ञस्य यद्भुव उत्तमो ग्रहाणां गृह्यते तस्मादायुंः प्राणानांमृत्तमम्मूर्धानं दिवो अंर्तिं पृंथिव्या इत्यांह मूर्धानंमेवेन समानानां करोति वैश्वान्रमृतायं जातमृग्निमित्यांह वैश्वान् र हि देवत्यायुं रुभ्यतों वैश्वानरो गृह्यते तस्मादुभ्यतः प्राणा अधस्तां चोपरिष्टा चार्धिनो- उन्ये ग्रहां गृह्यन्ते ऽर्धी ध्रवस्तस्मात्॥६॥

अध्यंबाँङ्गाणौं ऽन्येषां प्राणानामुपाँ हो उन्हाँ साद्यन्ते ऽनुपोप्ते ध्रुवस्तस्माद्स्श्रान्याः प्रजाः प्रतितिष्ठंन्ति मा १ सेनान्या असुंग् वा उत्तर्तः पृथिवीम्पयांचिकीर्षन्तां देवा ध्रुवेणां ह १ हन्तद्भुवस्यं ध्रुवृत्वं यद्भुव उत्तर्तः साद्यते धृत्या आयुर्वा एतद्यज्ञस्य यद्भुव आत्मा होता यद्धांतृचम्से ध्रुवमंवनयंत्यात्मन्नेव यज्ञस्यं॥ ७॥

आयुर्दधाति पुरस्तांदुक्थस्यांवनीय इत्यांहुः पुरस्ताद्धायुंषो भुङ्के मध्यतोऽवनीय इत्यांहुर्मध्यमेन ह्यायुंषो भुङ्क उत्तरार्धेऽवनीय इत्यांहुरुत्तमेन ह्यायुंषो भुङ्के वैश्वदेव्यामृचि शुस्यमानायामवं नयति वैश्वदेव्यो वै प्रजाः प्रजास्वेवायुर्दधाति॥८॥

ध्रुवस्तस्मादेव युज्ञस्यैकान्नचंत्वारि ५शर्च॥

-[2]

यज्ञेन वै देवाः सुंवर्गं लोकमायन्तेऽमन्यन्त मनुष्यां नोऽन्वाभविष्यन्तीति ते संवथ्सरेणं योपयित्वा सुंवर्गं लोकमायन्तमृषय ऋतुग्रहेरेवानु प्राजानन्यदंतुग्रहा गृह्यन्ते सुवर्गस्यं लोकस्य प्रज्ञात्ये द्वादंश गृह्यन्ते द्वादंश मासाः संवथ्सरः संवथ्सरस्य प्रज्ञात्ये सह प्रंथमौ गृह्येते सहोत्तमौ तस्माद्वौद्वांवृतू उभयतोमुखमृतुपात्रम्भविति कः॥९॥

हि तद्वेद यतं ऋतूनाम्मुखंमृतुना प्रेष्येति षद्गृत्वं आह् षड्वा ऋतवं ऋतूनेव प्रींणात्यृतुभिरितिं चतुश्चतुंष्यद एव प्शून्प्रींणाति द्विः पुनंर्ऋतुनांह द्विपदं एव प्रींणात्यृतुना प्रेष्येति षद्गृत्वं आहुर्तुभिरितिं चतुस्तस्माचतुंष्पादः पृशवं ऋतूनुपं जीवन्ति द्विः॥१०॥

पुनंर्ऋतुनांह् तस्माँद्विपादश्चतुंष्पदः पृश्नुन्पं जीवन्त्यृतुना प्रेष्येति षद्गृत्वं आहुर्तृभिरितिं चतुर्द्विः पुनंर्ऋतुनांहाक्रमणमेव तथ्सेतुं यजमानः कुरुते सुवर्गस्यं लोकस्य सम्ध्ये नान्यौन्यमनु प्र पंद्येत् यदन्यौऽन्यमनु प्रपद्येत्तुर्ऋतुमनु प्र पंद्येतर्तवो मोहुंकाः स्युः॥११॥

प्रसिद्धमेवाध्वर्युर्दक्षिणेन प्र पंद्यते प्रसिद्धं प्रतिप्रस्थातोत्तरेण तस्मादादित्यः षण्मासो

दक्षिणेनैति षडुत्तरेणोपयामगृहीतोऽसि स्र्सर्पौऽस्य १ हस्पत्याय त्वेत्याहास्ति त्रयोदशो मास् इत्यांहुस्तमेव तत्प्रीणाति॥१२॥

को जीवन्ति द्विः स्युश्चतुंस्त्रि॰शच॥----[३]

सुवर्गाय वा एते लोकायं गृह्यन्ते यदंतुग्रहा ज्योतिंरिन्द्राग्नी यदैंन्द्राग्नमृंतुपात्रेणं गृह्णाति ज्योतिरेवास्मां उपरिष्टाद्द्धाति सुवर्गस्यं लोकस्यानुंख्यात्या ओजोभृतौ वा एतौ देवानां यदिंन्द्राग्नी यदैंन्द्राग्नो गृह्यत् ओजं एवावं रुन्द्धे वैश्वदेव श्रुंक्रपात्रेणं गृह्णाति वैश्वदेव्यो वै प्रजा असावांदित्यः शुक्तो यद्वैश्वदेव श्रुंक्रपात्रेणं गृह्णाति तस्मांद्सावांदित्यः॥१३॥

सर्वाः प्रजाः प्रत्यङ्कदेति तस्माथ्सर्वे एव मन्यते माम्प्रत्युदंगादिति वैश्वदेव श्रृंकपात्रेणं गृह्णति वैश्वदेवयों वै प्रजास्तेजः शुक्रो यद्वैश्वदेव श्रृंकपात्रेणं गृह्णति प्रजास्वेव तेजों दधाति॥१४॥

तस्मांदुसावांदित्यस्त्रि रशर्च ॥----------[४]

इन्द्रों मुरुद्भिः सांविद्येन् मार्थ्यंदिने सर्वने वृत्रमंहुन्यन्मार्थ्यंदिने सर्वने मरुत्वतीयां गृह्यन्ते वार्त्रघा एव ते यजमानस्य गृह्यन्ते तस्यं वृत्रं ज्ञघ्नुषं ऋतवोऽमुह्यन्थ्स ऋतुपात्रेणं मरुत्वतीयांनगृह्णात्ततो व स ऋतून्प्राजानाद्यदंतुपात्रेणं मरुत्वतीयां गृह्यन्तं ऋतूनाम्प्रज्ञांत्ये वज्रं वा एतं यजमानो भ्रातृंव्याय् प्र हंरति यन्मंरुत्वतीया उदेव प्रथमन॥१५॥

युच्छुति प्र हरिति द्वितीयेन स्तृणुते तृतीयेनायुधं वा पृतद्यजंमानः सङ्स्कुरुते यन्मंरुत्वतीया धनुरेव प्रथमो ज्या द्वितीय इषुंस्तृतीयः प्रत्येव प्रथमेन धत्ते वि सृजिति द्वितीयेन विध्यति तृतीयेनेन्द्रों वृत्र हत्वा पर्रां परावतंमगच्छुदपाराधृमिति मन्यंमानः स हरितोऽभव्थ्स पृतान्मंरुत्वतीयानात्मस्परंणानपश्यत्तानंगृह्णीत॥१६॥

प्राणमेव प्रथमेनांस्पृणुतापानं द्वितीयेनात्मानं तृतीयेनात्मस्परंणा वा एते यजंमानस्य गृह्यन्ते यन्मंरुत्वतीयाः प्राणमेव प्रथमेनं स्पृणुतेऽपानं द्वितीयेनात्मानं तृतीयेनेन्द्रों वृत्रमंहुन्तं देवा अंब्रुवन्महान् वा अयमंभूद्यो वृत्रमवंधीदिति तन्मंहेन्द्रस्यं महेन्द्रत्व स एतम्माहेन्द्रमुंद्धारमुदंहरत वृत्र हत्वान्यासुं देवतास्विध यन्माहेन्द्रो गृह्यतं उद्धारमेव तं यजंमान् उद्धरतेऽन्यासुं प्रजास्विधं शुक्रपात्रेणं गृह्णाति यजमानदेवत्यो वै माहेन्द्रस्तेजंः

शुक्रो यन्मांहेन्द्र शुंक्रपात्रेणं गृह्णाति यजंमान एव तेजों दधाति॥१७॥

प्रथमेनांगृह्णीत देवतांस्वष्टाविर्श्शितश्च॥————[५]

अदितिः पुत्रकांमा साध्येभ्यां देवेभ्यां ब्रह्मौदनमंपचत्तस्यां उच्छेषंणमददुस्तत्प्राश्चाथ्सा रेतोंऽधत्त तस्यें चत्वारं आदित्या अंजायन्त सा द्वितीयंमपचथ्सामन्यतोच्छेषंणान्म इमेंऽज्ञत् यदग्रें प्राशिष्यामीतो मे वसीयाश्सो जनिष्यन्त इति साग्रे प्राश्चाथ्सा रेतोंऽधत्त तस्यै व्यृद्धमाण्डमंजायत् सादित्येभ्यं एव॥१८॥

तृतीयंमपच्द्रोगांय म इद श्रान्तमृस्त्वित् तें ऽब्रुव्नवरं वृणामहै योऽतो जायांता अस्माक स एको ऽस्चौं ऽस्य प्रजायामृध्यांता अस्माक म्भोगांय भवादिति ततो विवंस्वानादित्यों ऽजायत् तस्य वा इयं प्रजा यन्मं नुष्यां स्तास्वेकं एवर्द्धो यो यजंते स देवाना म्भोगांय भवति देवा वै युज्ञात्॥१९॥

रुद्रम्-तराय्न्थ्स आंदित्यान्नवाक्रंमत् ते द्विदेवत्यांन्प्रापंचन्त् तान्न प्रति प्रायंच्छन्तस्मादिष् वध्यम्प्रपंत्रं न प्रति प्र यंच्छन्ति तस्मांद्विदेवत्यांभ्य आदित्यो निर्गृह्यते यदुच्छेषंणादजांयन्त् तस्मांदुच्छेषंणाद्गृह्यते तिसृभिंर्ऋग्भिर्गृह्णाति माता पिता पुत्रस्तदेव तिम्भिथुनमुल्बं गर्भो जुरायु तदेव तत्॥२०॥

मिथुनम्प्शवो वा एते यदांदित्य ऊर्ग्दिधं दुध्ना मध्यतः श्रीणात्यूर्जमेव पंशूनाम्मध्यतो दंधाति श्वतातुङ्क्ष्यंन मध्यत्वाय तस्मादामा पृक्कं दुंहे पृशवो वा एते यदांदित्यः पंरिश्रित्यं गृह्णाति प्रतिरुध्येवास्म पृशून्गृह्णाति पृशवो वा एते यदांदित्य एष रुद्रो यद्ग्निः पंरिश्रित्यं गृह्णाति रुद्रादेव पृशूनन्तर्दधाति॥२१॥

पृष वै विवंस्वानादित्यो यदुंपारशुसवंनः स एतमेव सोंमपीथं परिं शय आ तृंतीयसवनाद्विवंस्व आदित्येष तें सोमपीथं इत्यांह् विवंस्वन्तमेवादित्यर सोंमपीथेन् समर्थयित् या दिव्या वृष्टिस्तयां त्वा श्रीणामीति वृष्टिंकामस्य श्रीणीयाद्वृष्टिंमेवावं रुन्द्वे यदिं ताजक्प्रस्कन्देद्वर्षुकः पूर्जन्यः स्याद्यदिं चिरमवंर्षुको न सांदयत्यसंन्नाद्धि प्रजाः प्रजायंन्ते नान् वषंद्वरोति यदंनुवषद्भुर्याद्वद्वं प्रजा अन्ववंसृजेन्न हुत्वान्वींक्षेत् यदन्वीक्षेत् चक्षुंरस्य प्रमायुंकर् स्यात्तसमान्नान्वीक्ष्यः॥२२॥

एव युज्ञाज्जरायु तदेव तद्नतर्दधाति न सप्तवि शितिश्च॥

अन्तर्याम्पात्रेणं सावित्रमांग्रयणाद्गृंह्णाति प्रजापंतिर्वा एष यदांग्रयणः प्रजानां प्रजनंनाय न सादयत्यसंत्राद्धि प्रजाः प्रजायन्ते नानु वषंद्वरोति यदनुवषद्भुर्याद्भुद्रं प्रजा अन्ववंसृजेदेष वै गायत्रो देवानां यथ्संवितेष गायत्रिये लोके गृंह्यते यदांग्रयणो यदंन्तर्यामपात्रेणं सावित्रमांग्रयणाद्गृह्णाति स्वादेवेनं योनेर्निगृह्णाति विश्वं॥२३॥

देवास्तृतीय् सर्वनं नोदंयच्छुन्ते संवितारंम्प्रातःसवनभांग् सन्तं तृतीयसवनम्भि पर्यणयन्ततो व ते तृतीय् सर्वनमुदंयच्छुन्यत्तृतीयसवने सांवित्रो गृह्यते तृतीयंस्य सर्वनस्योद्यंत्रे सवितृपात्रेणं वैश्वदेवं कुलशांहृह्णाति वैश्वदेव्यो व प्रजा वैश्वदेवः कुलशंः सिवृता प्रस्वानांमीशे यथ्संवितृपात्रेणं वैश्वदेवं कुलशांहृह्णाति सिवृतृप्रंसूत एवास्मै प्रजाः प्र॥२४॥

जन्यित् सोमे सोमंमिभ गृह्णात् रेतं एव तद्दंधाति सुशर्मांसि सुप्रतिष्ठान इत्यांह् सोमे हि सोमंमिभगृह्णात् प्रतिष्ठित्या एतस्मिन्वा अपि ग्रहें मनुष्यैंभ्यो देवेभ्यः पितृभ्यः क्रियते सुशर्मांसि सुप्रतिष्ठान इत्यांह मनुष्यैंभ्य एवैतेनं करोति बृहदित्यांह देवेभ्यं एवैतेनं करोति नम् इत्यांह पितृभ्यं एवैतेनं करोत्येतावंतीर्वे देवतास्ताभ्यं एवैन् सर्वांभ्यो गृह्णात्येष ते योनिर्विश्वंभ्यस्त्वा देवेभ्य इत्यांह वैश्वदेवो ह्यंषः॥२५॥

विश्वे प्र पितृभ्यं पुवैतेनं करोत्येकान्नविर्श्यातिश्चं॥______[७]

प्राणो वा एष यद्ंपार्श्यर्यंपारशुपात्रेणं प्रथमश्चौत्तमश्च ग्रहौं गृह्येतें प्राणमेवानं प्रयन्तिं प्राणमनूद्यंन्ति प्रजापंतिर्वा एष यदाँग्रयणः प्राण उंपार्शः पत्नीः प्रजाः प्र जंनयन्ति यदंपारशुपात्रेणं पात्नीवृतमाँग्रयणाद्गृह्णातिं प्रजानां प्रजनंनाय तस्माँत्प्राणं प्रजा अनु प्र जांयन्ते देवा वा इतइंतः पत्नीः सुवर्गम्॥२६॥

लोकमंजिगारस्नते सुंवुर्गं लोकं न प्राजांनन्त एतम्पाँतीवतमंपश्यन्तमंगृह्वत् ततो वै ते सुंवुर्गं लोकम्प्राजांनन् यत्पाँतीवतो गृह्यते सुवुर्गस्यं लोकस्य प्रज्ञाँत्ये स सोमो नातिष्ठत स्त्रीभ्यो गृह्यमांणस्तं घृतं वर्ज्यं कृत्वाघ्रन्तं निरिन्द्रियम्भूतमंगृह्न्तस्माथ्स्रियो निरिन्द्रिया अदांयादीरपिं पापात्पुरस उपस्तितरम्॥२७॥

वृद्न्ति यद्भृतेनं पात्नीवृतः श्रीणाति वर्ज्रेणैवैनं वर्शे कृत्वा गृह्णात्युपयामगृहीतो-ऽसीत्याहेयं वा उपयामस्तस्मादिमां प्रजा अनु प्र जायन्ते बृह्स्पतिसुतस्य त इत्याह् ब्रह्म वै देवानाम्बृह्स्पतिर्ब्रह्मणैवास्मैं प्रजाः प्र जनयतीन्दो इत्यांह् रेतो वा इन्दू रेतं एव तद्दंधातीन्द्रियाव इतिं॥२८॥

आहु प्रजा वा इंन्ड्रियं प्रजा एवास्मै प्र जंनयत्यग्ना(३) इत्यांहाग्निर्वे रेतोधाः पत्नीव इत्यांह मिथुनत्वायं सजूर्देवेन त्वष्ट्रा सोमंग्पिवेत्यांह त्वष्टा वै पंशूनाग्मिथुनानारं रूपकृद्रूपमेव पशुषुं दधाति देवा वै त्वष्टांरमजिघारसम्थस पत्नीः प्रापंद्यत् तं न प्रति प्रायंच्छन्तस्मादपिं॥२९॥

वध्यम्प्रपेत्रं न प्रति प्र येच्छन्ति तस्मौत्पालीवते त्वष्ट्रेऽपिं गृह्यते न सादयत्यसंत्राद्धि प्रजाः प्रजायंन्ते नानु वर्षद्वरोति यदंनुवषद्भुर्याद्रुदं प्रजा अन्ववंसजेद्यन्नानंवषद्भुर्यादशौन्तम्ग्रीथ्सोमंम्भक्षयेदुपा्र्श्वनु वर्षद्वरोति न रुद्रं प्रजा अन्ववसृजति शान्तम्ग्रीथ्सोमंम्भक्षयत्यग्रीन्नेष्टुंरुपस्थमा सीद॥३०॥

नेष्टः पत्नीमुदान्येत्यांहाग्नीदेव नेष्टंरि रेतो दर्धाति नेष्टा पत्नियामुद्गात्रा सं ख्यांपयित प्रजापंतिर्वा एष यदुंद्गाता प्रजानां प्रजननायाप उप प्र वंतियित रेतं एव तथ्सिश्चत्यूरुणोप प्र वंतियत्यूरुणा हि रेतंः सिच्यते नग्नंकृत्योरुमुप प्र वंतियति यदा हि नग्न ऊरुर्भवृत्यर्थं मिथुनी भेवतोऽथ रेतंः सिच्यतेऽथं प्रजाः प्र जांयन्ते॥३१॥

पर्बीः सुवर्गमुपंस्तितरमिन्द्रियाव इत्यपिं सीद मिथुन्यंष्टौ चं॥-----[८]

इन्द्रों वृत्रमंहुन्तस्यं शीर्षकपालमुदौं ज्ञथ्स द्रोणकलृशों ऽभवृत्तस्माथ्सोमः समस्रवृथ्स हारियोजनों ऽभवृत्तं व्यंचिकिथ्सज्जुहवानी(३) मा हौषा(३) मिति सो ऽमन्यत् यद्धोष्याम्याम हौष्याम् यत्र होष्यामि यज्ञवेश्यसं करिष्यामीति तमिप्रयत् होतु सौं ऽग्निरं ब्रवीत्र मय्याम हौष्यमीति तं धानाभिरश्रीणात्॥३२॥

तः शृतम्भूतमंजुहोद्यद्धानाभिर्हारियोजनः श्रीणाति शृतत्वायं शृतमेवैनंम्भूतं जुंहोति बह्वीभिः श्रीणात्येतावंतीरेवास्यामुष्मिंश्लाँके कामदुषां भवन्त्यथो खल्वांहुरेता वा इन्द्रंस्य पृश्लंयः कामदुषा यद्धारियोजनीरिति तस्माँद्वह्वीभिः श्रीणीयादख्सामे वा इन्द्रंस्य हरीं सोमुपानौ तयोः परि्धयं आधानं यदप्रहत्य परि्धीञ्जंहुयादन्तराधानाभ्याम्॥३३॥

घासम्प्र यंच्छेत्प्रहृत्यं परिधीञ्चंहोति निराधानाभ्यामेव घासम्प्र यंच्छत्युत्रेता जुंहोति यातयांमेव ह्यंतर्ह्यंष्वर्युः स्वगाकृतो यदंष्वर्युर्जुहुयाद्यथा विमुक्तम्पुनंर्युनिक्तं तादगेव तच्छी्र्षन्नंधिनिधायं जुहोति शीर्षतो हि स समभंवद्विक्रम्यं जुहोति विकम्य हीन्द्रों वृत्रमहुन्थ्समृंख्यै पुशवो वै हांरियोजनीर्यथ्संम्भिन्द्यादल्पाः॥३४॥

पुनम्पशवो भुअन्त उपं तिष्ठेर्न्यन्न संिम्भिन्द्याद्वहवं एनम्पशवोऽभुंअन्त उपं तिष्ठेर्न्मनंसा सम्बांधत उभयं करोति बहवं एवैनम्पशवो भुअन्त उपं तिष्ठन्त उन्नेतर्युंपह्विमिंच्छन्ते य एव तत्रं सोमपीथस्तमेवावं रुन्धत उत्तरवेद्यां नि वंपति पृशवो वा उत्तरवेदिः पृशवों हारियोज्ञनीः पृशुष्वेव पृशून्प्रतिं ष्ठापयन्ति॥३५॥

अश्रीणाद्न्तरांधानाभ्यामल्पाः स्थापयन्ति॥———[९]

ग्रहान् वा अनुं प्रजाः प्रावः प्र जांयन्त उपारश्वन्तर्यामावंजावयः शुकाम्नियनौ पुरुषा ऋतुग्रहानेकंशफा आदित्यग्रहं गावं आदित्यग्रहो भूयिष्ठाभिर्ऋग्भिर्गृह्यते तस्माद्गावंः पश्नाम्भूयिष्ठा यित्ररुपार्शुर हस्तेन विगृह्णाति तस्माद्गौ त्रीनृजा जनयृत्यथावयो भूयंसीः पिता वा एष यदांग्रयुणः पुत्रः कुलशो यदांग्रयुण उपदस्येत्कुलशांद्गृह्णीयाद्यथां पिता॥३६॥

पुत्रं क्षित उंप्धावंति ताहगेव तद्यत्कलशं उपदस्येदाग्रयणाद्गृह्णीयाद्यथां पुत्रः पितरं क्षित उंप्धावंति ताहगेव तदात्मा वा एष यज्ञस्य यदाँग्रयणो यद्गहों वा कुलशों वोपदस्येदाग्रयणाद्गृह्णीयादात्मनं एवाधि यज्ञं निष्करोत्यविज्ञातो वा एष गृह्यते यदाँग्रयणः स्थाल्या गृह्णाति वायुव्येन जुहोति तस्मात्॥३७॥

गर्भेणाविज्ञातेन ब्रह्महावंभृथमवं यन्ति परौ स्थालीरस्यन्त्युद्वांयव्यांनि हरन्ति तस्माध्यियं जातां परौस्यन्त्युत्पृमार्श्स हरन्ति यत्पुंरोरुचमाह् यथा वस्यंस आहरंति तादृगेव तद्यद्वहं गृह्णाति यथा वस्यंस आहत्य प्राहं तादृगेव तद्यथ्साद्यंति यथा वस्यंस उपनिधायांपृकामंति तादृगेव तद्यद्वै यज्ञस्य साम्रा यज्ञंषा क्रियते शिथिलं तद्यदृचा तद्दृढम्पुरस्तांदुपयामा यज्ञंषा गृह्यन्त उपरिष्टादुपयामा ऋचा यज्ञस्य धृत्ये॥३८॥

यथां पिता तस्मांदपुकामंति ताहुगेव तद्यदुष्टादंश च॥______[१०]

प्रान्यानि पात्राणि युज्यन्ते नान्यानि यानि पराचीनानि प्रयुज्यन्तेऽमुमेव तैर्लीकम्भि जंयिति पराङिव ह्यंसौ लोको यानि पुनः प्रयुज्यन्तं इममेव तैर्लीकम्भि जंयिति पुनःपुनरिव ह्यंयं लोकः प्रान्यानि पात्राणि युज्यन्ते नान्यानि यानि पराचीनानि प्रयुज्यन्ते तान्यन्वोषंधयः परां भवन्ति यानि पुनः॥३९॥

प्रयुज्यन्ते तान्यन्वोषंधयः पुन्रा भंविन्ति प्रान्यानि पात्राणि युज्यन्ते नान्यानि यानि पराचीनानि प्रयुज्यन्ते तान्यन्वार्ण्याः पृशवोऽरंण्यमपं यन्ति यानि पुनः प्रयुज्यन्ते तान्यन्तुं ग्राम्याः पृशवो ग्राममुपावयन्ति यो वै ग्रहाणां निदानं वेदं निदानंवान्भवृत्याज्यमित्युक्थं तद्वै ग्रहाणां निदानं यदुंपार्शु शर्सिति तत्॥४०॥

उपार्श्वन्तर्यामयोर्यदुचैस्तदितरेषां ग्रहाणामेतद्वै ग्रहाणां निदानं य एवं वेदं निदानंवान्भवति यो वै ग्रहाणाम्मिथुनं वेद् प्र प्रजयां पृश्वभिर्मिथुनैर्जायते स्थालीभिर्न्ये ग्रहां गृह्यन्तें वायव्यैर्न्य एतद्वै ग्रहांणाम्मिथुनं य एवं वेद् प्र प्रजयां पृश्वभिर्मिथुनैर्जायत् इन्द्रस्त्वष्टुः सोर्ममभीषहांपिब्थ्स विष्वर्हः॥४१॥

व्यांच्छुंथ्स आत्मन्नारमंणं नाविन्द्थ्स एतानंनुसवनम्पुंरोडाशांनपश्यत्तान्निरंवप्तैर्वे स आत्मन्नारमंणमकुरुत् तस्मांदनुसवनम्पुंरोडाशां निरुप्यन्ते तस्मांदनुसवनम्पुंरोडाशांनाम्प्राश्नीयादात कुरुते नैन् सोमोऽतिं पवते ब्रह्मवादिनों वदन्ति नर्चा न यज्ञुंषा पङ्किरांप्यतेऽथ किं यज्ञस्यं पाङ्कत्वमितिं धानाः कंरम्भः पंरिवापः पुरोडाशंः पयस्यां तेनं पङ्किरांप्यते तद्यज्ञस्यं पाङ्कत्वम्॥४२॥

भुवन्ति यानि पुनः शरसंति तद्विष्वङ्किश्चर्तुर्दश च॥————[१९]

सुवर्गाय यद्दांक्षिणानि समिष्टयज्ञू रूष्यं वभृथयज्ञू रूष् स्प्येनं प्रजापंतिरेकाद्शिनीमिन्द्रः पित्रंया प्रन्ति देवा वा इन्द्रियं देवा वा अदांभ्ये देवा वै प्रवाहंक्ष्रजापंतिर्देवेभ्यः स रिरिचानष्यों डश्येकांदश्य = [१२] सुवर्गायं यजित प्रजाः सौम्येनं गृह्णीयात्प्रत्यर्थं गृह्णीयात्प्रजां पुशूत्रिचंत्वारि रशत्॥ 43॥ सुवर्गाय् वर्ज्ञस्य रूप समृद्धौ॥

॥षष्ठमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां षष्ठमकाण्डे षष्ठमः प्रश्नः॥

सुवर्गाय वा एतानिं लोकायं हूयन्ते यद्दांश्विणानि द्वाभ्यां गार्हंपत्ये जुहोति द्विपाद्यजंमानः प्रतिष्ठित्या आग्नींध्रे जुहोत्यन्तिरिक्ष एवा क्रमते सदोऽभ्यैतिं सुवर्गमेवैनं लोकं गंमयित सौरीभ्यांमृग्भ्यां गार्हंपत्ये जुहोत्यमुमेवैनं लोक॰ समारोहयित नयंवत्यर्चाग्नींध्रे जुहोति सुवर्गस्यं लोकस्याभिनींत्यै दिवं गच्छ सुवं पतेति हिरंण्यम्॥१॥

हुत्वोद्गृह्णाति सुवर्गमेवैनं लोकङ्गमयित रूपेणं वो रूपम्भ्यैमीत्यांह रूपेण् ह्यांसा॰ रूपम्भ्यैति यद्धिरंण्येन तुथो वो विश्ववेदा वि भंजत्वित्यांह तुथो हं स्मृ वै विश्ववेदा देवानां दक्षिणा वि भंजति तेनैवैना वि भंजत्येतत्ते अग्रे राधः॥२॥

ऐति सोमंच्युत्मित्यांह् सोमंच्युत् ह्यंस्य राध् ऐति तन्मित्रस्यं पृथा न्येत्यांह् शान्त्यां ऋतस्यं पृथा प्रेतं चन्द्रदंक्षिणा इत्यांह सृत्यं वा ऋतः सृत्येनैवैनां ऋतेन् वि भंजित यज्ञस्यं पृथा सुंविता नयंन्तीरित्यांह यज्ञस्य ह्यंताः पृथा यन्ति यद्दक्षिणा ब्राह्मणमद्य राध्यासम्॥३॥

ऋषिमार्षेयमित्यांहैष वै ब्राँह्मण ऋषिरार्षेयो यः शुंश्रुवान्तस्मांदेवमांह वि सुवः पश्य व्यन्तरिक्षमित्यांह सुवर्गमेवैनं लोकं गंमयित यतंस्व सदस्यैरित्यांह मित्रत्वायास्मद्दांत्रा देवत्रा गंच्छत मधुमतीः प्र दातारमा विंशतेत्यांह वयमिह प्रदातारः स्मोंऽस्मान्मुत्र मधुमतीरा विंशतेति॥४॥

वावैतदांहु हिरंण्यं ददाति ज्योतिर्वे हिरंण्यं ज्योतिरेव पुरस्ताँद्धत्ते सुवर्गस्यं लोकस्यानुंख्यात्या अग्नीर्थं ददात्यग्निमुंखानेवर्तून्त्रींणाति ब्रह्मणे ददाति प्रसूँत्यै होत्रें ददात्यात्मा वा एष यज्ञस्य यद्धोतात्मानंमेव यज्ञस्य दक्षिणाभिः समर्धयति॥५॥

हिरंण्यु राधो राध्यासम्मुत्र मधुंमतीरा विंशतेत्युष्टात्रि रंशच॥———[१]

समिष्ट्रयज्ञू १ षिं जुहोति यज्ञस्य सिमेष्ट्रे यद्वै यज्ञस्यं क्रूरं यद्विलिष्ट्ं यद्त्येति यज्ञात्येति यदंतिकरोति यज्ञापिं करोति तदेव तैः प्रीणाति नवं जुहोति नव वै पुरुषे प्राणाः पुरुषेण यज्ञः सिम्मितो यावानेव यज्ञस्तम्प्रीणाति षड्गिमेयाणि जुहोति षड्वा ऋतवं ऋतूनेव प्रीणाति त्रीणि यज्ञू १ ष॥ ६॥

त्रयं इमे लोका इमानेव लोकान्प्रीणाति यत्तं यत्तं गंच्छ यत्तपंतिं गुच्छेत्यांह यत्तपंतिमेवेनं गमयति स्वां योनिं गुच्छेत्यांह स्वामेवेनं योनिं गमयत्येष तें यत्तो यंज्ञपते सहस्र्रंक्तवाकः सुवीर् इत्यांह यजंमान एव वीर्यं दधाति वासिष्ठो हं सात्यह्व्यो देवभागम्पप्रच्छ यथ्सृश्चयान्बह्याजिनोऽयीयजो युज्ञे॥७॥

यज्ञम्प्रत्यंतिष्ठिपा(३)यज्ञप्ता(३)विति स होवाच यज्ञपंताविति सत्याद्वे सृश्जयाः परां बभूबुरिति होवाच यज्ञे वाव यज्ञः प्रतिष्ठाप्यं आसीद्यजंमान्स्यापंराभावायेति देवां गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमितेत्यांह यज्ञ एव यज्ञं प्रतिं ष्ठापयति यजंमानस्यापंराभावाय॥८॥

यजू १षि युज्ञ एकंचत्वारि १शच॥ [२]

अव्भृथयज्ञू १षिं जुहोति यदेवार्वाचीन् मेकेहायनादेनेः करोति तदेव तैरवं यजतेऽपीं-ऽवभृथमवैत्यप्सु वै वर्रुणः साक्षादेव वर्रुणमवं यजते वर्त्मना वा अन्वित्यं यज्ञ १ रक्षा १सि जिघा १सिन्तु साम्नां प्रस्तोतान्ववैति साम् वै रक्षोहा रक्षंसामपहत्यै त्रिर्निधन् मुपैति त्रयं इमे लोका पृभ्य एव लोकेभ्यो रक्षा १सि॥९॥

अपं हन्ति पुरुषःपुरुषो निधन्मुपैति पुरुषःपुरुषो हि रेक्षुस्वी रक्षंसामपंहत्या उरु १ हि राजा वरुणश्रुकारेत्यांह प्रतिष्ठित्ये शतं ते राजन्भिषजः सहस्रमित्यांह भेषजमेवास्मैं करोत्यभिष्ठितो वरुणस्य पाश इत्यांह वरुणपाशमेवाभि तिष्ठति ब्रहिर्भि जुंहोत्याहुंतीनां प्रतिष्ठित्या अथो अग्निवत्येव जुंहोत्यपंबर्हिषः प्रयाजान्॥१०॥

युज्ति प्रजा वे बुर्हिः प्रजा एव वंरुणपाशान्मुंश्चत्याज्यंभागौ यजित युज्ञस्यैव चक्षुंषी नान्तरंति वरुणं यजित वरुणपाशादेवेनंम्मुश्चत्यग्नीवरुणौ यजित साक्षादेवेनं वरुणपाशान्मुंश्चत्यपंबर्हिषावनूयाजौ यंजित प्रजा वे बुर्हिः प्रजा एव वंरुणपाशान्मुंश्चित चृतुरंः प्रयाजान् यंजित द्वावंनूयाजौ षट्थ्सम्पंद्यन्ते षड्वा ऋतवंः॥११॥

ऋतुष्वेव प्रतिं तिष्ठत्यवंभृथ निचङ्कुणेत्यांह यथोदितमेव वर्रुणमवं यजते समुद्रे ते हृदंयमुफ्स्वंन्तरित्यांह समुद्रे ह्यंन्तर्वरुणः सं त्वां विश्वन्त्वोषधीकृताप् इत्यांहाद्भिरेवेनुमोषधीभिः सम्यश्चं दधाति देवीराप एष वो गर्भ इत्यांह यथायुजुरेवेतत्पृशवो वै॥१२॥

सोमो यद्भिन्दूनाम्नक्षयें त्पशुमान्थस्याद्वर्रणस्त्वेनं गृह्णीयाद्यन्न भृक्षयेदपृशुः स्यान्नैनं वर्रणो गृह्णीयादुप्स्पृश्यंमेव पंशुमान्भंवित नैनं वर्रणो गृह्णाति प्रतियुतो वर्रणस्य पाश इत्यांह वरुणपाशादेव निर्मुच्यतेऽप्रतीक्षमा यन्ति वर्रणस्यान्तर्हित्या एथौं उस्येधिषीम्हीत्यांह स्मिधेवाग्निं नंमस्यन्तं उपायंन्ति तेजोंऽसि तेजो मिये धेहीत्यांह तेजं एवात्मन्धंते॥१३॥

रक्षा रेसि प्रयाजानृतवो वे नंमस्यन्तो द्वादंश च॥-----[३]

स्फोन् वेदिमुद्धन्ति रथाक्षेण् वि मिंमीत् यूपिम्मनोति त्रिवृतंमेव वज्र सम्भृत्य भ्रातृंव्याय् प्र हंरति स्तृत्यै यदंन्तर्वेदि मिंनुयाद्देवलोकम्भि जयेद्यद्वहिर्वेदि मंनुष्यलोकं वेद्यन्तस्यं संधौ मिंनोत्युभयौर्लोकयोर्भिजित्या उपरसम्मिताम्मिनुयात्पितृलोककांमस्य रशृनसंम्मिताम्मनुष्यलोककांमस्य चृषालंसिम्मितामिन्द्रियकांमस्य सर्वांन्थ्समान्प्रंतिष्ठाकांमस्य ये त्रयों मध्यमास्तान्थ्समान्पशुकांमस्येतान् वै॥१४॥

अनुं पृशव उपं तिष्ठन्ते पशुमानेव भवित् व्यतिषजेदितंरान्य्रजयैवैनंम्पृशुभिर्व्यतिषजित् यं कामयेत प्रमायुंकः स्यादितिं गर्तमित् तस्यं मिनुयादुत्तरार्ध्यं वर्षिष्ठमथ् हसीयाः समेषा वै गर्तिमद्यस्यैविम्मिनोतिं ताजक्प्र मीयते दक्षिणार्ध्यं वर्षिष्ठम्मिनुयाध्सुवर्गकांमस्याथ् हसीयाः समाक्रमणमेव तथ्सेतुं यजमानः कुरुते सुवर्गस्यं लोकस्य सम्ष्टिगः ॥१५॥

यदेकंस्मिन् यूपे द्वे रंशने पंरिव्ययंति तस्मादेको द्वे जाये विन्दते यन्नैका रंशनां द्वयोर्यूपंयोः परिव्ययंति तस्मान्नैका द्वौ पतीं विन्दते यं कामयेत रूयंस्य जायेतेत्युंपान्ते तस्य व्यतिषज्ञेथ्रूयंवास्यं जायते यं कामयेत पुमानस्य जायेतेत्यान्तं तस्य प्र वेष्टयेत्पुमानेवास्यं॥१६॥

जायतेऽसुंरा वै देवान्दंक्षिणत उपानयन्तां देवा उपश्येनैवापानुदन्त तदुंपश्यस्योपशयत्वं यद्दंक्षिणत उपश्य उपशये भ्रातृंव्यापनुत्त्ये सर्वे वा अन्ये यूपाः पशुमन्तोऽथोपश्य एवापशुस्तस्य यजमानः पशुर्यन्न निर्दिशेदार्तिमार्च्छेद्यजमानोऽसौ ते पशुरिति निर्दिशेद्यं द्विष्याद्यमेव॥१७॥

द्वेष्ट्रि तमंस्मै पृशुं निर्दिशति यदि न द्विष्यादाखुस्तें पृशुरितिं ब्रूयात्र ग्राम्यान्पृशून् हिनस्ति नार्ण्यान्प्रजापंतिः प्रजा अंसृजत् सौंऽन्नाद्येन् व्यार्ध्यत् स पृतामेकाद्शिनीमपश्यत्तया वै सौंऽन्नाद्यमवांरुन्द्व यद्दश् यूपा भवंन्ति दशांक्षरा विराडन्नं विराङ्विराजैवान्नाद्यमवं रुन्द्वे॥१८॥

य एंकाद्रशः स्तनं एवास्ये स दुह एवैनां तेन वज्रो वा एषा सम्मीयते यदेंकाद्शिनी सेश्वरा पुरस्तांत्प्रत्यश्चं यज्ञ सम्मीर्दितोर्यत्पांनीवृतम्मिनोतिं यज्ञस्य प्रत्युत्तं ब्ये सयत्वायं॥१९॥

वै समें श्रे पुमानेवास्य यमेव रुन्धे त्रिष्शर्च॥————[४]

प्रजापंतिः प्रजा अंस्रजत् स रिरिचानों ऽमन्यत् स एतामें काद्शिनीं मपश्यत्तया वै स आयुंरिन्द्रियं वीर्यमात्मन्नेथत्त प्रजा इंव खलु वा एष सृजते यो यजेते स एतर्हि रिरिचान इंव यदेषेकांद्शिनी भवत्यायुंरेव तयैन्द्रियं वीर्यं यजंमान आत्मन्धंत्ते प्रैवाग्नेयेनं वापयति मिथुन सारस्वत्या करोति रेतः॥२०॥

सौम्येनं दधाति प्र जंनयति पौष्णेनं बार्हस्पत्यो भंवति ब्रह्म वै देवानाम्बृह्स्पतिर्ब्रह्मणैवास्मैं प्रजाः प्र जंनयति वैश्वदेवो भंवति वैश्वदेव्यों वै प्रजाः प्रजा एवास्मै प्र जंनयतीन्द्रियमेवेन्द्रेणावंरुन्द्धे विशंम्मारुतेनौजो बलंमैन्द्राग्नेनं प्रस्वायं सावित्रो निर्वरुणत्वायं वारुणो मंध्यत ऐन्द्रमा लंभते मध्यत एवेन्द्रियं यजंमाने दधाति॥२१॥

पुरस्तांदैन्द्रस्यं वैश्वदेवमालंभते वैश्वदेवं वा अन्नमन्नमेव पुरस्तांद्धते तस्मांत्पुरस्तादन्नमद्यत ऐन्द्रमालभ्यं मारुतमा लंभते विश्वे मुरुतो विश्नमेवास्मा अनुं ब्रधाति यदि कामयेत् योऽवंगतः सोऽपं रुध्यतां योऽपंरुद्धः सोऽवं गच्छत्वित्यैन्द्रस्यं लोके वांरुणमा लंभेत वारुणस्यं लोक ऐन्द्रम्॥२२॥

य पुवावंगतः सोऽपं रुध्यते योऽपंरुद्धः सोऽवं गच्छति यदिं कामयेत प्रजा मुंह्येयुरितिं पृशून्व्यतिषजेत्प्रजा पुव मोंहयति यदिभवाहृतोऽपां वांरुणमालभेत प्रजा वरुणो गृह्णीयादक्षिणत उदंश्रमा लेभतेऽपवाहतोऽपां प्रजानामवंरुणग्राहाय॥२३॥

रेतो यर्जमाने दधाति लोक ऐन्द्र॰ सप्तित्रि॰शच॥_____[५]

इन्द्रः पिन्निया मनुंमयाजयत्तां पर्यग्निकृतामुदंसृजत्तया मनुंरार्भ्रोद्यत्पर्यग्निकृतम्पानीवृतमुंथ्सृजी यामेव मनुर्ऋद्धिमार्भ्रोत्तामेव यर्जमान ऋभ्रोति यज्ञस्य वा अप्रतिष्ठिताद्यज्ञः परां भवति यज्ञं पराभवन्तं यर्जमानोऽनु परां भवति यदाज्येन पानीवृतः सःह्रस्थापयंति यज्ञस्य प्रतिष्ठित्यै युज्ञम्प्रतितिष्ठन्तं यर्जमानोऽनु प्रतिं तिष्ठतीष्टं वृपयां॥२४॥

भवत्यिनेष्टं वशयार्थं पात्नीवृतेन् प्र चंरित तीर्थं एव प्र चंर्त्यथों एतर्ह्येवास्य यामंस्त्वाष्ट्रो भंवित त्वष्टा वै रेतंसः सिक्तस्यं रूपाणि वि कंरोति तमेव वृंषाणम्पत्नीष्विपं सृजिति सौंऽस्मै रूपाणि वि कंरोति॥२५॥

व्पया षद्गिरंशच॥----[६]

प्रन्ति वा एतथ्सोम्ं यदंभिषुण्वन्ति यथ्सौम्यो भवंति यथां मृतायांनुस्तरंणीं प्रन्तिं तादृगेव तद्यदुंत्तरार्धे वा मध्यें वा जुहुयाद्देवतांभ्यः समदं दध्याद्दक्षिणार्धे जुंहोत्येषा वै पिंतृणां दिख्स्वायांमेव दिशि पितृन्त्रिरवंदयत उद्गातृभ्यों हरन्ति सामदेवृत्यों वै सौम्यो यदेव साम्नंश्छम्बद्भवन्ति तस्यैव स शान्तिरवं॥२६॥ र्ड्रक्षन्ते पवित्रं वै सौम्य आत्मानंमेव पंवयन्ते य आत्मानं न पंरिपश्येदितासुंः स्यादिभदिदिं कृत्वावेंक्षेत् तस्मिन् ह्याँत्मानं परिपश्यत्यथों आत्मानंमेव पंवयते यो गतमनाः स्याथ्सोऽवेंक्षेत् यन्मे मनः परागतं यद्वां मे अपंरागतम्। राज्ञा सोमेन तद्वयमस्मासुं धारयामसीति मनं एवात्मन्दांधार॥२७॥

न गृतमंना भवृत्यप् वै तृंतीयसव्ने युज्ञः क्रांमतीजानादनींजानम्भ्यांग्नावैष्ण्व्यर्चा घृतस्यं यजत्यग्निः सर्वा देवता विष्णुंर्यज्ञो देवतांश्चेव युज्ञं चं दाधारोपा्रशु यंजित मिथुनृत्वायं ब्रह्मवादिनों वदन्ति मित्रो यज्ञस्य स्विष्टं युवते वरुंणो दुरिष्टं क्रं तर्हिं युज्ञः क्रं यजंमानो भवतीति यन्मैत्रावरुणीं वशामालभंते मित्रेणैव॥२८॥

यज्ञस्य स्विष्टश् शमयित वर्रणेन् दुरिष्ट्ं नार्तिमार्च्छित् यजंमानो यथा वै लाङ्गेलेनोर्वराँ प्रिभिन्दन्त्येवमृंख्सामे यज्ञम्प्र भिन्तो यन्मैंत्रावरुणीं वशामालभेते यज्ञायैव प्रभिन्नाय मृत्यम्नववास्यित् शान्त्यै यातयामानि वा एतस्य छन्दाश्सि य ईजानश्छन्दंसामेष रसो यहुशा यन्मैंत्रावरुणीं वृशामालभेते छन्दाश्स्येव पुन्रा प्रीणात्ययातयामत्वायाथो छन्देःस्वेव रसं दर्धात॥२९॥

अवं दाधार मित्रेणैव प्रींणाति षट्वं॥_____

-[\0]

देवा वा इंन्द्रियं वीर्यं १ व्यंभजन्त ततो यद्त्यशिष्यत् तदंतिग्राह्यां अभवन्तदंतिग्राह्यांणामितग्राह्यत्वं यदंतिग्राह्यां गृह्यन्तं इन्द्रियमेव तद्वीर्यं यजंमान आत्मन्धंत्ते तेजं आग्नेयेनेन्द्रियमैन्द्रेणं ब्रह्मवर्च्सः सौर्येणोप्स्तम्भंनं वा एतद्यज्ञस्य यदंतिग्राह्यांश्वके पृष्ठानि यत्पृष्ठमे न गृह्णीयात्प्राश्चं युज्ञं पृष्ठानि सः शृंणीयुर्यदुक्थ्ये॥३०॥

गृह्णीयात्प्रत्यश्चं यज्ञमंतिग्राह्याः सः श्रंणीयुर्विश्वजिति सर्वपृष्ठे ग्रहीत्व्यां यज्ञस्यं सवीर्यत्वायं प्रजापंतिर्देवेभ्यों यज्ञान्व्यादिश्थम प्रियास्तुनूरप् न्यंधत्त् तदंतिग्राह्यां अभवन्वितंनुस्तस्यं यज्ञ इत्यांहुर्यस्यांतिग्राह्यां न गृह्यन्त् इत्यप्यंग्निष्टोमे ग्रंहीत्व्यां यज्ञस्यं सतनुत्वायं देवता वै सर्वाः सदर्शीरास्नता न व्यावृत्तमगच्छन्ते देवाः॥३१॥

पुत पुतान्ग्रहांनपश्यन्तानंगृह्णताभ्रेयम्भ्रिरैन्द्रमिन्द्रः सौर्यश् सूर्यस्ततो वै तैं-ऽन्याभिर्देवताभिर्व्यावृतंमगच्छ्न् यस्यैवं विदुषं पुते ग्रहां गृह्यन्तें व्यावृतंमेव पाप्मना भ्रातृंव्येण गच्छतीमे लोका ज्योतिष्मन्तः समावद्वीर्याः कार्या इत्यांहुराभ्रेयेनास्मिक्षौंक ज्योतिर्धत्त ऐन्द्रेणान्तरिक्ष इन्द्रवायू हि सयुजौं सौर्येणामुष्मिं हाँके॥३२॥

ज्योतिर्धत्ते ज्योतिष्मन्तोऽस्मा इमे लोका भवन्ति समावद्वीर्यानेनान्कुरुत एतान् वै ग्रहाँन्बुम्बाविश्ववयसाववित्ताम् ताभ्यामिमे लोकाः पराँश्वश्चार्वाश्चश्च प्राभुर्यस्यैवं विदुषं एते ग्रहां गृह्यन्ते प्रास्मां इमे लोकाः पराँश्वश्चार्वाश्चश्च भान्ति॥३३॥

उक्थ्ये देवा अमुष्मिं श्लाँक एकान्नचंत्वारि र्शचं॥————[८]

देवा वै यद्यज्ञेऽर्कुर्वत् तदसुंरा अकुर्वत् ते देवा अदाँभ्ये छन्दार्रस् सवंनानि समस्थापयन्ततो देवा अर्भवन्परासुंरा यस्यैवं विदुषोऽदाँभ्यो गृह्यते भवंत्यात्मना पराँस्य आतृंव्यो भवति यद्वै देवा असुंरानदाँभ्येनादंभुवन्तददाँभ्यस्यादाभ्यत्वं य एवं वेदं दुभ्रोत्येव आतृंव्यं नैनम्भ्रातृंव्यो दभ्रोति॥३४॥

पूषा वै प्रजापंतरितमोक्षिणी नामं तुनूर्यददाँभ्य उपंनद्धस्य गृह्णात्यितिमृत्त्वा अतिं पाप्मानुम्भ्रातृंच्यम्मुच्यते य एवं वेद घ्रन्ति वा एतथ्सोम् यदिभिषुण्वन्ति सोमें हृन्यमाने यज्ञो हंन्यते यज्ञे यजमानो ब्रह्मवादिनो वदन्ति किं तद्यज्ञे यजमानः कुरुते येन जीवन्थ्यसुवर्गं लोकमेतीतिं जीवग्रहो वा एष यददाभ्योऽनिभिषुतस्य गृह्णाति जीवन्तमेवैन स् सुवर्गं लोकं गमयित वि वा एतद्यज्ञं छिन्दन्ति यददाँभ्ये सङ्स्थापयंन्त्य श्रूनिपं सृजित यज्ञस्य सन्तंत्यै॥३५॥

दुभ्रोत्यनंभिषुतस्य गृह्णात्येकान्नविर्शातिश्चं॥______[९]

देवा वै प्रबाहुग्ग्रहांनगृह्णत् स एतं प्रजापंतिर्ध्शुमंपश्यत्तमंगृह्णीत् तेन् वै स आंर्फ्रोंद्यस्यैवं विदुषोऽध्शुर्गृद्यतं ऋभोत्येव सकृदंभिषुतस्य गृह्णाति सकृद्धि स तेनार्भोन्मनंसा गृह्णाति मनं इव हि प्रजापंतिः प्रजापंतेरास्या औद्ंम्बरेण गृह्णात्यूर्ग्वा उंदुम्बर् ऊर्जमेवावं रुन्द्धे चतुंःस्रक्ति भवति दिक्षु॥३६॥

एव प्रति तिष्ठति यो वा अर्शोरायतंनं वेदायतंनवान्भवति वामदेव्यमिति साम तद्वा अस्यायतंनम्मनंसा गायंमानो गृह्णात्यायतंनवानेव भविति यदंष्वर्युर्र्श् गृह्णन्नार्धयेदुभाभ्यां नर्ध्येताध्वर्यवे च यजंमानाय च यद्ध्येदुभाभ्यांमृध्येतानंवानं गृह्णाति सैवास्यर्द्धिर्हिरंण्यम्भि व्यंनित्यमृतं वै हिरंण्यमायुंः प्राण आयुंषेवामृतंम्भि धिनोति श्तमानम्भवति श्तायुः पुरुषः

श्वतेन्द्रिय आयुंष्येवेन्द्रिये प्रतिं तिष्ठति॥३७॥

दि्क्ष्वंनिति विरश्तिश्चं॥——[१०]

प्रजापंतिर्देवेभ्यों यज्ञान्व्यादिश्यस रिरिचानों ऽमन्यत् स यज्ञाना चे षोडश्घेन्द्रियं वीर्यमात्मानं मि समिक्खद्त् तथ्योड्श्यंभवृत्र वै षोडशी नामं यज्ञौं ऽस्ति यद्वाव षोडश स्तोत्र १ षोड्श शक्षं तेनं षोडशी तथ्योड्शिनंः षोडशित्वं यथ्योड्शी गृह्यतं इन्द्रियमेव तद्वीर्यं यज्ञमान आत्मन्धंत्ते देवेभ्यो वै स्वांगि लोकः॥३८॥

न प्राभंवत्त एतः षोंड्शिनंमपश्यन्तमंगृह्णत् ततो वै तेभ्यः सुवर्गो लोकः प्राभंवद्यथ्योंड्शी गृह्यते सुवर्गस्यं लोकस्याभिजित्या इन्द्रो वै देवानांमानुजावर आंसीथ्स प्रजापंतिमुपांधावत्तस्मां एतः षोंड्शिन्म्प्रायंच्छत्तमंगृह्णीत् ततो वै सोऽग्रं देवतांनां पर्येद्यस्यैवं विदुषः षोड्शी गृह्यते॥३९॥

अग्रंमेव संमानानां पर्येति प्रातःसवने गृह्णाति वज्रो वै षोंड्शी वर्ज्यः प्रातःसवनः स्वादेवैनं योनेर्निर्गृह्णाति सर्वनेसवनेऽभि गृह्णाति सर्वनाथ्सवनादेवैनम्प्र जनयति तृतीयसवने पृश्चकांमस्य गृह्णीयाद्वज्रो वै षोंड्शी पृश्चवंस्तृतीयसवनं वर्ज्जेणैवास्मैं तृतीयसवनात्पृश्चवं रुन्द्धे नोक्थ्ये गृह्णीयात्प्रज्ञा वै पृश्चवं उक्थानि यदुक्थ्ये॥४०॥

गृह्णीयात्प्रजां प्रशूनंस्य निर्देहेदितरात्रे प्रशुकांमस्य गृह्णीयाद्वज्ञो वै षोंड्शी वज्रेंणैवास्मैं प्रशूनंवरुध्य रात्रियोपरिष्टाच्छमयत्यप्यंग्निष्टोमे राजन्यंस्य गृह्णीयाद्वावृत्कांमो हि राजन्यों यजेते साह्र एवास्मै वज्रं गृह्णाति स एनं वज्रो भूत्यां इन्द्धे निर्वा दहत्येकविष्शाः स्तोत्रम्भवति प्रतिष्ठित्ये हरिवच्छस्यत इन्द्रंस्य प्रियं धामं॥४१॥

उपाँप्नोति कर्नीयारसि वै देवेषु छन्दार्स्यास्अयायार्स्यस्रेषु ते देवाः कर्नीयसा छन्दंसा ज्यायुश्छन्दोऽभि व्यंशरसन्ततो वै तेऽसुंराणां लोकमंवृञ्जत् यत्कर्नीयसा छन्दंसा ज्यायुश्छन्दोऽभि विशरसंति भ्रातृंव्यस्यैव तल्लोकं वृंङ्के षड्क्षराण्यति रेचयन्ति पङ्घा ऋतवं ऋतूनेव प्रीणाति चत्वारि पूर्वाण्यवं कल्पयन्ति॥४२॥

चतुंष्पद एव पृश्ननवं रुन्द्धे द्वे उत्तरे द्विपदं एवावं रुन्द्वेऽनुष्टुभंम्भि सम्पादयन्ति वाग्वा अंनुष्टुप्तस्मात्प्राणानां वार्गुत्तमा संमयाविषिते सूर्ये षोड्शिनंः स्तोत्रमुपाकंरोत्येतस्मिन्वै लोक इन्द्रों वृत्रमंहन्थ्साक्षादेव वज्रम्भ्रातृंव्याय प्र हंरत्यरुणपिश्ंगोऽश्वो दक्षिणैतद्वे वज्रस्य रूप समृं खै॥ ४३॥

लोको विदुषंः षोडुशी गृह्यते यदुक्थ्यें धामं कल्पयन्ति सप्तचंत्वारि शच॥———[११]

प्रथमः प्रश्नः (काण्डम् ७)

॥काण्डम् ७॥

॥प्रथमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां सप्तमकाण्डे प्रथमः प्रश्नः॥

प्रजनंनं ज्योतिंर्ग्निर्देवतांनां ज्योतिंर्विराह्वन्दंसां ज्योतिंर्विराङ्घाचौँऽग्नौ सं तिष्ठते विराजम्भि सम्पंद्यते तस्मात्त्रश्योतिंरुच्यते द्वौ स्तोमौँ प्रातःसवनं वहतो यथा प्राणश्चापानश्च द्वौ मार्ध्यदिन् सर्वनं यथा चक्षुंश्च श्रोत्रं च द्वौ तृतीयसवनं यथा वाक्नं प्रतिष्ठा च पुरुषसम्मितो वा एष यज्ञोऽस्थूंरिः॥१॥

यं कामंं कामयंते तमेतेनाभ्यंश्जृते सर्वृङ् ह्यस्थूंरिणाभ्यश्जुतैंऽग्निष्टोमेन् वै प्रजापंतिः प्रजा अंसृजत् ता अंग्निष्टोमेनेव पर्यगृह्णात्तासां परिगृहीतानामश्वत्रोऽत्यंप्रवत् तस्यांनुहाय् रेत् आदंत्त तद्गंद्भे न्यंमार्द्वस्मौद्गर्द्यो द्विरेता अथौं आहुर्वडंबायां न्यंमार्डिति तस्माद्वडंबा द्विरेता अथौं आहुरोषंधीषु॥२॥

न्यंमार्डिति तस्मादोषंध्योऽनंभ्यक्ता रेभुन्त्यथों आहुः प्रजासु न्यंमार्डिति तस्माँद्यमौ जायेते तस्मांदश्वत्रो न प्र जायत् आत्तरेता हि तस्माँद्वर्रहिष्यनंबक्क्ष्मः सर्ववेदसे वां सहस्रे वार्वक्क्षमोऽति ह्यप्रंवत् य एवं विद्वानंग्निष्टोमेन् यजेते प्राजांताः प्रजा जनयंति परि प्रजांता गृह्णाति तस्मांदाहुर्ज्येष्ठयुज्ञ इतिं॥३॥

प्रजापंतिर्वाव ज्येष्टः स ह्यंतेनाग्रेऽयंजत प्रजापंतिरकामयत् प्र जांयेयेति स मुंखतस्त्रिवृत्ं निरंमिमीत् तमृग्निर्देवतान्वंसृज्यत गायत्री छन्दों रथन्तर सामं ब्राह्मणो मंनुष्याणाम्जः पंशूनान्तस्मात्ते मुख्यां मुख्तो ह्यस्ंज्यन्तोरंसो बाहुभ्यां पश्चद्शं निरंमिमीत् तमिन्द्रों देवतान्वंसृज्यत त्रिष्टुप्छन्दों बृहत्॥४॥

सामं राज्ञन्यों मनुष्यांणामविः पश्नान्तस्मात्ते वीर्यावन्तो वीर्याद्धासृंज्यन्त मध्यतः संप्तद्शं निरंमिमीत् तं विश्वं देवा देवता अन्वंसृज्यन्त जर्गती छन्दों वैरूप साम् वैश्यो मनुष्यांणां गावः पश्नान्तस्मात्त आद्यां अन्नधानाद्धासृंज्यन्त तस्माद्भ्याः सोऽन्येभ्यो भूयिष्ठा हि देवता अन्वसृंज्यन्त पत्त एंकविश्शं निरंमिमीत् तमनुष्ठप्छन्दः [5[]

अन्वंसृज्यत वैराज॰ सामं शूद्रो मंनुष्यांणामश्वः पशूनान्तस्मात्तौ भूतसङ्कामिणावश्वंश्च

शूद्रश्च तस्माँच्छूद्रो यज्ञेऽनंबक्कृप्तो न हि देवता अन्वसृंज्यत् तस्मात्पादावुपं जीवतः पत्तो ह्यसृंज्येतां प्राणा वै त्रिवृदंर्धमासाः पश्चद्रशः प्रजापंतिः सप्तद्रशस्त्रयं इमे लोका असावांदित्य एंकवि १ एतस्मिन्वा एते श्रिता एतस्मिन्प्रतिष्ठिता य एवं वेदैतस्मिन्नेव श्रयत एतस्मिन्प्रतिं तिष्ठति॥६॥

अस्थूरिरोषंधीषु ज्येष्ठय्ज्ञ इति बृहदंनुष्टुप्छन्दः प्रतिष्ठिता नवं च॥———[१]

प्रातःसवने वै गांयत्रेण छन्दंसा त्रिवृते स्तोमांय ज्योतिर्दर्धदेति त्रिवृतां ब्रह्मवर्चसेनं पश्चद्रशाय ज्योतिर्दर्धदेति पश्चद्रशेनोजंसा वीर्येण सप्तद्रशाय ज्योतिर्दर्धदेति सप्तद्रशेनं प्राजापत्येनं प्रजननेनैकविर्शाय ज्योतिर्दर्धदेति स्तोमं एव तथ्स्तोमांय ज्योतिर्दर्धदेत्यथो स्तोमं एव स्तोमंम्भि प्र णयति यावन्तो वै स्तोमास्तावन्तः कामास्तावन्तो लोकास्तावन्ति ज्योतीर्श्रंष्येतावत एव स्तोमान्तावतः कामान्तावतो लोकान्तावन्ति ज्योतीर्श्रंष्येतावत एव स्तोमान्तावतः कामान्तावतो लोकान्तावन्ति ज्योतीर्श्रंष्यव रुन्द्व॥७॥

तार्वन्तो लोकास्त्रयोदश च॥-----[२]

ब्रह्मवादिनों वदन्ति स त्वै यंजेत् योंऽग्निष्टोमेन् यजंमानोऽथ् सर्वस्तोमेन् यजेतेति यस्यं त्रिवृतंमन्त्यंन्तिं प्राणाः स्तस्यान्तयंन्ति प्राणेषु मेऽप्यंसदिति खलु वै यज्ञेन् यजंमानो यजते यस्यं पश्चद्शमंन्त्यंन्तिं वीर्यं तस्यान्तर्यन्ति वीर्यं मेऽप्यंसदिति खलु वै यज्ञेन् यजंमानो यजते यस्यं सप्तदशमंन्तर्यन्ति॥८॥

प्रजां तस्यान्तर्यन्ति प्रजायाम्मेऽप्यंस्विति खलु वै यज्ञेन् यजंमानो यजते यस्यैकिविश्शमंन्त्र्यन्तिं प्रतिष्ठां तस्यान्तर्यन्ति प्रतिष्ठायाम्मेऽप्यंस्विति खलु वै यज्ञेन् यजंमानो यजते यस्यं त्रिण्वमंन्त्र्यंन्त्यृत्र्श्च तस्यं नक्षत्रियां च विराजंम्न्तर्यंन्त्यृत्ष्षु मेऽप्यंसन्नक्षत्रियां च विराजंति॥९॥

खलु वै यज्ञेन यजंमानो यजते यस्यं त्रयिश्विष्शमंन्तर्यन्तिं देवतास्तस्यान्तर्यन्ति देवतांसु मेऽप्यंसदिति खलु वै यज्ञेन यजंमानो यजते यो वै स्तोमांनामवमं पंरमतां गच्छंन्तं वेदं पर्मतांमेव गंच्छिति त्रिवृद्धै स्तोमांनामवमिश्चवृत्यंरमो य एवं वेदं पर्मतांमेव गंच्छिति॥१०॥

स्प्तद्शमंन्तुर्यन्तिं विराजीति चतुंश्चत्वारि शच॥————[३]

अङ्गिरसो वै स्त्रमांसत् ते सुंवर्गं लोकमायन्तेषार् ह्विष्मार्श्व हिव्फ्न्साहीयेतान्तावंकामयेतार सुवर्गं लोकमियावेति तावेतं द्विरात्रमंपश्यतान्तमाहेरतान्तेनायजे वै तौ सुंवर्गं लोकमैतां य एवं विद्वान्द्विरात्रेण यजिते सुवर्गमेव लोकमैति तावेताम्पूर्वेणा-ऽह्वाऽगंच्छतामुत्तरेण॥११॥

अभि्ष्रुवः पूर्वमहंर्भवित् गित्रुरुत्तंरं ज्योतिष्टोमोऽग्निष्टोमः पूर्वमहंर्भवित् तेज्स्तेनावं रुन्द्धे सर्वस्तोमोऽतिरात्र उत्तंर्र् सर्वस्याप्त्ये सर्वस्यावंरुद्धे गायत्रम्पूर्वेहुन्थ्सामं भवित् तेजो वे गायत्री गायत्री ब्रह्मवर्चसन्तेजं एव ब्रह्मवर्चसमात्मन्धंत्ते त्रेष्ट्रंभमुत्तंर ओजो वे वीर्यं त्रिष्टुगोजं एव वीर्यमात्मन्धंत्ते रथन्तुरम्पूर्वं॥१२॥

अह्-थ्सामं भवतीयं वै रंथन्त्रम्स्यामेव प्रतिं तिष्ठति बृहद्त्तरेऽसौ वै बृहद्मुष्यामेव प्रतिं तिष्ठति तदांहुः कं जगती चानुष्ठुष्चेतिं वैखान्सम्पूर्वेऽह्न्थ्सामं भवति तेन् जगत्यै नैतिं षोड्श्युत्तरे तेनांनुष्ठुभोऽथांहुर्यथ्संमानैंऽ धमासे स्यातांमन्यत्रस्याह्रों वीर्यमनुं पद्येतत्यंमावास्यायाम्पूर्वमहंभवत्युत्तरस्मिन्नुत्तर्न्नानेवार्धमासयौभवतो नानांवीर्ये भवतो हिवष्मंत्रिधन्म्पूर्वमहंभवति हिवष्कृत्तिंधन्मुत्तरं प्रतिष्ठित्यै॥१३॥

उत्तरेण रथन्तरम्पूर्वेऽन्वेकंवि शतिश्व॥_____

—[×1

आपो वा इदमग्रें सिल्लमांसीत्तस्मिन्ग्रजापंतिर्वायुर्भूत्वाचंरथ्स इमामंपश्यत्तां वंराहो भूत्वाहंर्त्तां विश्वकंमां भूत्वा व्यंमाद्रथ्सांप्रथत् सा पृथिव्यंभवृत्तत्पृथिव्ये पृथिवित्वन्तस्यांमश्राम्यत्प्रजापंतिः स देवानंसृजत् वसूत्रुद्रानांदित्यान्ते देवाः प्रजापंतिमब्रुवन्त्र जांयामहा इति सौंऽब्रवीत्॥१४॥

यथाहं युष्मा इस्तप्सासृक्ष्येवं तपंसि प्रजनंनिमच्छध्वमिति तेभ्यो-ऽग्निमायतंनुम्प्रायंच्छदेतेनायतंनेन श्राम्यतेति तैंऽग्निनायतंनेनाश्राम्यन्ते संवथ्सर एकां गामस्जन्त तां वस्नभ्यो रुद्रेभ्यं आदित्येभ्यः प्रायंच्छन्नेता र रेक्षध्वमिति तां वसंवो रुद्रा आदित्या अरक्षन्त सा वस्नभ्यो रुद्रेभ्यं आदित्येभ्यः प्राजांयत् त्रीणिं च॥१५॥

शृतानि त्रयंश्वि शतं चाथ सैव संहस्रतम्यंभवत्ते देवाः प्रजापंतिमब्रुवन्थ्सहस्रेण नो याज्येति सौँऽग्निष्टोमेन वसूनयाजयत्त इमं लोकमंजयन्तचांददुः स उक्थ्येन रुद्रानंयाजयत्तैंऽन्तरिक्षमजयन्तचांददुः सोऽतिरात्रेणांदित्यानंयाजयत्तेऽमुं लोकमंजयुन्तचांददुस्तद्न्तरिक्षम्॥१६॥

व्यवैर्यत् तस्माँद्रुद्रा घातुंका अनायत्ना हि तस्मांदाहुः शिथिलं वै मंध्यममहंस्त्रिरात्रस्य वि हि तद्वैर्यतेति त्रेष्ट्रंभम्मध्यमस्याह् आज्यंम्भवति संयानांनि सूक्तानिं शश्सित षोड्शिनश्रे शश्सत्यह्रो धृत्या अशिथिलम्भावाय तस्मांत्रिरात्रस्याँग्निष्टोम एव प्रंथममहंः स्यादथोक्थ्यो-ऽथांतिरात्र एषां लोकानां विधृत्ये त्रीणित्रीणि शुतान्यंनूचीनाहमव्यंवच्छित्रानि ददाति॥१७॥

पुषां लोकानामनु सन्तंत्ये दृशतं न विच्छिंन्द्याद्विराज्ं नेद्विच्छिनदानीत्यथ् या संहस्रतम्यासीत्तस्यामिन्द्रेश्च विष्णुंश्च व्यायंच्छेता् स इन्द्रोंऽमन्यतानया वा इदं विष्णुं सहस्रं वर्क्ष्यत् इति तस्यामकल्पेतां द्विभांग् इन्द्रस्तृतीये विष्णुस्तद्वा एषाभ्यनूँच्यत उभा जिंग्यथुरिति तां वा पुतामंच्छावाकः॥१८॥

पुव शर्रस्तयथ् या संहस्रतमी सा होत्रे देयेति होतांरं वा अभ्यतिरिच्यते यदंतिरिच्यंते होतानांप्तस्यापयिताथांहुरुत्रेत्रे देयेत्यतिरिक्ता वा एषा सहस्रस्यातिरिक्त उन्नेतर्त्विजामथांहुः सर्वेभ्यः सदस्येभ्यो देयेत्यथांहुरुदाकृत्या सा वशं चरेदित्यथांहुर्ब्रह्मणं चाग्नीधं च देयेति॥१९॥

द्विभागम्ब्रह्मणे तृतीयमुग्नीधं ऐन्द्रो वै ब्रह्मा वैंष्ण्वोंऽग्नीद्यथेव तावकंल्पेतामित्यथांहुर्या कंल्याणी बंहुरूपा सा देयेत्यथांहुर्या द्विंरूपोभयतंएनी सा देयेति सहस्रंस्य परिंगृहीत्यै तद्वा एतथ्सहस्रस्यायंन सहस्रं स्तोत्रीयाः सहस्रं दक्षिणाः सहस्रंसम्मितः सुवृगीं लोकः स्वृंर्गस्यं लोकस्याभिजित्यै॥२०॥

अब्रवीच् तद्न्तरिक्षन्ददात्यच्छावाकश्च देयेतिं सप्तचंत्वारि शच॥————[५]

सोमो वै सहस्रंमिवन्द्त्तिमन्द्रोऽन्वंविन्द्त्तौ युमो न्यागंच्छुत्तावंब्रवीदस्तु मेऽत्रापीत्यस्तु ही(३) इत्यंब्रूतार् स युम एकंस्यां वीर्यं पर्यपश्यिद्यं वा अस्य सहस्रंस्य वीर्यम्बिभूर्तीति तावंब्रवीदियम्ममास्त्वेतद्युवयोरिति तावंब्रूतार् सर्वे वा एतदेतस्यां वीर्यम्॥२१॥

परि पश्यामोऽ श्यामा हंरामहा इति तस्याम श्यामाहं रन्त ताम पसु प्रावेशय स्थामायोदेहीति सा रोहिणी पिङ्गलै कहायनी रूपं कृत्वा त्रयस्त्रिश्याता च त्रिभिश्चं श्रुतैः सहोदैत्तस्माद्रोहिण्या पिङ्गलयै कहायन्या सोमं क्रीणीयाद्य एवं विद्वान्नोहिण्या पिङ्गलयै कहायन्या सोमं क्रीणीयाद्य एवं विद्वान्नोहिण्या पिङ्गलयै कहायन्या सोमं क्रीणाति त्रयस्त्रिश्या चैवास्यं त्रिभिश्चं॥ २२॥

श्रुतैः सोमः क्रीतो भविति सुक्रीतेन यजते तामुफ्सु प्रावेशयन्निन्द्रायोदेहीति सा रोहिणी

प्रथमः प्रश्नः (काण्डम् ७)

लक्ष्मणा पष्ठौही वार्त्रघ्नी रूपं कृत्वा त्रयंस्नि श्वाता च त्रिभिश्चं श्वतेः सहोदैत्तस्माद्रोहिंणीं लक्ष्मणाम्पष्ठौहीं वार्त्रघ्नीं दद्याद्य एवं विद्वात्रोहिंणीं लक्ष्मणाम्पष्ठौहीं वार्त्रघ्नीं ददांति त्रयंस्नि श्ववेवास्य त्रीणि च श्वतानि सा दत्ता॥२३॥

भ्वति ताम्पस् प्रावेशयन् यमायोदेहीति सा जरंती मूर्खा तंत्रघुन्या रूपं कृत्वा त्रयंस्त्रिश्शता च त्रिभिश्चं शतैः सहोदेत्तस्माञ्चरंतीम्मूर्खां तंत्रघन्यामंनुस्तरंणीं कुर्वीत् य एवं विद्वाअरंतीम्मूर्खां तंत्रघन्यामंनुस्तरंणीं कुरुते त्रयंस्त्रिश्शचैवास्य त्रीणि च शतानि सामुष्मिल्लोंके भंवति वागेव संहस्रत्मी तस्मात्॥२४॥

वरो देयः सा हि वरंः सहस्रंमस्य सा दत्ता भंवित तस्माद्वरो न प्रंतिगृह्यः सा हि वरंः सहस्रंमस्य प्रतिगृहीतम्भवतीयं वर् इतिं ब्रूयादथान्याम्ब्रूयादियम्ममेति तथाँस्य तथ्सहस्रमप्रतिगृहीतम्भवत्युभयतपुनी स्यात्तदांहुरन्यतपुनी स्यांध्सहस्रंम्परस्तादेत्मिति यैव वरंः॥२५॥

कुल्याणी रूपसंमृद्धा सा स्याथ्सा हि वरः समृद्धौ तामुत्तरेणाग्नीप्रं पर्याणीयांहवनीयस्यान्तै द्रोणकलृशमवं घ्रापयेदा जिंघ्र कुलशंम्मह्युरुधांरा पर्यस्वत्या त्वां विश्नित्वन्देवः समुद्रमिव सिन्धंवः सा मां सहस्र आ भंज प्रजयां पृश्निः सह पुनुर्मा विश्रताद्वयिरितिं प्रजयैवैनम्पृश्नीं रुय्या सम्॥२६॥

अर्ध्यति प्रजावाँन्पशुमात्रीयमान्भविति य एवं वेद तयां सहाग्रीप्रम्परेत्यं पुरस्ताँत्प्रतीच्यां तिष्ठंन्त्यां जुहुयादुभा जिंग्यथुर्न परां जयेथे न परां जिग्ये कत्रश्चनैनौः। इन्द्रंश्च विष्णो यदपंस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथामितिं त्रेधाविभक्तं वै त्रिरात्रे सहस्रं साहस्रीमेवैनौं करोति सहस्रंस्यैवैनाम्मात्राँम्॥२७॥

करोति रूपाणि जुहोति रूपैरेवैना समर्धयित तस्यां उपोत्थाय कर्णमा जंपेदिडे रन्तेऽदिते सरस्वित प्रिये प्रेयिस मिह् विश्वंत्येतानि ते अग्निये नामांनि सुकृतंं मा देवेषुं ब्रूतादिति देवेभ्यं पुवैनमा वेंदयत्यन्वेनं देवा बुंध्यन्ते॥२८॥

पुतदेतस्यां वीर्यमस्य त्रिभिश्चं दत्ता संहस्रतमी तस्मांदेव वरः सम्मात्रामेकान्नचंत्वारिर्श्शचं॥[६]

सहस्रतम्यां वै यजंमानः सुवर्गं लोकमेति सैन सवर्गं लोकं गंमयित सा मां सुवर्गं लोकं गंम्येत्यांह सुवर्गमेवैनं लोकं गंमयित सा मा ज्योतिष्मन्तं लोकं गंम्येत्यांहु ज्योतिंष्मन्तमेवैनं लोकं गंमयति सा मा सर्वान्युण्यांश्लाँकान्गंम्येत्यांहु सर्वानेवैनम्पुण्यांश्लाँकान्गंमयति सा॥२९॥

मा प्रतिष्ठां गंमय प्रजयां पृशुभिः सह पुनुर्मा विश्वताद्वियिरितिं प्रजयैवैनंम्पृशुभीं र्य्यां प्रतिं ष्ठापयित प्रजावांन्पशुमात्रंयिमान्नंवित् य एवं वेद् तामृग्नीधें वा ब्रह्मणे वा होत्रें वोद्गात्रे वांध्वर्यवें वा दद्याथ्सहस्रंमस्य सा दत्ता भवित सहस्रंमस्य प्रतिंगृहीतम्भवित् यस्तामविद्वान्॥३०॥

प्रतिगृह्णाति तां प्रतिं गृह्णीयादेकांसि न सहस्रमेकां त्वा भूतां प्रतिं गृह्णामि न सहस्रमेकां मा भूता विंशु मा सहस्रमित्येकांमेवैनां भूतां प्रतिं गृह्णाति न सहस्रुं य एवं वेदं स्योनासिं सुषदां सुशेवां स्योना मा विंश सुषदा मा विंश सुशेवा मा विंश॥३१॥

इत्यांह स्योनैवेन र् सुषदां सुशेवां भूता विंशति नैन र हिनस्ति ब्रह्मवादिनों वदन्ति सहस्रं सहस्रतम्यन्वेती(३) संहस्रत्मी र सहस्रा(३)मिति यत्प्राचीं मृथ्युजेथ्सहस्र र सहस्रतम्यन्वेयात्तथ्सहस्रं मप्रज्ञात्र सुंवर्गं लोकं न प्र जांनीयात्प्रतीची् मुथ्युजिति ता र सहस्रमन् पूर्यावर्तते सा प्रजानती सुंवर्गं लोकमेति यजमानम्भ्युथ्युजिति क्षिप्रे सहस्रम्प्र जांयत उत्तमा नीयते प्रथमा देवानांच्छति॥३२॥

लोकान्गंमयति साविद्वान्थ्सुशेवा माविश् यजमान्नद्वादंश च॥______[७]

अत्रिंरददादौर्वाय प्रजाम्पुत्रकांमाय स रिरिचानोंऽमन्यत निर्वीर्यः शिथिलो यातयांमा स एतं चंतूरात्रमंपश्यत् तमाहंरत्तेनांयजत् ततो वै तस्यं चत्वारों वीरा आजांयन्त सुहोता स्वध्वर्युः सुसंभेयो य एवं विद्वाः श्चेत्र्रात्रण् यजत् आस्यं चत्वारों वीरा जांयन्ते सुहोता स्वध्वर्युः सुसंभेयो ये चंतुर्विर्शाः पर्वमाना ब्रह्मवर्चसं तत्॥३३॥

य उद्यन्तः स्तोमाः श्रीः सात्रिई श्रृद्धादेवं यजमानं चृत्वारि वीर्याणि नोपानम्नतेजं इन्द्रियम्ब्रह्मवर्च्सम्त्राद्यः स पृताः श्रृत्तुरश्चतुष्टोमान्थ्सोमानपश्यत्तानाहं रत्तैरंयजत् तेजं पृव प्रथमेनावां रुन्द्वेन्द्र्यं द्वितीर्येन ब्रह्मवर्च्सं तृतीर्येनात्राद्यं चतुर्थेन् य पृवं विद्वाः श्रृ्त्रतुष्टोमान्थ्सोमानाहरित् तैर्यजंते तेजं पृव प्रथमेनावं रुन्द्व इन्द्रियं द्वितीयेन ब्रह्मवर्चसं तृतीर्येनात्राद्यं चतुर्थेन् यामेवात्रिर्ऋद्विमार्श्रोत्तामेव यर्जमान ऋप्नोति॥३४॥

तत्तेर्ज पुवाष्टादंश च॥-----[८]

जमदंग्निः पृष्टिंकामश्चतूरात्रेणांयजत् स एतान्योषार् अपुष्यत्तस्मांत्पिलृतौ जामंदग्नियौ न सं जानाते एतानेव पोषांन्पुष्यित् य एवं विद्वाः श्चंत्र्येष्ण् यजेते पुरोडाशिन्यं उपसदों भवन्ति पृशवो वै पुरोडाशः पृश्ननेवावं रुन्द्धेऽत्रृं वै पुरोडाशोऽत्रंमेवावं रुन्द्धेऽत्रादः पंशुमान्भवित् य एवं विद्वाः श्चंतूरात्रेण् यजेते॥३५॥

ज्मदंग्निर्ष्टाचंत्वारिश्शत्॥———[

संवथ्सरो वा इदमेकं आसीथ्सोऽकामयतुर्तून्थ्सृंजेयेति स एतम्पंश्चरात्रमंपश्यत्तमाहंर्त्तेनांयज ततो वै स ऋतूनंसृजत् य एवं विद्वान्पंश्चरात्रेण् यजते प्रैव जायते त ऋतवंः सृष्टा न व्यावर्तन्त त एतम्पंश्चरात्रमंपश्यन् तमाहंरन्तेनांयजन्त ततो वै ते व्यावर्तन्त॥३६॥

य एवं विद्वान्पंश्चरात्रेण यजंते वि पाप्मना भ्रातृंब्येणा वर्तते सार्वसेनिः शौचेयों-ऽकामयत पशुमान्थ्स्यामिति स एतम्पंश्चरात्रमाहंर्त्तेनांयजत ततो वै स सहस्रं पृशून्प्राप्नोद्य एवं विद्वान्पंश्चरात्रेण यजंते प्र सहस्रं पृशूनांप्नोति बब्रः प्रावांहणिरकामयत वाचः प्रविदिता स्यामिति स एतम्पंश्चरात्रमा॥३७॥

अह्र्त्तेनायजत् ततो वै स वाचः प्रंविद्ताभंवद्य एवं विद्वान्पंश्चरात्रेण् यजंते प्रविदितेव वाचो भंवत्यथों एनं वाचस्पितिरित्यांहुरनांप्तश्चत्रात्रोऽतिरिक्तः षड्यत्रोऽथ् वा एष संम्प्रति यज्ञो यत्पंश्चरात्रो य एवं विद्वान्पंश्चरात्रेण् यजंते सम्प्रत्येव यज्ञेनं यजते पश्चरात्रो भंवित् पश्च वा ऋतवेः संवथ्सरः॥३८॥

ऋतुष्वेव सं वथ्सरे प्रति तिष्ठत्यथो पश्चौक्षरा पङ्किः पाङ्कौ यज्ञो यज्ञमेवावं रुन्छे त्रिवृदंग्निष्टोमो भविति तेजं एवावं रुन्छे पश्चद्शो भवितीन्द्रियमेवावं रुन्छे सप्तद्शो भवत्यन्नाद्यस्यावंरुद्धा अथो प्रैव तेनं जायते पश्चिव्दशौंऽग्निष्टोमो भविति प्रजापंतेरास्यै महाव्रतवानन्नाद्यस्यावंरुद्धौ विश्वजिथ्सर्वपृष्ठोऽतिरात्रो भविति सर्वस्याभिजित्यै॥३९॥

ते व्यावंर्तन्त प्रविदता स्यामिति स एतम्प्रंश्चरात्रमा सं वथ्सरोऽभिजिंत्यै॥———[१०]

देवस्यं त्वा सिवृतुः प्रस्वेंऽश्विनौंर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्तांभ्यामा दंद इमामंगृभ्णत्रश्नामृतस्य पूर्व आयुंषि विद्येषु कृव्या। तयां देवाः सुतमा बंभूवुर्ऋतस्य सामंन्थ्सरमारपंन्ती। अभिधा असि भुवंनमसि यन्तासि धूर्तासि सौंऽग्निं वैश्वान्तर सप्रथसं गच्छ् स्वाहांकृतः पृथिव्यां यन्ता राड्यन्तासि यमेनो धूर्तासि धुरुणः कृष्ये त्वा क्षेमाय त्वा रुप्ये त्वा

पोषांय त्वा पृथिव्ये त्वान्तरिक्षाय त्वा दिवे त्वां सृते त्वासंते त्वान्धस्त्वौषंधीभ्यस्त्वा विश्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः॥४०॥

विभूर्मात्रा प्रभूः पित्राश्वोऽस्य हयोऽस्यत्योऽसि नरोऽस्यवांसि सप्तिरिस वाज्यंसि वृषांसि नृमणां असि ययुर्नामांस्यादित्यानाम्यत्वान्विह्यग्रये स्वाहा स्वाहेंन्द्राग्निभ्या स्वाहा प्रजापंतये स्वाहा विश्वेंभ्यो देवेभ्यः स्वाहा सर्वांभ्यो देवेतांभ्य इह धृतिः स्वाहेह विधृतिः स्वाहेह रितः स्वाहेष्ठ रितः स्वाहेष्य स्वाहेष्ठ रितः स्वाहेष्य स्वाहेष्ठ रितः स्वाहेष्ठ रितः स्वाहेष्ठ रितः स्वाहेष्ठ रितः स्वा

रन्तिः स्वाहा द्वावि १ शतिश्व॥

आयंनाय स्वाह्य प्रायंणाय स्वाहोँ द्वावाय स्वाहो द्वेताय स्वाहां शूकाराय स्वाह्य शूकृंताय स्वाह्य पलांयिताय स्वाह्य प्रताह्य स्वाह्य स्वाह्य

आयंनायोत्तंरमापलांयिताय षड्वि र्शितः॥—————[१३]

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहां वायवे स्वाहापाम्मोदाय स्वाहां सिवत्रे स्वाहा सर्रस्वत्यै स्वाहेन्द्राय स्वाहा बृहुस्पतंये स्वाहां मित्राय स्वाहा वरुंणाय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहाँ॥४३॥

[88]

पृथिव्यै स्वाह्य स्वाह्य स्वाहां दिवे स्वाह्य सूर्याय स्वाहां चुन्द्रमंसे स्वाह्य नक्षंत्रेभ्यः स्वाह्य प्राच्ये दिशे स्वाह्य दक्षिणाये दिशे स्वाहां प्रतिच्ये दिशे स्वाहोदींच्ये दिशे स्वाहोदींच्ये दिशे स्वाहोदींच्ये दिशे स्वाहोदींच्ये दिशे स्वाहो दिग्भ्यः स्वाहांऽवान्तरिदशाभ्यः स्वाह्य समाभ्यः स्वाहां श्रुख्यः स्वाहांऽहोरात्रेभ्यः स्वाहांऽर्धमासेभ्यः स्वाह्य मासेभ्यः स्वाह्तुंभ्यः स्वाहां संवथ्सराय स्वाह्य सर्वस्मै स्वाहां॥४४॥

-[१५]

अग्नये स्वाहा सोमांय स्वाहां सिवृत्रे स्वाहा सरंस्वत्यै स्वाहां पूष्णे स्वाहा

प्रथमः प्रश्नः (काण्डम् ७)

बृहुस्पतंये स्वाहाऽपाम्मोदांय स्वाहां वायवे स्वाहां मित्राय स्वाहा वर्रुणाय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहाँ॥४५॥

-[१६]

पृथिव्ये स्वाह्य प्रतिरक्षाय स्वाहां दिवे स्वाह्य प्रयोग स्वाह्य सोमांय स्वाह्य सूर्याय स्वाहां चन्द्रमंसे स्वाह्य हे स्वाह्य रात्रिये स्वाह्य स्वाह्य स्वाह्य स्वाह्य स्वाह्य स्वाह्य स्वाह्य स्वाह्य रात्रिये स्वाह्य स्वाह्य स्वाह्य स्वाह्य रात्रिय स्वाह्य स्वाह्य रात्रिय स्वाह्य स्वाह्य रात्रिय स्वाह्य स्वाह

भुवों देवानां कर्मणापसर्तस्यं पृथ्यांसि वसुंभिर्देविभिर्देवत्या गाय्त्रेणं त्वा छन्दंसा युनिज्म वस्नतेनं त्वर्तुनां हिवणं दीक्षयामि रुद्रेभिर्देविभिर्देवत्या त्रैष्टुभेन त्वा छन्दंसा युनिज्म ग्रीष्मेणं त्वर्तुनां हिवणं दीक्षयाम्यादित्येभिर्देविभिर्देवत्या जागंतेन त्वा छन्दंसा युनिज्म वर्षाभिस्त्वर्तुनां हिवणं दीक्षयाम्य विश्वभिर्देविभिर्देवत्यानुष्टुभेन त्वा छन्दंसा युनिज्म॥४७॥

श्ररदाँ त्वर्तुनां ह्विषां दीक्षयाम्यिङ्गरोभिर्देविभिर्देवतया पाङ्केन त्वा छन्दंसा युनिज्मि हेमन्तिशिश्राभ्यां त्वर्तुनां ह्विषां दीक्षयाम्याहं दीक्षामंरुहमृतस्य पत्नीं गायत्रेण छन्दंसा ब्रह्मणा चर्तर सत्येऽधार सत्यमृतेऽधाम्। मृहीमू षु सुत्रामाणिमृह धृतिः स्वाहेह विधृतिः स्वाहेह रन्तिः स्वाहेह रमितिः स्वाहाँ॥४८॥

■[१८]

र्ड्ङ्काराय स्वाहें कृंताय स्वाहा क्रन्दंते स्वाहांऽवृक्तन्दंते स्वाहा प्रोथंते स्वाहां प्रप्रोथंते स्वाहां गुन्धाय स्वाहां प्राताय स्वाहां प्राणाय स्वाहां व्यानाय स्वाहांऽपानाय स्वाहां सन्दीयमानाय स्वाहा सन्दिताय स्वाहां विचृत्यमानाय स्वाहा विचृत्ताय स्वाहां पलायिष्यमाणाय स्वाहा पलायिष्यमाणाय स्वाहा पलायिताय स्वाहांपरङ्स्यते स्वाहांपरताय स्वाहां निवेक्ष्यते स्वाहां निविशामानाय स्वाहां निविष्टाय स्वाहां निवध्स्यते स्वाहां निविशामानाय स्वाहा निविष्टाय स्वाहां निवध्स्यते स्वाहां निविशामानाय स्वाहा निविष्टाय स्वाहां निवध्स्यते स्वाहां निविशामानाय स्वाहां निविष्टाय स्वाहां निवध्स्यते स्वाहां निविशामानाय स्वाहां निविष्टाय स्वाहां निवध्स्यते स्वाहां निविशामानाय स्वाहां निविष्टाय स्वाहां निवध्स्यते स्वाहां निवध्यते स्वाहां निवध्स्यते स्वाहां निवध्यते स्वा

आसिष्यते स्वाहाऽऽसीनाय स्वाहांऽऽसिताय स्वाहां निपथ्स्यते स्वाहां निपद्यंमानाय

स्वाह् निपंन्नाय स्वाहां शियष्यते स्वाह् शयांनाय स्वाहां शियताय स्वाहां सम्मीलिष्यते स्वाहां सम्मीलित् स्वाहां सम्मीलिताय स्वाहां स्वपस्यते स्वाहां स्वपते स्वाहां सुप्ताय स्वाहां प्रभोध्स्यते स्वाहां प्रबुद्धाय स्वाहां जागरिष्यते स्वाहां प्रबुद्धाय स्वाहां जागरिष्यते स्वाहां जागरिताय स्वाहां शुश्रूंषमाणाय स्वाहां शृण्वते स्वाहां श्रुताय स्वाहां वीक्षिष्यते स्वाहां॥५०॥

वीक्षंमाणाय स्वाह् वीक्षिताय स्वाहां स॰हास्यते स्वाहां स्अिहांनाय स्वाहोजिहांनाय स्वाहां विवथ्स्यते स्वाहां विवर्तमानाय स्वाहा विवृत्ताय स्वाहांत्थास्यते स्वाहोत्तिष्ठंते स्वाहोत्थिताय स्वाहां विधविष्यते स्वाहां विधून्वानाय स्वाहा विधूताय स्वाहां चङ्कमियात स्वाहां चङ्कमियात स्वाहां चङ्कमियात स्वाहां चङ्कमियात स्वाहां कण्डूयिष्यते स्वाहां कण्डूयिष्यते स्वाहां कण्डूयिष्यते स्वाहां कण्डूयिष्यते स्वाहां कण्डूयिष्यते स्वाहां कण्डूयमांनाय स्वाहां कण्डूयिताय स्वाहां निकषिष्यते स्वाहां निकषिष्यते स्वाहां निकषिष्यते स्वाहां यस्ति तस्मै स्वाहा यत्पिबंति तस्मै स्वाहा यन्महंति तस्मै स्वाहा यच्छकृंत्करोति तस्मै स्वाहा रेतंसे स्वाहां प्रजाभ्यः स्वाहां प्रजानाय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहां॥५१॥

[88]

अग्नये स्वाहां वायवे स्वाहा सूर्यांय स्वाहर्तमंस्यृतस्यर्तमंसि स्त्यमंसि स्त्यस्यं स्त्यमंस्यृतस्य पन्थां असि देवानां छायामृतस्य नाम तथ्सत्यं यत्त्वं प्रजापंतिरस्यिध् यदंस्मिन्वाजिनीव शुभुः स्पर्धन्ते दिवः सूर्येण विशोऽपो वृंणानः पंवते कृव्यन्पृशुं न गोपा इर्यः परिजमा॥५२॥

-[२०]

॥द्वितीयः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां सप्तमकाण्डे द्वितीयः प्रश्नः॥

साध्या वै देवाः सुंवर्गकामा एतः षड्रात्रमपश्यन्तमाहरन्तेनायजन्त ततो वै ते सुंवर्गं लोकमायन् य एवं विद्वाः संः षड्रात्रमासंते सुवर्गमेव लोकं यन्ति देवसत्रं वै षड्रात्रः प्रत्यक्ष इं ह्यंतानिं पृष्ठानि य एवं विद्वा १ संः षड्रात्रमासंते साक्षादेव देवतां अभ्यारीहन्ति पड्रात्रो भवति षड्वा ऋतवः षद्वष्ठानि॥१॥

पृष्ठेरेवर्तूनन्वारोहन्त्यृतुभिः संवथ्सरन्ते संवथ्सर एव प्रतिं तिष्ठन्ति बृहद्रथन्तरा-भ्यां यन्तीयं वाव रंथन्तरम्सौ बृहद्याभ्यामेव यन्त्यथां अनयोरेव प्रतिं तिष्ठन्त्येते वै यज्ञस्यांश्चसायंनी स्रुती ताभ्यांमेव सुंवर्गं लोकं यंन्ति त्रिवृदंग्निष्टोमो भंवति तेजं एवावं रुन्थते पश्चद्रशो भंवतीन्द्रियमेवावं रुन्थते सप्तद्रशः॥२॥

भ्वत्यन्नाद्यस्यावंरुद्धा अथो प्रैव तेनं जायन्त एकविश्वो भंवित प्रतिष्ठित्या अथो रुचंभेवात्मन्दंधते त्रिण्वो भंवित विजित्ये त्रयिष्ठश्यो भंवित प्रतिष्ठित्ये सदोहिवधानिनं एतेनं षड्यत्रेणं यजेर्न्नाश्वंत्थी हिवधानं चाग्नींप्रं च भवतस्तिद्ध सुंवर्ग्यं चुकीवंती भवतः सुवर्गस्यं लोकस्य सम्प्रा उलूखंलबुभ्रो यूपो भवित प्रतिष्ठित्ये प्राञ्चो यान्ति प्राहिंव हि सुंवर्गः॥३॥

लोकः सरंस्वत्या यान्त्येष वै देवयानः पन्थास्तमेवान्वारोहन्त्याक्रोशंन्तो यान्त्यवंतिमेवान्यस्मिन्प्रतिषज्यं प्रतिष्ठां गंच्छन्ति यदा दशं शतं कुर्वन्त्यथैकंमुत्थानः श्वतायुः पुरुषः श्वतेन्द्रियं आयुंष्येवेन्द्रियं प्रतिं तिष्ठन्ति यदा श्वतः सहस्रं कुर्वन्त्यथैकंमुत्थानः सहस्रं कुर्वन्त्यथैकंमुत्थानः सहस्रं सिम्मतो वा असौ लोकोऽमुमेव लोकम्भि जंयन्ति यदैषां प्रमीयंत यदा वा जीयेर्न्नथैकंमुत्थान्नति तीर्थम्॥४॥

पृष्ठानिं सप्तद्शः सुंवुर्गो जंयन्ति यदैकांदश च॥______[१]

कुसुरुबिन्द् औद्दांलिकरकामयत पशुमान्थ्स्यामिति स एतः संप्तरात्रमाहंर्त्तेनांयजत् तेन् वै स यावन्तो ग्राम्याः पृशवस्तानवांरुन्द्ध् य एवं विद्वान्थ्संप्तरात्रेण् यजते यावन्त एव ग्राम्याः पृशवस्तानेवावं रुन्द्धे सप्तरात्रो भवति सप्त ग्राम्याः पृशवंः सप्तार्ण्याः सप्त छन्दाःरस्यभयस्यावंरुद्धौ त्रिवृदंग्निष्टोमो भवति तेजः॥५॥

पुवावं रुन्द्धे पश्चद्शो भंवतीन्द्रियमेवावं रुन्द्धे सप्तद्शो भंवत्युत्राद्यस्यावंरुद्धा अथो प्रैव तेनं जायत एकविश्शो भंवति प्रतिष्ठित्या अथो रुचमेवात्मन्थंत्ते त्रिण्वो भंवति विजित्ये पश्चविश्शौंऽग्निष्टोमो भंवति प्रजापंतेरात्ये महाव्रतवान्त्राद्यस्यावंरुद्धौ विश्वजिथ्सर्वपृष्ठो-ऽतिरात्रो भंवति सर्वस्याभिजित्यै यत्प्रत्यक्षम्पूर्वेष्वहंःसु पृष्ठान्युंपेयुः प्रत्यक्षम्॥६॥ विश्वजिति यथां दुग्धामुंप्सीदंत्येवमुंत्तममहंः स्यान्नैकंरात्रश्चन स्याँद्वृहद्रथन्त्रे पूर्वेष्वहःसूपं यन्तीयं वाव रंथन्त्रम्सौ बृहद्गभ्यामेव न यन्त्यथों अनयोरेव प्रतिं तिष्ठन्ति यत्प्रत्यक्षं विश्वजितिं पृष्ठान्युंपयन्ति यथा प्रत्तां दुहे तादगेव तत्॥७॥

तेर्ज उपेयुः प्रत्यक्षं द्विचंत्वारि शच॥————[२]

बृह्स्पतिरकामयत ब्रह्मवर्च्सी स्यामिति स एतम्ष्टरात्रमंपश्यत्तमाहंर्त्तेनांयजत् ततो वै स ब्रह्मवर्च्स्यंभवद्य एवं विद्वानंष्टरात्रेण यजंते ब्रह्मवर्च्स्यंव भंवत्यष्टरात्रो भंवत्यष्टाक्षंरा गायत्री गांयत्री ब्रह्मवर्च्सम्गांयत्रियेव ब्रह्मवर्च्समवं रुन्द्वेऽष्टरात्रो भंवति चतंस्रो वै दिशश्चतंस्रोऽवान्तरदिशा दिग्भ्य एव ब्रह्मवर्चसमवं रुन्द्वे॥८॥

त्रिवृदंग्निष्टोमो भंवति तेजं एवावं रुन्द्धे पश्चद्दशो भंवतीन्द्रियमेवावं रुन्द्धे सप्तद्दशो भंवत्युत्राद्यस्यावंरुद्धा अथो प्रैव तेनं जायत एकविर्शो भंवति प्रतिष्ठित्या अथो रुचंमेवात्मन्धंते त्रिण्वो भंवति विजित्ये त्रयिश्वर्शो भंवति प्रतिष्ठित्ये पश्चविर्शों-ऽग्निष्टोमो भंवति प्रजापंतेरास्ये महाब्रुतवांनुन्नाद्यस्यावंरुद्धौ विश्वजिथ्सवंपृष्ठोऽतिरात्रो भंवति सर्वस्याभिजित्यै॥९॥

द्रिग्भ्य एव ब्रंह्मवर्च्समवंरुन्धेऽभिजिंत्यै॥———[३]

प्रजापंतिः प्रजा अंसृजत् ताः सृष्टाः क्षुधं न्यांयुन्थ्स एतं नंवरात्रमंपश्यत्तमाहंर्त्तेनांयजत् ततो वै प्रजाभ्योऽ कल्पत् यर्हिं प्रजाः क्षुधं निगच्छंयुस्तर्हिं नवरात्रेणं यजेतेमे हि वा एतासां लोका अक्रुंसा अथैताः क्षुधं नि गंच्छन्तीमानेवाभ्यों लोकान्कंल्पयित तान्कल्पंमानान्य्रजाभ्योऽनुं कल्पते कल्पन्ते॥१०॥

अस्मा इमे लोका ऊर्जं प्रजास् दधाति त्रिरात्रेणैवेमं लोकं केल्पयति त्रिरात्रेणान्तरिक्षं त्रिरात्रेणाम् लोकं यथां गुणे गुणम्नवस्यंत्येवमेव तल्लोके लोकमन्वंस्यति धृत्या अशिथिलम्भावाय ज्योतिर्गीरायुरिति ज्ञाताः स्तोमां भवन्तीयं वाव ज्योतिर्न्तरिक्षं गौर्सावायुरेष्वेव लोकेषु प्रतिं तिष्ठन्ति ज्ञात्रं प्रजानाम्॥११॥

गुच्छुति नुवरात्रो भंवत्यभिपूर्वमेवास्मिन्तेजो दधाति यो ज्योगांमयावी स्याथ्स नंवरात्रेणं यजेत प्राणा हि वा एतस्याधृंता अथैतस्य ज्योगांमयति प्राणानेवास्मिन्दाधारोत द्वितीयः प्रश्नः (काण्डम् ७)

यदीतासुर्भवंति जीवंत्येव॥१२॥

कर्त्पन्ते प्रजानान्त्रयंस्त्रिश्शच॥-----[४]

प्रजापंतिरकामयत् प्र जांयेयेति स एतं दर्शहोतारमपश्यत्तमंजुहोत्तेनं दशरात्रमंसृजत् तेनं दशरात्रेण प्राजायत दशरात्रायं दीक्षिष्यमाणो दर्शहोतारं जुहुयाद्दशहोत्रैव दंशरात्रश् सृंजते तेनं दशरात्रेण प्र जांयते वैराजो वा एष यज्ञो यद्देशरात्रो य एवं विद्वान्दंशरात्रेण यजंते विराजमेव गंच्छति प्राजापत्यो वा एष यज्ञो यद्देशरात्रः॥१३॥

य एवं विद्वान्दंशरात्रेण् यजंते प्रैव जांयत् इन्द्रो वै स्टङ्केवतांभिरासीथ्स न व्यावृतंमगच्छ्थ्स प्रजापंतिमुपांधावत् तस्मां एतं दंशरात्रम्प्रायंच्छ्तमाहंर्त्तेनांयजत् ततो वै सौंऽन्याभिंदेवतांभिर्व्यावृतंमगच्छ्द्य एवं विद्वान्दंशरात्रेण् यजंते व्यावृतंमेव पाप्मना भ्रातृंव्येण गच्छति त्रिकुकुद्वै॥१४॥

पुष युज्ञो यद्दंशरात्रः कुकुत्पंश्चद्शः कुकुदंकिविष्शः कुकुत्रंयिख्विष्शो य एवं विद्वान्दंशरात्रेण यजंते त्रिकुकुदेव संमानानां भवति यजंमानः पश्चद्शो यजंमान एकिविष्शो यजंमानस्त्रयिख्विष्शः पुर इतंरा अभिचर्यमाणो दशरात्रेणं यजेत देवपुरा एव पर्यूहते तस्य न कुतंश्चनोपांच्याधो भंवित नैनंमिभ्चरंन्थ्स्तृणुते देवासुराः संयंत्ता आस्नन्ते देवा पृताः॥१५॥

देवपुरा अंपश्यन् यद्दंशरात्रस्ताः पर्योहन्त् तेषां न कुर्तश्चनोपाँच्याधोऽभवत्ततो देवा अभवन्यरासुरा यो भ्रातृंच्यवान्थ्स्याथ्स दंशरात्रेणं यजेत देवपुरा एव पर्यूहते तस्य न कुर्तश्चनोपाँच्याधो भवति भवत्यात्मना पराँस्य भ्रातृंच्यो भवति स्तोमः स्तोमस्योपंस्तिर्भवति भ्रातृंच्यमेवोपंस्तिं कुरुते जामि वै॥१६॥

पुतत्कुंर्वन्ति यञ्च्यायार्श्स् स्तोमंमुपेत्य कनीयार्समुप्यन्ति यदंग्निष्टोमसामान्यवस्तांच पुरस्तांच भवन्त्यजांमित्वाय त्रिवृदंग्निष्टोमांऽग्निष्टुदांग्नेयीषुं भवति तेजं पुवावं रुन्द्धे पश्चद्श उक्थ्यं पुन्द्रीष्टिंन्द्रियमेवावं रुन्द्धे त्रिवृदंग्निष्टोमो वैंश्वदेवीषु पुष्टिंमेवावं रुन्द्धे सप्तद्शोंऽग्निष्टोमः प्रांजापुत्यासुं तीव्रसोमोंऽन्नाद्यस्यावंरुद्धा अथो प्रैव तेनं जायते॥१७॥

पुक्विर्श उक्थ्यः सौरीषु प्रतिष्ठित्या अथो रुचंमेवात्मन्धेत्ते सप्तद्शौँऽग्निष्टोमः प्रांजापुत्यासूपहुव्यं उपहुवमेव गंच्छति त्रिणुवावंग्निष्टोमाव्भितं पुन्द्रीषु विजित्यै त्रयस्त्रिर्श उक्थ्यों वैश्वदेवीषु प्रतिष्ठित्यै विश्वजिथ्सर्वपृष्ठोऽ तिरात्रो भंवति सर्वस्याभिजित्यै॥१८॥

प्राजापत्यो वा एष यज्ञो यद्दंशरात्रस्त्रिककुद्वा एता वै जायत एकंत्रि शच॥———[५]

ऋतवो वै प्रजाकांमाः प्रजां नाविन्दन्त् तेंऽकामयन्त प्रजा॰ सृंजेमिह प्रजामवं रुन्धोमिह प्रजां विन्देमिह प्रजावन्तः स्यामेति त एतमेंकादशरात्रमंपश्यन्तमाहंरन्तेनायजन्त् ततो वै ते प्रजामंसृजन्त प्रजामवारुन्थत प्रजामंविन्दन्त प्रजावन्तोऽभवन्त ऋतवों-ऽभवन्तदात्त्वानांमार्तवृत्वमृंतूनां वा एते पुत्रास्तस्मात्॥१९॥

आर्त्वा उंच्यन्ते य एवं विद्वारसं एकादशरात्रमासंते प्रजामेव सृंजन्ते प्रजामवं रुन्धते प्रजां विन्दन्ते प्रजावन्तो भवन्ति ज्योतिरतिरात्रो भविति ज्योतिरेव पुरस्ताद्वधते सुवर्गस्यं लोकस्यानुंख्यात्ये पृष्ठाः षड्हो भविति षड्वा ऋतवः षद्वृष्ठानिं पृष्ठेरेवर्तून्न्वारोहन्त्यृतुभिः संवथ्सरन्ते संवथ्सर एव प्रतिं तिष्ठन्ति चतुर्विर्शो भविति चतुर्विरशत्यक्षरा गायुत्री॥२०॥

गायत्रम्ब्रह्मवर्चसङ्गायित्रियामेव ब्रह्मवर्चसे प्रति तिष्ठन्ति चतुश्चत्वारिष्शो भेवित् चतुश्चत्वारिष्शो भेवित् चतुश्चत्वारिष्शा त्रिष्ठुगिन्द्रियं त्रिष्ठुत्रिष्ठुभ्येवेन्द्रिये प्रति तिष्ठन्त्यष्टाचत्वारिष्शो भेवत्यष्टाचेत्वारिष्शादक्षरा जर्गती जागताः पशवो जर्गत्यामेव पशुषु प्रति तिष्ठन्त्येकादशरात्रो भेवित् पश्च वा ऋतवं आर्त्वाः पश्चर्तुष्वेवार्त्वेषु संवथ्सरे प्रतिष्ठायं प्रजामवं रुन्धतेऽतिरात्राव्भितौ भवतः प्रजायै परिगृहीत्यै॥२१॥

तस्मौद्गायुत्र्येकान्नपंश्चाशचं॥------[६]

ऐन्द्रवायवाग्रांन्गृह्णीयाद्यः कामयेत यथापूर्वं प्रजाः केल्पेर्न्निति यज्ञस्य वै क्रृप्तिमनुं प्रजाः केल्पन्ते यज्ञस्याक्रृष्टिमनु न केल्पन्ते यथापूर्वमेव प्रजाः केल्पयित् न ज्यायार्रस्ं कनीयानिति कामत्येन्द्रवायवाग्रांन्गृह्णीयादामयाविनः प्राणेन् वा पृष व्यृध्यते यस्यामयिति प्राण ऐन्द्रवायवः प्राणेनेवेन्र् समेर्धयित मैत्रावरुणाग्रांन्गृह्णीर्म् येषां दीक्षितानां प्रमीयेत॥२२॥

प्राणापानाभ्यां वा एते व्यृध्यन्ते येषां दीक्षितानां प्रमीयंते प्राणापानी मित्रावरुंणी प्राणापानावेव मुंखतः परिं हरन्त आश्विनाग्रांन्गृह्णीतानुजावरौंऽश्विनौ वे देवानांमानुजावरौ पश्चेवाग्रं पर्येतामश्विनांवेतस्यं देवता य आनुजावरस्तावेवेनमग्रं परिं णयतः शुक्राग्रांन्गृह्णीत गृतश्रीः प्रतिष्ठाकांमोऽसौ वा आंदित्यः शुक्र एषोऽन्तोऽन्तंम्मनुष्यः॥२३॥

श्रियै गुत्वा नि वंर्तुतेऽन्तांदेवान्तुमा रंभते न ततः पापीयान्भवति

म्नथ्यंग्रान्गृह्णीताभिचरंत्रार्तपात्रं वा एतद्यन्मंन्थिपात्रम्मृत्युनैवेनं ग्राहयति ताजगार्तिमार्च्छंत्याग्रयणा यस्यं पिता पितामृहः पुण्यः स्यादथ् तन्न प्राप्तृयाद्वाचा वा एष इंन्द्रियेण् व्यृध्यते यस्यं पिता पितामृहः पुण्यंः॥२४॥

भवत्यथ् तन्न प्राप्नोत्युरं इवैतद्यज्ञस्य वागिव् यदाँग्रयणो वाचैवैनंमिन्द्रियेण् समर्धयित् न ततः पापीयान्भवत्युक्थ्याँग्रान्गृह्णीताभिच्र्यमाणः सर्वेषां वा एतत्पात्रांणामिन्द्रियं यदुंक्थ्यपात्र स् सर्वेणैवैनंमिन्द्रियेणाति प्र युंङ्के सरंस्वत्यभि नों नेषि वस्य इतिं पुरोरुचं कुर्याद्वाग्वै॥२५॥

सरंस्वती वाचैवैनमित् प्र युंङ्के मा त्वत्क्षेत्राण्यरंणानि गुन्मेत्यांह मृत्योर्वे क्षेत्राण्यरंणानि तेनैव मृत्योः क्षेत्रांणि न गंच्छति पूर्णान्यहाँन्गृह्णीयादामयाविनः प्राणान् वा एतस्य शुर्गृच्छति यस्यामयंति प्राणा ग्रहाः प्राणानेवास्यं शुचो मुंञ्चत्युत यदीतासुर्भवंति जीवंत्येव पूर्णान्यहाँन्गृह्णीयाद्यर्हि पूर्जन्यो न वर्षेत्प्राणान् वा एतर्हि प्रजाना् शुगृंच्छति यर्हि पूर्जन्यो न वर्षेति प्राणा ग्रहाः प्राणानेव प्रजानारं शुचो मुंञ्चति ताजक्प्र वंर्षति॥२६॥

प्रमीयेत मनुष्यं ऋध्यते यस्यं पिता पितामृहः पुण्यो वाग्वा एव पूर्णान्प्रहान्पश्चंवि १ शतिश्च॥[७]

गायत्रो वा ऐँन्द्रवायवो गांयत्रम्प्रांयणीयमह्स्तस्माँत्प्रायणीयेऽहंन्नैन्द्रवायवो गृंह्यते स्व एवैनंमायतंने गृह्णाति त्रेष्ठुंभो वे शुक्रस्नेष्ठुंभं द्वितीयमह्स्तस्माँद्वितीयेऽहंञ्छुको गृंह्यते स्व एवैनंमायतंने गृह्णाति जागतो वा आंग्रयणो जागतं तृतीयमह्स्तस्माँ तृतीयेऽहंन्नाग्रयणो गृंह्यते स्व एवैनंमायतंने गृह्णात्येतद्वै॥२७॥

यज्ञमांपुद्यच्छन्दा रस्याप्नोति यदाँग्रयणः श्वो गृह्यते यत्रैव यज्ञमदंशन्ततं एवैनम्पुनः प्र युंङ्के जगंन्मुखो वै द्वितीयंस्त्रिरात्रो जागंत आग्रयणो यचंतुर्थेऽहंन्नाग्रयणो गृह्यते स्व एवैनमायतंने गृह्णात्यथो स्वमेव छन्दोऽन् पूर्यावंतन्ते राथंतरो वा ऐन्द्रवायवो राथंतरं पश्चममह्स्तस्मात्पश्चमेऽहन्नं॥२८॥

ऐन्द्रवायवो गृह्यते स्व एवैनंमायतंने गृह्णाति बार्ह्तते वै शुक्रो बार्ह्तर प्षष्ठमह्स्तस्मौत्पष्ठेऽहंञ्छुको गृह्यते स्व एवैनंमायतंने गृह्णात्येतद्वै द्वितीयं यज्ञमांपद्यच्छन्दारंस्याप्रोति यच्छुकः श्वो गृह्यते यत्रैव यज्ञमदंशन्ततं एवैन्म्पुनः प्र युंङ्के त्रिष्टुङ्गंखो वे तृतीयंस्त्रिरात्रस्नेष्ट्रंभः॥२९॥

शुको यथ्संप्रमेऽहं ञ्छुको गृह्यते स्व एवैनंमायतंने गृह्यात्यथो स्वमेव छन्दोऽनं

पूर्यावर्तन्ते वाग्वा आँग्रयणो वागेष्टममह्स्तस्मांदष्टमेऽहंन्नाग्रयणो गृंह्यते स्व एवैनंमायतंने गृह्णाति प्राणो वा ऐन्द्रवायवः प्राणो नंवममहुस्तस्मांन्नवमेऽहंन्नैन्द्रवायवो गृंह्यते स्व एवैनंमायतंने गृह्णात्येतत्॥३०॥

वै तृतीयंं य्ज्ञमांपद्यच्छन्दा रंस्याप्नोति यदैंन्द्रवायवः श्वो गृह्यते यत्रैव य्ज्ञमदंशन्ततं एवेन्म्पुनः प्र युङ्केऽथो स्वमेव छन्दोऽनुं पर्यावंतन्ते पथो वा एतेऽध्यपंथेन यन्ति यैं-ऽन्येनैंन्द्रवायवात्प्रतिपद्यन्तेऽन्तः खलु वा एष य्ज्ञस्य यद्दंशममहंदंशमेऽहंन्नैन्द्रवायवो गृह्यते यज्ञस्यं॥३१॥

पुवान्तं गृत्वापंथात्पन्थामपिं युन्त्यथो यथा वहीयसा प्रतिसारं वहंन्ति ताहगेव तच्छन्दार्शस्यन्यौन्यस्यं लोकम्भ्यंध्यायन्तान्येतेनैव देवा व्यंवाहयन्नैन्द्रवायवस्य वा एतदायतेनं यचेतुर्थमह्स्तस्मिन्नाग्रयणो गृंह्यते तस्मादाग्रयणस्यायतेने नवमेऽहंन्नैन्द्रवायवो गृंह्यते शुक्रस्य वा एतदायतेनं यत्पंश्चमम्॥३२॥

अहुस्तस्मिन्नैन्द्रवायवो गृंह्यते तस्मांदैन्द्रवायवस्यायतंने सप्तमेऽहंञ्छुको गृंह्यत आग्रयणस्य वा एतदायतंनं यत्ष्ष्ठमहुस्तस्मिञ्छुको गृंह्यते तस्मांच्छुकस्यायतंनेऽष्टमे-ऽहंन्नाग्रयणो गृंह्यते छन्दार्श्स्येव तिद्व वाहयित प्र वस्यंसो विवाहमांप्रोति य एवं वेदार्थो देवतांभ्य एव युज्ञे सुंविदं दधाित तस्मांदिदमन्योंन्यस्मै ददाित॥३३॥

एतद्वै पंश्रमेऽहुत्रेष्ट्रंभ एतद्गृंहाते युज्ञस्यं प्रश्रमम्न्यस्मा एकंश्र॥———[८]

प्रजापंतिरकामयत् प्र जांयेयेति स एतं द्वांदशरात्रमंपश्यत्तमाहंर्त्तेनांयजत् ततो वै स प्राजांयत् यः कामयेत् प्र जांयेयेति स द्वांदशरात्रेणं यजेत् प्रैव जांयते ब्रह्मवादिनों वदन्त्यग्निष्टोमप्रांयणा युज्ञा अथ् कस्मांदितरात्रः पूर्वः प्र युंज्यत् इति चक्षुंषी वा एते युज्ञस्य यदंतिरात्रौ कुनीनिके अग्निष्टोमौ यत्॥३४॥

अग्निष्टोमं पूर्वम्प्रयुश्चीरन्बंहिर्धा कुनीनिके दथ्युस्तस्मांदितरात्रः पूर्वः प्र युंज्यते चक्षुंषी एव युज्ञे धित्वा मध्यतः कुनीनिके प्रतिं दधित यो वै गांयत्रीं ज्योतिंःपक्षां वेद ज्योतिंषा भासा सुंवर्गं लोकमेति यावंग्निष्टोमौ तौ पक्षौ येऽन्तरेऽष्टावुक्थ्याः स आत्मैषा वै गांयत्री ज्योतिंःपक्षा य एवं वेद ज्योतिंषा भासा सुंवर्गं लोकम्॥३५॥

पृति प्रजापंतिर्वा एष द्वांदश्धा विहिंतो यद्वांदशरात्रो यावंतिरात्रौ तौ पृक्षौ येऽन्तंरे-ऽष्टाबुक्थ्याः स आत्मा प्रजापंतिर्वावैष सन्थ्सद्ध वै सुत्रेणं स्पृणोति प्राणा वै सत्प्राणानेव स्पृंणोति सर्वांसां वा एते प्रजानां प्राणेरांसते ये सन्नमासंते तस्मांत्पृच्छन्ति किमेते सन्निण इतिं प्रियः प्रजानामुत्थिंतो भवति य एवं वेदं॥३६॥

अग्निष्टोमौ यथ्सुंवर्गल्लोंकं प्रियः प्रजानां पश्चं च॥————[९]

न वा एषों ऽन्यतोविश्वानरः सुवर्गायं लोकाय प्राभंवदूर्ध्वो हु वा एष आतंत आसीत्ते देवा एतं वैश्वान्तरं पर्योहन्थ्सवर्गस्यं लोकस्य प्रभूत्या ऋतवो वा एतेनं प्रजापंतिमयाजयन्तेष्वां प्रोदिधि तद्ध्रोति हु वा ऋत्विक्षु य एवं विद्वान्द्वांदशाहेन यजेते तें ऽस्मिन्नैच्छन्त स रसुमहं वसुन्तायु प्रायंच्छत्॥३७॥

यवं ग्रीष्मायौषंधीर्व्रषाभ्यौं ब्रीहीञ्छ्ररदें माषितलौ हेंमन्तिशिश्रिराभ्यान्तेनेन्द्रें प्रजापंतिरयाजयत्ततो वा इन्द्र इन्द्रोऽभवृत्तस्मांदाहुरानुजाव्रस्यं यज्ञ इति स ह्येतेनाग्रेऽयंजतेष ह वै कुणपंमत्ति यः सुन्ने प्रंतिगृह्णातिं पुरुषकुणपमंश्वकुणपङ्गौर्वा अन्नं येन् पात्रेणान्नुम्बिभ्रंति यत्तन्न निर्णेनिजति ततोऽधि॥३८॥

मर्लं जायत् एकं एव यंजेतैको हि प्रजापंतिरार्भ्रोद्वादंश् रात्रींदीक्षितः स्याद्वादंश् मासाः संवथ्सरः संवथ्सरः प्रजापंतिः प्रजापंतिवीवेष एष ह त्वे जायते यस्तप्सोऽधि जायते चतुर्धा वा एतास्तिस्रस्तिस्रो रात्रयो यद्वादंशोपसदो याः प्रथमा यज्ञं ताभिः सम्भरति या द्वितीयां यज्ञं ताभिरा रंभते॥३९॥

यास्तृतीयाः पात्राणि ताभिर्निर्णेनिक्ते याश्चेतुर्थीरिष ताभिरात्मानंमन्तर्तः शुंन्थते यो वा अस्य पृशुमित्तं मार्सर सौंऽित् यः पुरोद्धाशंम्मस्तिष्कर् स यः परिवापं पुरीष्र् स य आज्यंम्मुज्ञान्र् स यः सोम्र स्वेद् सोऽिषं हु वा अस्य शीर्षण्यां निष्पदः प्रतिं गृह्णाति यो द्वादशाहे प्रतिगृह्णाति तस्माद्धादशाहेन् न याज्यंम्पाप्मनो व्यावृत्त्यै॥४०॥

अर्यच्छुदिधं रभते द्वादशाहेर्न चुत्वारिं च॥-----[१०]

एकंस्मै स्वाह्य द्वाभ्या्ड् स्वाहाँ त्रिभ्यः स्वाहां चृतुभ्यः स्वाहां पुश्चभ्यः स्वाहां पुड्याः स्वाहां सप्तभ्यः स्वाहां उष्ट्यभ्यः स्वाहां नवभ्यः स्वाहां द्रशभ्यः स्वाहां व्राद्रशभ्यः स्वाहां वर्त्वद्रशभ्यः स्वाहां वर्त्वद्रशभ्यः स्वाहां पश्चद्रशभ्यः स्वाहां षोड्रशभ्यः स्वाहां सप्तद्रशभ्यः स्वाहां प्रच्यद्रशभ्यः स्वाहां सप्तद्रशभ्यः स्वाहां प्रच्यद्रशभ्यः स्वाहं वर्ष्ट्यः स्वाहां सप्तद्रशभ्यः स्वाहां प्रच्याद्रशभ्यः स्वाहेकाः वर्ष्ट्यः स्वाह्यः नवंविष्ट्यः स्वाहेकाः वर्ष्ट्यः स्वाह्यः नवंविष्ट्यः स्वाहेकाः वर्ष्ट्यः स्वाह्यः नवंव्यद्यः स्वाहेकाः वर्ष्ट्यः स्वाह्यः नवंव्यद्यः स्वाहेकाः वर्ष्ट्यः स्वाह्यः नवंव्यद्यारिष्ट्यः स्वाहेकाः वर्षः स्वाह्यः नवंव्यद्यः स्वाहः नवंव्यद्यः स्वाहः नवंव्यद्यः स्वाहः नवंव्यद्यः स्वाहः नवंव्यद्यारिष्ट्यः स्वाहः नवंव्यद्यारिष्ट्यः स्वाहः नवंव्यद्यारिष्ट्यः स्वाहः नवंव्यद्यारिष्ट्यः स्वाहः नवंव्यद्यारिष्ट्यः स्वाहः नवंव्यद्यारिष्ट्यः स्वाहः नवंव्यद्यारिष्टः स्वाहः स्वाहः

स्वाहा नवांशीत्ये स्वाहेकान्न शताय स्वाहां शताय स्वाहा द्वाभ्यार्थ शताभ्यार्थ स्वाहा सर्वस्मै स्वाहाँ॥४१॥

नवंचत्वारि रशते स्वाहैका न्नैकंवि रशतिश्च॥————[११]

एकंस्मै स्वाहाँ त्रिभ्यः स्वाहां पृश्चभ्यः स्वाहां सप्तभ्यः स्वाहां नृवभ्यः स्वाहंकादृशभ्यः स्वाहां त्रयोदृशभ्यः स्वाहां पश्चदृशभ्यः स्वाहां सप्तदृशभ्यः स्वाहकात्र विर्श्यात्ये स्वाहा नवंविर्शत्ये स्वाहकात्र चंत्वारिर्श्याते स्वाहा नवंचत्वारिर्शते स्वाहकात्र षृष्ट्ये स्वाहा नवंपिष्ट्ये स्वाहकात्राशीत्ये स्वाहा नवंशित्ये स्वाहकात्र श्राताय स्वाहां श्राताय स्वाहा सर्वस्मे स्वाहा॥४२॥

एकंस्मै त्रिभ्यः पंश्चाशत्॥———[१२]

द्वाभ्याः स्वाहां चतुर्भ्यः स्वाहां षुड्याः स्वाहां ऽष्टाभ्यः स्वाहां दशभ्यः स्वाहां द्वाद्शभ्यः स्वाहां चतुर्दशभ्यः स्वाहां षोड्शभ्यः स्वाहां ऽष्टादशभ्यः स्वाहां विश्शृत्ये स्वाहाऽष्टानंवत्ये स्वाहां शताय स्वाहा सर्वसमे स्वाहां॥४३॥

द्वाभ्यांमुष्टानंवत्यै षड्विर्श्वातिः॥-----[१३]

त्रिभ्यः स्वाहां पृश्चभ्यः स्वाहां सप्तभ्यः स्वाहां नृवभ्यः स्वाहंकाद्रशभ्यः स्वाहां त्रयोद्रशभ्यः स्वाहां पश्चद्रशभ्यः स्वाहां सप्तद्रशभ्यः स्वाहंकात्र विश्वर्ये स्वाहा नवंविश्वरये स्वाहंकात्र चंत्वारिश्वर्ये स्वाहा नवंविश्वरये स्वाहंकात्र षृष्ट्ये स्वाहा नवंषष्ट्ये स्वाहंकात्राशीत्ये स्वाहा नवंषियये स्वाहंकात्राशीत्ये स्वाहा सर्वस्मे स्वाहं॥४४॥

त्रिभ्यौंऽष्टाचत्वारि्र्षात्॥———[१४]

चृतुर्भ्यः स्वाहाँ ऽष्टाभ्यः स्वाहाँ द्वाद्शभ्यः स्वाहां षोड्शभ्यः स्वाहां विश्शृत्ये स्वाहा षण्णंवत्ये स्वाहां शृताय स्वाहा सर्वसमे स्वाहाँ॥४५॥

चृतुर्भ्यः षण्णंवत्यै षोडंश॥-----[१५]

पुश्चभ्यः स्वाहां दुशभ्यः स्वाहां पश्चदुशभ्यः स्वाहां विश्शृत्ये स्वाहा पश्चनवत्ये स्वाहां

| द्वितीयः प्रश्नः (काण्ड | इम् ७) | |
|-------------------------|--------|--|
|-------------------------|--------|--|

474

श्वातय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहाँ॥४६॥

पृश्वभ्यः पृश्वनवत्ये चतुर्दश॥

दशभ्यः स्वाहां विश्वात्ये स्वाहां त्रिश्वाते स्वाहां चत्वारिश्वाते स्वाहां पश्चावाते स्वाहां पृष्ठि स्वाहां सम्भत्ये स्वाहांऽशीत्ये स्वाहां नवृत्ये स्वाहां शृताय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहां॥४७॥

दुशभ्यो द्वावि १ शतिः॥——[१७]

विश्र्यात्ये स्वाहां चत्वारिश्र्याते स्वाहां पृष्ठ्ये स्वाहांऽशीत्ये स्वाहां शृताय स्वाहा सर्वस्मे स्वाहां॥४८॥

विर्शृत्ये द्वादंश॥———[१८]

पृश्चाशते स्वाहां श्वाय स्वाहा द्वाभ्या श्वाभ्या स्वाहां त्रिभ्यः श्वेभ्यः स्वाहां चृतुभ्यः श्वेभ्यः स्वाहां पृश्चभ्यः श्वेभ्यः स्वाहां प्रस्थायः स्वाहां स्वाहां प्रस्थायः स्वाहां प्रस्थायः स्वाहां स्वा

पुञ्चा्शते द्वात्रिर्श्यत्॥_____[१९

श्ताय स्वाहां सहस्राय स्वाहाऽयुताय स्वाहां नियुताय स्वाहां प्रयुताय स्वाहाऽर्बुदाय स्वाहा न्यंर्बुदाय स्वाहां समुद्राय स्वाहा मध्याय स्वाहाऽन्ताय स्वाहां परार्धाय स्वाहोषसे स्वाहा व्यंष्ट्री स्वाहोदेष्यते स्वाहोदिताय स्वाहां सुवर्गाय स्वाहां लोकाय स्वाहा सर्वस्मे स्वाहा॥५०॥

श्तायाष्टात्रिर्श्यत्॥———[२०]

प्रजवं ब्रह्मवादिनः किमेष वा आप्त आंदित्या उभयोः प्रजापंतिरन्वांयन्निन्द्रो वै सदिङ्किन्द्रो वै शिथिलः प्रजापंतिरकामयतान्नादः सा विराडसावांदित्यौऽर्वाङ्ग्त्तमा मेऽग्निना स्वाहाधिन्द्ऱ्यौऽअ्थेतायं कृष्णायौषंधीभ्यो वनस्पतिंभ्यो विरश्तिः॥—————[२१]

॥ तृतीयः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां सप्तमकाण्डे तृतीयः प्रश्नः॥

प्रजवं वा एतेनं यन्ति यद्दंशममहंः पापावहीयं वा एतेनं भवन्ति यद्दंशममहुर्यो वै प्रजवं यतामपंथेन प्रतिपद्यंते यः स्थाणु हिन्ति यो भ्रेषं न्येति स हीयते स यो वै दंशमेऽहंन्नविवाका उपहुन्यते स हीयते तस्मै य उपहताय व्याह् तमेवान्वारभ्य समंश्र्नुतेऽथ् यो व्याह सः॥१॥

हीयते तस्माँदृश्मेऽहंन्नविवाक्य उपहताय न व्युच्यमथो खल्वांहुर्यज्ञस्य वै समृद्धेन देवाः सुवर्गं लोकमायन् यज्ञस्य व्यृंद्धेनासुरान्परांभावयन्निति यत्खलु वै यज्ञस्य समृद्धे तद्यजंमानस्य यद्यद्धं तद्भातृंव्यस्य स यो वै दंशमेऽहंन्नविवाक्य उपहृन्यते स एवाति रेचयति ते ये बाह्यां दृशीकवंः॥२॥

स्युस्ते वि ब्रूंयुर्यदि तत्र न विन्देयुंरन्तःसद्साद्धच्यं यदि तत्र न विन्देयुंर्गृहपंतिना व्युच्यन्तद्धच्यंमेवाथ वा एतथ्संपर्तिज्ञयां ऋग्भिः स्तुंवन्तीयं वै सप्तो राज्ञी यद्वा अस्यां किं चार्चन्ति यदानृचुस्तेनेय स्परिराज्ञी ते यदेव किं चं वाचानृचुर्यदतोऽध्यंचितारः॥३॥

तदुभयंमा्ध्वाव्रुध्योत्तिष्ठामेति ताभिर्मनंसा स्तुवते न वा इमामंश्वर्थो नार्श्वंतरीर्थः सद्यः पर्याप्तमरहित मनो वा इमार सद्यः पर्याप्तमरहित मनः परिभवितुमथ् ब्रह्मं वदन्ति परिमिता वा ऋचः परिमितानि सामानि परिमितानि यजूर्ध्यथैतस्यैवान्तो नास्ति यद्वह्म तत्प्रंतिगृणत आ चेक्षीत् स प्रंतिगुरः॥४॥

व्याह् स द्रंशीकवौंऽर्चितारः स एकंश्र॥-----

[8]

ब्रह्मवादिनों वदन्ति किं द्वांदशाहस्यं प्रथमेनाह्नुर्त्विजां यजमानो वृङ्क् इति तेजं इन्द्रियमिति किं द्वितीयेनेतिं प्राणानुत्राद्यमिति किं तृतीयेनेति त्रीनिमाल्लोणकानिति किं चंतुर्थेनेति चतुंष्पदः पुशूनिति किम्पंश्चमेनेति पश्चांक्षराम्पङ्किमिति कि॰ पृष्ठेनेति षडुतूनिति कि॰ संप्तमेनेतिं सप्तपंदा शकंरीमितिं॥५॥

किर्मष्टमेनेत्यृष्टाक्षेरां गायुत्रीमिति किं नेवुमेनेति त्रिवृत् स्तोम्मिति किं देशमेनेति दशांक्षरां विराज्मिति किमेकादुशेनेत्येकादशाक्षरां त्रिष्टभूमिति किं द्वांदुशेनेति द्वादंशाक्षरां

जगंतीमित्येतावद्वा अस्ति यावंदेतद्यावंदेवास्ति तदेषां वृङ्के॥६॥

शर्करीमित्येकंचत्वारि×शच॥______

पृष वा आप्तो द्वांदशाहो यत्र्रयोदशरात्रः संमानः ह्यंतदह्यंत्प्रांयणीयंश्चोदयनीयंश्च त्र्यंतिरात्रो भवति त्रयं इमे लोका एषां लोकानामास्यै प्राणो वै प्रंथमोऽतिरात्रो व्यानो द्वितीयोऽपानस्तृतीयः प्राणापानोदानेष्वेवात्राद्ये प्रति तिष्ठन्ति सर्वमायुर्यन्ति य एवं विद्वारंसस्त्रयोदशरात्रमासंते तदांहुर्वाग्वा एषा वितंता॥७॥

यद्वांदशाहस्तां विच्छिंन्सुर्यन्मध्येंऽतिरात्रं कुर्युरुंपदासुंका गृहपंतेर्वाख्स्यांदुपरिष्टाच्छन्दोमानांम कुंर्वन्ति सन्तंतामेव वाचमवं रुन्द्दतेऽनुंपदासुका गृहपंतेर्वाग्भवित पृशवो वै छंन्दोमा अन्नम्महाब्रुतं यदुपरिष्टाच्छन्दोमानांम्महाब्रुतं कुर्वन्ति पृशुषुं चैवान्नाद्ये च प्रति तिष्ठन्ति॥८॥

वितंता त्रिचंत्वारि १ शच॥ [३]

आदित्या अंकामयन्तोभयौँर्लोकयोर्ऋध्नयामेति त एतं चंतुर्दशरात्रमंपश्यन्तमाहंर्न्तेनांयजन्त् ततो वै त उभयौँर्लोकयोरार्ध्ववन्नस्मिश्श्चामुष्मिश्च्य य एवं विद्वाश्सश्चत्रदशरात्रमासंत उभयोरेव लोकयोर्ंऋध्नवन्त्यस्मिश्चामुष्मिश्च्य चतुर्दशरात्रो भंवति सप्त ग्राम्या ओषंधयः सप्तारुण्या उभयीषामवंरुख्यै यत्पंराचीनांनि पृष्ठानि॥९॥

भवंन्त्यमुमेव तैर्लोकम्भि जंयन्ति यत्प्रंतीचीनांनि पृष्ठानि भवंन्तीममेव तैर्लोकम्भि जंयन्ति त्रयस्त्रिष्शौ मध्यतः स्तोमौ भवतः साम्राज्यमेव गंच्छन्त्यधिराजौ भवतोऽधिराजा एव संमानानां भवन्त्यतिरात्रावृभितो भवतः परिगृहीत्यै॥१०॥

पृष्ठानि चतुंस्त्रि शच॥------[४]

प्रजापंतिः सुवर्गं लोकमैत्तं देवा अन्वायन्तानांदित्याश्चं पृशवश्चान्वायन्ते देवा अंब्रुवन् यान्पृश्नुपाजींविष्म् त इमेंऽन्वाग्मृन्निति तेभ्यं एतं चंतुर्दशरात्रम्प्रत्यौह्न्त आंदित्याः पृष्ठेः सुंवर्गं लोकमारोहन्त्र्यहाभ्यामस्मिल्लांके पृश्न्य्यत्यौहन्पृष्ठेरांदित्या अमुष्मिल्लांक आर्ध्रुवन्त्र्यहाभ्यामस्मिन्॥११॥

लोके पृशवो य एवं विद्वारसंश्चतुर्दशरात्रमासंत उभयोरेव लोकयोर्ऋध्रुवन्त्यस्मिर्श्श्चामुष्मिर्श् पृष्ठैरेवामुष्मिल्लौंक ऋध्रुवन्ति त्र्यहाभ्यामस्मिल्लौंक ज्योतिर्गौरायुरिति त्र्यहो भवतीयं वाव ज्योतिरन्तरिक्षं गौरसावायुरिमानेव लोकानभ्यारोहन्ति यदन्यतेः पृष्ठानि स्युर्विविवधर् स्यान्मध्ये पृष्ठानि भवन्ति सविवधृत्वायं॥१२॥

ओजो वै वीर्यं पृष्ठान्योजं एव वीर्यम्मध्यतो दंधते बृहद्रथन्तराभ्यां यन्तीयं वाव रंधन्तरम्मौ बृहद्गभ्यामेव यन्त्यथां अनयोरेव प्रति तिष्ठन्त्येते वै यज्ञस्यांश्रुसायनी स्रृती ताभ्यामेव स्वां लोकं यंन्ति पराश्चो वा एते स्वंगं लोकम्भ्यारोहिन्ति ये पंराचीनानि पृष्ठान्युंप्यन्तिं प्रत्यश्चाहो भवति प्रत्यवंरूढ्या अथो प्रतिष्ठित्या उभयोंलीकयोर्ं सद्धोत्तिष्ठन्ति चतुंदंशैतास्तामां या दश् दशांक्षरा विराडन्नं विराङ्चिराजेवान्नाद्यमवं रुन्धते याश्चतंस्रश्चतंस्रो दिश्चेव प्रति तिष्ठन्त्यतिरान्नावभितों भवतः परिगृहीत्यै॥१३॥

आर्धुवन्त्र्यहाभ्यांमस्मिन्थ्संविवधृत्वायः प्रतिष्ठित्याः एकंत्रि शच॥————[५]

इन्द्रो वै सृदङ्कृवतांभिरासीथ्स न व्यावृतंमगच्छुथ्स प्रजापंतिमुपांधावृत्तस्मां एतम्पंश्वदशरात्रम्प्रायंच्छुत्तमाहंरत् तेनांयजत् ततो वै सौंऽन्याभिर्देवतांभिर्व्यावृतंमगच्छुद्य एवं विद्वारसंः पश्चदशरात्रमासंते व्यावृतंमेव पाप्मना भ्रातृंव्येण गच्छन्ति ज्योतिगौरायुरितिं त्र्यहो भवतीयं वाव ज्योतिंर्न्तरिक्षम्॥१४॥

गौर्सावायुरेष्वेव लोकेषु प्रति तिष्ठन्त्यसंत्रुं वा एतद्यदंछन्दोमं यच्छंन्दोमा भवन्ति तेनं सुत्रं देवतां एव पृष्ठेरवं रुन्थते पृश्चर्छन्दोमैरोजो वा वीर्यं पृष्ठानिं पृशवंश्छन्दोमा ओजंस्येव वीर्ये पृशुषु प्रतिं तिष्ठन्ति पश्चदशरात्रो भवति पश्चदशो वज्रो वज्रमेव भ्रातृंव्येभ्यः प्र हंरन्त्यतिरात्राविभितो भवत इन्द्रियस्य परिगृहीत्यै॥१५॥

अुन्तरिक्षमिन्द्रियस्यैकंञ्च॥______[६]

इन्द्रो वै शिथिल इवाप्रितिष्ठित आसीथ्सोऽसुरेभ्योऽबिभेथ्स प्रजापितिमुपांधावत्तस्मां एतम्पंश्चदशरात्रं वज्रम्प्रायंच्छुत् तेनासुरान्यराभाव्यं विजित्य श्रियंमगच्छदग्निष्टुतां पाप्मानं निरंदहत पश्चदशरात्रेणौजो बर्लमिन्द्रियं वीर्यमात्मन्नंधत्त् य एवं विद्वारसंः पश्चदशरात्रमासंते भ्रातृंव्यानेव पंराभाव्यं विजित्य श्रियं गच्छन्त्यग्निष्टुतां पाप्मानं निः॥१६॥

द्हृन्ते पृश्चद्रशरात्रेणौजो बर्लमिन्द्रियं वीर्यमात्मन्दंधत एता एव पंशुव्याः पश्चंदश् वा अर्धमासस्य रात्रेयोऽर्धमास्रशः संवथ्सर आण्यते संवथ्सरम्पृशवोऽनु प्र जांयन्ते तस्मात्पश्च्यां एता एव सुंवर्ग्याः पश्चंदश् वा अर्धमासस्य रात्रेयोऽर्धमास्रशः संवथ्सर आण्यते संवथ्सरः सुंवर्गो लोकस्तस्माथ्सुवर्ग्यां ज्योतिर्गौरायुरितिं त्र्यहो भवतीयं वाव ज्योतिंर्न्तरिक्षम्॥१७॥

गौर्सावायुरिमानेव लोकान्भ्यारोहिन्त् यद्न्यतः पृष्ठानि स्युर्विविवधः स्यान्मध्ये पृष्ठानि भवन्ति सविवधत्वायौजो वै वीर्यं पृष्ठान्योजं एव वीर्यम्मध्यतो देधते बृहद्रथन्तराभ्यां यन्तीयं वाव रथन्तरम्सौ बृहद्मभ्यामेव यन्त्यथो अनयोरेव प्रति तिष्ठन्त्येते वै युज्ञस्यां अस्तायांनी स्रुती ताभ्यांमेव सुंवर्गं लोकम्॥१८॥

यन्ति पराँश्चो वा एते सुंवर्गं लोकम्भ्यारोहिन्ति ये पंराचीनांनि पृष्ठान्युंप्यन्तिं प्रत्यङ्ग्यहो भवति प्रत्यवंरूढ्या अथो प्रतिष्ठित्या उभयौंर्लोकयोर्ग्ऋद्धोत्तिष्ठन्ति पश्चंदशैतास्तासां या दश् दशाँक्षरा विराडन्नं विराङ्चिराजैवान्नाद्यमवं रुन्धते याः पश्च पश्च दिशों दिक्ष्वेव प्रतिं तिष्ठन्त्यतिरात्राविभितों भवत इन्द्रियस्यं वीर्यस्य प्रजाये पश्नां परिगृहीत्यै॥१९॥

गुच्छुन्त्यग्निष्टुतां पाप्मानृत्रिर्न्तरिक्षल्लौंकं प्रजाये द्वे चं॥______[७]

प्रजापंतिरकामयतात्रादः स्यामिति स एत संप्तदशरात्रमंपश्यत्तमाहंर्त्तेनांयजत् ततो वै सौंऽत्रादोंऽभवद्य एवं विद्वारसंः सप्तदशरात्रमासंतेऽत्रादा एव भवन्ति पश्चाहो भविति पश्च वा ऋतवंः संवथ्सर ऋतुष्वेव संवथ्सरे प्रतिं तिष्ठन्त्यथो पश्चांक्षरा पङ्काः यज्ञो यज्ञमेवावं रुन्थतेऽसंत्रं वा एतत्॥२०॥

यदंछन्दोमं यच्छंन्दोमा भवन्ति तेनं सुत्रं देवतां एव पृष्ठेरवं रुन्थते पुशूञ्छंन्दोमैरोजो वै वीर्यं पृष्ठानिं पुशवंश्छन्दोमा ओजंस्येव वीर्ये पुशुषु प्रतिं तिष्ठन्ति सप्तदशरात्रो भवति सप्तदशः प्रजापंतिः प्रजापंतेरास्यां अतिरात्राव्यभितों भवतोऽन्नाद्यंस्य परिंगृहीत्यै॥२१॥

पुतथ्सप्तित्रे श्रेश्च॥————[८]

सा विराङ्विकम्यांतिष्ठद्वह्मणा देवेष्वन्नेनासुरेषु ते देवा अंकामयन्तोभयुर् सं वृंश्चीमिह् ब्रह्म चान्नं चेति त एता विर्श्वातिर रात्रीरपश्यन्ततो वै त उभयुर् समंवृञ्जत् ब्रह्म चान्नं च ब्रह्मवर्चसिनौंऽन्नादा अंभवन् य एवं विद्वारसं एता आसंत उभयमेव सं वृंञ्जते ब्रह्म चान्नं च॥२२॥

ब्रह्मवर्चिसिनौंऽन्नादा भंविन्ति द्वे वा एते विराजौ तयोरेव नाना प्रति तिष्ठन्ति विश्वा वै पुरुषो दश् हस्त्यां अङ्गुलयो दश् पद्या यावानेव पुरुष्वस्तमास्वोत्तिष्ठन्ति ज्योतिर्गौरायुरिति त्र्यहा भवन्तीयं वाव ज्योतिर्न्तिरक्षं गौर्सावायुरिमानेव लोकान्भ्यारोहन्त्यभिपूर्वं त्र्यहा भंवन्त्यभिपूर्वमेव सुंवर्गम्॥२३॥

लोकम्भ्यारोहिन्त् यद्न्यतः पृष्ठान् स्युर्विविवधः स्यान्मध्ये पृष्ठानि भवन्ति सिववध्त्वायौजो वै वीर्यं पृष्ठान्योजं एव वीर्यम्मध्यतो दंधते बृहद्रथन्तराभ्यां यन्तीयं वाव रंथन्तरम्सौ बृहदाभ्यामेव यन्त्यथों अनयोरेव प्रतिं तिष्ठन्त्येते वै यज्ञस्यां असयां स्रुती ताभ्यांमेव सुंवर्गं लोकं यन्ति पराश्चो वा एते सुंवर्गं लोकम्भ्यारोहिन्त् ये पंराचीनांनि पृष्ठान्यंप्यन्तिं प्रत्यङ्ग्राहो भवति प्रत्यवंरूढ्या अथो प्रतिष्ठित्या उभयौर्लोकयोरं ऋद्धोत्तिष्ठन्त्यतिरात्रावभितों भवतो ब्रह्मवर्चसस्यान्नाद्यंस्य परिगृहीत्यै॥२४॥

वृञ्जते ब्रह्म चान्नेश्च सुवर्गमेते सुंवर्गत्रयोविश्यतिश्च॥———[९]
असावांदित्यौंऽस्मिल्लाँक आंसीत्तं देवाः पृष्ठैः पंरिगृह्यं सुवर्गं लोकमंगमयन्परैरवस्तात्पर्यगृह्णा

असावादित्याऽस्मिल्लाक आसात्त द्वाः पृष्ठः पार्गृह्य सुव्ग लाकमगमयन्यरर्वस्तात्पयगृह्य सुव्गे लोके प्रत्यंस्थापयन्यरैंः प्रस्तात्पर्यगृह्णन्यृष्ठैरुपावांरोह्न्थ्स वा असावांदित्यों-ऽमुष्मिल्लाँके परैरुभ्यतः परिगृहीतो यत्पृष्ठानि भवन्ति सुव्गमेव तैर्लोकं यजमाना यन्ति परैरवस्तात्परि गृह्णन्ति दिवाकीर्त्येन॥२५॥

सुवर्गे लोके प्रति तिष्ठन्ति परैंः प्रस्तात्पिरं गृह्णन्ति पृष्ठेरुपावंरोहन्ति यत्परं प्रस्तान्न स्यः पराँश्चः सुवर्गाञ्चोकान्निष्पंद्येर्न् यद्वस्तान्न स्यः प्रजा निर्देहेयुर्भितो दिवाकीत्यं परंःसामानो भवन्ति सुवर्ग एवैनांश्चाँक उंभयतः पिरं गृह्णन्ति यजंमाना वै दिवाकीत्यं संवथ्सरः परंःसामानोऽभितो दिवाकीत्यं परंः सामानो भवन्ति संवथ्सर एवोभ्यतः॥२६॥

प्रति तिष्ठन्ति पृष्ठं वै दिवाकीत्यम्पार्श्वे पर्रःसामानोऽभितो दिवाकीत्यैं पर्रःसामानो भवन्ति तस्माद्भितः पृष्ठम्पार्श्वे भूयिष्ठा ग्रहां गृह्यन्ते भूयिष्ठ शस्यते यज्ञस्यैव तन्मध्यतो ग्रन्थं ग्रंथ्रन्त्यविस्रश्साय सप्त गृह्यन्ते सप्त वै शीर्षण्णाः प्राणाः प्राणानेव यजमानेषु दधति यत्पराचीनानि पृष्ठानि भवन्त्यमुमेव तैर्लोकमुभ्यारोहन्ति यदिमं लोकं न॥२७॥

प्रत्यवरोहेंयुरुद्वा माद्येयुर्यजंमानाः प्र वां मीयेर्न् यत्प्रंतीचीनांनि पृष्ठानि भवंन्तीममेव तैर्लोकम्प्रत्यवरोहुन्त्यथां अस्मिन्नेव लोके प्रतिं तिष्ठन्त्यनुंन्मादायेन्द्रो वा अप्रंतिष्ठित आसीथ्स प्रजापंतिमुपांधावृत्तस्मां एतमेंकविश्शतिरात्रम्प्रायंच्छ्तमाहंर्त्तेनांयजत् ततो वै स प्रत्यंतिष्ठद्ये बंहुयाजिनोऽप्रंतिष्ठिताः॥२८॥ स्युस्त एंकविश्शितरात्रमांसीर्न्द्वादंश् मासाः पञ्चर्तवस्त्रयं इमे लोका असावांदित्य एंकविश्श पुतावंन्तो वै देवलोकास्तेष्वेव यंथापूर्वं प्रति तिष्ठन्त्यसावांदित्यो न व्यंरोचत् स प्रजापित्मुपाधावत्तस्मां पुतमेंकविश्शितरात्रम्प्रायंच्छ्तमाहंर्त्तेनांयजत् ततो वै सोंऽरोचत् य पुवं विद्वार्श्स एकविश्शितरात्रमासंते रोचंन्त पृवैकविश्शितरात्रो भंवति रुग्वा एंकविश्शो रुचंमेव गंच्छ्नन्त्यथौं प्रतिष्ठामेव प्रंतिष्ठा ह्यंकिविश्शों-ऽ तिरात्राविभितों भवतो ब्रह्मवर्चसस्य परिगृहीत्यै॥२९॥

गृह्ण्वित् दिवाकीत्र्येंनैवोभयतो नाप्रतिष्ठिता आसंत एकंवि श्वतिश्व॥————[१०]

अर्वाङ्यज्ञः सं क्रांमत्वमुष्मादिषे माम्भि। ऋषींणां यः पुरोहितः। निर्देवं निर्वीरं कृत्वा विष्केन्धं तस्मिन् हीयतां यौंऽस्मान्द्वेष्टिं। शरीरं यज्ञशम्लं कुसीदं तस्मिन्थ्सीदतु यौंऽस्मान्द्वेष्टिं। यज्ञं यज्ञस्य यत्तेज्ञस्तेन सं क्रांम् माम्भि। ब्राह्मणानृत्विजो देवान् यज्ञस्य तपंसा ते सवाहमा हुवे। इष्टेनं पक्कमुपं॥३०॥

ते हुवे सवाहम्। सन्ते वृञ्जे सुकृत॰ सं प्रजां पृश्न्न्। प्रैषान्थ्सांमिधेनीरांघारावाज्यंभागावाश्रं शृंणामि ते। प्रयाजान्याजान्थ्स्वंष्टकृतमिडांमाशिष् आ वृञ्जे सुवंः। अग्निनेन्द्रेण सोमेन सरंस्वत्या विष्णुंना देवतांभिः। याज्यानुवाक्यांभ्यामुपं ते हुवे स्वाहं यज्ञमा दंदे ते वर्षद्गृतम्। स्तुत॰ शुस्त्रमप्रंतिगुरं ग्रहमिडांमाशिषंः॥३१॥

आ वृंञ्जे सुवंः। पृत्नीसंयाजानुपं ते हुवे सवाह स्मिष्टयुजुरा देवे तर्व। पृश्नून्थ्युतम्पुरोडाशान्थ्यवेनान्योत युज्ञम्। देवान्थ्येन्द्रानुपं ते हुवे सवाहमृग्निमुंखान्थ्योमंवतो ये च विश्वे॥३२॥

उप ग्रहमिडांमाशिषो द्वात्रि १शच॥——

-[88]

भूतम्भव्यंम्भविष्यद्वष्ट्थ्स्वाह्य नम् ऋख्साम् यजुर्वष्ट्थ्स्वाह्य नमो गायत्री त्रिष्टुब्बर्गती वष्ट्थ्स्वाह्य नमोः पृथिव्यंन्तिरिक्षं द्यौर्वष्ट्थ्स्वाह्य नमोऽग्निर्वायुः सूर्यो वष्ट्थ्स्वाह्य नमोः प्राणो व्यानोऽपानो वष्ट्थ्स्वाह्य नमोऽन्ने कृषिर्वृष्टिर्वष्ट्थ्स्वाह्य नमोः पिता पुत्रः पौत्रो वष्ट्थ्स्वाह्य नमो भूर्भुवःसुवर्वष्ट्थ्स्वाह्य नमो॥३३॥

भुवंश्चत्वारिं च॥-----[१२]

आ में गृहा भंवंं त्वा प्रजा म् आ मां युज्ञो विंशतु वीर्यावान्। आपों देवीर्युज्ञिया

मा विशन्तु सहस्रंस्य मा भूमा मा प्र हांसीत्। आ मे ग्रहों भवत्वा पुंरो्रुरुव्स्तुंतश्रक्षे मा विशता स्मीचीं। आदित्या रुद्रा वसंवो मे सदस्याः सहस्रंस्य मा भूमा मा प्र हांसीत्। आ मांग्निष्टोमो विशत्वस्यंश्चातिरात्रो मा विशत्वापिशर्वरः। तिरोअंह्रिया मा सुहुंता आ विशन्तु सहस्रंस्य मा भूमा मा प्र हांसीत्॥३४॥

अग्निष्टोमो विंशत्वष्टादंश च॥—

[83]

अग्निना तपोऽन्वंभवद्वाचा ब्रह्मं मृणिनां रूपाणीन्द्रंण देवान् वातेन प्राणान्थ्सूर्येण द्याश्चन्द्रमंसा नक्षंत्राणि यमेनं पितृत्राज्ञां मनुष्यांन्फलेनं नादेयानंजगरेणं सूर्पान्व्याघ्रेणांरण्यान्पुश्च्छ्येनेनं पत्तिरणो वृष्णाश्वांनृष्भेण गा ब्स्तेनाजा वृष्णिनावींर्व्वीहिणान्नांनि यवेनौषंधीर्न्युग्रोधेन वनस्पतींनुदुम्बरेणोर्जंङ्गायित्रया छन्दारंसि त्रिवृता स्तोमान्ब्राह्मणेन वाचम्॥३५॥

ब्राह्मणेनैकंश्च॥

-[◊×]

स्वाह्मधिमाधीताय स्वाह्म स्वाहाधीत्म्मनंसे स्वाह्म स्वाह्म मनः प्रजापंतये स्वाह्म काय स्वाह्म कस्मे स्वाहां कत्मस्मे स्वाहादित्ये स्वाहादित्ये स्वाहादित्ये मही स्वाहादित्ये सुमृडीकाये स्वाह्म सर्गस्वत्ये स्वाह्म सर्गस्वत्ये बृहृत्यै स्वाह्म सर्गस्वत्ये पावकाये स्वाहां पूष्णे न्यन्धिषाय स्वाह्म त्वष्टे स्वाह्म त्वष्टे तुरीपाय स्वाह्म त्वष्टे पुरुरूपाय स्वाह्म विष्णंवे स्वाह्म विष्णंवे निभूयपाय स्वाह्म सर्वस्मे स्वाहाँ॥३६॥

पुरुरूपांयु स्वाहा दर्श च॥_____

-[१५]

दुद्धः स्वाह् हनूँभ्या् स्वाहोष्ठाँभ्याः स्वाह् मुखांय स्वाह् नासिंकाभ्याः स्वाहाक्षीभ्याः स्वाहां कर्णांभ्याः स्वाहां पार इक्षवोऽवार्येभ्यः पक्ष्मंभ्यः स्वाहां शीर्ष्णे स्वाहां भ्रूभ्याः स्वाहां लुलाटांय स्वाहां मूर्भे स्वाहां मस्तिष्कांय स्वाहां केशेंभ्यः स्वाहां वहांय स्वाहां ग्रीवाभ्यः स्वाहां स्कन्थेभ्यः स्वाहां कीकंसाभ्यः स्वाहां पृष्टीभ्यः स्वाहां पाजस्याय स्वाहां पार्श्वभ्याः स्वाहां॥३७॥

अश्सौभ्याङ् स्वाहां दोषभ्याङ् स्वाहां बाहुभ्याङ् स्वाहा जङ्घौभ्याङ् स्वाहा श्रोणींभ्याङ् स्वाहोरुभ्याङ् स्वाहाष्ठीवन्द्राङ् स्वाहा जङ्घौभ्याङ् स्वाहां भसदे स्वाहां शिखण्डेभ्यः स्वाहां वालुधानांयु स्वाह्गण्डाभ्याु स्वाह्य शेपांयु स्वाह्य रेतंसे स्वाहाँ प्रजाभ्यः स्वाहाँ प्रजनंनायु स्वाहां पुज्ञः स्वाहां शुफेभ्यः स्वाह्य लोमंभ्यः स्वाहां त्वचे स्वाह्य लोहितायु स्वाहां माु सायु स्वाह्य स्व

अञ्चेताय स्वाहां ञ्जिस्क्थाय स्वाहां शितिपदे स्वाहा शितिककुदे स्वाहां शितिरन्ध्रांय स्वाहां शितिपृष्ठाय स्वाहां शित्य स्माय स्वाहां पृष्पकर्णाय स्वाहां शित्योष्ठांय स्वाहां शितिभवे स्वाहां शितिभसदे स्वाहां श्वेतानूंकाशाय स्वाहां अये स्वाहां लुलामाय स्वाहासितज्ञवे स्वाहां कृष्णेताय स्वाहां रोहितैताय स्वाहां रुणेताय स्वाहां कीदृशांय स्वाहां ताृदशांय स्वाहां स्वाहां

रूपाय स्वाहा द्वे चं॥————[१७]

कृष्णाय स्वाहां श्वेताय स्वाहां पिशङ्गांय स्वाहां सारङ्गांय स्वाहांरुणाय स्वाहां गौराय स्वाहां बुभवे स्वाहां नकुलाय स्वाहा रोहिताय स्वाहा शोणांय स्वाहां शयावाय स्वाहां शयामाय स्वाहां पाकलाय स्वाहां सुरूपाय स्वाहानुंरूपाय स्वाहा विरूपाय स्वाहा सरूपाय स्वाहा प्रतिरूपाय स्वाहां श्वलांय स्वाहां कम्लाय स्वाहा पृश्नेये स्वाहां पृश्नियसक्थाय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहां॥४०॥

कृष्णाय पद्गंत्वारि १ शत्॥----[१८]

ओषंधीभ्यः स्वाहा मूलैभ्यः स्वाहा तूलैभ्यः स्वाहा काण्डैभ्यः स्वाहा वल्शैभ्यः स्वाहा पुष्पैभ्यः स्वाहा फलैभ्यः स्वाहां गृहीतेभ्यः स्वाहागृहीतेभ्यः स्वाहावंपन्नेभ्यः स्वाहा शर्यानेभ्यः स्वाहा सर्वसमै स्वाहा॥४१॥

ओषंधीभ्यश्चतुर्वि रशतिः॥______[१९]

वनस्पतिभ्यः स्वाहा मूर्लैभ्यः स्वाहा तूर्लैभ्यः स्वाहा स्कन्धौभ्यः स्वाहा शाखाँभ्यः स्वाहां पुर्णेभ्यः स्वाहा पुष्पैभ्यः स्वाहा फर्लैभ्यः स्वाहां गृहीतेभ्यः स्वाहागृहीतेभ्यः स्वाहावंपन्नेभ्यः स्वाहा शयांनेभ्यः स्वाहां शिष्टाय स्वाहातिंशिष्टाय स्वाहा परिंशिष्टाय स्वाहा स॰शिष्टाय स्वाहोच्छिंष्टाय स्वाहां रिक्ताय स्वाहारिक्ताय स्वाहा प्ररिक्ताय स्वाहा स॰रिक्ताय स्वाहोद्रिक्ताय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहां॥४२॥

वनस्पतिंभ्यः स्कन्धौभ्यः शिष्टायं रिक्ताय षद्गंत्वारि श्रात्॥————[२०]

[प्रजर्वं प्रजापंतिर्यदंछन्दोमन्तें हुवे सवाहमोषंधीभ्यो द्विचंत्वारिश्शत्॥42॥ प्रजव्श् सर्वस्मै स्वाहाँ॥]

॥चतुर्थः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां सप्तमकाण्डे चतुर्थः प्रश्नः॥

बृह्स्पतिंरकामयत् श्रन्में देवा दधीर्नाच्छेयं पुरोधामिति स एतं चंतुर्वि श्वतिरात्रमंपश्यत्तमाहंर्त्तेनायजत् ततो वै तस्मै श्रदेवा अदंधतागंच्छत्पुरोधां य एवं विद्वा श्रसंश्चतुर्वि श्वतिरात्रमासते श्रदेंभ्यो मनुष्यां दधते गच्छंन्ति पुरोधां ज्योतिगौरायुरितिं त्र्यहा भवन्तीयं वाव ज्योतिर्न्तरिक्षुं गौर्सावायुं:॥१॥

ड्मानेव लोकान्भ्यारोहन्त्यिभपूर्वं त्र्यहा भवन्त्यिभपूर्वमेव सुंवर्गं लोकम्भ्यारोहन्त्यसंत्रं वा एतद्यदेछन्दोमं यच्छंन्दोमा भवन्ति तेनं सत्रं देवतां एव पृष्ठेरवं रुन्थते पृश्चर्छंन्दोमेरोजो वै वीर्यं पृष्ठानिं पृशवंश्छन्दोमा ओजंस्येव वीर्यं पृश्चषु प्रतिं तिष्ठन्ति बृहद्रथन्तराभ्यां यन्तीयं वाव रंथन्तरमुसौ बृहद्यभ्यामेव॥२॥

यन्त्यथों अनयोर्व प्रतिं तिष्ठन्त्येते वै यज्ञस्यांश्वसायंनी स्रुती ताभ्यांमेव सुंवर्गं लोकं यंन्ति चतुर्वि शतिरात्रो भंवित् चतुर्वि शतिरर्धमासाः संवथ्सरः संवथ्सरः सुंवर्गो लोकः संवथ्सर एव सुंवर्गे लोके प्रतिं तिष्ठन्त्यथो चतुर्वि शत्यक्षरा गायत्री गांयत्री ब्रह्मवर्चसङ्गायित्रयेव ब्रह्मवर्चसमवं रुन्थतेऽतिरात्राविभितो भवतो ब्रह्मवर्चसस्य परिगृहीत्यै॥३॥

असावायुंराभ्यामेव पर्श्वचत्वारिश्शच॥______[१]

यथा वै मंनुष्यां एवं देवा अग्रं आस्नतेंऽकामयुन्तावंर्तिम्पाप्मानंम्मृत्युमंपृहत्य दैवी ई

स्र्सर्दं गच्छ्रेमेति त एतं चंतुर्वि शातिरात्रमंपश्यन्तमाहंर्न्तेनांयजन्त् ततो वै ते-ऽवर्तिम्पाप्मानंम्मृत्युमंपहत्य दैवी १ स्रसदंमगच्छ्न् य एवं विद्वा १ सश्चतुर्वि शातिरात्रमासते-ऽवर्तिमेव पाप्मानंमपहत्य श्रियं गच्छन्ति श्रीर्हि मंनुष्यंस्य॥४॥

देवीं सुर्सञ्च्योतिरतिरात्रो भंवति सुवर्गस्यं लोकस्यानुंख्यात्ये पृष्ठमः षड्हो भंवित षड्वा ऋतवंः संवथ्सरस्तम्मासां अर्धमासा ऋतवंः प्रविश्य देवी ए स्र्सदंमगच्छ्न य एवं विद्वार्षसञ्चतिर्विरशितरात्रमासंते संवथ्सरमेव प्रविश्य वस्यंसी ए सुर्सदं गच्छन्ति त्रयंस्रयस्त्रिर्शा अवस्ताःद्ववन्ति त्रयंस्रयस्त्रिर्शाः प्रस्तांत्रयस्त्रिर्शोरवोभ्यतोऽवंतिम्पाप्मानंमपृहत्य देवी ए सुर्सदंममध्यतः॥५॥

गुच्छुन्ति पृष्ठानि हि दैवीं सुर्सञ्जामि वा एतत्कुर्वन्ति यत्रयंस्रयस्त्रिर्शा अन्वश्चो मध्येऽनिरुक्तो भवति तेनाजाँम्यूर्ध्वानि पृष्ठानि भवन्त्यूर्ध्वाश्छंन्दोमा उभाभ्यार रूपाभ्यार सुवर्गं लोकं यन्त्यसंत्रुं वा एतद्यदंछन्दोमं यच्छंन्दोमा भवन्ति तेन सुत्रं देवता एव पृत्छैरवं रुन्धते पृशूञ्छंन्दोमैरोजो वै वीर्यं पृष्ठानि पृशवंः॥६॥

छुन्दोमा ओर्जस्येव वीर्ये पृशुषु प्रति तिष्ठन्ति त्रयंस्रयस्त्रिष्ट्शा अवस्ताँद्भवन्ति त्रयंस्रयस्त्रिष्ट्शा प्रस्तान्मध्ये पृष्ठान्युरो वे त्रयस्त्रिष्ट्शा आत्मा पृष्ठान्यात्मनं एव तद्यजंमानाः शर्म नह्यन्तेऽनाँत्र्ये बृहद्रथन्तराभ्यां यन्तीयं वाव रथन्तरम्सौ बृहद्याभ्यामेव यन्त्यथो अनयोरेव प्रति तिष्ठन्त्येते वे यज्ञस्याँश्चसायंनी स्रुती ताभ्यांमेव॥७॥

सुवर्गं लोकं यन्ति पराँश्चो वा एते सुंवर्गं लोकम्भ्यारोहन्ति ये पंराचीनांनि पृष्ठान्युप्यन्ति प्रत्यश्चें इहो भविति प्रत्यवंरूढ्या अथो प्रतिष्ठित्या उभयों लिंक्योर्ं ऋद्धोत्तिष्ठन्ति त्रिवृतांऽिधं त्रिवृत्तमुपं यन्ति स्तोमाना सम्पत्त्ये प्रभ्वाय ज्योतिरग्निष्टोमो भवत्ययं वाव स क्षयोऽस्मादेव तेन क्षयान्न यन्ति चतुर्विश्चातिरात्रो भविति चतुर्विश्चातिरर्धमासाः स्वथ्यरः संवथ्यरः सुंवर्गो लोकः संवथ्यर एव सुंवर्गे लोके प्रति तिष्ठन्त्यथो चतुर्विश्चात्यक्षरा गायत्री गायत्री ब्रह्मवर्चसङ्गायित्रयेव ब्रह्मवर्चसमवं रुन्थतेऽतिरात्राव्भितौ भवतो ब्रह्मवर्चसस्य परिगृहीत्यै॥८॥

म्नुष्यंस्य मध्यतः पुशवस्ताभ्यांमेव सं वथ्सरश्चतुंर्वि १ शतिश्च॥———[२]

ऋक्षा वा इयमेलोमकांसीथ्साकांमयतौषंधीभिवंनस्पतिंभिः प्र जांयेयेति सैतास्त्रिष्शतुष् रात्रीरपश्यत्ततो वा इयमोषंधीभिवंनस्पतिंभिः प्राजांयत् ये प्रजाकांमाः पुशुकांमाः स्युस्त एता आंसीर्न्प्रेव जायन्ते प्रजयां पुशुभिरियं वा अंक्षुध्यथ्सैतां विराजंमपश्यत्तामात्मन्धित्वान्नाद्यमवांरुन्द्रौषंधीः॥९॥

वनस्पतींन्प्रजां पुशून्तेनावर्धत् सा जेमानम्महिमानमगच्छुद्य एवं विद्वारसं एता आसंते विराजंमेवात्मन्धित्वाऽन्नाद्यमवं रुन्धते वर्धन्ते प्रजयां पुशुभिंर्जेमानंम्महिमानं गच्छन्ति ज्योतिंरतिरात्रो भंवति सुवर्गस्यं लोकस्यानुंख्यात्ये पृष्ठाः षडुहो भंवति षड्वा ऋतवः षदृष्ठानि पृष्ठेरेवर्तून्नवारोहन्त्यृतुभिः संवथ्सरन्ते संवथ्सर एव॥१०॥

प्रति तिष्ठन्ति त्रयस्त्रि शात्रयस्त्रि शमुपं यन्ति यज्ञस्य सन्तत्या अथौं प्रजापंतिर्वै त्रंयस्त्रिष्शः प्रजापंतिमेवा रंभन्ते प्रतिष्ठित्ये त्रिण्वो भंवति विजित्या एकविष्शो भंवति प्रतिष्ठित्या अथो रुचंमेवात्मन्दंधते त्रिवृदंग्निष्टुद्भंवति पाप्मानंमेव तेन निर्दहन्तेऽथो तेजो वै त्रिवृत्तेर्जं एवात्मन्दंधते पश्चदश इंन्द्रस्तोमो भंवतीन्द्रियमेवावं॥११॥

रुन्धते सप्तदशो भंवत्यन्नाद्यस्यावंरुद्धा अथो प्रैव तेनं जायन्त एकवि शो भंवति प्रतिष्ठित्या अथो रुचंमेवात्मन्दंधते चतुर्वि रुशो भवति चतुर्वि रशतिरर्धमासाः संवथ्सरः संवथ्सरः सुवर्गो लोकः संवथ्सर एव सुवर्गे लोके प्रति तिष्ठन्त्यथी एष वै विषूवान् विंपूवन्तों भवन्ति य एवं विद्वारसं एता आसंते चतुर्विरशात्पृष्ठान्युपं यन्ति संवय्सर एव प्रंतिष्ठायं॥१२॥

देवतां अभ्यारोहिन्त त्रयस्त्रि शात्रंयस्त्रि शमुपं यन्ति त्रयंस्त्रि शद्दे देवतां देवतां स्वेव प्रतिं तिष्ठन्ति त्रिणवो भंवतीमे वै लोकािस्रिणव एष्वेंव लोकेषु प्रतिं तिष्ठन्ति द्वावेंकवि शौ भंवतः प्रतिष्ठित्या अथो रुचंमेवात्मन्दंधते बहवंः षोडशिनों भवन्ति तस्माँद्बहवंः प्रजासु वृषांणो यदेते स्तोमा व्यतिंषक्ता भवंन्ति तस्मांदियमोषंधीभिवंनस्पतिंभिर्व्यतिंषक्ता॥१३॥

व्यतिषज्यन्ते प्रजयां पशुभिर्य एवं विद्वारसं एता आसतेऽक्रुप्ता वा एते सुंवर्गं लोकं यंन्त्युचावचान् हि स्तोमांनुपयन्ति यदेत ऊर्ध्वाः क्रुप्ताः स्तोमा भवन्ति क्रुप्ता एव सुंवर्गं लोकं येन्त्युभयोरेभ्यो लोकयोः कल्पते त्रिश्शदेतास्त्रिश्शदेक्षरा विराडन्नं विराङ्विराजैवान्नाद्यमवं रुन्धतेऽतिरान्नावभितों भवतोऽन्नाद्यंस्य परिंगृहीत्यै॥१४॥

ओषंधीः सं वथ्सर एवावं प्रतिष्ठाय व्यतिषुक्तैकान्नपंश्चाशचं॥____

प्रजापंतिः सुवर्गं लोकमैत्तं देवा येनयेन छन्दसानु प्रायुं अत् तेन नाप्नुंवन्त

एता द्वात्रिर्श्यत्र् रात्रीरपश्यन् द्वात्रिर्श्यदक्षरानुष्टुगानुष्टुभः प्रजापंतिः स्वेनैव छन्दंसा प्रजापंतिमास्वाभ्यारुह्यं सुवृर्गं लोकमायन् य एवं विद्वारसं एता आसेते द्वात्रिर्श्यदेता द्वात्रिर्शयदक्षरानुष्टुगानुष्टुभः प्रजापंतिः स्वेनैव छन्दंसा प्रजापंतिमास्वा श्रियं गच्छन्ति॥१५॥

श्रीर्हि मंनुष्यंस्य सुवृगी लोको द्वात्रिर्श्यदेता द्वात्रिर्श्यदक्षरानुष्टुग्वागंनुष्टुफ्सर्वामेव वाचंमाप्नुविन्ति सर्वे वाचो वंदितारों भवन्ति सर्वे हि श्रियं गच्छंन्ति ज्योतिगीरायुरितिं त्र्यहा भवन्तीयं वाव ज्योतिर्न्तिरंक्षं गौर्सावायुरिमानेव लोकान्भ्यारोहन्त्यभिपूर्वं त्र्यहा भवन्त्यभिपूर्वमेव सुंवृगं लोकम्भ्यारोहन्ति बृहद्रथन्तुराभ्यां यन्ति॥१६॥

ड्यं वाव रंथन्त्रम्सौ बृहद्यभ्यामेव युन्त्यथों अनयोरेव प्रतिं तिष्ठन्त्येते वै युज्ञस्यां अस्यां स्वां सुवां लोकं यंन्ति परां श्रो वा एते सुवां लोकम्भ्यारोहिन्ति ये परांचक्र्यहानुंप्यन्तिं प्रत्यङ्क्यहो भविति प्रत्यवंक्रद्ध्या अथो प्रतिष्ठित्या उभयों लीक्योर्ं ऋष्द्वोत्तिष्ठन्ति द्वात्रि श्रेषदेतास्तासां यास्त्रि श्रावेश्वरा विराह्यं विराद्विराज्ञेवान्नाद्यमवं रुन्धते ये द्वे अहोरात्रे एव ते उभाभ्या र् क्पाभ्या सुवां लोकं यंन्त्यितरात्राविभितों भवतः परिंगृहीत्य॥१७॥

गुच्छुन्ति यन्ति त्रिर्शदंक्षरा द्वाविरंशतिश्च॥———[४]

द्वे वाव देवस्त्रे द्वांदशाहश्चेव त्रंयस्त्रिश्शदहश्च य एवं विद्वारसंस्रयस्त्रिश्शदहमासंते साक्षादेव देवतां अभ्यारोहिन्ति यथा खलु वै श्रेयांनभ्यारूढः कामयंते तथां करोति यद्यंविविध्यंति पापीयान्भवति यदि नाविविध्यंति सदृष्ट्य एवं विद्वारसंस्रयस्त्रिश्शदहमासंते वि पाप्मना भ्रातृंव्येणा वर्तन्तेऽहुर्भाजो वा एता देवा अग्र आहंरत्र॥१८॥

अहरेकोऽभंजताहरेक्स्ताभिर्वे ते प्रवाहंगार्ध्रवन् य एवं विद्वारसंस्रयस्त्रिरशदहमासंते सर्व एव प्रवाहंगृध्रवन्ति सर्वे ग्रामंणीयम्प्राप्नुंवन्ति पश्चाहा भंवन्ति पश्च वा ऋतवंः संवथ्सर ऋतुष्वेव संवथ्सरे प्रतिं तिष्ठन्त्यथो पश्चाक्षरा पङ्काः पाङ्को यज्ञ यज्ञमेवावं रुन्धते त्रीण्यांश्विनानिं भवन्ति त्रयं इमे लोका एषु॥१९॥

एव लोकेषु प्रति तिष्ठन्त्यथो त्रीणि वै युज्ञस्यैन्द्रियाणि तान्येवावं रुन्धते विश्वजिद्भवत्यन्नाद्यस्यावंरुद्धौ सर्वपृष्ठो भवति सर्वस्याभिजित्यौ वाग्वै द्वांदशाहो यत्पुरस्तांद्वादशाहमुंपेयुरनांप्तां वाचमुपेयुरुपदासुंकैषां वाख्स्यांदुपरिष्टाद्वादशाहमुपं यन्त्याप्तामेव वाचुमुपं यन्ति तस्मांदुपरिष्टाद्वाचा वंदामोऽवान्त्रम्॥२०॥

वै दंशरात्रेणं प्रजापंतिः प्रजा अंसृजत् यद्दंशरात्रो भवंति प्रजा एव तद्यजंमानाः सृजन्त एता ह् वा उंदुङ्कः शौंल्बायनः सृत्रस्यर्छ्वं मुवाच् यद्दंशरात्रो यद्दंशरात्रो भवंति स्त्रस्यर्छ्या अथो यदेव पूर्वेष्वहं:सु विलोम क्रियते तस्यैवेषा शान्तिंर्द्धनीका वा एता रात्रयो यजंमाना विश्वजिथ्सहातिरात्रेण पूर्वाः षोडंश सहातिरात्रेणोत्तराः षोडंश य एवं विद्वा सस्त्रयस्त्रि स्त्रमासंत् ऐषां द्यनीका प्रजा जांयतेऽतिरात्राव् भितो भवतः परिंगहीत्यै॥२१॥

अहुर्न्नेष्वंवान्तर षोडंश सह सप्तदंश च॥_____[५]

आदित्या अंकामयन्त सुवर्गं लोकिर्मियामेति ते सुंवर्गं लोकं न प्राजानन्न सुंवर्गं लोकमायन्त एतः षंद्रिःशद्रात्रमंपश्यन्तमाहंर्न्तेनायजन्त ततो वै ते सुंवर्गं लोकम्प्राजानन्थ्सुवर्गं लोकमायन् य एवं विद्वाः सः षद्गिःशद्रात्रमासंते सुवर्गमेव लोकम्प्रजानन्ति सुवर्गं लोकं यंन्ति ज्योतिरतिरात्रः॥२२॥

भ्वति ज्योतिरेव पुरस्ताँद्दधते सुवर्गस्यं लोकस्यानुंख्यात्ये षड्हा भंवन्ति षड्वा ऋतवं ऋतुष्वेव प्रतिं तिष्ठन्ति चत्वारों भवन्ति चतंस्रो दिश्लों दिश्लेंव प्रतिं तिष्ठन्त्यसंश्रं वा एतद्यदंछन्दोमं यच्छंन्दोमा भवन्ति तेनं सृत्रं देवतां एव पृष्ठेरवं रुन्धते पृश्क्छंन्दोमैरोजो वै वीर्यं पृष्ठानिं पृश्ववंश्छन्दोमा ओजंस्येव॥२३॥

वीर्ये पृशुषु प्रति तिष्ठन्ति षद्भि श्राद्यात्रो भेवति षद्भि श्रादक्षरा बृह्ती बार्ह्नाः पृशवो बृह्त्यैव पृशूनवं रुन्धते बृह्ती छन्दंसा स् स्वारांज्यमाश्रुताश्रुवते स्वारांज्यं य एवं विद्वारसं षद्भि श्राद्यात्रमासंते सुवर्गमेव लोकं यंन्त्यतिरात्राविभितो भवतः सुवर्गस्यं लोकस्य परिंगृहीत्यै॥ २४॥

अतिरात्र ओर्जस्येव षद्गिर्श्शच॥-----[६]

वसिष्ठो हृतपुंत्रोऽकामयत विन्देयं प्रजाम्भि सौंदासान्भवेयमिति स पृतमेकस्मान्नपश्चाशमंपश्यत्तमाहंरत्तेनायजत् ततो वै सोऽविन्दत प्रजाम्भि सौंदासानंभवद्य पृवं विद्वार्श्सं एकस्मान्नपश्चाशमासंते विन्दन्ते प्रजाम्भि भ्रातृंव्यान्भवन्ति त्रयंश्चिवृतौं-ऽग्निष्टोमा भवन्ति वर्ज्ञस्यैव मुख्र सह श्यंन्ति दशं पश्चद्शा भवन्ति पश्चद्शो वर्ज्ञः॥२५॥

वर्जमेव भ्रातृंव्येभ्यः प्र हंरन्ति षोडशिमद्दंशममहंभविति वर्ज्ञ एव वीर्यं दधित द्वादंश सप्तद्शा भवन्त्यन्नाद्यस्यावंरुद्धा अथो प्रैव तैर्जायन्ते पृष्ठमः षड्हो भविति षड्वा ऋतवः षद्वृष्ठानिं पृष्ठेरेवर्तून्नवारोहन्त्यृतुभिः संवथ्सरन्ते संवथ्सर एव प्रति तिष्ठन्ति द्वादंशैकविष्शा भवन्ति प्रतिष्ठित्या अथो रुचंमेवातमन्न्॥२६॥

द्धते बहवंः षोड्शिनों भवन्ति विजित्यै षडाँश्विनानिं भवन्ति षङ्घा ऋतवं ऋतुष्वेव प्रतिं तिष्ठन्त्यूनातिरिक्ता वा एता रात्रंय ऊनास्तद्यदेकंस्यै न पश्चाशदितिरिक्तास्तद्यद्भयंसीर्ष्टाचंत्वारिश्शत ऊनाच् खलु वा अतिरिक्ताच प्रजापितिः प्राजायत् ये प्रजाकांमाः पशुकांमाः स्युस्त एता आंसीर्न्प्रेव जांयन्ते प्रजयां पशुभिंवैराजो वा एष यज्ञो यदेकस्मान्नपश्चाशो य एवं विद्वाश्सं एकस्मान्नपश्चाशमासंते विराजंमेव गंच्छन्त्यन्नादा भवन्त्यतिरान्नाव्भितों भवतोऽन्नाद्यंस्य परिंगृहीत्यै॥२७॥

वर्ज्र आत्मन्प्रजया द्वावि १ शतिश्च॥ ______[७]

संवथ्सरायं दीक्षिष्यमांणा एकाष्ट्रकायां दीक्षेरन्नेषा वै संवथ्सरस्य पत्नी यदेकाष्ट्रकेतस्यां वा एष एता र रात्रिं वसित साक्षादेव संवथ्सरमारभ्यं दीक्षन्त आर्तुं वा एते संवथ्सरस्याभि दीक्षन्ते य एकाष्ट्रकायां दीक्षन्तेऽन्तंनामानावृत् भवतो व्यस्तं वा एते संवथ्सरस्याभि दीक्षन्ते य एकाष्ट्रकायां दीक्षन्तेऽन्तंनामानावृत् भवतः फल्गुनीपूर्णमासे दीक्षेर्न्मुखं वा एतत्॥२८॥

संवथ्सरस्य यत्फंल्गुनीपूर्णमासो मुंखत एव संवथ्सरमारभ्यं दीक्षन्ते तस्यैकैव निर्या यथ्साम्मेंच्ये विषूवान्थ्सम्पद्यंते चित्रापूर्णमासे दीक्षेर्न्मुखं वा एतथ्संवथ्सरस्य यित्रंत्रापूर्णमासो मुंखत एव संवथ्सरमारभ्यं दीक्षन्ते तस्य न का चन निर्या भंवति चतुर्हे पुरस्तांत्पौर्णमास्यै दीक्षेर्न्तेषांमेकाष्ट्रकार्यां कृयः सम्पंचते तेनैकाष्ट्रकां न छुम्बद्वंवन्ति तेषाम्॥२९॥

पूर्वपृक्षे सुत्या सम्पंचते पूर्वपृक्षम्मासां अभि सम्पंचन्ते ते पूर्वपृक्ष उत्तिष्ठन्ति तानुत्तिष्ठंत ओषंधयो वनस्पत्योऽनूत्तिष्ठन्ति तान्कल्याणी कीर्तिरनूत्तिष्ठत्यरांथ्सुरिमे यजमाना इति तदनु सर्वे राष्ट्रवन्ति॥३०॥

पुतच्छुम्बद्भुर्वन्ति तेषाञ्चतुंस्त्रि श्राच॥—

सुवर्गं वा एते लोकं यंन्ति ये स्त्रमुंपयन्त्यभीन्यंत एव दीक्षाभिंरात्मान १ श्रपयन्त उपसद्धिर्द्धाभ्यां लोमावं द्यन्ति द्वाभ्यान्त्वचन्द्वाभ्यामसृद्द्वाभ्यांम्मा १ सन्द्वाभ्यामस्थि द्वाभ्यांम्मु जानेमात्मदंक्षिणं वे स्त्रमात्मानंमेव दक्षिणां नीत्वा सुंवर्गं लोकं यंन्ति शिखामनु प्र वंपन्त ऋद्या अथो रघीया १ स्वर्गं लोकमंयामेति॥ ३१॥

सुवर्गम्पंश्चाशत्॥-----[१]

ब्रह्मबादिनों वदन्त्यितरात्रः पंरमो यंज्ञकतूनां कस्मात्तम्प्रंथममुपं युन्तीत्येतद्वा अंग्निष्टोमम्प्रंथममुपं युन्त्यथोक्थ्यंमथं षोड्शिन्मथातिरात्रमंनुपूर्वमेवैतद्यंज्ञकृतूनुपेत्य तानालभ्यं परिगृह्य सोमंमेवैतित्यवंन्त आसते ज्योतिष्टोमम्प्रथममुपं यन्ति ज्योतिष्टोमो वै स्तोमानाम्मुखंम्मुख् एव स्तोमान्प्र युंअते ते॥३२॥

सङ्स्तुंता विराजंम्भि सम्पंचन्ते द्वे चर्चावितं रिच्येते एकंया गौरतिरिक्त एक्यायुंरूनः सुंवर्गो वै लोको ज्योतिरूर्ग्विराद्वुंवर्गमेव तेनं लोकं यंन्ति रथन्तरं दिवा भवंति रथन्तरं नक्तमित्यांहुर्ब्रह्मवादिनः केन तदजामीतिं सौभुरं तृंतीयसवने ब्रह्मसामम्बृहत्तन्मंध्यतो दंधित विधृंत्यै तेनाजांमि॥३३॥

त एकान्नपंश्चाशचं॥-----[१०]

ज्योतिष्टोमम्प्रथममुपं यन्त्यस्मिन्नेव तेनं लोके प्रति तिष्ठन्ति गोष्टोंमं द्वितीयमुपं यन्त्यन्तिरक्ष एव तेन् प्रति तिष्ठन्त्यायुष्टोमं तृतीयमुपं यन्त्यमुष्मिन्नेव तेनं लोके प्रति तिष्ठन्तीयं वाव ज्योतिर्न्तिरक्षं गौर्सावायुर्यदेतान्थ्स्तोमानुपयन्त्येष्वेव तल्लोकेषुं सन्त्रिणः प्रतितिष्ठन्तो यन्ति ते सङ्स्तुंता विराजम्॥३४॥

अभि सम्पंद्यन्ते द्वे चर्चावितं रिच्येते एकंया गौरितंरिक्त एक्यायुंरूनः सुंवुर्गो वै लोको ज्योतिरूर्गित्राडूर्जमेवावं रुन्थते ते न क्षुधार्तिमार्च्छन्त्यक्षोधुका भवन्ति क्षुथ्संम्बाधा इव् हि सित्रणौंऽग्निष्टोमावभितः प्रधी तावुक्थ्यां मध्ये नभ्यं तत्तदेतत्परियद्वेवचक्रं यदेतेनं॥३५॥

ष्डहेन् यन्ति देवच्क्रमेव समारोहन्त्यिरिष्ट्रै ते स्वस्ति समिश्रुवते षड्हेनं यन्ति षड्घा ऋतवं ऋतुष्वेव प्रति तिष्ठन्त्युभ्यतौज्योतिषा यन्त्युभ्यतं एव सुंवर्गे लोके प्रतितिष्ठन्तो यन्ति द्वौ षंडहौ भंवत्स्तानि द्वाद्शाहानि सम्पंद्यन्ते द्वाद्शो वै पुरुषो द्वे स्कथ्यौ द्वौ बाहू आत्मा च शिरेश्व चृत्वार्यङ्गानि स्तनौ द्वाद्शौ॥३६॥

तत्पुरुषमन् पूर्यावर्तन्ते त्रयः षड्हा भवन्ति तान्यष्टाद्शाहानि सम्पंद्यन्ते नवान्यानि

नवान्यानि नव वै पुरुषे प्राणास्तत्प्राणानन् पूर्यावंतन्ते चृत्वारंः षड्हा भवन्ति तानि चतुर्वि शतिरहानि सम्पंद्यन्ते चतुर्वि शतिरर्धमासाः संवथ्सरस्तथ्संवथ्सरमन् पूर्यावंतन्ते- ऽप्रतिष्ठितः संवथ्सर इति खलु वा आंहुर्वर्षीयान्प्रतिष्ठाया इत्येतावृद्धे संवथ्सरस्य ब्राह्मण् यावंन्मासो मासिमास्येव प्रतितिष्ठंन्तो यन्ति॥३७॥

विराजंमेतेनं द्वाद्शावेतावद्वा अष्टौ चं॥________[११]

मेषस्त्वां पच्तैरंवत् लोहिंतग्रीवृश्छागैः शल्मलिर्वृद्धां पूर्णो ब्रह्मणा प्रुक्षो मेधेन न्यग्रोधेश्चमसैरुंदुम्बरं ऊर्जा गांयुत्री छन्दोंभिस्त्रिवृथ्स्तोमैरवन्तीः स्थावन्तीस्त्वावन्तु प्रियं त्वाँ प्रियाणां वर्षिष्ठमाप्यानां निधीनां त्वां निधिपतिर्थं हवामहे वसो मम॥३८॥

कूप्याँभ्यः स्वाह्य कूल्याँभ्यः स्वाहां विक्र्याँभ्यः स्वाहांऽवृट्याँभ्यः स्वाह्य खन्याँभ्यः स्वाह्य हृद्याँभ्यः स्वाह्य सूद्याँभ्यः स्वाहां सर्स्याँभ्यः स्वाहां वेश्वन्तीभ्यः स्वाहां पत्वृत्याँभ्यः स्वाहां वर्ष्याँभ्यः स्वाहां हृद्वनींभ्यः स्वाहां पृष्वाँभ्यः स्वाहां स्यन्दंमानाभ्यः स्वाहां स्थावराभ्यः स्वाहां नादेयीभ्यः स्वाहां सैन्ध्वीभ्यः स्वाहां समुद्रियाँभ्यः स्वाहा सर्वांभ्यः स्वाहां ॥३९॥

कूप्यौभ्यश्चरवारि र्शत्॥ ------[१३]

अद्धः स्वाह्य वहंन्तीभ्यः स्वाहां परिवहंन्तीभ्यः स्वाहां समुन्तं वहंन्तीभ्यः स्वाह्य शीघ्रं वहंन्तीभ्यः स्वाह्य शीभुं वहंन्तीभ्यः स्वाह्यं वहंन्तीभ्यः स्वाहां भीमं वहंन्तीभ्यः स्वाहाऽम्भोभ्यः स्वाह्य नभौभ्यः स्वाह्य महोभ्यः स्वाह्य सर्वसमै स्वाहाँ॥४०॥

अन्द्र्य एकान्नत्रिर्शत्॥———[१४]

यो अर्वन्तुं जिघारंसित् तम्भ्यंमीति वर्रुणः। पुरो मर्तः पुरः श्वा। अहं च त्वं चं वृत्रहुन्थ्सम्बंभूव सुनिभ्य आ। अरातीवा चिंदब्रिवोऽनुं नौ शूर मरसते भुद्रा इन्द्रंस्य रातयः। अभि ऋत्वेन्द्र भूर्ष् उमन्न ते विव्यङ्गहिमानुर् रजारंसि। स्वेना हि वृत्रर शर्वसा जुघन्थु न शत्रुरन्तं विविदद्युधा तै॥४१॥

विविदद्वे चं॥______[१५]

नमो राज्ञे नमो वर्रुणाय नमोऽश्वांय नमः प्रजापंतये नमोऽधिपत्येऽधिपतिर्स्यधिपतिं मा कुर्विधिपतिर्हं प्रजानां भूयासम्मां धेहि मियं धेह्युपाकृताय स्वाहाऽऽलब्धाय स्वाहां हृताय स्वाहां॥४२॥

नम् एकान्नत्रिष्शत्॥———[१६]

मयोभूर्वातों अभि वांतूस्रा ऊर्जस्वतीरोषंधीरा रिशन्ताम्। पीवंस्वतीर्जीवधंन्याः पिबन्तववसायं पृद्धते रुद्र मृड। याः सरूपा विरूपा एकंरूपा यासांमृग्निरिष्ठा नामांनि वेदं। या अङ्गिरस्तपंसेह चुकुस्ताभ्यः पर्जन्य मिह् शर्म यच्छ। या देवेषुं तृनुवमैरंयन्त यासार सोमो विश्वां रूपाणि वेदं। ता अस्मभ्यम्पर्यसा पिन्वंमानाः प्रजावंतीरिन्द्र॥४३॥

गोष्ठे रिरीहि। प्रजापंतिर्मह्मंमेता रराणो विश्वेदिवैः पितृभिः संविदानः। शिवाः स्तीरुपं नो गोष्ठमाक्स्तासां वयं प्रजया स॰ संदेम। इह धृतिः स्वाहेह विधृतिः स्वाहेह रन्तिः स्वाहेह रमंतिः स्वाहां मुहीमू पु सुत्रामाणम्॥४४॥

ड्-द्राष्टात्रि १ शच॥------[१७]

किङ् स्विंदासीत्पूर्वचित्तिः किङ् स्विंदासीद्भृहद्वयः। किङ् स्विंदासीत्पिशङ्गिला किङ् स्विंदासीत्पिलिप्पिला। द्यौरांसीत्पूर्वचित्तिरश्वं आसीद्भृहद्वयः। रत्रिंरासीत्पिशङ्गिलाविरासीत्पिलिपि कः स्विंदेकाकी चेरित क उं स्विज्ञायते पुनः। किङ् स्विंद्धिमस्यं भेषुजं किङ् स्विंदावपेनम्मृहत्। सूर्यं एकाकी चेरित॥४५॥

चन्द्रमां जायते पुनः। अग्निर्हिमस्यं भेषजम्भूमिरावपंनम्महत्। पृच्छामिं त्वा पर्मन्तं पृथिव्याः पृच्छामिं त्वा भुवंनस्य नाभिम्। पृच्छामिं त्वा वृष्णो अश्वंस्य रेतः पृच्छामिं वाचः पंरमं व्योम। वेदिमाहुः पर्मन्तं पृथिव्या यज्ञमांहुर्भुवंनस्य नाभिम्। सोममाहुर्वृष्णो अश्वंस्य रेतो ब्रह्मैव वाचः पंर्मं व्योम॥४६॥

सूर्य एकाकी चंरति पद्वंत्वारि श्रच॥_______[१८]

अम्बे अम्बाल्यम्बिके न मां नयित कश्चन। ससस्त्यंश्वकः। सुभंगे काम्पीलवासिनि सुवर्गे लोके सं प्रोर्ण्वांथाम्। आहमंजानि गर्भुधमा त्वमंजासि गर्भुधम्। तौ सह चतुर्रः पदः सम्प्र सारयावहै। वृषां वार रेतोधा रेतो दधातूथ्सुक्थ्योंर्गृदं धेंह्यञ्जिमुदंञ्जिमन्वंज। यः स्त्रीणां जीवभोजनो य आसाम्॥४७॥

बिलधार्वनः। प्रियः स्रीणामंपीच्यंः। य आंसां कृष्णे लक्ष्मंणि सर्दिगृदिम्परावंधीत्। अम्बे अम्बाल्यम्बिके न मां यभित् कश्चन। सुसस्त्यंश्वकः। ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रंयताद्वेणुभारं गिराविंव। अथाँस्या मध्यंमेधता शीते वाते पुनन्निंव। अम्बे अम्बाल्यम्बिंके न मां यभित कश्चन। ससस्त्यंश्वकः। यद्धंरिणी यवमित्त न॥४८॥

पुष्टम्पशु मन्यते। शूद्रा यदर्यजारा न पोषांय धनायति। अम्बे अम्बाल्यम्बिके न मां यभित कश्चन। ससस्त्यंश्वकः। इयं यका शंकुन्तिकाहलमिति सपिति। आहंतं गुभे पसो नि जंल्गुलीति धाणिका। अम्बे अम्बाल्यम्बिके न मां यभति कश्चन। ससस्त्यंश्वकः। माता चं ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्यं रोहतः।॥४९॥

प्र सुंलामीति ते पिता गुभे मुष्टिमंत १ सयत्। दुधिकावणी अकारिषं जिष्णोरश्वंस्य वाजिनंः। सुर्भि नो मुखां कर्त्प्र ण आयूरंषि तारिषत्। आपो हि ष्ठा मंयोभुवस्ता र्न ऊर्जे देंघातन। महे रणांय चक्षंसे। यो वंः शिवतंमो रसस्तस्यं भाजयतेह नंः। उशतीरिंव मातरंः। तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयांय जिन्वंथ। आपी जनयंथा च नः॥५०॥

आसामित न रोहतो जिन्वंथ चुत्वारि च॥_____ [88]

भूर्भुवः सुवर्वसंवस्त्वाअन्तु गायत्रेण् छन्दंसा रुद्रास्त्वाअन्तु त्रैष्ट्रंभेन् छन्दंसादित्यास्त्वां अन्तु जागंतेन छन्दंसा यद्वातों अपो अगंमदिन्द्रंस्य तनुवंस्प्रियाम्। एतङ् स्तोतरेतेन पूर्या पुनरश्वमा वंर्तयासि नः। लाजी (३) ञ्छाची (३) न् यशो मुमा (4)म्। युव्याये गुव्यायां एतद्देवा अन्नमत्तैतदन्नमिद्धे प्रजापते। युअन्तिं ब्रध्नमेरुषं चर्रन्तं परि तस्थुषंः। रोचंन्ते रोचना दिवि। युञ्जन्त्यंस्य काम्या हरी विपंक्षसा रथें। शोणां धृष्णू नृवाहंसा। केतुं कृण्वन्नंकेतवे पेशों मर्या अपेशसें। समुषद्भिरजायथाः॥५१॥

ब्रध्नं पश्चवि श्शतिश्च॥ **-**[२०]

प्राणाय स्वाहाँ व्यानाय स्वाहांऽपानाय स्वाहा स्नावंभ्यः स्वाहां सन्तानेभ्यः स्वाहा परिंसन्तानेभ्यः स्वाहा पर्वभ्यः स्वाहां सुंधानेभ्यः स्वाहा शरीरेभ्यः स्वाहां युज्ञाय स्वाहा दक्षिणाभ्यः स्वाहां सुवर्गाय स्वाहां लोकाय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहां॥५२॥

प्राणायाष्टावि ५ शतिः॥ **-**[२१]

सिताय स्वाहाऽसिताय स्वाहाऽभिहिताय स्वाहाऽनंभिहिताय स्वाहां युक्ताय स्वाहा H-ऽयुंक्ताय स्वाहा सुयुंक्ताय स्वाहोद्युंक्ताय स्वाहा विमुंक्ताय स्वाहा प्रमुंक्ताय स्वाहा वश्चंते स्वाहां पिर्वश्चंते स्वाहां सुंवश्चंते स्वाहांऽनुवश्चंते स्वाहोद्वश्चंते स्वाहां युते स्वाहा धावंते स्वाहा तिष्ठंते स्वाहा सर्वस्मै स्वाहां॥५३॥

स्तायाष्टात्रिर्शत्॥———[२२]

बृह्स्पितः श्रद्यथा वा ऋक्षा वै प्रजापितिर्येनंथेन द्वे वाव देवस्त्रे अदित्या अंकामयन्त सुवर्गं वसिष्ठः सं वथ्सरायं सुवर्गं ये सुत्रम्ब्रह्मवादिनोऽतिरात्रो ज्योतिष्ठोमं मेषः कूप्याँभ्योऽज्यो यो नमो मयोभूः किश् स्विदम्बे भूः प्राणायं सिताय द्वाविश्शितः॥————[२३]

[बृह्स्पतिः प्रतितिष्ठन्ति वै देशरात्रेणं सुवर्गं यो अर्वन्तं भूस्त्रिपंश्चाशत्॥53॥ बृह्स्पतिः सर्वस्मै स्वाहा॥]

॥पञ्चमः प्रश्नः॥

॥तैत्तिरीयसंहितायां सप्तमकाण्डे पञ्चमः प्रश्नः॥

गावो वा एतथ्स्त्रमांसताशृङ्गः स्तीः शृङ्गाणि नो जायन्ता इति कामेने तासां दश् मासा निषंण्णा आस्त्रथ शृङ्गाण्यजायन्त ता उदितिष्ठन्नराथ्स्मेत्यथ यासां नाजायन्त ताः संवथ्सरमाह्वोदितिष्ठन्नराथ्स्मेति यासां चाजायन्त यासां च न ता उभयीरुदितिष्ठन्नराथ्स्मेति गोसन्नं वै॥१॥

संव्थ्सरो य एवं विद्वारसंः संवथ्सरमुंप्यन्त्यृश्चवन्त्येव तस्मांतूपरा वार्षिकौ मासौ पर्त्वा चरित सन्नाभिजित् इ ह्यंस्यै तस्मांथ्संवथ्सर्सदो यित्कं च गृहे क्रियते तदाप्तमवंरुद्धमृभिजितं क्रियते समुद्रं वा एते प्र प्लंबन्ते ये संवथ्सरमुंप्यन्ति यो वै संमुद्रस्य पारं न पश्यंति न वै स तत् उदेति संवथ्सरः॥२॥

वै संमुद्रस्तस्यैतत्पारं यदंतिरात्रौ य एवं विद्वार्श्सः संवथ्सरम्प्यन्त्यनातां एवोदचं गच्छन्तीयं वै पूर्वोऽतिरात्रोऽसावुत्तंरो मनः पूर्वो वागुत्तंरः प्राणः पूर्वोऽपान उत्तंरः प्ररोधनम्पूर्व उदयन्मुत्तंरो ज्योतिष्टोमो वैश्वान्ररोऽतिरात्रो भवित ज्योतिरेव पुरस्ताद्वधते सुवर्गस्यं लोकस्यानुंख्यात्यै चतुर्विष्शः प्रांयणीयो भवति चतुर्विषशतिरर्धमासाः॥३॥

संबुध्सरः प्रयन्तं एव संबध्सरे प्रतिं तिष्ठन्ति तस्य त्रीणिं च श्वतानिं षष्टिश्चं स्तोत्रीयास्तावंतीः संबध्सरस्य रात्रंय उभे एव संबध्सरस्यं रूपे आप्नुवन्ति ते सङ्स्थित्या अरिष्ट्या उत्तरेरहोभिश्चरन्ति षड्डा भंवन्ति षड्डा ऋतवंः संबध्सर ऋतुष्वेव संबध्सरे प्रतिं तिष्ठन्ति गौश्चायुंश्च मध्यतः स्तोमौं भवतः संबध्सरस्यैव तन्मिथुनम्मध्यतः॥४॥

द्धति प्रजननाय ज्योतिर्भितों भवति विमोचनमेव तच्छन्दार्स्येव तिष्टमोकं यन्त्यथों उभयतौं ज्योतिषैव षंडहेनं सुवर्गं लोकं यंन्ति ब्रह्मवादिनों वदन्त्यासंते केनं यन्तीति देवयानेन पृथेति ब्र्याच्छन्दार्स्सि वै देवयानः पन्थां गायत्री त्रिष्टु ज्ञगंती ज्योतिर्वे गायत्री गौस्चिष्टुगायुर्जगंती यदेते स्तोमा भवन्ति देवयानेनेव॥५॥

तत्पृथा यंन्ति समानः सामं भवित देवलोको वै सामं देवलोकादेव न यंन्त्यन्याअन्या ऋचों भविन्ति मनुष्यलोको वा ऋचों मनुष्यलोकादेवान्यमन्यं देवलोकमभ्यारोहंन्तो यन्त्यभिवृतों ब्रंह्मसामभ्यंवित सुवृर्गस्यं लोकस्याभिवृत्त्या अभिजिद्भंवित सुवृर्गस्यं लोकस्याभिजित्ये विश्वजिद्भंवित विश्वंस्य जित्ये मासिमांसि पृष्ठान्युपं यन्ति मासिमांस्यितिग्राह्मां गृह्मन्ते मासिमांस्येव वीर्यं दिधित मासां प्रतिष्ठित्या उपिरेष्टान्मासां पृष्ठान्युपं यन्ति तस्मांदुपिरेष्टादोषंधयः फर्लं गृह्णन्ति॥६॥

गोस्त्रं वा एति सं वथ्सरौंऽर्धमासा मिथुनम्मध्यतो देवयानेनैव वीर्यत्रयोदश च॥—[१]

गावो वा एतथ्स्त्रमांसताशृङ्गाः स्तीः शृंङ्गाणि सिषांसन्तीस्तासां दश् मासा निषंण्णा आस्त्रथ् शृङ्गाण्यजायन्त ता अंब्रुवृत्रराथ्स्मोत्तिंष्ठामाव तं कामंमरुथ्स्मिहि येन कामेन न्यषंदामेति तासांमु त्वा अंब्रुवृत्रराथं वा यावंतीर्वासांमहा एवेमौ द्वांदृशौ मासौ संवथ्स्रर स्म्पाद्योत्तिंष्ठामेति तासांम्॥७॥

द्वाद्शे मासि शृङ्गांणि प्रावंर्तन्त श्रृद्धया वाश्रंद्धया वा ता इमा यास्तूंप्रा उभय्यो वाव ता आंध्रुंबन् याश्च शृङ्गाण्यसंन्वन् याश्चोर्जम्वारुंन्धतृप्नीति दृशस्ं मासूँत्तिष्ठंश्रृध्नोति द्वादशसु य एवं वेदं पदेन् खलु वा एते यंन्ति विन्दित् खलु वै पदेन् यन्तद्वा एतदृद्धमयंनन्तस्मादितद्वोसिनं॥८॥

तिष्ठामेति तासान्तस्माद्वे चं॥

प्रथमे मासि पृष्ठान्युपं यन्ति मध्यम उपं यन्त्युत्तम उपं यन्ति तदांहुर्यां वै त्रिरेक्स्याह्नं उपसीदन्ति दहं वै सापंराभ्यां दोहाँभ्यां दुहेऽथ् कृतः सा धोँक्ष्यते यां द्वादंश् कृत्वं उपसीदन्तीति संवथ्सर सम्पाद्यौत्तमे मासि सकृत्पृष्ठान्युपेयुस्तद्यजंमाना यज्ञं पश्ननवं रुन्थते समुद्रं वै॥९॥

पृतेऽनवारमंपारम्प्र प्लंबन्ते ये संबथ्सरमुंप्यन्ति यह्नंहद्रथन्तरे अन्वर्जेयुर्यथा मध्ये समुद्रस्यं प्लबम्न्वर्जेयुस्तादक्तदनुंथ्सर्गम्बृहद्रथन्तराभ्यांमित्वा प्रतिष्ठां गंच्छन्ति सर्वेभयो वै कामेंभ्यः सन्धिर्दुंहे तद्यर्जमानाः सर्वान्कामानवं रुन्धते॥१०॥

स्मुद्रं वै चतुंस्त्रिश्शच॥-----[३]

समान्यं ऋचों भवन्ति मनुष्यलोको वा ऋचों मनुष्यलोकादेव न यंन्त्यन्यदंन्यथ्सामं भवित देवलोको वै सामं देवलोकादेवान्यमंन्यम्मनुष्यलोकम्प्रत्यव्रोहंन्तो यन्ति जर्गतीमग्र् उपं यन्ति जर्गतीं वै छन्दार्शसे प्रत्यवरोहन्त्याग्रयणं ग्रहां बृहत्पृष्ठानिं त्रयस्त्रिर्श्र स्तोमास्तस्माञ्च्यायार्थसं कनीयान्प्रत्यवरोहित वैश्वकर्मणो गृह्यते विश्वान्येव तेन कर्माणि यर्जमाना अवं रुन्थत आदित्यः॥११॥

गृह्यत् इयं वा अदितिर्स्यामेव प्रति तिष्ठन्त्यन्यौन्यो गृह्यते मिथुन्त्वाय् प्रजाँत्या अवान्त्रं वै देशरात्रेणं प्रजापंतिः प्रजा अंसृजत् यद्देशरात्रो भवंति प्रजा एव तद्यजंमानाः सृजन्त एता ह् वा उंद्ङ्कः शौंल्बायनः सृत्रस्यर्द्धिमुवाच् यद्दंशरात्रो यद्दंशरात्रो भवंति स्त्रस्यर्द्धा अथो यदेव पूर्वेष्वहं:स् विलोम क्रियते तस्यैवेषा शान्तिः॥१२॥

आदित्यस्तस्यैव द्वे चं॥-----[४]

यदि सोमौ स॰स्ंतौ स्याताँम्मह्ति रात्रियै प्रातरनुबाकमुपाकुंर्यात्पूर्वो वाचम्पूर्वो देवताः पूर्वश्छन्दा सेस वृङ्के वृषंण्वतीं प्रतिपदं कुर्यात्प्रातःसवनादेवैषामिन्द्रं वृङ्के उथो खल्वाहः सवनमुखेसंवनमुखे कार्येति सवनमुखाथ्संवनमुखादेवैषामिन्द्रं वृङ्के संवेशायोपवेशायं गायत्रियास्त्रिष्टभो जगत्या अनुष्टुभं पङ्क्षा अभिभूत्यै स्वाहा छन्दा से वै संवेश उपवेशश्छन्दों भिरेवैषाम्॥१३॥

छन्दार्श्सि वृङ्के सज्नीयुर् शस्यं विह्वयरं शस्यंम्गस्त्यंस्य कयाशुभीयुर् शस्यंमेतावृद्वा

अंस्ति यावंदेतद्यावंदेवास्ति तदेषां वृङ्के यदि प्रातःसवने कुलशो दीर्येत वैष्ण्वीषुं शिपिविष्टवंतीषु स्तुवीर्न् यद्वै यज्ञस्यांतिरिच्यंते विष्णुं तच्छिंपिविष्टम्भ्यतिं रिच्यते तिद्विष्णुः शिविपिष्टोऽतिंरिक्त प्वातिंरिक्तं दधात्यथो अतिंरिक्तेनैवातिंरिक्तमास्वावं रुन्धते यदि म्ध्यन्दिने दीर्येत वषद्वारिनेधन् सामं कुर्युविषद्वारो वै यज्ञस्यं प्रतिष्ठा प्रतिष्ठामेवैनंद्रमयन्ति यदिं तृतीयसवन एतदेव॥१४॥

छन्दोभिरेवेषामवैकान्नवि ५ंशतिश्चं॥_____

[4]

षुड्हैर्मासाँन्थ्सम्पाद्याह्रुरुथ्सृंजन्ति षड्हैर्हि मासाँन्थ्सम्पश्यंन्त्यर्धमाुसैर्मासाँन्थ्सम्पाद्याह्रुरुथ्सृंजमासाँन्थ्सम्पश्यंन्त्यमावास्यया मासाँन्थ्सम्पाद्याह्रुरुथ्सृंजन्त्यमावास्यया हि मासाँन्थ्सम्पश्यंन्ति पौर्णमास्या मासाँन्थ्सम्पाद्याहुरुथ्सृंजन्ति पौर्णमास्या हि मासाँन्थ्सम्पश्यंन्ति यो वै पूर्ण आंसिञ्जिति परा स सिञ्जिति यः पूर्णादुदचंति॥१५॥

प्राणमंस्मिन्थ्स दंधाति यत्पौर्णमास्या मासौन्थ्सम्पाद्याहंरुथ्युजिन्तं संवथ्सरायैव तत्प्राणं दंधित तदनुं सित्रणः प्राणंन्ति यदहुर्नोथ्युजयुर्यथा दित्ररुपंनद्धो विपतंत्येव संवथ्सरा वि पंतेदार्तिमार्च्छंयुर्यत्पौर्णमास्या मासौन्थ्सम्पाद्याहंरुथ्युजिन्तं संवथ्सरायैव तदुंदानं दंधित तदनुं सित्रण उत्॥१६॥

अनुन्ति नार्तिमार्च्छन्ति पूर्णमांसे वै देवानार्रं सुतो यत्पौर्णमास्या मासौन्थ्सम्पाद्याहंरुथ्सृजन्तिं देवानांमेव तद्यज्ञेनं यज्ञम्प्रत्यवंरोहन्ति वि वा एतद्यज्ञं छिन्दन्ति यत्षंड्हसंतत्र् सन्तमथाहंरुथ्सृजन्तिं प्राजापत्यम्पशुमालंभन्ते प्रजापंतिः सर्वा देवतां देवतांभिरेव यज्ञर् सं तन्वन्ति यन्ति वा एते सर्वनाद्येऽहंः॥१७॥

उथ्सृजन्तिं तुरीयं खलु वा पृतथ्सवंनं यथ्सांन्नाय्यं यथ्सांन्नाय्यम्भवंति तेनैव सवंनान्न यंन्ति समुपृहूयं भक्षयन्त्येतथ्सोमपीथा ह्येतर्हि यथायत्नं वा एतेषार् सवनुभाजों देवतां गच्छन्ति येऽहंरुथ्सृजन्त्यंनुसवनं पुंरोडाशान्निर्वपन्ति यथायत्नादेव संवनुभाजों देवता अवं रुन्थतेऽष्टाकंपालान्प्रातःसवन एकांदशकपालान्माध्यंन्दिने सवने द्वादंशकपालाः स्तृतीयसवने छन्दार्रस्येवास्वावं रुन्धते वैश्वदेवं चुरुं तृतीयसवने निर्वपन्ति वैश्वदेवं वै तृतीयसवनन्तेनैव तृतीयसवनान्न यंन्ति॥१८॥

उदचत्युद्येऽहंरास्वा पश्चंदश च॥=

उथमृज्या (३) न्नोथमृज्या (३) मितिं मीमा स्सन्ते ब्रह्मवादिनस्तद्वांहरुथमृज्यंमेवेत्यंमावास्यां च पौर्णमास्यां चोथ्सुज्यमित्यांहरेते हि यज्ञं वहंत इति ते त्वाव नोथ्सुज्ये इत्यांहर्ये अंवान्तुरं युज्ञम्भेजाते इति या प्रंथमा व्यंष्टका तस्यांमुथ्मुज्यमित्यांहुरेष वै मासो विंशुर इति नादिंष्टम्॥१९॥

उथ्मृंजेयुर्यदादिष्टमुथ्मृजेयुर्यादशे पुनः पर्याप्नावे मध्ये षड्हस्यं सुम्पद्येत षड्हैर्मासाँ-थ्सम्पाद्य यथ्संप्तममहस्तस्मिन्नुथ्सं ज्येयुस्तद्ग्रये वस्नमते पुरोडाशंमुष्टाकंपालं निर्वपेयुरैन्द्रं दधीन्द्रांय मुरुत्वंते पुरोडाशुमेकांदशकपालं वैश्वदेवं द्वादंशकपालमुग्नेर्वे वसुंमतः प्रातःसव्नं यद्ग्रये वसुंमते पुरोडाशंमुष्टाकंपालं निर्वपंन्ति देवतांमेव तद्भागिनीं कुर्वन्तिं॥२०॥

सर्वनमष्टाभिरुपं यन्ति यदैन्द्रं दिध भवतीन्द्रंमेव तद्भागधेयात्र च्यावयन्तीन्द्रंस्य वै मरुत्वंतो मार्ध्यंदिन । सर्वनं यदिन्द्रांय मरुत्वंते पुरोडाशमेकांदशकपालं निर्वपंन्ति देवतांमेव तद्भागिनीं कुर्वन्ति सर्वनमेकादशभिरुपं यन्ति विश्वेषां वै देवानांमृभुमतां तृतीयसवनं यहैं श्वदेवं द्वादेशकपालं निर्वपन्ति देवतां एव तद्भागिनीः कुर्वन्ति सर्वनं द्वादशिमः॥२१॥

उपं यन्ति प्राजापुत्यम्पुशुमा लंभन्ते युज्ञो वै प्रजापितिर्युज्ञस्यानंनुसर्गायाभिवृर्त इतः षण्मासो ब्रह्मसामम्भवति ब्रह्म वा अभिवर्तो ब्रह्मणैव तथ्सुंवर्गं लोकमंभिवर्तयंन्तो यन्ति प्रतिकूलिमेंव हीतः सुंवर्गी लोक इन्द्र ऋतुं न आ भेर पिता पुत्रेभ्यो यथाँ। शिक्षां नो अस्मिन्पुंरुहृत् यामंनि जीवा ज्योतिरशीमुहीत्यमुतं आयुतार षण्मासो ब्रह्मसामम्भंवत्ययं वै लोको ज्योतिः प्रजा ज्योतिरिममेव तल्लोकम्पश्यन्तोऽभिवदेन्त आ येन्ति॥२२॥

नादिष्टङ्कर्वन्तिं द्वाद्शभिरितिं वि श्वातिश्चं॥————[७]

देवानां वा अन्तं ज्रमुपांमिन्द्रियं वीर्यमपांकामृत्तत्क्रोशेनावां रुन्धत् तत्क्रोशस्यं क्रोशृत्वं यत्क्रोशेन् चात्वालस्यान्तें स्तुवन्तिं युज्ञस्यैवान्तें गुत्वेन्द्रियं वीर्यमवं रुन्धते सत्रस्यर्द्धाहवनीयस्यान्तैं स्तुवन्त्यग्निमेवोपंद्रष्टारं कृत्वर्द्धिमुपं यन्ति प्रजापंतेर्हृदंयेन हविर्धाने-ऽन्तः स्तुवन्ति प्रेमाणमेवास्यं गच्छन्ति श्लोकेनं पुरस्ताथ्सदंसः॥२३॥

स्तुवन्त्यनुंश्लोकेन पश्चाद्यज्ञस्यैवान्तं गृत्वा श्लोकभाजो भवन्ति नवभिरध्वर्युरुद्गांयति नव वै पुरुषे प्राणाः प्राणानेव यर्जमानेषु दधाति सर्वा ऐन्द्रियों भवन्ति प्राणेष्वेवेन्द्रियं दंधत्यप्रंतिहृताभिरुद्गायित् तस्मात्पुरुषः सर्वाण्यन्यानि शीष्णोऽङ्गानि प्रत्यंचित् शिरं एव न पश्चंदशः रंथन्तरम्भवतीन्द्रियमेवावं रुन्धते सप्तद्शम्॥२४॥

बृहद्त्राद्यस्यावंरुद्धा अथो प्रैव तेनं जायन्त एकविर्शम्भद्रं द्विपदांसु प्रतिष्ठित्यै पत्नंय उपं गायन्ति मिथुन्त्वाय प्रजात्यै प्रजापंतिः प्रजा अंसृजत् सोऽकामयतासाम्हर राज्यं परीयामिति तासारं राजनेनैव राज्यं पर्येत्तद्रांजनस्यं राजन्तवं यद्रांजनम्भवंति प्रजानामेव तद्यजमाना राज्यं परिं यन्ति पश्चिव्रशम्भवति प्रजापंतेः॥२५॥

आर्थै पृश्चभिस्तिष्ठंन्तः स्तुवन्ति देवलोकमेवाभि जंयन्ति पृश्चभिरासींना मनुष्यलोकमेवाभि जंयन्ति दश् सम्पंचन्ते दशाँक्षरा विराडन्नं विराजैवान्नाद्यमवं रुन्धते पश्चधा विनिषद्यं स्तुवन्ति पश्च दिशौं दि्क्ष्वेव प्रतिं तिष्ठन्त्येकैक्यास्तुंतया सुमायन्ति दिग्भ्य पुवान्नाद्यम् सम्भरन्ति ताभिरुद्गातोद्गायित दिग्भ्य पुवान्नाद्यम्॥२६॥

सम्भृत्य तेजं आत्मन्दंधते तस्मादेकंः प्राणः सर्वाण्यङ्गांन्यवृत्यथो यथां सुपूर्ण उत्पतिष्यञ्छिरं उत्तमं कुंकत एवमेव तद्यजंमानाः प्रजानांमृत्तमा भवन्त्यास्नदीमृंद्वाता रोंहिति साम्रांज्यमेव गंच्छिन्ति ष्टेङ्कः होता नाकंस्यैव पृष्ठः रोहिन्ति कूर्चावंध्वर्युर्ब्र्ध्रस्यैव विष्टपं गच्छन्त्येतावंन्तो वै देवलोकास्तेष्वेव यंथापूर्वं प्रति तिष्ठन्त्यथो आक्रमंणमेव तथ्सेतुं यजंमानाः कुर्वते सुवर्गस्यं लोकस्य समध्ये॥२७॥

सर्दसः सप्तद्शं प्रजापंतेर्गायति दिग्भ्य पृवात्राद्यम्प्रत्येकांदश च॥-----[८]

अर्कोण् वै संहस्रशः प्रजापंतिः प्रजा अंस्रजत् ताभ्य इलाँन्देनेरां लूतामवांरुन्द् यद्क्यम्भवंति प्रजा एव तद्यजंमानाः स्जन्त् इलाँन्दम्भवति प्रजाभ्यं एव सृष्टाभ्य इरां लूतामवं रुन्धते तस्माद्या समार्थ सन्त्र समृद्धं क्षोधुंकास्ता समां प्रजा इष्ड् ह्यांसामूर्जमाददंते या समां व्यृद्धमक्षोधुकास्ता समां प्रजाः॥२८॥

न ह्यांसामिष्मूर्जमाददंत उत्क्रोदं कुंवंते यथां बन्धान्मुंमुचाना उत्क्रोदं कुंवंतं एवमेव तद्यजमाना देवबन्धान्मुंमुचाना उत्क्रोदं कुंवंत इष्मूर्जमात्मन्दधांना वाणः श्वततंन्तुर्भवति श्वायुः पुरुषः श्वेन्द्रिय आयुंष्येवेन्द्रिये प्रतिं तिष्ठन्त्याजिं धांवन्त्यनंभिजितस्याभिजित्यै दुन्दुभीन्थ्समाष्ट्रन्ति परमा वा एषा वाग्या दुन्दुभौ पर्मामेव॥२९॥

वाचमवं रुन्धते भूमिदुन्दुभिमा घ्रंन्ति यैवेमां वाक्प्रविष्टा तामेवावं रुन्धतेऽथों

ड्रमामेव जंयन्ति सर्वा वाचों वदन्ति सर्वांसां वाचामवंरुद्धा आर्द्रे चर्मन्व्यायंच्छेते इन्द्रियस्यावंरुद्धा आन्यः क्रोशंति प्रान्यः शर्रसित य आक्रोशंति पुनात्येवैनान्थ्स स यः प्रशर्सित पूतेष्वेवान्नाद्यं दधात्यृषिंकृतं च॥३०॥

वा एते देवकृतं च पूर्वेर्मासैरवं रुन्धते यद्भूतेच्छदा सामानि भवंन्त्युभयस्यावंरुद्धै यन्ति वा एते मिथुनाद्ये संवथ्सरम्प्ययन्त्यंन्तर्वेदि मिथुनौ सम्भवतस्तेनैव मिथुनान्न यंन्ति॥३१॥

व्यृंद्धमक्षोधुकास्ता १ समाँ प्रजाः पर्मामेव चं त्रि १ शर्च॥————[९]

चर्मावं भिन्दन्ति पाप्मानंमेवेषामवं भिन्दन्ति मापं राथ्सीमातिं व्याथ्सीरित्यांह सम्प्रत्येवेषां पाप्मानमवं भिन्दन्त्युदकुम्भानंधिनिधायं दास्यों मार्जालीयं परिं नृत्यन्ति पदो निंघ्नतीरिदम्मंधुं गायंन्त्यो मधु वे देवानां पर्ममृन्नाद्यं पर्ममेवान्नाद्यमवं रुन्धते पदो नि घ्रंन्ति महीयामेवेषुं दधति॥३२॥

चर्मेकान्नपंश्चाशत्॥———[१०]

पृथिव्यै स्वाह्ग-तरिक्षाय स्वाहां दिवे स्वाहां सम्प्लोष्यते स्वाहां सम्प्लवंमानाय स्वाहां सम्प्लेताय स्वाहां मेघायिष्यते स्वाहां मेघायते स्वाहां मेघाताय स्वाहां मेघाय स्वाहां नीहाराय स्वाहां निहाकांये स्वाहां प्रास्चाय स्वाहां प्रचलाकांये स्वाहां विद्योतिष्यते स्वाहां विद्योतिमानाय स्वाहां संविद्योतंमानाय स्वाहां स्तनयंते स्वाहां स्तनयंते स्वाहां स्तनयंते स्वाहां स्तनयंते स्वाहां स्तनयंते स्वाहां संवर्षते॥३३॥

स्वाहांनुवर्षते स्वाहां शीकायिष्यते स्वाहां शीकायते स्वाहां शीकिताय स्वाहां प्रोषिष्यते स्वाहां प्रुष्णते स्वाहां परिप्रुष्णते स्वाहांद्वहीष्यते स्वाहोंद्वहूते स्वाहोद्वहीताय स्वाहां विप्लोष्यते स्वाहां विप्लोष्यते स्वाहां विप्लोष्यते स्वाहां विप्लोष्यते स्वाहां विप्लोष्यते स्वाहां विद्लोष्यते स्वाहां विद्लेष्यः स्वाहां विद्लेष्यः स्वाहां विद्लेष्यः स्वाहां विद्लेष्यः स्वाहां गाथांभ्यः स्वाहां नाराश्र्षंसीभ्यः स्वाहां रैभींभ्यः स्वाहां सर्वस्मै स्वाहां॥३४॥

सं वर्षते रैभीभ्यः स्वाहा द्वे चं॥———[११]

दुत्वते स्वाहांऽदुन्तकांय स्वाहां प्राणिने स्वाहांऽप्राणाय स्वाहा मुखंवते स्वाहां-

ऽमुखाय स्वाहा नासिकवते स्वाहांऽनासिकाय स्वाहांऽक्षण्वते स्वाहांऽनिक्षिकांय स्वाहां कृणिने स्वाहांऽकृणिकांय स्वाहां शीर्षण्वते स्वाहांऽशीर्षकांय स्वाहां पद्धते स्वाहांऽपादकांय स्वाहां प्राणते स्वाहाऽप्राणते स्वाहा वदंते स्वाहाऽवंदते स्वाहा पश्यंते स्वाहाऽपंश्यते स्वाहां शृण्वते स्वाहाऽशृणवते स्वाहां मनुस्विने स्वाहां॥३५॥

अमृनसे स्वाहां रेतस्विने स्वाहांऽरेतस्कांय स्वाहां प्रजाभ्यः स्वाहां प्रजननाय स्वाहा लोमंवते स्वाहांऽलोमकांय स्वाहां त्वचे स्वाहाऽत्वकांय स्वाहा चर्मण्वते स्वाहांऽचम्कांय स्वाहा लोहितवते स्वाहांऽलोहिताय स्वाहां माश्सन्वते स्वाहांऽमाश्सकांय स्वाहा स्वावंभ्यः स्वाहांऽस्वकांय स्वाहांऽस्थन्वते स्वाहांऽनस्थिकांय स्वाहां मञ्चन्वते स्वाहांऽमुञ्जकांय स्वाहांऽनङ्गाय स्वाहाऽत्मने स्वाहाऽनांत्मने स्वाहा सर्वस्मै स्वाहां॥३६॥

मुनुस्विने स्वाहाऽनाँत्मने स्वाहा द्वे चं॥————[१२]

कस्त्वां युनिक्तः स त्वां युनक्तु विष्णुंस्त्वा युनक्तस्य युज्ञस्यर्छे मह्यू सन्नंत्या अमुष्मे कामायायुंषे त्वा प्राणायं त्वाऽपानायं त्वा व्यानायं त्वा व्युष्टी त्वा रय्ये त्वा राधंसे त्वा घोषांय त्वा पोषांय त्वाराद्धोषायं त्वा प्रच्युंत्यै त्वा॥३७॥

अग्नयें गायत्रायं त्रिवृते राथंतराय वास्नतायाष्टाकंपाल इन्द्रांय त्रैष्टूंभाय पश्चद्शाय बार्ह्ताय ग्रैष्मायेकांदशकपालो विश्वेभ्यो देवेभ्यो जागंतेभ्यः सप्तद्शेभ्यों वैरूपेभ्यो वार्षिकेभ्यो द्वादंशकपालो मित्रावर्रुणाभ्यामानुष्टुभाभ्यामेकविष्ट्शाभ्यां वैराजाभ्यार्थ शार्दाभ्यां पयस्यां वृह्स्पतंये पाङ्कांय त्रिण्वायं शाक्रराय हैमंन्तिकाय चुरुः संवित्र आंतिच्छन्द्सायं त्रयस्त्रिष्ट्शायं रैवृतायं शैशिराय द्वादंशकपालोऽदिंत्ये विष्णुंपत्र्ये चुरुर्ग्नयें वैश्वान्राय द्वादंशकपालोऽन्नंमत्ये चुरुः काय एकंकपालः॥३८॥

अम्रयेऽदित्या अनुमत्ये सप्तचंत्वारिश्शत्॥-----[१४]

यो वा अग्नावृग्निः प्रिंहियते यश्च सोमो राजा तयोरिष आंतिथ्यं यदंग्नीषोमीयोऽथैष रुद्रो यश्चीयते यथ्सश्चितेऽग्नावेतानिं ह्वीर्ष्षि न निर्विषेदेष एव रुद्रोऽशाँन्त उपोत्थायं प्रजां पुशून् यजंमानस्याभि मन्येत यथ्सश्चितेऽग्नावेतानिं ह्वीर्षिं निर्वर्पति भागुधेयेंनैवैनर्र शमयति नास्यं रुद्रोऽशाँन्तः॥३९॥

उपोत्थायं प्रजां पृश्नूनिभ मंन्यते दशं ह्वी १ षि भवन्ति नव वै पुरुषे प्राणा नाभिर्दश्मी प्राणानेव यर्जमाने दधात्यथो दशाँक्षरा विराङ्गं विराज्येवान्नाद्ये प्रति तिष्ठत्यृतुभिर्वा एष छन्दोभिः स्तोमैंः पृष्ठैश्चेत्व्यं इत्यांहुर्यदेतानिं ह्वी १ षि निर्वपंत्यृतुभिर्वेनं छन्दोभिः स्तोमैंः पृष्ठैश्चेत्वयं इत्यांहुर्यदेतानिं ह्वी १ षि निर्वपंत्यृतुभिर्वेनं छन्दोभिः स्तोमैंः पृष्ठैश्चिन्ते दिशंः सुषुवाणेनं॥४०॥

अभिजित्या इत्यांहुर्यदेतानिं ह्वी १ पिं निर्वपंति दिशाम्भिजिंत्या एतया वा इन्द्रं देवा अयाजयन्तस्मादिन्द्रस्व एतया मनुम्मनुष्यांस्तस्मान्मनुस्वो यथेन्द्रों देवानां यथा मनुर्मनुष्यांणामेवम्भविति य एवं विद्वानेतयेष्ट्या यजेते दिग्वतीः पुरोनुवाक्यां भवन्ति सर्वांसां दिशामभिजिंत्ये॥४१॥

यः प्राण्तो निमिष्तो महित्वैक इद्राजा जगतो बुभूवं। य ईशें अस्य द्विपद्श्वतुंष्पदः कस्मै देवायं ह्विषां विधेम। उपयामगृहीतोऽसि प्रजापंतये त्वा जुष्टं गृह्णामि तस्यं ते द्यौर्महिमा नक्षेत्राणि रूपमांदित्यस्ते तेजुस्तस्मैं त्वा महिम्ने प्रजापंतये स्वाहाँ॥४२॥

यः प्राण्तो द्यौरादित्यौऽष्टात्रिर्श्यत्॥———[१६

य आँत्मदा बंलुदा यस्य विश्वं उपासंते प्रशिष् यस्यं देवाः। यस्यं छायामृत्ं यस्यं मृत्युः कस्मैं देवायं ह्विषां विधेम। उपयामगृंहीतोऽसि प्रजापंतये त्वा जुष्टं गृह्णामि तस्यं ते पृथिवी मंहिमौषंधयो वनस्पतंयो रूपमृग्निस्ते तेजस्तस्मैं त्वा महिम्ने प्रजापंतये स्वाहाँ॥४३॥

य औत्मदाः पृथिव्यंग्निरेकान्नचंत्वारिर्शात्॥-----[१७]

आ ब्रह्मंन्ब्राह्मणो ब्रंह्मवर्च्सी जांयतामाऽस्मित्राष्ट्रे रांजुन्यं इष्ट्यः शूरों महार्थो जांयतान्दोग्ध्रीं धेनुर्वोढांऽनुङ्गानाशुः सिप्तः पुरिधयोषां जिष्णू रिथेष्ठाः सभेयो युवाऽस्य यर्जमानस्य वीरो जांयतान्निकामेनिकामे नः पुर्जन्यों वर्षतु फुलिन्यों न ओषंधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नंः कल्पताम्॥४४॥

आ ब्रह्मन्नेकंचत्वारि १शत्॥———[१८]

आक्रान् वाजी पृथिवीम्भि युजंमकृत वाज्यवीक्रान् वाज्यंन्तिरक्षे वायुं युजंमकृत वाज्यर्वा द्यां वाज्याऽकर्ंस्त सूर्यं युजंमकृत वाज्यर्वाभिस्ते वाजिन् युङ्कनु त्वा रंभे स्वस्ति मा सम्पारय वायुस्ते वाजिन् युङ्कनु त्वा रंभे स्वस्ति मा सम्॥४५॥

पार्यादित्यस्ते वाजिन् युङ्कनु त्वा रंभे स्वस्ति मा सम्पारय प्राण्धृगंसि प्राणं में द॰ह व्यान्धृगंसि व्यानं में द॰हापान्धृगंस्यपानं में द॰ह चक्षुंरिस चक्षुर्मियं धेहि श्रोत्रंमिस श्रोत्रम्मिये धेह्यायुंर्स्यायुर्मिये धेहि॥४६॥

वायुस्ते वाजिन् युङ्कनु त्वा रंभे स्वस्ति मा सन्निर्चत्वारिश्शच॥————[१९]

जिज्ञ बीजं वर्ष्टां पूर्जन्यः पक्तां सुस्य स्पिप्पूला ओषंधयः स्वधिचर्णेय स् सूपसदुनौऽग्निः स्वध्यक्षमृन्तरिक्ष सुपावः पर्वमानः सूपस्थाना द्यौः शिवमसौ तपन् यथापूर्वमहोरात्रे पंश्चद्शिनौऽर्धमासास्त्रि शिनो मासौः क्रुप्ता ऋतवेः शान्तः संवथ्सरः॥४७॥

जिज्ञ बीज्मेकंत्रिरशत्॥———[२०]

आग्नेयौऽष्टाकंपालः सौम्यश्चरुः सांवित्रौऽष्टाकंपालः पौष्णश्चरू रौद्रश्चरुर्ग्नये वैश्वान्राय द्वादंशकपालो मृगाख्रे यदि नागच्छेंद्ग्नयेऽर्रहोमुचेऽष्टाकंपालः सौर्यम्पयो वायव्यं आज्यंभागः॥४८॥

आुग्नेयश्चतुंर्वि रशतिः॥_____[२१]

अग्नयेऽ रेहोमुचेऽष्टाकंपाल इन्द्रांया रहोमुच एकांदशकपालो मित्रावरुंणाभ्यामागोमुग्भ्यां पयस्यां वायोसावित्र आंगोमुग्भ्यां चुरुरिक्षिभ्यांमागोमुग्भ्यां धाना मुरुद्धं एनोमुग्भ्यां सप्तकंपालो विश्वंभ्यो देवेभ्यं एनोमुग्भ्यो द्वादंशकपालोऽनुंमत्यै चुरुर्ग्नये वैश्वान्राय द्वादंशकपालो द्यावांपृथिवीभ्यांम रहोमुग्भ्यां द्विकपालः॥४९॥

अुग्नयेऽ५होमुर्चे त्रिर्शत्॥———[२२]

अग्रये समनमत्पृथिव्ये समनम्द्यथाग्निः पृथिव्या समनमदेवम्मह्यंम्भुद्राः सन्नतयः सं नमन्तु बायवे समनमदन्तिरक्षाय समनमद्वयां वायुर्न्तिरक्षेण सूर्याय समनमद्दिव समनम्द्रथां स्यानम्द्रथां द्वा चन्द्रमं समनम्द्रथां समनम्द्रथां चन्द्रमा नक्षेत्रैर्वरुणाय समनमद्रयः समनम्द्रथाः समनम्

वर्रणोऽद्भिः साम्ने समनमद्दे समनम्द्रथा सामुर्चा ब्रह्मणे समनमत्क्षुत्राय समनम्द्रथा

ब्रह्मं क्षुत्रेण राज्ञे समंनमद्विशे समंनम्द्यथा राजां विशा रथांय समंनम्दर्श्वेभ्यः समंनम्द्यथा रथोऽश्वैः प्रजापंतये समंनमद्व्येभ्यः समंनम्द्यथां प्रजापंतिर्भूतैः समनंमद्वम्मह्यंभ्भद्राः सन्नंतयः सं नंमन्तु॥५१॥

अद्धः समनम्द्राथा मह्यं चृत्वारि च॥------[२३]

ये ते पन्थांनः सिवतः पूर्व्यासोऽरेणवो वितंता अन्तरिक्षे। तेभिनी अद्य पृथिभिः सुगेभी रक्षां च नो अधि च देव ब्रूहि। नमोऽग्नये पृथिविक्षिते लोकस्पृते लोकमस्मै यर्जमानाय देहि नमों वायवेंऽन्तरिक्षक्षिते लोकस्पृते लोकमस्मै यर्जमानाय देहि नमः सूर्याय दिविक्षिते लोकस्पृते लोकमस्मै यर्जमानाय देहि॥५२॥

ये ते चतुंश्चत्वारि १शत्॥-----[२४]

यो वा अश्वंस्य मेध्यंस्य शिरो वेदं शीर्षण्वान्मेध्यों भवत्युषा वा अश्वंस्य मेध्यंस्य शिरः सूर्यश्चश्चुर्वातः प्राणश्चन्द्रमाः श्रोत्रन्दिशः पादां अवान्तरिद्धाः पर्श्वाऽहोरात्रे निमेषौं- ऽर्धमाुसाः पर्वाणि मासाः सुंधानांन्यृतवोऽङ्गांनि संवथ्सर आत्मा रश्मयः केशा नक्षेत्राणि रूपन्तारंका अस्थानि नभों मार्सान्योषंधयो लोमांनि वनस्पतंयो वालां अग्निर्मुखं वैश्वानरो व्यात्तम्॥५३॥

समुद्र उदरंमन्तिरेक्षम्पायुर्चावांपृथिवी आण्डौ ग्रावा शेपः सोमो रेतो यज्ञं श्रभ्यते तिद्व द्योतते यिद्वंधूनुते तथ्स्तंनयित यन्मेहंित तद्वंर्षित वागेवास्य वागहुर्वा अश्वंस्य जायंमानस्य मिह्मा पुरस्तौज्ञायते रात्रिरेनम्मिह्मा पृश्चादनुं जायत एतौ वै मेहिमानावश्वंम्भितः सम्बंभूवतुर्ह्यों देवानंबहुदर्वासुंरान् वाजी गंन्ध्वांनश्वां मनुष्यौन्थ्समुद्रो वा अश्वंस्य योनिः समुद्रो बन्धुं:॥५४॥

व्यात्तंमवहृद्वादंश च॥------[२५]

[गार्वः समान्यः सर्वनमष्टाभिर्वा एते देवकृतश्चाभिजित्या इत्यांहुर्वरुणोऽद्भिः साम्ने

चतुं:पश्चाशत्॥54॥ गावो योनिं: समुद्रो बन्धुं:॥]